SANJIWANI
1991 Jun-Dec

संजीवनी

अंक 5

जौ०, अगस्त, सि० 91

1991

JUL-DEC



परिवर्तन जीवन का शाश्वत सत्य है. हमारे जीवन में भी परिवर्तन होता है. बचपन, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और फिर वृद्धावस्था के रूप में. समय में, युग में और संस्कृतियों में भी परिवर्तन होता है. इन परिवर्तनों में भी एक सत्य यह है कि आने वाले कल पर बीते हुए कल की छाप होती है. कुछ परिवर्तन ज़रूरी भी हैं जीवन को गतिशील रखने के लिए, तभी तो शायद विधाता ने इस सृष्टि को भी नियमों में बांधा है, छः ऋतुओं में परिवर्तन करके.

इसी परिवर्तन का प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी पड़ता है, तभी तो कभी हम स्वस्थ होते हैं तो कभी बीमार पड़ जाते हैं. ऋतुओं में एक वर्षा ऋतु भी है, जो ग्रीष्म की तपती धूप के बाद आनंद भी देती है और अप्रत्यक्ष रूप से रोगवाहक भी है. दूषित वर्षा का जल कई तरह से रोग फैलाता है, तो मक्खी, मच्छरों से भी रोग होते हैं.

इस अंक में भी वर्षाकालीन कुछ मुख्य रोगों पर जानकारी तो दी ही जा रही है, साथ ही यह भी जानकारी इसमें है कि आप कुछ सावधानियों को अपनाकर इन रोगों को होने से पूर्व ही कैसे रोक सकते हैं.



'आरोग्य संजीवनी' के पिछले अंकों को आपने जिस तरह अपनाया व उसकी सामग्री आपके लिए पठनीय साबित हुई इसकी हमें खुशी है. अब यह अंक भी आपके समक्ष है. इसे पढ़ें और अपनी राय हमें प्रेषित करें.

वैद्य प्रकाश ...

आरोग्य संजीवनी

चेतावनी

आरोग्य संजीवनी ने दवाइयों (औषधियों) एवं विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के बारे में तथ्यपूर्ण जानकारी देने की पूरी सावधानी बरती है, फिर भी पाठकों को चेतावनी दी जाती है कि रोगी अपने क्षेत्र के किसी योग्य चिकित्सक से परामर्श लेने के बाद ही इन दवाइयों या पद्धतियों को प्रयोग में लायें. संपादक एवं प्रकाशक किसी भी इलाज पद्धति, लेख या प्रिंटिंग की भूल के लिए किसी भी तरह से जिम्मेदार व जवाबदार नहीं है.

राजीव वेद प्रकाश पाहवा द्वारा
मुद्रित एवं प्रकाशित पायोनियर बुक कं. प्रा. लि. के लिए, उषा ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि
125, गवर्नमेन्ट इंडस्ट्रियल इस्टेट, कांदीवली (प.) बंबई, द्वारा मुद्रित एवं डॉ. वेद प्रकाश
संपादित और पायोनियर बुक कं. प्रा. लि. 160 डी. एन. रोड, बंबई-400001. से प्रक

आरोग्य संजीवनी में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, आवश्यक नहीं है. पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर विरुद्ध कार्यवाही केवल बंबई कोर्ट में होगी. पायोनियर बुक कं. प्रा. लि 160 दादा भाई नौरोजी रोड. बंबई 400001.

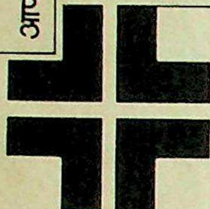
फोन – [illegible]
संपादकीय कार्यालय – 4303711, 4222218,



आरोग्य संजीवनी

वर्षाऋतु (अंक ५)

जुलाई, अगस्त, सितंबर १९९१



नवरत्नों से अधिक मूल्यवान

मैं आपके यहां से प्रकाशित 'आरोग्य संजीवनी' पत्रिका का नियमित ग्राहक हूं. यह स्वास्थ्य संबंधी पत्रिका निरन्तर लोकप्रियता की ओर अग्रसर हो रही है.

इस पत्रिका में प्रकाशित विद्वान लेखकों, डॉक्टरों के प्रत्येक लेख नवरत्नों से भी अधिक मूल्यवान हैं. आयुर्वेद विज्ञान एवं चिकित्सा प्रणाली में मेरी आस्था एवं विश्वास है.

इस पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की मंगल कामना भगवान धन्वंतरि से करता हूं.

- सुरेश कुमार शर्मा
बिलासपुर (म.प्र.)

आरोग्य लाभ पहुंचाने का बीड़ा

'आरोग्य संजीवनी' अंक - ४ देखने का अवसर मिला. हिंदी भाषा की स्वास्थ्य गरिमा को प्रतिष्ठापित कराने में आपकी पत्रिका पूर्णतः सफल है. आपने इसमें एक ही साथ प्राकृतिक, होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतियों की विशेषता दर्शाते हुए जनमानस को आरोग्य-लाभ पहुंचाने का बीड़ा उठाया है, जो एक सराहनीय प्रयास है.

- डॉ. अर्जुन पाण्डेय
धनबाद (बिहार)

अधिक जानकारी की आशा

'आरोग्य संजीवनी' का चौथा अंक पढ़ने का सौभाग्य मिला. प्रकाशित लेख तथा कलेवर पसंद आए. दुनिया से लुप्त होते रहे आयुर्वेदिक सिद्धांतों को फिर से जागृत करने का आपका यह प्रयास सचमुच सराहनीय है.

आशा है, आयुर्वेदिक सिद्धांतों के बारे में भविष्य में और अधिक जानकारी देंगे, जिससे हम पाठकों को इसका निरंतर लाभ मिलता रहेगा.

- प्रदीप के.सी.
भरतपुर (नेपाल)

कठिन शब्दों का प्रयोग

मैं 'आरोग्य संजीवनी' पत्रिका नियमित रूप से पढ़ रहा हूं. आपकी पत्रिका आयुर्वेद ज्ञान की कमी को दूर करती है, परंतु कुछ कठिन शब्दों के प्रयोग की वज़ह से इसे आम व्यक्ति समझ नहीं पाता. आशा है आप सरल शब्दों का प्रयोग करेंगे.

- अभयकुमार
सीतामढ़ी (बिहार)

पत्रिका से जीवन का संयमित विकास

'आरोग्य संजीवनी' का आयुर्वेदिक पत्रिकाओं में उच्च स्थान है. इसमें आयुर्वेद के प्रत्येक अंग पर विद्वानों द्वारा लिखित सुरुचिपूर्ण लेख पढ़ने को मिलते हैं, जिसके पठन-पाठन से जीवन आरोग्यमय व संयमित होगा. ऐसी श्रेष्ठ पत्रिका के प्रकाशक को तथा संपादक को मेरी शुभकामनाएं.

रूपनारायण वर्मा 'वेणु'
रायपुर (म.प्र.)

प्रखर शैली

अन्य आरोग्य सम्बन्धी पत्रिकाओं की तुलना में 'आरोग्य संजीवनी' की वैज्ञानिक शैली अधिक प्रखर है. हमारी आपसे प्रार्थना है कि इस पत्रिका के रूप को उत्तरोत्तर ज़्यादा परिपूर्णता प्रदान करते रहें और आयुर्वेद में वर्णित बीमारियों के अंग्रेजी नाम भी लिख दिया करें, जिससे बीमारी को समझने में ज़्यादा सरलता रहे.

- मोहनफुल वधवा
तुम्सर (महाराष्ट्र)

सौ तालों की एक चाभी

मेरी ओर से 'आरोग्य संजीवनी' को हार्दिक शुभकामनाएं. मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि भारत में इतनी सरल, रोचक, ज्ञानवर्धक पुस्तिका का प्रकाशन होगा. सचमुच 'आरोग्य संजीवनी' सौ तालों की एक चाभी है. इसके द्वारा लाखों रोगियों को नई दिशा मिली है. पत्रिका दिन प्रतिदिन निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर हो, इसकी कामना करता हूं.

- घनश्याम खटवानी
गोंदिया (महाराष्ट्र)

अद्वितीय प्रयास

'आरोग्य संजीवनी' का ग्रीष्म ऋतु अंक पढ़कर बेहद खुशी हुई. आपने इस पत्रिका में किसी प्रकार की कमी नहीं छोड़ी है. आज सारे संसार को आयुर्वेद शास्त्र की आवश्यकता है, क्योंकि इसमें व्याधि होने पर केवल चिकित्सा ही नहीं की जाती, बल्कि व्याधि न होने के लिए अमूल्य उपदेश दिए हैं, जिन्हें आप बड़ी लगन और उत्साह से जनता के सामने प्रकट कर रहे हैं. आप ऋतु के अनुसार व्याधि, चिकित्सा तथा दिनचर्या देते हैं. इसलिए दीर्घायु बनने के सभी इच्छुक व्यक्ति आगामी अंकों की बेसब्री से प्रतीक्षा करते हैं. आपकी यह पत्रिका हर शहर में उपलब्ध हो, कृपया इसका प्रबंध करें.

- श्री पी.सी. बिन्हाडे
नांदेड़ (महाराष्ट्र)

पत्रिका न होकर आयुर्वेदिक ग्रन्थ

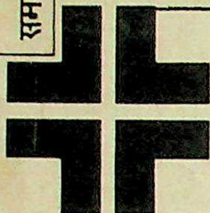
पत्रिका का नियमित अध्ययन करने के बाद मुझे पत्रिका में कोई भी कमी दृष्टिगोचर नहीं हुई. फिर भी पत्रिका की शैली जो जटिलता का आभास दे रही है वह आपका दोष न होकर आयुर्वेद ग्रंथ के शब्दकोश का है. अतः आपसे अनुरोध है कि पत्रिका को विभिन्न प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण करें जिससे इस पत्रिका को पढ़कर पाठक स्वास्थ्य का स्थायी व उपयोगी लाभ प्राप्त कर सकें.

कर्मसिंह शेखावत
जीन्द (हरियाणा)

हार्दिक बधाई

'आरोग्य संजीवनी' समान पत्रिका की तलाश मुझे बचपन से थी. इस इच्छा को आपने पूर्ण किया, इसके लिए मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूं. पत्रिका का 'ग्रीष्म ऋतु' अंक बहुत ज्ञानवर्धक लगा. इस अंक में 'बालरोग-टॉन्सिलाइटिस की चिकित्सा' और 'मट्ठा की औषधीय उपयोगिता' जैसे लेख ने इस पत्रिका में चार चांद लगा दिए हैं. इस पत्रिका को पाकर मैं अपने आप को काफी भाग्यवान समझता हूं.

धनंजय कुमार राय (पटना)



बच्चों में 'एड्स' बुलन्दी पर

'वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन' के अनुसार शिशुओं और छोटे बच्चों में एड्स की बीमारी बढ़ती जा रही है. बीसवीं सदी तक क़रीब दस लाख बच्चों को यह बीमारी हो सकती है.

पिछले १० सालों में ५ साल से छोटे ४,००,००० शिशुओं को एड्स की बीमारी थी. उसमें से ९०% तो सिर्फ़ अफ्रीका के सहारा के थे. १९९० में ७,००,००० एड्स से ग्रस्त रोगी संसार में थे, जिसमें से ज़्यादातर रोगी विकासशील देशों के हैं.

'वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन' के अध्यक्ष 'माइकल मर्सन' के अनुसार 'एड्स की समस्या बच्चों में बढ़ रही है क्योंकि यह औरतों में बड़े पैमाने पर पायी जा रही है.' उन्होंने कहा कि सरकार की तरफ़ से कुछ प्रयत्न किए गए. यदि बीसवीं शताब्दी में अच्छे परिणाम पाने हैं, तो सरकार को अभी से एड्स-निरोधक कार्यक्रम चलाने होंगे, बच्चों को निर्देश देने होंगे, स्वास्थ्य कार्यक्रमों को बढ़ावा देना होगा और सतत 'एड्स' पर शोध को ज़ारी रखना होगा, जिससे रोगी और रोग दोनों का इलाज हो.

प्लेग पर ध्यान देने की ज़रूरत है

प्लेग वैसे तो स्थानिक रोग है, परंतु यदि असुरक्षित व्यक्तियों में रोगवाहक जन्तुओं के घुसने की संवेदनशीलता अधिक हो तब यह संक्रामक भी हो सकता है.

बीसवीं सदी में भी प्लेग का भयानक दौर शुरू है. १९८९ में क़रीब ७७० व्यक्तियों को यह बीमारी हुई थी. 'प्लेग रेफ्रेन्स लेबोरेटरी' से बहुत दूर यह रोग संक्रमित होता है. इसमें डॉक्टरी जांच की आवश्यकता होती है. शीघ्र ही उपचार की आवश्यकता होती है, जिससे मृत्यु को भी रोका जा सकता है.

इसके लिए लोगों को स्वच्छता रखने की शिक्षा देनी चाहिए. मच्छरों को मारनेवाली दवाइयों का छिड़काव करना चाहिए. और टेट्रासाइक्लीन से बीमारों का उपचार करना चाहिए.

प्लेग का प्रकरण अल्जीरिया के 'अल्बर्ट कैमस' द्वारा शुरू किया गया है. इसके विविध लक्षण फैलने के कारण उक्त जन्तुओं का प्राकृतिक इतिहास और इसकी वजह से होनेवाले कष्टों की तरफ़ ध्यान देने की ज़रूरत है.

रक्तशोषक चमगादड़ भी हैं रोगवाहक

'फार्मास्युटिकल इंडस्ट्री' के वैज्ञानिकों के अनुसार चमगादड़ की लार में एक ऐसा पदार्थ होता है, जो शरीर में रक्त के जमाव का निरोध (विलयन) कर देता है.

दक्षिण अमेरिका में पाया जाने वाला 'वैम्पायर चमगादड़' जब काटता है, तो शरीर से एक स्राव निकलता है, जो शरीर का गाढ़ापन सोख लेता है, परंतु शरीर में उपस्थित प्रोटीन की वजह से चूसा गया स्राव फिर से नियंत्रित हो जाता है.

इससे हत्पेशी में व्यतिक्रम होता है क्योंकि खून के थक्कों का विलयन शीघ्र हो जाता है, जिससे हृदय में रक्त और ऑक्सीजन पहुंचने में अवरोध पहुंचता है. कुछ लोगों का विचार है कि अनचाहे रक्तस्राव की वज़ह से ऐसा होता है. यू.एस.फर्म मार्क के वैज्ञानिक इस पर निरंतर शोध कर रहे हैं.

जहां लाखों व्यक्ति इस हत्पेशी व्यतिक्रम की वज़ह से मर रहे हैं, तो यह बहुत ज़रूरी हो जाता है कि ऐसी दवा बनाई जाए जो व्यतिक्रम वाले व्यक्तियों में खून के थक्के बनने से रोके और उस दवाई का कोई दुष्परिणाम भी न हो.

अमेरिकी अब वसा कम खाएंगे

'डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर' और 'डिपार्टमेंट ऑफ हेल्थ एंड ह्यूमन सर्विस' ने अपने इस संयुक्त प्रकाशन में पौष्टिक भोजन में कुछ घटकों को कम करने की सलाह दी है, जिसमें से वसा भी एक है.

यू.एस. अधिकारी यह विश्वास करते हैं कि इन नए सुझावों का असर भोजन संबंधी आदतों पर पड़ेगा और विश्व के सभी लोगों का स्वास्थ्य सुधरेगा.

१९९० के सुझावों के अनुसार व्यक्तियों को कम वसा व कम कोलेस्ट्रॉल वाला भोजन करना चाहिए. सुझावों के अनुसार कम से कम ३० प्रतिशत वसा रोज़ के कैलोरी में कम करना चाहिए. इसके अलावा मांसाहार व गरम तेलों से भी १० प्रतिशत की कटौती की जा सकती है.

सुझावों के अनुसार शरीर के आकार व कार्यगति के अनुसार पौष्टिक भोजन उचित मात्रा में सब्ज़ी व फल व अन्य खाद्य पदार्थ जैसे दूध, पनीर, चावल, योगर्ट व मांसाहारी व्यक्ति मांस, मछली, अंडे खा सकते हैं.

शक्कर, नमक व सोडियम सामान्य मात्रा में व शराब वगैरह औसतन कम करके शरीर स्वस्थ रखा जा सकता है.

अज्ञात यूरेनियम का भविष्य

इराक में इतनी बमबारी हुई लेकिन जब यू.एस. ने यह घोषणा की कि इराक के 'तुवैठा न्यूक्लियर केंद्र' और '५ एम. डब्ल्यू रिसर्च रिएक्टर' को पूरी तरह विध्वंस कर दिया गया तो न्यूक्लियर विशेषज्ञों के होश उड़ गए.

न्यूज साइंटिस्ट के अनुसार चिन्ता उस २२ किलो यूरेनियम की थी जो रिएक्टर में रखी गई थी व अब मलवे के ढेर में बदल चुकी है. आइ.ए.ई.ए. सुरक्षा अधिकारियों को अभी भी यह निश्चित नहीं हो पाया था कि ईंधन वहां से पूरी तरह निकाले जा चुके हैं या नहीं. नवंबर १९९० में उन्होंने ईंधन की अंतिम जांच की थी.

आधे से अधिक यूरेनियम मेटल औज़ारों के रूप में व बाकी ८० प्रतिशत के करीब यूरेनियम ऑक्साइड के रूप में विद्यमान है.

वर्षा ऋतु के आहार-विहार

वात, पित्त, कफ इस तीनों दोषों में जब तक समानता रहती है, तब तक हमारे शरीर से रोग कोसों दूर होते हैं. इनमें से किसी एक में या दोनों या फिर तीनों में जब विषम स्थिति पैदा होती है, तभी तरह-तरह के रोगों से हम ग्रस्त हो जाते हैं. इनमें दोष तभी उत्पन्न होता है, जब उनके अनुकूल आचरण नहीं करते अर्थात हमारा आहार-विहार इन दोषों के अनुसार ही होना चाहिए.

विपरीताहार के सेवन से शरीर की कार्यप्रणाली में बाधा पहुंचती है, जिससे शरीर विषम स्थिति में पहुंच जाता है. इसी विषमता को रोग या दुःख कहते हैं अर्थात् हम यह समझ सकते हैं कि हमारी ग़लती के परिणामस्वरूप रोग स्वतः ही खिचे चले आते हैं.

वर्षा ऋतु में पाचनशक्ति कमज़ोर होती है. दूषित वातादि दोषों से जठराग्नि और दुर्बल हो जाती है. तुषार मिश्रित शीत वायु चलने के कारण, आकाश से जल बरसंने. पृथ्वी के वाष्प से, दूषित पानी से, अम्ल पाक वाले एवं काल स्वभाव के कारण मन्द अग्नि से, कफ के दूषित होने से वातादि दोष एक-दूसरे को दूषित करने लगते हैं. जिसके कारण अग्नि का बल बिल्कुल क्षीण हो जाता है.

कहते हैं जैसा आहार वैसा विचार. पर कुछ आहार-विहार ऐसे भी हैं, जिनका सेवन ऋतु के अनुसार न करें, तो शरीर में उपस्थित तीन धातुओं में से एक के भी कुपित होने से रोग होने की संभावना होती है.

वर्षा ऋतु में योग्य आहार-विहार

वर्षा ऋतु में भोजन की सभी चीजें बनाते समय उसमें मधु मिला देना चाहिए. जठराग्नि की रक्षा के लिए भोजन में पुराने जौ, गेहूं और चावल का उपयोग करना चाहिए. हरी शाक-सब्ज़ी बनाने से पहले खूब अच्छी तरह से धो लें क्योंकि इस मौसम में छोटे-मोटे कीड़े-कीटाणुओं, जीव-जंतुओं की भरमार रहती है. दालों में छिलके वाली मूंग की दाल का सेवन करना उत्तम और शक्तिवर्द्धक है. पुराना मधु या मुनक्कों से बना मद्य, पुराना अरिष्ट प्रचुर सौर्वचल नमक मिश्रित अथवा पिप्पली मूल, पिप्पली चव्य, चित्रक और सोंठ से मिश्रित वस्तु को ग्रहण करना चाहिए. जल गरम करके ही पीना चाहिए या जल के मटके में फिटकिरी और तुलसी की पत्तियां डालकर उपयोग करें. स्वच्छ-हल्का वस्त्र धारण करना चाहिए. शरीर पर उबटन करने के लिए चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग तथा सुगन्धित पुष्प मालाओं को धारण करना चाहिए. क्लेद रहित अर्थात् सूखे स्थान पर रहना चाहिए. वर्षा ऋतु में मच्छर व कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं इनसे बचाव करना चाहिए, मच्छरदानी लगाकर सोना चाहिए जिससे कोई बीमारी न फैले. मौसमी फलों का सेवन करना चाहिए, वात कुपित न हो इसके लिए मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त पदार्थों का ही सेवन करना चाहिए. इन दिनों में तले हुए, नमकीन, तेज़, मिर्च-मसालेदार, खटाईयुक्त, अण्डा-मांस, शराब आदि पित्त कुपित करने वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए.

वर्षा ऋतु में विशेष नियम

वर्षा ऋतु में नदी का जल नहीं पीना चाहिए. दिवास्वप्न, व्यायाम आदि नहीं करना चाहिए. धूप में बैठना, जल में घुला हुआ सत्तू और अधिक क्लेद युक्त भोजन नहीं करना चाहिए. ओस गिरते समय ओस में नहीं घूमना या बैठना चाहिए. अधिक स्त्री-सहवास करना वर्जित है. वर्षाकाल में रात्रि भोजन. दिन में सोना, रात्रि जागरण, अति परिश्रम नहीं करना चाहिए. जब आकाश में बादल छाए हों तब जुलाब लेना भी वर्जित है. अतः ये सभी काम वर्षाकाल में नहीं करना चाहिए.

इन दिनों पसीने के कारण त्वचा रोग घमौरियां, खाजखुजली व अन्य व्याधियां हो जाती हैं, अतः इन अंगों को सूखा व स्वच्छ रखना चाहिए. रसायन के रूप में बड़ी हरड़ का सेवन करने वालों को वर्षा ऋतु में बराबर मात्रा में शक्कर मिलाकर हरड़ चूर्ण सेवन करना चाहिए.

वेद कहते हैं

गृहस्थ कर्त्तव्य

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने
प्रजया पशुभिर्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि
विश्वजनस्य छाया ॥

(यजु. ५/२८)

गृहस्थ स्त्री को सम्बोधित करके कहा गया है कि जिस तरह तुम गृहकार्यों में ध्रुव और दृढ़ हो, उसी प्रकार तुम्हारा पति भी प्रजा और पशुओं से समृद्ध हो. तुम्हारे गृहस्थ जीवन में किसी भी वस्तु की कमी या अभाव न हो.

गृह में प्रतिदिन यज्ञ होना चाहिए जिससे आकाश और पृथ्वी यज्ञ की दिव्य सुगन्ध से भर जाएं अथवा गृहस्थों को सभी के साथ ऐसा स्नेह करना चाहिए कि उसके आसपास का वातावरण व संसार स्नेह से पूरित हो जाए.

हमें दुःखों और कष्टों से गृहस्थी को बचाना चाहिए. जो दीन, दुःखी और पीड़ित हैं, उन्हें शरण देनी चाहिए, जो अनाथ या निराश्रय हैं. उनको आश्रित बनाना चाहिए.

विशेष : स्त्री बिना गृहस्थ जीवन अधूरा होता है, उसी प्रकार स्त्री को पत्नी बनने के बाद गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को भी दृढ़ निश्चयी बन कर पूरा करना चाहिए.

आयुर्वेद एवं आधुनिक युग

- वैद्य प्रदीप एस. मिश्र

आज जिस तरह से इंसान तरक्की कर रहा है व जितनी तेज़ गति से आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, उतनी ही तेज़ गति से उसके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है. तरक्की व आगे बढ़ने की चाह में इंसान यह भूल चुका है कि ईश्वर के द्वारा दिया गया यह अमूल्य जीवन किस तरह से रोगग्रस्त होता जा रहा है तथा उन रोगों की तरफ़ से अनभिज्ञ होकर किस तरह वह अपना जीवन व्यर्थ किए जा रहा है? कितनी ही स्वास्थ्य चर्चाएं की जाती हैं, जिनमें आधुनिक युग के मशीनी उपकरणों के आविष्कार तथा नई-नई औषधियों के बारे में जानकारी दी जाती है एवं यह कहा जाता है कि अमुक बीमारी के लिए नई मशीन व औषधि का सफल परीक्षण किया जा चुका है, किंतु क्या यह अपने आप को धोखा देनेवाली बात नहीं है? इतना सब होते हुए भी नए उपकरण व औषधियों का जितना नया रूप खोजा जाता है उतनी ही नई-नई बीमारियां समाज में फैलती जाती हैं, क्योंकि हमारे आज के इस आधुनिक समाज में आडंबर, कृत्रिमता, दिखावा इतना ज़्यादा हो गया है कि रहन-सहन, खान-पान व आधुनिक उपकरण व औषधियां व्यर्थ ही हो जाती हैं.

ऐसे में नए-नए उपकरण या औषधियां क्या कर सकती हैं? आज ज़रूरत है एक स्वस्थ समाज की स्वस्थ मनुष्य की और यह तभी संभव है जब कि अच्छी शिक्षा, अच्छा रहन-सहन व खान-पान और यह तभी संभव होगा जब लोगों को यह समझाया जाए कि अच्छे स्वस्थ जीवन के लिए क्या-क्या ज़रूरी है? यहां कुछ बातें गौर करने लायक हैं जो कि अच्छे स्वास्थ्य को संरक्षण प्रदान कर सके और ये जो भी बाते हैं उन्हें आयुर्वेद शास्त्र को आधार मानकर ही बतलाया गया है. आज के इस व्यस्त मशीनी युग में आयुर्वेद ही एक ऐसा शास्त्र हो सकता है जो कि लोगों को उचित आहार-विहार, खान-पान व संयम रखना सिखाता है. उसके अनुसार संयमपूर्वक इन बातों को प्रयोग में लाने पर काफ़ी हद तक रोगों की रोकथाम की जा सकती है तथा एक स्वस्थ समाज व देश का निर्माण किया जा सकता है. क्योंकि आयुर्वेद का मूल सिद्धांत है -

स्वस्थस्य स्वास्थरक्षणम् ।

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं रोगी के रोग का शमन करना.

अब सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि स्वास्थ्य क्या होता है या स्वस्थ किसे कहते हैं?

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलःक्रिय ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इति अभिधीयते ।।

अर्थात् - जिस मनुष्य के त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) समान मात्रा मे हों, अग्नि (जठराग्नि) समान हो, सप्तधातुओं (रस - रक्त - मांस - मेद - अस्थि - मज्जा - शुक्र) की समानता हो एवं तीनों मल (मल - मूत्र - स्वेद) की क्रियाएं समानतापूर्वक हों, इन सबके साथ-साथ जिसकी आत्मा और इन्द्रियां प्रसन्न हों, ऐसे मनुष्य को स्वस्थ कहते हैं. धातु-मल की क्रियाएं सुचारु रूप से हों तथा आत्मा और इन्द्रियां प्रसन्न रहें, इसके लिए उचित आहार-विहार की आवश्यकता है. सात्विक, राजसिक एवं तामसिक तीन प्रकार की प्रकृति आयुर्वेद शास्त्र में बताई गई है. अतः गुणधर्मों को ध्यान में रखते हुए ही खान-पान में उचित (सात्विक) आहार का सेवन करने से काफी हद तक हम शारीरिक व मानसिक रूप से निरोगी हो सकते हैं. सात्विक आहार के कारण मन चंचल नहीं रहता है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति समयानुसार नित्यकर्म, दिनचर्या तथा उचित समय पर आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य एवं ईश्वर भक्ति कर सुचारु रूप से शरीर को नीरोग एवं स्वस्थ बनाए रख सकता है. प्रकृति के अंदर नाना प्रकार के द्रव्य पाये जाते हैं. अगर किसी कारणवश या अनजाने में रोग की उत्पत्ति हो ही गई तो उसका उपचार आयुर्वेद पद्धति से उन द्रव्यों के द्वारा करना चाहिए जो कि दोषानुसार देख परख कर शुद्ध की गई हों. इस प्रकार से प्राकृतिक द्रव्यों के द्वारा रोगों की चिकित्सा करने से रोग शीघ्र ही समूल नष्ट हो जाते हैं तथा दूसरा कोई विपरीत प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता है.

जिस तरह से दोष, धातु, मल, अग्नि, आत्मा, इन्द्रिय आदि के सम्मावस्था में तथा प्रसन्न रहने से शरीर स्वस्थ रहता है, उसी प्रकार से आयुर्वेद में एक और महत्त्वपूर्ण उल्लेख मिलता है जिसे कि स्वस्थ आयु का आधार कहा जा सकता है. इसे तीन उपस्तंभ ऐसी संज्ञा दी गई है - 'उपस्तंभत्रय'. उपस्तंभ यानि आधार यह शरीर आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य इन तीनों पर आधारित है. इन तीनों को शास्त्रोक्त पद्धति से युक्ति पूर्वक समयानुसार प्रयोग करने से शरीर बलिष्ठ, तेजस्वी व योग्य प्रकार से बढ़ता है. सर्वप्रथम आहार के बारे में संक्षिप्त रूप से जान लेना आवश्यक है.

आहार को ग्रहण करने के लिए आयुर्वेद शास्त्र में दो उचित समय बतलाये गए हैं -

यथोक्तगुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम् ।
विचार्य दोष कालादी-कालयोरुभयोरपि ।।

क्षुधा लगने पर दोष और काल आदि का निश्चय करने के पश्चात् ही मनुष्य को किसी गुण प्रधान आहार की इच्छा तभी होगी जब पूर्व किया हुआ आहार का पाचन हो गया हो.

आहार के काल के विषय में दो समय बताए गए हैं, प्रातः एवं सायं.

उभयो कालयो प्रातः सायंच ।

वेदों में भी मनुष्यों के लिए प्रातः एवं सायंकाल भोजन का विधान बताया गया है. इन दो कालों के मध्य में भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए, जिस प्रकार 'अग्निहोत्र' प्रातः एवं सायंकाल ही किया जाता है, उसी प्रकार भोजन

शेषांश पृष्ठ ९१ पर

टिटनेस

एक घातक रोग

— कैलाश जैन

'टिटनेस' एक अत्यंत गंभीर रोग है. भारत जैसे विकासशील देश में लाखों लोग प्रतिवर्ष इसके शिकार होते हैं. टिटनेस से मरने वालों में नवजात शिशुओं की संख्या बहुत अधिक होती है. स्वास्थ्य - सुविधाओं के इतने प्रसार के बाद भी प्रतिवर्ष लगभग दो लाख नवजात शिशु इस बीमारी के कारण मृत्यु के मुख में चले जाते हैं.

टिटनेस वस्तुतः बैक्टीरिया द्वारा फैलने वाला रोग है. यह रोग **क्लोस्ट्रीडियम टिटनोई** नामक एक ख़ास क़िस्म के रोगाणु द्वारा होता है. यह रोगाणु स्पोर्स बनाता है, जो लम्बे समय तक उच्च तापमान व सूखे वातावरण में भी जीवित रह सकते हैं. अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होकर यह स्पोर्स, बैक्टीरिया को पुनः जीवित कर देता है. ऐसा ज्ञात हुआ है कि स्पोर्स दस वर्ष के बाद भी अंकुरित हो सकता है. यह स्पोर्स एक सौ पचास डिग्री सेंटीग्रेड तापमान को एक घंटे की अवधि तक आसानी से बर्दाश्त कर सकता है और पन्द्रह मिनट तक उबलते हुए पानी में भी जीवित रह सकता है.

कैसे बनता है बैक्टीरिया का घर?

मूलतः यह ख़तरनाक बैक्टीरिया - गाय, भैंस, बैल, बकरी, भेड़, मुर्गी आदि की आंतों में पाया जाता है, पर यह उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचाता. यह बैक्टीरिया पशुओं के मल व गोबर के साथ बाहर निकल आता है और सड़क की मिट्टी, खेतों में - जहां गोबर का इस्तेमाल होता है, मिल जाता है. जंग लगे लोहे के औजार, शेविंग - रेजर, ब्लेड, अस्पतालों की जंग लगी इंजेक्शन की सूइयां आदि इसे अपनी ओर आकृष्ट करती हैं.

इस प्रकार सड़क पर गिरने, कृषि-कार्य आदि करते समय चोट लग जाने पर टिटनेस के ये खतरनाक बैक्टीरिया जख़्म में प्रविष्ट हो जाते हैं. सब्ज़ी काटते समय चाकू लग जाने से, जंग लगे ब्लेड से दाढी बनाने से, रिसते हुए जख्मों को खुला रखने और उन पर मक्खियां भिनभिनाने से भी इस रोग के रोगाणु शरीर में घुस सकते हैं.

इसके अतिरिक्त नवजात शिशुओं की नाभि नाल काटने में लापरवाही के कारण भी इस रोग के फैलने की काफ़ी आशंका रहती है. ग्रामीण इलाकों में तो प्रसव कराने वाली दाइयां, जंग लगे चाकू या उस्तरे से ही नवजात शिशु की नाल काट देती हैं. इससे घाव में मवाद पड़कर टिटनेस होने का खतरा रहता है. शिशु के साथ ही प्रसूता को भी, लापरवाही से यह ख़तरनाक रोग हो सकता है.

घाव में पहुंच कर स्पोर्स, अंकुरित होकर बैक्टीरिया का निर्माण करता है और इसमें से एक विशेष प्रकार का जीव विष (टॉकसिन) निकलता है, जिसे **टिटेनोस्पासमीन** कहा जाता है. यह विष इतना अधिक घातक होता है कि इसकी ०.१ से ०.२५ मिलीग्राम मात्रा किसी भी प्राणी की मृत्यु के लिए पर्याप्त होती है.

टिटनेस के लक्षण

ये रोगाणु शरीर में प्रविष्ट होने के पहले दिन से लेकर कुछ माह की अवधि के दौरान अपना असर दिखा सकते हैं. यह अवधि घाव की गहराई और अन्य परिस्थितियों पर निर्भर करती है. वैसे, आमतौर पर ७५ प्रतिशत लोगों में, १४ दिनों में रोग के प्रारंभिक लक्षण प्रकट होने लगते हैं.

शिशु-जन्म से ले कर मृत्यु पर्यन्त तक मानव-शरीर के देखभाल की आवश्यकता होती है, क्योंकि कुछ घातक बीमारियां ऐसी हैं, जिनके लक्षण नज़र आते ही यदि उपचार न किया गया, तो मृत्यु निश्चित है. उन्हीं में से एक बीमारी है 'टिटनेस', कैसे बचें इससे?

टिटनेस के प्रारंभिक लक्षणों में घबराहट, शरीर में दर्द, मांसपेशियों में ऐंठन, सिरदर्द, चिड़चिड़ापन, जबड़े-कमर व पेट में तनाव होना आदि है. इस रोग में जीव-विष का दुष्प्रभाव - मांसपेशियों, मेरुदंड, मस्तिष्क और अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र पर पड़ता है. जैसे - जैसे रोग का प्रभाव बढ़ता जाता है, वैसे ही जबड़ों की ऐंठन के कारण मुंह खोलना असंभव होता जाता है. गर्दन के पिछले हिस्से में असहनीय पीड़ा होने लगती है. चेहरे की मांसपेशियां सिकुड़ जाती हैं. माथे पर सलवटें पड़ जाती हैं. इस स्थिति को **राईसास सारडोनिक्स** कहा जाता है. लक्षण प्रकट होने के बाद, एक से तीन दिन के बाद दौरे पड़ने शुरू हो जाते हैं. कुछ समय के अंतराल के बाद अकड़न के दौरे पड़ते हैं, मांसपेशियां ऐंठ जाती हैं और पूरा शरीर कमान की तरह अकड़ जाता है. ऐंठन के ये दौरे दिन में कई बार उठ सकते हैं. इन दौरों की अवधि कुछ सेकेंड से कुछ मिनट तक की होती है. टिटनेस का रोगी अत्यधिक पीड़ा के बावजूद बेहोश नहीं होता. बुख़ार रहना भी इसका एक सामान्य लक्षण है.

उपचार न हुआ तो...

इस बीमारी का समुचित उपचार घर में नहीं हो सकता, अतः लक्षण प्रकट होते ही फौरन रोगी को अस्पताल में भर्ती करवाना चाहिए. अनुभवी चिकित्सक और कुशल चिकित्सा - प्रणाली से ही रोगी की रक्षा की जा सकती है. समुचित उपचार के अभाव में, ४० से ८० प्रतिशत मरीज़ों की मृत्यु हो जाती है.

शिशुओं में टिटनेस के लक्षण

उसे दूध पीने में कठिनाई होने लगती है. चेहरे, गर्दन और मांसपेशियों में अकड़न होने लगती

है, दौरे शुरू हो जाते हैं. बच्चा पूरी तरह मुंह नहीं खोल पाता. उसका शरीर अकड़न के कारण धनुष के आकार में मुड़ जाता है.

टीका - कब और कैसे लगवाएं?

टिटनेस टॉक्साइट अथवा **टेटवेक** इस बीमारी का प्रतिरोधक टीका है. इसे तीन बार लगवाया जाता है. पहले और दूसरे टीके के बीच छः सप्ताह का अन्तर होना चाहिए तथा तीसरा टीका छः माह बाद लगवाना चाहिए. उसके बाद प्रत्येक पांचवें वर्ष एक **बूस्टर टीका** लगवाते रहने से टिटनेस से पूर्णतया प्रतिरक्षण प्राप्त किया जा सकता है. इसी प्रकार गर्भवती स्त्रियों को गर्भावस्था के १६ से ३६ सप्ताह के मध्य यह टीका लगवाना चाहिए. नवजात शिशु को भी तीन महीने के बाद **ट्रिपल ऐंटिजन** नामक इंजेक्शन के तीन कोर्स दिये जाने चाहिए. ये डिप्थीरिया, काली खांसी और टिटनेस से बच्चों की सुरक्षा करते हैं. हर महीने एक टीका, फिर दो वर्ष बाद और फिर स्कूल के समय तथा उसके बाद प्रत्येक पांचवें साल, इस क्रम से टीके लगवाना शिशु को इस घातक बीमारी से बचाएगा.

चोट आदि लगने पर यथाशीघ्र ए. टी. एस. (एन्टी टिटनेस सीरम) का इंजेक्शन लगवा लेना चाहिए, किन्तु यह इंजेक्शन लगवाने से पूर्व जांच अवश्य करवा लें. ●

कुकर्म का फल

स्त्रीघाती गर्भपाती च पुलिन्दो रोगवान्भवेत् ।
अगम्यागमनात्षण्ढो दुचशर्मा गुरुतल्पगः ।।
आशाच्छेदकरो यस्तु स्नेहच्छेदकरस्तु यः ।
यो द्वेषात्-स्त्रीपरित्यागी चक्रवाकश्चिरंभवेत् ।।

गरुड़ पुराण के अनुसार - स्त्री को मारने वाला, गर्भ को नष्ट करने वाला, पुलिन्द नामक म्लेच्छ की जाति में रोगी होकर उत्पन्न होता है. अगम्य स्त्री में गमन करने वाला नपुंसक तथा गुरुपत्नी में गमन करने वाला भयंकर चर्म रोग से पीड़ित होता है. इसी तरह द्वेष से स्त्री को चुराने वाला तथा द्वेषवश स्त्री का परित्याग करने वाला अनंत काल तक चकवा-चकवी की योनि में भ्रमण करता है. आगे कहा गया है -

तापसीगमनात्कामी भवेन्मरुपिशाचकाः ।
अप्राप्तयौवनासंगाद्भवेदजगरो वने ।।
गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेन्नरः ।
राज्ञीं गत्वा भवेद्दुष्टो मित्रपत्नीं च गर्दभः ।।

अर्थात, तपस्वी स्त्री के साथ बलात्कार करने वाला मरुस्थल में पिशाच की योनि पाता है और जो ऋतुमती नहीं हुई है, ऐसी स्त्री के साथ भोग करने वाला वन में अजगर होता है. राजा की पत्नी में गमन करनेवाला नीच और मित्र की पत्नी के साथ दुष्कर्म करनेवाला गधे की योनि पाता है. इसी तरह स्त्रियों के विषय में वर्णित है -

श्वश्रोऽपशब्ददा नारी नित्यं कलहकारिणी ।
सा जलौका च यूका स्याद्भर्तारं भर्त्सते चया ।।
स्वपतिं च परित्यज्य परपुंसानुवर्तिनि ।
बल्गुली गृहगोधा स्याद्द्विमुखी वाथ सर्पिणी ।।

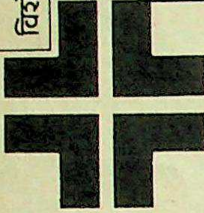
(ग.पु. ५/२६-२७)

अर्थात् जो स्त्री अपनी सास को गाली देती है, वह 'जोंक' की योनि में जन्म लेती है. नित्य कलह करने वाली और अपने पति को धिक्कारनेवाली 'ढील' होती है. अपने पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष से प्रीति करने वाली स्त्रियां 'गोह' अथवा दोमुंही सांपिन बन कर पैदा होती हैं. इस प्रकार बुरे कर्म करने वालों को उनके कर्मों का फल अवश्य मिलता है.

विशेष लेख

अनेक रोगों का जनक दूषित जल

—रामअनुग्रह शुक्ल



जल प्राणियों के जीवन का मुख्य आधार है. संसार के सभी प्राणी एवं वृक्ष-लतादि वनस्पतियां जल से व्याप्त हैं. जल का महत्व बताते हुए महर्षि हारीत ने कहा है कि अधिक तृषा बड़ी भयानक होती है. शीघ्र ही प्राणों का नाश कर डालती है. इसलिए प्यास लगने पर प्राणरक्षार्थ जल अवश्य पीना चाहिए. प्यास लगने पर जल न पिया जाए तो मोह अथवा मूर्च्छा हो जाती है और तब भी जल न मिले तो मृत्यु हो जाती है. इसीलिए जिन दशाओं (रोगों) में जल का अत्यन्त निषेध भी किया गया हो, वहां भी जलपान सर्वथा नहीं रोकना चाहिए. ऐसी अवस्था में जलीय पदार्थों (दूध, दही, तक्र, फलरस, अर्क एवं क्वाथ स्वरस) का सेवन करना चाहिए.

गुणकारी जल

जल का इतना महत्व होते हुए भी वह हमारे लिए तभी लाभकारी है, जब वह सभी प्रकार के गंधों व विकारों से रहित हो. जो जल स्वच्छ, लघु, शीतल, तृषाशामक एवं पीने में रुचिकर हो वही गुणकारी अर्थात् पीने योग्य है. कहा गया है कि –

अगन्धमव्यक्तरसं सुशीतं तर्षनाशनम् ।
स्वच्छं लघु च हृद्यंच तोयं गुणवदुच्यते ।।

यही शुद्ध जल हमारे लिए उपयोगी और कल्याणकारक है. निर्दोष जल हमारे रोगों को दूर करता है. हमारे शरीर के बाहरी हिस्से पर लगे मल को दूर करके शरीर को निर्मल करता है. इसीलिए कहा गया है कि जल में अमृत है और आरोग्यदायक गुण है. इसी निर्दोष जल के विषय में आयुर्वेद में कहा गया है –

पानीयं, श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्च्छा पिपासापहम् ।
तन्द्राच्छर्दि विबन्ध हृदबलकरं निद्राहरं तर्पणम् ।।
हृदयं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमकं नित्यं हितं शीतलम् ।।
लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम् ।।

अर्थात् पानी श्रम की थकान को दूर करने वाला, स्वेदनाशक, बेहोशी और प्यास मिटाने वाला, आलस्य, कै, मलबंध का नाशक, असमय की निद्रा को दूर करने वाला, अजीर्ण शामक, सदा हितकारी, शीतल, हल्का, रस का कारण रूप और अमृत के समान जीवनदाता है.

दूषित जल

निर्दोष और निर्मल जल जहां हमारे लिए आरोग्यदायक और जीवनरक्षक है,वहीं दूषित जल अनेक रोगों और विकारों का जन्मदाता है. दूषित जल वह है जो पिच्छिल (चिपचिपाहट युक्त) हो, कृमियों से युक्त हो. पत्र, सेवार, अथवा गन्दे कीचड़ के प्रभाव से सड़ गया हो, जिसका वर्ण एवं रस विकृत हो गया हो, जो गाढ़ा हो, दुर्गन्ध युक्त हो, वह जल हित-पथ्य नहीं होता और स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक होता है. भाव प्रकाश के अनुसार –



कलुषं छन्न-मम्भोजपर्णनीलीतृणादिभिः ।।
दुस्पर्शनमसंस्पृष्टंसौरचान्द्र मरीचिभिः ।।

अर्थात् जो जल मलिन हो, कमल के सूखे पत्तों से, नीली से, घासफूस आदि से ढंका हो (मिश्रित), स्पर्श में चिपचिपा हो,कष्टप्रद हो,जिस पर

सूर्य और चन्द्रमा की किरणें न पड़ती हों, वह जल दूषित होता है.

वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में बरसा हुआ पानी, वर्षा ऋतु में भी पहली वर्षा का जल, इसके अतिरिक्त दूसरी, तीसरी आदि वर्षा का भी भूमि पर गिर कर विकृत हो गया हो वह जल भी त्याज्य और अपेय होता है.

इन दूषित जलों को पीने से वातादि दोषों का प्रकोप होता है. उसमें स्नान करने और उसके पीने से तृषा, अफारा, अरुचि, ज्वर, कास, मन्दाग्नि, नेत्राभिष्यन्द, कण्डू एवं गलगण्ड आदि रोग हो सकते हैं.

अन्य दूषित जल

सामुद्र जल की वर्षा का जल - समुद्र की भाप से जो मेघ बनते हैं, जिसे आजकल मानसून कहते हैं, वह जल 'सामुद्र' (समुद्र का) जल कहा जाता है. सामुद्र जल की वर्षा का जल कुछ खारा एवं लवण युक्त होता है. यह जल शुक्र, दृष्टि एवं बल का नाश करता है. यह दुर्गन्धयुक्त, दोषकारक या दोषकोपक, तीक्ष्ण एवं पीने, नहाने आदि सभी कामों में निन्दित, अग्राह्य होता है. आश्विन आदि मासों में सामुद्र जल की वर्षा का जल गुणकारी होता है. क्योंकि अगस्त तारा का उदय होने पर सभी प्रकार की वर्षा का जल निर्मल, निर्विष, स्वादिष्ट, शुक्रजनक तथा दोषरहित या दोषशामक हो जाते हैं. कहा जाता है कि वर्षाऋतु में आकाशचारी सर्पों के फुंकार एवं विष मिश्रित वायु के संसर्ग से वर्षा का जल विषैल होता है, परन्तु आश्विन मास की वर्षा का जल निर्विष होता है.

आधुनिक मत के अनुसार पहली वर्षा के जल में आकाश में उड़ते रहने वाले धूलि आदि का मिश्रण होता है, अतः वह कुछ न कुछ अस्वच्छ एवं दूषित रहता है. इसलिए यह त्रिदोषकारक होता है.

आनूप जल - (अनूप देश वह है जिसमें नदी-नद आदि अधिक हों, वृक्ष भी अधिक हों, कफ एंवं वायु के रोग उत्पन्न हों.) आनूप जल अभिष्यन्दी (शोथ, श्लीपद आदि का उत्पादक), स्निग्ध, गाढ़ा, गुरु, अग्नि को मन्द करने वाला, कफ कारक और ग्रहणी आदि रोगों का उत्पादक होता है.

नदी का दूषित जल -जो नदियां मन्द वेग वाली, मलिन जल वाली और सिवार वाली होती हैं, उनका जल गुरु और दूषित होता है. इस जल के सेवन से वात-कफ विकार उत्पन्न होते हैं.

> **वर्षा ऋतु में बच्चों को उसके पानी में खेलने में जो मज़ा आता है, उसकी तो बात ही अलग है. पर आप जानते हैं कि यही वर्षा का दूषित जल असंख्य रोगों का वाहक भी है.**

पाल्लव जल - छोटा तालाब जिसका जल बैशाख-जेठ में प्रतिवर्ष सूख जाता है और वर्षा होने पर पुनः भर जाता है, ऐसे तालाबों का जल दूषित माना गया है. यह 'पाल्लव जल' कहा जाता है. यह अभिष्यन्दी, गुरु, स्वादिष्ट तथा त्रिदोषकोपक होता है.

केदार जल - खेत का नाम केदार है. उसमें वर्षा का जल भर जाता है. यह जल अभिष्यन्दी, मधुर, गुरु एवं हानिकारक होता है.

भूमि पर गिरा वर्षा का जल दो-तीन दिन तो अपथ्य अर्थात् हानिकारक होता है, परन्तु तीन दिन के पश्चात् निर्मल हो जाने पर अमृत के समान लाभप्रद हो जाता है.

ताड़ाग जल - उत्तम, स्वच्छ एवं मधुर मिट्टी वाली भूमि में जो वर्षों न सूखने वाला जलाशय होता है उसका नाम 'ताड़ाग' है. इसको 'तालाब' भी कहते हैं. इसका जल मधुर, कषाय, विपाक में कटु तथा वातकारक होता है. यह मूत्र-पुरीष को रोकने वाला और रक्त विकार नाशक होता है.

कुएं का जल यदि खारा हो तो कफ वात, अग्निदीपक तथा परम पित्तकारक होता है.

हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में सरसू एवं तड़ाग का जल हितकारी होता है, वसंत एवं ग्रीष्म में कूप, वापी अथवा झरना का जल हितकर होता है परन्तु नदी का जल अहित होता है, क्योंकि उन ऋतुओं में वन के वृक्षों के पत्तों के गिर कर सड़ने से जल दूषित हो जाता है अथवा सड़न से वह विषैला हो जाता है. लेकिन यदि नदी का जल स्वच्छ हो और उक्त दोषों से दूषित न हो तो अहित नहीं होता.

वर्षा ऋतु में औद्भिद जल (भूमि को फाड़कर जो जल बड़ी या छोटी धारा के रूप में बहता है, उसका नाम 'औद्भिद' जल है), वर्षा जल (प्रथम वर्षा को छोड़कर) अथवा कूप जल हित होता है. शरद ऋतु में नदी का जल अथवा हंसोदक हितकर है. 'हंसोदक' जल वह है जिस पर दिन भर सूर्य की किरणें और रात भर चंद्रमा की किरणें पड़ती रहें. यह जल स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, निर्दोष या निर्विकार होता है और इससे अभिष्यन्दी भी नहीं होता. शरद ऋतु में अगस्त तारा का उदय होने से सभी स्वच्छ जल हितकर हो जाते हैं.

सुश्रुत के अनुसार पौष मास में सरस का जल, माघ में तड़ाग का जल, फाल्गुन में कूप का जल, चैत्र में चौंज का, वैशाख में झरना का जल, जेठ में औद्भिद जल, आषाढ़ में कूप का जल, श्रावण में दिव्य जल, भादों में कूप जल, आश्विन में चौंज का और कार्तिक तथा अगहन में सभी प्रकार का जल प्रशस्त होता है.

दूषित जल को शुद्ध करने की विधि

प्रथम तो जहां तक संभव हो दूषित जल पीना ही नहीं चाहिए, परन्तु यदि पीना ही पड़े और वह अत्यन्त दूषित न हो तो उसे शुद्ध करके पी सकते हैं. जल शुद्धि के निम्न प्रकार हैं -

- जल को उष्ण कर लिया जाए अर्थात् उसे उबाल कर पीना चाहिए.
- धूप में रख कर उसे तप्त कर लिया जाय.
- सोना, चांदी, लोहा, पत्थर अथवा बालू को अत्यन्त तपाकर सात बार जल में बुझाया जाए.
- कपूर, चमेली के फूल, नागकेसर, पाटल के फूल एवं गुलाब, केवड़ा आदि से सुगंधित कर लिया जाए.
- स्वच्छ, पवित्र एवं गाढ़े कपड़े से छानकर क्षुद्राति क्षुद्र जन्तुओं से रहित कर लिया जाए.

इन क्रियाओं से जल दोषरहित हो जाता है. जल शुद्धि की अन्य विधियों में - एक निर्मली को जल में घिसकर डालने से जल में घुली मिट्टी नीचे बैठ जाती है. चालीस किलो जल में आधा किलो चूना अथवा गोहरी की भस्म अथवा ४-६ माशा पोटाश परमेंगनेट (चूना का सत्व जो लाल बुकनी नाम से प्रसिद्ध है) डालने से छोटे जीव-जन्तु मर जाते हैं. बालू में से छानकर फिर घोलों में से छानकर भी जल शुद्ध किया जाता है.

दूषित जल के सेवन से होने वाले रोग

विकारयुक्त जल को पीने से, स्नान करने से अथवा शीत युक्त स्थान पर रहने से अनेक व्याधियों के उत्पन्न होने की संभावना रहती है. दूषित जल के सेवन से वातादि दोष प्रकुपित हो जाते हैं और अनेक रोगों के कारण बनते हैं. अशुद्ध जल के प्रयोग के कारण होने वाले कुछ रोग निम्न प्रकार हैं -

श्लीपद – जिन देशों में पुराना जल अधिक बना रहता है अर्थात् तालाब, गड्ढा आदि ग्रीष्म ऋतु में भी नहीं सूखते. साथ ही बारहों महीने शीत बना रहता हैं, उससे श्लीपद रोग विशेष रूप से होता है. यह पहले कूल्हे में उत्पन्न होता है और धीरे-धीरे कई माह में पांव पर आ जाता है. श्लीपद में थोड़ी-बहुत पीड़ा भी होती रहती है. बीच-बीच में कभी-कभी शीत लगकर ज्वर भी हो जाता है. इसे 'फीलपांव' भी कहते हैं.

जो श्लीपद बाम्बी के समान शिखरों एवं छिद्रोंवाला हो, जिस पर कांटे या मस्से उत्पन्न हो गए हों, जो एक वर्ष से अधिक पुराना तथा बड़ा हो गया हो वह असाध्य होता है. जो कफकारक व अशुद्ध जल तथा आहार-विहार के सेवन से उत्पन्न होता है, जिसमें स्राव हो रहा हो, साथ ही जो बहुत ऊंचा या बड़ा हो, जिसमें सभी दोषों के लक्षण हों, कण्डू एवं कफ की अधिकता हो, वह भी असाध्य होता है.

श्लीपद की चिकित्सा – इस रोग में लंघन, लेप, स्वेदन, विरेचन, रक्तमोक्षण तथा कफ नाशक व उष्ण द्रव्यों के साथ शुद्ध आहार-विहार का सेवन करना चाहिए.

सरसों, सहजन के बीज, देवदारु एवं सोंठ को गोमूत्र में पीसकर अथवा पुनर्नवा की जड़, सोंठ एवं सरसों को कांजी में पीस कर लेप करें.

सहदेवी की जड़ को ताड़ के फल के रस में पीसकर लेप करने से पुराना एवं असाध्य श्लीपद भी नष्ट हो जाता है. पान के सात पत्रों का कल्क लवण मिलाकर खाने से और उष्ण जल पीने से श्लीपद नष्ट हो जाता है.

नेत्राभिष्यन्द – अभिष्यन्द नामक नेत्र रोग के कारणों में दूषित जल का सेवन भी है. इससे वातादि दोष कुपित होकर यह रोग उत्पन्न करते हैं. अभिष्यन्द को ही आंख आना या आंख दुखना कहते हैं. इसमें सूई के चुभने की सी वेदना, नेत्र के संचालन में असमर्थता होती है. आंख सूखी अथवा शीतल आंसू बहता है. नेत्र में जलन, भारीपन का अनुभव , नेत्र पर शोथ, खुजली, कीचड़, नेत्र गोलक पर लालिमा आदि लक्षण पाए जाते हैं.

अभिष्यन्द रोगों में हरड़, बहेड़ा, आंवला तथा पोस्त डोडा को आधी रत्ती अफीम के घोल में पीस कर पिण्डी का प्रयोग करें. पिण्डीविधि- उपरोक्त द्रव्यों का कल्क आठ आना भर कपड़ा में बांध कर नेत्र पर रखने से अभिष्यन्द का नाश हो जाता है.

सभी प्रकार के नेत्र रोगों विशेषकर अभिष्यन्द में नेत्र की पलकों पर मुलेठी, गेरू, सैन्धव लवण, दारूहल्दी तथा रसवत को जल में पीसकर लेप करें.

गलगण्ड – जो सूजन बड़ा अथवा छोटा, अण्डकोश के समान ढीला-ढाला गले (ग्रीवा के अग्रभाग) में हो जाता है उसका नाम 'गलगण्ड' है. गलगण्ड रोग शिबालक पहाड़ियों में तथा हिमालय की तराई में जहां कुल्याओं का दूषित जल पीना पड़ता है, अधिक होता है. इसमें गले के बाहरी भाग में सूजन उत्पन्न हो जाती है जो धीरे-धीरे बढ़ कर बड़ी हो जाती है. इसका प्रभाव स्वर यंत्र पर भी थोड़ा बहुत पड़ता है. स्वर विकृत हो जाता है.

वायु तथा कफ दूषित होकर और मेद धातु में आश्रित हो कर या उसका संचय कर अथवा उसे दूषित कर गले में या गले पर गण्ड (गिल्टी) उत्पन्न कर देते हैं, जो धीरे-धीरे बढ़ती जाती है. गण्ड का वर्ण कुछ काला तथा लाल, खुरदरापन, भारीपन का अनुभव, मंद-मंद वेदना तथा मुख में मधुरता बनी रहती है.

चिकित्सा-जलकुंभी की भस्म को सरसों के तेल में मिलाकर लेप करने से पुराना गलगण्ड भी शांत हो जाता है.

कड़वी तुम्बी के पके फल में जल भर कर सात दिन के पश्चात् पीने से और पथ्य आहार का सेवन करने से गलगण्ड का शीघ्र ही नाश हो जाता है.

कण्डू (खुजली) – यह रोग दूषित जल में स्नान करने से अथवा आहार-विहार के दोष से उत्पन्न होता है. शरीर में सूखी खुजली होती है और खुजलाते-खुजलाते शरीर लाल हो जाता है, कभी-कभी छोटी फुंसियां के होती है. यह खुजली जब गुदा पर होती है या योनि मुख पर तो अत्यधिक कष्टदायी होती है.

खुजली होने पर उसे पहले पानी से धोकर निम्नांकित मलहम लगाना चाहिए.

हिंगुलादि मलहम, कमलादि मलहम, धतुरादि तेल - इसमें धतूरे के पत्ते का रस, आक के पत्तों का रस १-१ सेर और इतना ही तिल का तेल मिलाकर तथा आग पर पका कर जब तैलीय अंश बच जाए तो छानकर ठंडा कर के लगाएं.

रक्तशोधक औषधियों में बाकुची, गन्धक, गेरू के तीन समान भाग कूट पीस कर चूर्ण कर लें और इसको एक से दो माशा पानी के साथ दिन में दो-तीन बार दें.

तृषा – दूषित जल के पीने से कभी प्यास नहीं बुझती, बल्कि इस दूषित जल से संचित पित्त वायु के साथ मिलकर और तालु प्रदेश में पहुंच कर तृष्णा को उत्पन्न करता है या यों कह सकते हैं कि इन दोषों के कारण जलवाही स्रोत दूषित हो जाने से तृष्णा उत्पन्न होती है. इसके कारण तालु, होंठ, कण्ठ तथा मुख का शोष और जलन, शरीर में संताप, मूर्च्छा आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं.

प्राणी का शरीर रस से पुष्ट होता है और रस जल से निर्मित होता है, अतः रस के क्षय से तृष्णा उत्पन्न हो जाती है. फलस्वरूप रोगी का स्वर दुर्बल हो जाता है. मुख, हृदय, तालु एवं गला सूखने लगता है.

वातज तृष्णा में वातनाशक, मृदु, लघु एवं शीतल आहार होना चाहिए, पित्त तृषा में मधुर, तिक्त, शीतल एवं तृष्णानाशक बादाम आदि की ठण्डाई पीनी चाहिए.

इसके अतिरिक्त दूषित जल के सेवन से भोजन के प्रति अरुचि, ज्वर, कास, मंदाग्नि आदि रोग भी होने की संभावना रहती है, अतः सदैव शुद्ध जल का सेवन ही इन रोगों से बचाव है. शुद्ध जल अगर संभव न हो तो उसे शुद्ध करके ही प्रयोग में लाना चाहिए.

अभी हाल में, बम्बई के मनपा स्कूलों के कुछ विद्यार्थी दूषित जल के सेवन से बीमार पड़ गए थे. इनमें से १५ विद्यार्थियों का इलाज करने वाले मुलुंड स्थित धन्वन्तरी अस्पताल के डाक्टर दावड़ा ने बताया कि इन विद्यार्थियों को 'रिजिस्टंट टायफाइड' की शिकायत थी. यह बीमारी दूषित पानी की वजह से होती है.

अमूर्या उपसूर्ये यामिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्यध्वरम् ।।

अर्थात् सूर्य किरणों से शुद्ध हुआ जल हमारा कल्याण करे. सूर्य किरणों से संपर्कित बहता हुआ शुद्ध जल पीने, नहाने, धोने और स्वास्थ्य के लिए भी अधिक लाभदायक समझा जाता है.

हा, हा, हा

जख़्मी, "डॉक्टर साहब, बस कीजिए. आप कब तक मेरा जख़्म खुरचते रहेंगे." डॉक्टर, ''थोड़ा सब्र करो, मुझे वह गोली तो निकाल लेने दो, जो तुम्हें लगी है.'' जख़्मी, ''यह आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया, वह तो मेन ज़ेब में मैंने रखी है.''

बरगद की औषधीय उपयोगिता

वट वृक्ष का महत्व धार्मिक रूप से तो है ही, परंतु इसकी औषधीय उपयोगिता भी काफी महत्व रखती है. इसे ही बरगद व बड़ भी कहते हैं. इसके पत्ते, छाल, जड़ व दूध सभी का प्रयोग औषधि रूप में किया जाता है.

संभोग का आनंद

बरगद का पांच चम्मच दूध एक बर्तन में टपका लें. उसमें नारियल का सूखा गोला बारीक कतर कर मिला लें. जब दूध और नारियल का बूरा गाढ़ा बन जाये तो उसमें दो-तीन चम्मच शहद मिला कर पच्चीस ग्राम मक्खन के साथ चाटें. इक्कीस दिन इसका सेवन करने के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करें और तत्पश्चात् दाम्पत्य जीवन का सुख प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करें तो स्वर्गीय आनंद मिलेगा.

स्वप्न दोष

सुबह मुंह साफ़ कर बड़ के दूध की ग्यारह बूंदें बताशे में टपका कर निगल जाएं, दोपहर को बरगद की जटा के चूर्ण की चाय बना कर सेवन करें. रात को सोने के पूर्व बड़ की ग्यारह कोंपलें, अश्वगंध नागौरी की दस ग्राम मात्रा के साथ कूट-पीस कर ग्यारह बूंदें वट दूध को साथ मिला कर उसमें मिश्री डाल कर पी जाएं. साथ में पपीता खाएं. इस विधि से स्वप्न दोष आने बंद हो जायेंगे और शीघ्रपतन भी नहीं होगा.

सुज़ाक की जलन

यौनांग पर वट के दूध का लेप करें. दिन में दो बार वट की छाल का काढ़ा तैयार करके पीएं.

वीर्य की कमी होने पर

बड़ के पंचांग का सत्व, अश्वगंध नागौरी, गोखरू, शतावर, विदारीकंद और विधारा के बीज दस-दस ग्राम मात्रा में लेकर वट दूध में ही कूट पीस कर मटर बराबर गोलियां बना लें. सुबह-शाम एक-एक गोली दो सौ ग्राम दूध के साथ सेवन करें. इस प्रयोग से वीर्य की कमी दूर हो जायेगी.

पुरुषार्थ प्राप्ति हेतु

आधा लीटर गाय के दूध को उबाल कर बड़ के दूध की ग्यारह बूंद टपका दें. ग्यारह बूंद शहद की भी मिलाएं. उसके बाद इक्कीस ग्राम मिश्री मिला कर पी जायें. बराबर इक्कीस दिन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, परहेज़ बरतते हुए सुबह-शाम इसका सेवन करें. कहा जाता है कि इस शक्तिवर्द्धक प्रयोग से पुरुष की नपुसंकता दूर होती है और बांझ स्त्री शीघ्र ही गर्भधारण कर मां बन जाती है.

रक्त प्रदर

- रक्तप्रदर की स्थिति में सुबह और शाम वट दूध की पांच-पांच बूंदें बताशे में डाल कर दूध के साथ निगल जाएं. अधिक प्रदर निकलने पर आप इसका प्रयोग दो-दो घंटे बाद एक सप्ताह निरंतर कर सकती हैं.
- इस रोग में बड़ की छाल का गूदा भी परम हितकारी है. गूदा सुखा कर मलीदा बना लें. पांच-पांच ग्राम मात्रा में चूर्ण फांक कर ताज़ा ठंडा पानी पी लें. एक ही सप्ताह में बड़ा आराम मिलेगा.
- वट का सत्त्व चालीस ग्राम, कलई की भस्म पांच ग्राम, अश्वगंध नागौरी दस ग्राम, बहुफली बीस ग्राम, शतावर और बंसलोचन दस-दस ग्राम लेकर कूट पीस कर एक-एक ग्राम की गोलियां बना कर गाय के दूध के साथ सुबह-शाम लें. प्रदर की सारी शिकायतें दूर हो जायेंगी.

मूत्र विकार

- सुबह कहीं आसपास बरगद का वृक्ष है, तो घूमते हुए उसके नीचे जाकर एक बताशे में उस वृक्ष का पत्ता तोड़ कर उसका दूध दो बूंद टपका कर खाते हुए घर लौट आयें.

पेशाब में धातु गिरना

- किलो भर बरगद के सूखे पीले पत्ते बटोर कर साफ़ करके एक बाल्टी में डाल कर पानी भर दें. इन्हें दो दिन भिगो कर रखें, फिर तीसरे दिन खुली कड़ाही में इतना उबालें कि पत्ते जल जाए. ठंडा करके इसे मल-मल कर छान लें. और दुबारा धीमी आंच पर इतना पकायें कि गोलियां बनाने लायक गाढ़ा हो जाये. इसकी चने के बराबर गोलियां बनाकर प्रतिदिन एक गोली दूध के साथ लें. लगातार तीन महीने तक इसका प्रयोग करें तो खोया हुआ पुरुषार्थ लौट आयेगा.

विशेष

बरगद के घनसत्व की इस तरह की गोलियां बनाने के पहले गाढ़े पदार्थ में - उसके बराबर मात्रा में अश्वगंध नागौरी, शतावर, विदारीकंद, गोखरू और विधारा के बीज कूट-पीस कर मिश्री के साथ मिला लें.

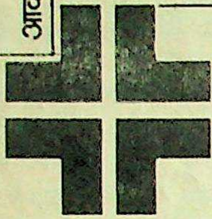
ऐसा करने पर बल-वीर्य की संवृद्धि के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली औषध बनेगी.

रोगी की हालत चिन्ताजनक है यह जानने के लिए

- रोगी बेहोश हो.
- नाड़ी की गति १०४ से अधिक हो.
- रोगी का हाथ-पैर उठाने पर गिर पड़े.
- बुख़ार १०४° सेंटीग्रेड से अधिक हो.
- रोगी के सीने पर बायीं ओर दर्द हो और सीना भरा हुआ महसूस हो.
- गर्भावस्था में अचानक दौरा पड़े या आंखों के सामने अंधेरा छा जाये, चक्कर आये.
- तेज़ सिरदर्द व धुंधला नज़र आने लगे.
- श्वांस लेने में तकलीफ़ हो, रोगी छटपटाने लगा हो.
- रोगी के नाखून, होंठ, जीभ नीले वर्ण के दिखाई दें और उसका शरीर ठंडा होने लगे.

ध्यान रखें उपर्युक्त या इनमें से कोई एक लक्षण रोगी में दिखाई दे, तो समय बर्बाद करने की बजाय तुरंत चिकित्सकीय सलाह लें या नज़दीक के रुग्णालय में ले जाएं.

आवरण लेख



तामसिक भोजन का शरीर पर प्रभाव

रामकृष्ण शुक्ल

एक पुरानी कहावत के अनुसार 'आपका भोजन ही आपका प्रतिबिम्ब होता है.' सच बात भी यही है कि भोजन ही व्यक्ति का निर्माण करता है क्योंकि हम जो खाते हैं उसकी गुण दोष का प्रभाव हमारे मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़ता है. गीता में कहा गया है कि 'अन्नाद् भवन्ति भूतानि' अर्थात् संपूर्ण प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही पलते हैं, अतः अन्न के गुण-दोष से ही वे प्रभावित होते हैं.

अन्न का तात्पर्य केवल गेहूं, चना आदि अनाज मात्र से नहीं है, अपितु जिन भिन्न-भिन्न आहार करने योग्य स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों से भिन्न-भिन्न प्राणियों के शरीर आदि की पुष्टि होती है, वे समस्त खाद्य पदार्थ 'अन्न' हैं. इन्हीं खाद्य पदार्थों से ही दोष-गुण के आधार पर समस्त प्राणियों का स्वभाव सात्विक, राजसी, तामसी होता है.

आहार मनुष्य के चित्त का निर्माण करता है कहना ग़लत न होगा. हम जो आहार ग्रहण करते हैं वह राजसिक, सात्विक या तामसिक प्रवृत्ति का होता है, अत: हमारी प्रवृत्ति भी इन्हीं के अनुसार होती है. तामसिक आहार का क्या असर पड़ता है पढ़िए विस्तृत रूप से.

आहारों की प्रकृति

प्राणियों की तरह आहार की भी तीन प्रकृतियां होती हैं. सात्विक, राजसी और तामसी. ये तीनों गुण (प्रकृति) सभी प्रकार के आहारों में विद्यमान रहते हैं तथापि जिस आहार में जिस गुण की प्रधानता अधिक होती है, वह उसी गुणवाला कहा जाता है, अर्थात् रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्वगुण, सत्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्वगुण और

रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ाता है. पुरुष जिस प्रकृति का होगा, उसी के अनुसार उस गुण की उसमें प्रधानता होती है और उसी आधार पर उसमें आहार के प्रति रुचि भी होती है. व्यक्ति जिस प्रकार का आहार-सेवन करता है उसी प्रकार उसमें गुण-दोष का भी निर्माण होता है और शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है. इतना ही नहीं, इस आहार का प्रभाव उसकी होनेवाली संतानों पर भी पड़ता है -

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौः ।
स्त्रीपुंसौ समुयेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ।।

नर-नारी जिस प्रकार के आहार, आचार एवं चेष्टाओं से युक्त होकर संसर्ग करते हैं, उनकी संतान भी उसी प्रकार के गुणों से युक्त होती हैं. तात्पर्य यह कि माता-पिता के आहार आदि का प्रभाव संतान पर भी पड़ता है. आहार का शरीर, स्वास्थ्य एवं वर्ण पर, आचार का आचरण पर और चेष्टाओं का व्यवहार पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है.

मनुष्यों का मानसिक तथा शारीरिक स्वभाव, गुण व अवगुण-आयुर्वेदिक शब्दो में कहना हो तो प्रकृति-इन्हीं सत्व, रज, तम आहार पर आश्रित है. गर्भाधान के समय से ही संतान के शरीर में माता-पिता की ओर से परंपरागत रूप से सत्ववर्गीय, रजवर्गीय और तमवर्गीय द्रव्यों की स्वभावतः अधिकता अथवा उनके उत्पादक अवयवों की अधिक क्रियाशीलता देखी जाती है. इनके कारण मनुष्य की शारीरिक और मानसिक प्रकृति में भी भिन्नता होती है.

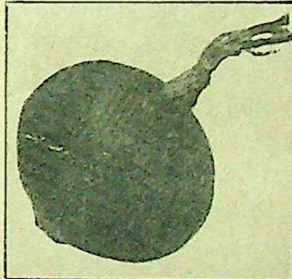
सात्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकार के आहारो में सात्विक (शुद्ध) आहार मन के लिए कल्याणकारी होने से दोषरूप नहीं माना जाता, लेकिन राजस और तामस में क्रमशः रोष और मोह की मात्रा होने से उन्हें दोष कहा गया है.

तमोगुण प्रधान आहार विषादात्मक, नियामक, आलस्यजनक, निद्रा-तन्द्रा-भयजनक और विवेक का हरण करनेवाला होता है. इसमें मोहांश गुण (अज्ञानता) होने के कारण दोषयुक्त है क्योंकि अज्ञानी व्यक्ति पशुवत विवेकशून्य होने के कारण उचित-अनुचित और कर्त्तव्याकर्त्तव्य-ज्ञानशून्य होता है. इसका सेवन करनेवाले को कर्त्तव्यबोध नहीं होता.

प्रमुख तामसी आहार

गीता में भगवान कृष्ण ने भोजन के महत्व को बतलाते हुए तामस आहार के विषय में कहा है कि

यातयामं गतरसंपूति पर्युषितंच यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।

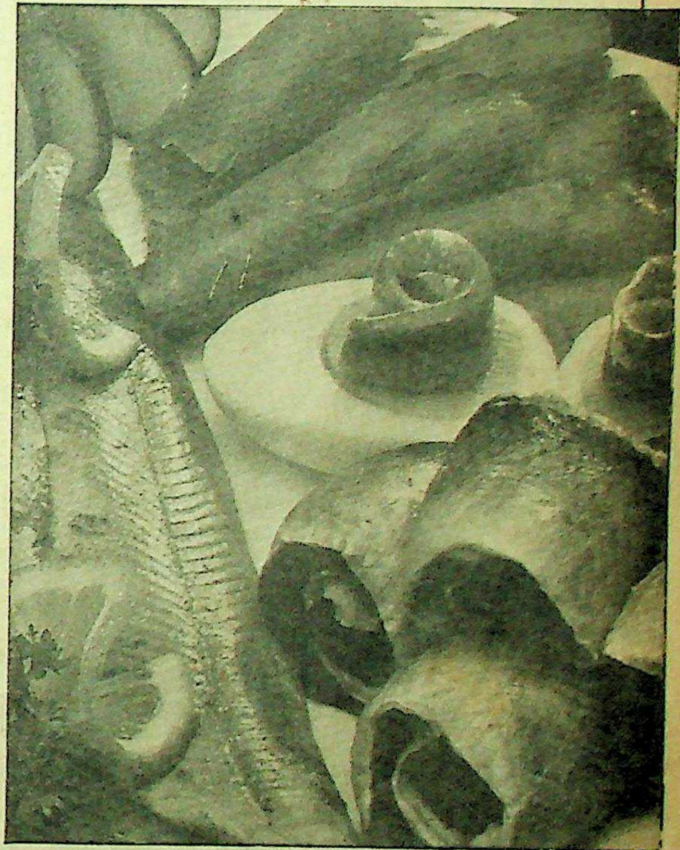


जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुक्त, बासी और उच्छिष्ट (जूठा) तथा जो अपवित्र भी है, वह भोजन तामसी होता है और वह तामस पुरुष को प्रिय होता है.

अधपकाः वे फल अथवा खाद्य पदार्थ अधपका कहे जाते हैं, जो पूरी तरह से पके न हों अथवा जिनके सिद्ध होने में (पकने में) कमी रह गई हो.

रसहीनः अग्नि आदि के संयोग से, हवा से अथवा मौसम बीत जाने के कारणों से जिन रसयुक्त पदार्थों का रस सूख गया हो, उनको रसहीन कहते हैं, जैसे संतरा, ईख आदि का रस सूख जाता है.

बासीः पहले दिन के बनाए हुए भोजन को बासी कहते हैं. रात बीत जाने से ऐसे खाद्य पदार्थों में विकृति उत्पन्न हो जाती है और उनके खाने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं. उन फलों को भी बासी समझना चाहिए, जिनमें पेड़ से तोड़े बहुत समय बीत जाने के कारण विकार उत्पन्न हो गया हो. जो भोजन एक प्रहर (२ घंटा) पहले का बना हो और ठंडा हो गया हो, वह भी बासी कहा गया है. यह भी तामसी है, और इसके सेवन से भी विकार उत्पन्न होते हैं.



जूठाः अपने या दूसरों के भोजन कर लेने पर बचा हुआ खाद्य पदार्थ जूठा होता है. अपवित्र होता है इसलिए यह तामस है. जूठा भोजन करने से रोगों का संक्रमण होता है.

तेज़ गंध युक्त तामसी आहार

खाने की जो वस्तुएं स्वभाव से दुर्गंधयुक्त हों अथवा जिनमें किसी क्रिया से दुर्गंध उत्पन्न कर दी गई हो, उन वस्तुओं को भी तामसी कहते हैं, जैसे प्याज़, लहसुन मदिरा आदि. इनके खाने से तमोगुण की वृद्धि होती है और यही अज्ञान मनुष्य को प्रमाद, आलस्य और निद्रा द्वारा बांधता है. तमोगुण ज्ञान को आच्छादित करके अर्थात् ढंक कर प्रमाद में लगाता है. आयुर्वेदिक दृष्टि से गुण-दोष उत्पन्न करनेवाले कुछ इस प्रकार के आहारों पर प्रकाश डाला जा रहा है -



प्याज़: प्याज़ एक दुर्गंधयुक्त पदार्थ है. धार्मिक दृष्टि से इसे तामसी आहार माना गया है. इसके सेवन से मानसिक वृत्तियों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, किन्तु आयुर्वेद में इसे अत्युत्तम रसायन, परम औषधि और अतिपौष्टिक आहार माना गया है. वात-व्याधियों के लिए प्याज़ रामबाण औषधि है.

प्याज़ के सेवन से खांसी सांस-दमा के वेग कम होते हैं. मस्तिष्क और हृदय के लिए यह हितकर है. शरीर की दुर्बलता के कारण यदि सिर चकराता हो, तो प्याज़ से लाभ होता है. यह वायु को मिटाता है. इसलिए यदि थोड़ा-थोड़ा रोज़ाना उपयोग किया जाए तो वायुसंबंधी रोग बहुत कम हो जाते हैं.

प्याज़ की गंध से दूसरों को अरुचि हो सकती है, अतः इसका सेवन रात्रि में करना चाहिए. यह पाक तथा रस में मधुर, कफकारक, ज़्यादा पित्त करनेवाला, वीर्यवर्द्धक और गरिष्ठ है, इसीलिए इसकी तामसी आहारों में गणना की गई है और तामसी प्रकृति के व्यक्तियों का प्रिय आहार है. यह बल को बढ़ानेवाला, वृष्य, निद्राप्रद और दीपन है. चरक तथा सुश्रुत प्याज़ को शक्तिदाता, शरीर को पुष्ट बनाने वाला और बुद्धिवर्द्धक मानते हैं. वाग्भट इसे कफजन्य और वातजन्य अर्श रोग में तथा सेंक करने में हितावह मानते हैं.

प्याज़ का सेवन करने से कफ बढ़ता है, इसीलिए इसे कफ़ रोगों में निषिद्ध माना गया है. प्याज़ के सेवन से आंतों की क्रिया शक्ति बढ़ती है और शौचशुद्धि होती है. अतः अर्श, अपच, विषूचिका, गुदभ्रंश और पीलिया में उपयोगी है.

कुछ व्यक्ति प्याज़ के पोषकतत्वों को पचा नहीं सकते, अतः प्याज़ से उन्हें गैस हो जाता है. उन्हें प्याज़ का सेवन कम करना चाहिए.

पाचनशक्ति और प्रकृति का ख्याल रखकर ही प्याज़ का उपयोग करना चाहिए. प्याज़ के अधिक और निरंतर सेवन से रक्त जल जाता है और फोड़े-फुंसी होने की संभावना रहती है. वीर्य पतला पड़ कर स्खलित हो जाता है. आंखें दुखती हों तब प्याज़ खाने से आंखों की पीड़ा बढ़ जाती है. प्याज़ तीखा और चरचराहट वाला होने के कारण उसे खाने से मुंह और जीभ में चरचराहट होती है.

दुख का कारण राजसी आहार

कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दुख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करनेवाले आहार राजस कहे गए हैं. ये आहार-पदार्थ राजस पुरुषों को प्रिय होते हैं.

नीम, करेला आदि पदार्थों को कड़वा कहते हैं. कुछ लोग काली मिर्च आदि चरपरे पदार्थों को भी कड़वा मानते हैं. इमली आदि खट्टे पदार्थ हैं तथा क्षार व विविध प्रकार के नमक. नमकीन पदार्थों की श्रेणी में आते हैं.

बहुत गर्म वस्तुएं अति उष्ण होती हैं. अति उष्ण आहार बल को नष्ट करता है. लाल मिर्च आदि तीखे पदार्थ हैं. ये पदार्थ शीतल होते हैं तथा तृषा, मूर्च्छा, ज्वर, पित्तकफनाशक हैं.

भाड़ में भूने हुए अन्नादि रूखे पदार्थों की श्रेणी में आते हैं और सरसों दाहकारक है.

उपर्युक्त अन्नपदार्थ राजस हैं. इनके खाने से तरह-तरह के विकार उत्पन्न होते हैं. खाते समय गले आदि में तकलीफ़ होती है जीभ-तालु आदि में जलन, चबाने में दिक्कत होना. आंख व नाक में पानी आ जाना, हिचकी आना आदि जो कष्ट होते हैं, वे 'दुख' कहे जाते हैं. खाने के बाद जो पश्चाताप होता है वही 'शोक' है उपर्युक्त कड़वे, खट्टे आदि पदार्थों के खाने से ये दुख, शोक और रोग उत्पन्न होते हैं, अतः इनका त्याग करना चाहिए. ये आहार राजस हैं. जिनको ऐसे आहार प्रिय यानि रुचिकर होते हैं उन्हें रजोगुण प्रधान पुरुष समझना चाहिए.

राजसी आहारों के सेवन से जब रजोगुण बढ़ जाता है, तब मनुष्य के अन्तःकरण में सत्वगुण के कार्य प्रकाश

विवेकशक्ति और शांति एवं तमोगुण के कार्य निद्रा और आलस्य आदि दोनों ही दब जाते हैं, तब उसे नाना प्रकार के भोगों की आवश्यकता प्रतीत होती है और मन चंचल हो जाता है. इस प्रकार रजोगुण की वृद्धि से लोभ आदि की उत्पत्ति होती है.

रजोगुण बढ़ने पर लोभ प्रवृत्ति, आसक्ति, कामना, अपना स्वार्थ-साधना आदि सभी राजसी भावों की उत्पत्ति होती है. इससे मन विक्षिप्त होकर अशांति और दुखों से भर जाता है. उनके कर्मों के फलस्वरूप जो भोग प्राप्त होते हैं, वे भी अज्ञान से सुखरूप दिखने पर भी, वस्तुतः दुखरूप ही होते हैं और फल भोगने के लिए जो बार-बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ते हैं, वह सब दुखरूप ही होता है. क्योंकि मन और इन्द्रियों द्वारा आसक्तिपूर्वक सुखवृद्धि से विषयों का सेवन करने से उनके संस्कार अंतःकरण में जम जाते हैं, जिनके कारण मनुष्य पुनः उन्हीं विषय-भोगों की प्राप्ति की इच्छा करता है और उसके लिए आसक्तिवश अनेक प्रकार के पाप कर्म कर बैठता है.

विषयों में आसक्ति बढ़ जाने से पुनः उनकी प्राप्ति न होने पर अभाव के दुख का अनुभव होता है तथा उनसे वियोग होते समय भी अत्यन्त दुख होता है. राजसी भोजन के प्रभाव से शरीर में बल, वीर्य, बुद्धि, तेज़ और शक्ति के ह्रास से और थकावट से भी महान कष्ट का अनुभव होता है.

इसलिए विषय और इन्द्रियों के संयोग से यह क्षणिक सुख वस्तुतः सब प्रकार से दुखरूप ही है. जैसे रोगी मनुष्य आसक्ति के कारण स्वाद के लोभ से परिणाम का विचार न करके कुपथ्य का सेवन करता है और परिणामस्वरूप रोग बढ़ जाने से दुःखी होता है. यह आसक्ति रजोगुण का स्वरूप है, अतः वह राजस है और आसक्ति के द्वारा मनुष्य को बांधने वाला है. इसलिए कल्याण चाहनेवाले को ऐसे सुख में नहीं पड़ना चाहिए.

प्याज़ में ऊर्ध्वगमनशील तेल रहता है. यह तेल हृदय को उत्तेजित करता है और नाड़ी की गति बढ़ाता है. जिनका सिस्टोलिक प्रेशर कम हो, वे यदि प्याज़ का सेवन करें तो प्रेशर बढ़ता है.

लहसुन: यह भी प्याज़ की प्रकृति का गंधवाला तामसी आहार है. लेकिन आयुर्वेद में इसे महौषध कहा गया है. इसके सेवन से वात, पित्त, कफ से उत्पन्न होनेवाले अधिकांश रोग दूर हो जाते हैं. पोषक तत्वों के अभाव के कारण जिन लोगों में रोग-निरोधक शक्ति कम होती है, उनके लिए लहसुन का सेवन अत्यंत हितकारी है.

लहसुन खानेवाले को खट्टे पदार्थ अनुकूल होते हैं, तामसी होने के कारण इसके सेवन से क्रोध अधिक आता है. अधिक मात्रा में सेवन करने से यह जठर और आंतों में उग्रता व विरेचन करता है, किंतु शहद या घी के साथ खाने से इसका दाहकगुण कम हो जाता है और श्लैष्मिक कला को हानि नहीं पहुंचाता. आयुर्वेद में लहसुन और दूध का साथ-साथ सेवन वर्जित है. लहसुन उष्ण है, अतः गर्मियों में सेवन करने से पित्त प्रकोप, फोड़े-फुंसियां आदि होने की संभावना होती है. रक्तपित्त, प्रमेह, वमन एवं अतिसार के रोगियों और गर्भवती स्त्रियों को लहसुन का सेवन नहीं करना चाहिए. जिन क्षयरोगियों को अत्यधिक कामोत्तेजना हो, उन्हें इसका सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे कामोत्तेजना प्रवल होती है और चंचलता बढ़ती है. यदि अधिक मात्रा में इसका सेवन किया जाए, तो जलन, अतिसार और चित्त की विह्वलता आदि तकलीफें होती हैं.

लहसुन क्षय के अणुओं की वृद्धि को रोकनेवाला एक प्रबल जंतुनाशक आहार है. शरीर में प्रवेश कर यह प्राण वायु में 'सल्फ्युरिक एसिड' नामक अम्लतत्व को उत्पन्न करता है, जो फेफड़े, त्वचा, वृक्क आदि की क्रियाओं को सुधारकर शरीर के बाहर निकल जाता है. यही कारण है कि नियमित लहसुन का सेवन करनेवाले को कदाचित ही क्षय होता हो. प्रसूता यदि लहसुन का प्रयोग करती है, तो उसे वायुप्रकोप, गर्भाशय विकृति, हिचकी-तनाव या अन्य कोई विकृति नहीं होती और धीरे-धीरे प्रसूता नीरोगी और स्वस्थ होती है. लंबी अवधि तक रोग के कारण या वृद्धावस्था की शारीरिक दुर्बलता के कारण काम करने की शक्ति यदि मंद पड़ गई हो, तो लहसुन के सेवन से शरीर बलवान, नीरोगी और तेजस्वी बनता है, लेकिन शीतकाल में ही सेवन करना चाहिए.

मद्य (मदिरा): मद्य मानव या प्राणि मात्र के लिए उसी प्रकार उपयोगी या रसायन है, जिस प्रकार अन्य आहार. मद्य एवं आहार युक्तिपूर्वक सेवन करने से रसायन होते हैं और युक्ति या विधि के बिना सेवन करने से रोगोत्पादक होते हैं.

रस एवं वातपित्त आदि के स्रोतों का मन, बुद्धि, इन्द्रियां एवं आत्मा का और ओज का स्थान या मुख्य स्थान हृदय है और पीया हुआ मद्य हृदय में जाकर अपने गुणों से क्षीण या शक्तिहीन करके चित्त में विकार उत्पन्न कर डालता है. इसी का नाम 'मद' है.

मद्य के दस गुण हैं - लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशुकारी, रूक्ष, विकाशी एवं विशद. इस प्रकार मद्य हृदय में स्थित मन को क्षुब्ध या विचलित करके मद को उत्पन्न करता है. हृदय पर मद्य का प्रभाव पड़ने पर हर्ष, तृष्णा, रति-सुख, मोह एवं निद्रा आदि लक्षण व्यक्त होने लगते हैं. यही मद है. अर्थात् जो पीने योग्य द्रव मदकारक होते हैं वह 'मद्य' कहलाता है. वह अरिष्ट, सुरा, मदिरा, शराब एवं आसव आदि अनेक प्रकार का होता है. सभी प्रकार का मद्य उष्ण, पित्तकारक, वातनाशक, मलभेदक शीघ्र पचनेवाला, रुचिकारक, रूक्ष, उच्चकोटि का कफनाशक, अम्ल, अग्निदीपक एवं विकासी हैं, लेकिन अत्यधिक सेवन करने से शोषरोग, मूर्च्छा, भ्रम, मद, खुजली, कुष्ठ, रक्तपित्त, पाण्डुरोग, यक्ष्मा आदि विकार हो सकते हैं.

विविध प्रकार के धान्य, फल, मूल, सार, काण्ड, पत्र एवं त्वचा से मद्य बनाए जाते हैं और उनमें खांड अथवा गुड़ अवश्य पड़ता है. कुछ समय पर्यन्त द्रव्यों के घोल को रख देने से विलक्षण परिवर्तन होता है, जिससे विलक्षण गंध, रस एवं मादकता की उत्पत्ति हो जाती है. इसे तीव्र बनाने के लिए मयूर यंत्र (अर्क निकालने के यंत्र) में से गिरा लिया जाता है. यह मदिरा, शराब, दारू आदि नामों से प्रसिद्ध है. जिन द्रव्यों के संयोग से मद्य बनाया जाता है, उनके गुण उनमें पाए जाते है. अधिकतर 'तम' शब्द का उपयोग मद्य के लिए ही किया जाता है. सिर-तालु पर मलने से भी थोड़ा मद हो जाता है. इसके मलने से स्थानीय वेदना शांत होती है. खांसी, श्वास व निमोनिया में पीने से बहुत लाभ होता है.

नयी मदिरा अभिष्यन्दी, त्रिदोषकोपक, हृदय के लिए अहितकर, पुष्टिकारक, विदाहकारक, दुर्गंधयुक्त, विशद एवं गुरु है और पुरानी मदिरा रुचिकारक, कृमि, कफ तथा वायु नाशक, हृदय के लिए लाभप्रद, सुगंधयुक्त गुणवान लघु स्रोतों के लिए शुद्धकारक होता है. मदिरा एक वर्ष में पुरानी हो जाती है.

मदिरा के गुण-दोष

मात्रानुसार मदिरा सेवन करने से सत्वगुण प्रधान व्यक्तियों में गीत, हास्य, शास्त्रानुशीलन एवं अन्यान्य सद्गुण उत्पन्न होते हैं. रजोगुण प्रधान प्राणियों में साहस, शौर्य, वाचालता एवं दूसरे व्यावहारिक गुण पैदा होते हैं. तमोगुण प्रधान व्यक्तियों में निद्रा, लड़ाई-झगड़ा, कलह, गाली-गलौज एवं अन्य निन्दनीय गुण उत्पन्न करता है.

जो कोई विधिपूर्वक मात्रानुसार, उचित समय, हित अन्न-आहारों के साथ अपने शारीरिक एवं मानसिक बल का प्रयोग कर और प्रसन्न होकर मद्य पीता है, उसके लिए वह अमृत के समान गुणकारी होता है. इसके विपरीत तरीके से सेवन करने पर यह रोगजनक और हानिकारक भी है.

अपवित्र पदार्थ भी तामस है

मांस, अंडे आदि हिंसामय निषिद्ध वस्तुएं जो स्वभाव से ही अपवित्र हैं अथवा जिनमें किसी प्रकार के संसर्गदोष, किसी अपवित्र वस्तु, स्थान, पात्र या व्यक्ति के संयोग से या अन्याय और अधर्म से उपार्जित असत् धन के द्वारा प्राप्त होने के कारण अपवित्रता आ गई हो, उन सभी वस्तुओं को 'तामसी' कहते हैं. ऐसे पदार्थ देव-पूजन में भी निषिद्ध माने गए हैं. इन्हीं वस्तुओं में मांस भी आता है. यह तामसी होते हुए भी आयुर्वेद में इसके गुणों और उपयोगिता की चर्चा की गई है.

मांस : मांस तामस है. यह प्राणियों के शरीर से प्राप्त होता है, अतः उसके खाने से खानेवाले का मांस बढ़ता है अर्थात् कृशता दूर होती है.

सभी प्रकार का मांस सामान्यतः वातनाशक, रसरक्तादि धातुओं का वर्द्धक, बलवर्द्धक, तृप्तिकारक या शरीर का पूरक, गुरू है एवं हृदय के लिए हितकारी है और रस एवं विपाक में मधुर है. मृगों के मांस रतिशक्तिवर्द्धक, नेत्र के लिए हितकर, शोषरोगों के लिए लाभप्रद होते हैं. प्रसह पक्षियों के मांस उष्ण हैं और उनको खाने से शोषरोग, भस्मक रोग, उन्माद एवं शुक्रदोष नष्ट हो जाते हैं. बकरा, बकरी, भेंड़ आदि पशुओं के मांस वातनाशक, अग्निदीपक, कफपित्तकारक एवं

बलवर्द्धक हैं.

जल प्राणियों के मांस विशेषकर सभी मछलियों के मास स्निग्ध, मधुर, उष्ण, गुरु, कफपित्तकारक, वातनाशक, पुष्टिकारक, वृष्य, रुचिकारक व बलवर्द्धक हैं. जो अधिक मैथुन करते हैं, मद्यपान करते हैं, जिनकी अग्नि प्रदीप्त है उनके लिए लाभदायक है.

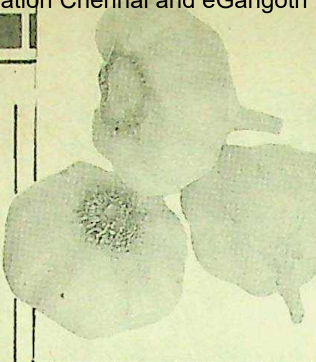
तत्काल मारे गए प्राणियों का मांस रोगनाशक तथा अमृत के समान जीवनदाता होता है, वयः स्थापक तथा अनुकूल होने से पुष्टिकारक होता है. इसके विपरीत बासी, तिबासी, मांस खाने योग्य नहीं होता.

हानिकारक मांस

जो जीव स्वतः मरता है, उसका मांस दुर्बलता तथा अतिसार करनेवाला एवं गुरु होता है. इसके अतिरिक्त बूढ़े प्राणियों का मांस दोषवर्द्धक (हानिकारक) होता है. तथा बाल व युवा जीवों का मांस बलदायक एवं लघु होता है. सर्पादि के काटने से मृत का मांस अथवा सुखाया गया मांस त्रिदोषकोपक होता है. सिंह आदि का काटा मांस, दुष्ट, सड़ा-गला मांस तथा सूखा मांस शूलकारक होता है. सड़ा मांस मिचली उत्पन्न करता है व कृश अर्थात् अपुष्ट मांस वातकोपक होता है .जो प्राणी जल में डूब जाता है और उसके शरीर में जल भर जाता है, उसका मांस त्रिदोषकारक होता है. मांस बेचनेवाले कभी-कभी इस प्रकार के विकृत व दूषित मांस ग्राहक को बेच देते हैं, अतः मांस खरीदते समय इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए.

उत्तम मांस

पक्षियों में नरपक्षी का मांस और चौपायों में मादा का मांस श्रेष्ठ उत्तम होता है. नरप्राणियों के शरीर के पिछले आधा भाग का मांस लघु होता है और मादा प्राणियों के शरीर के अगला आधे भाग का मांस लघु होता है. प्रायः सभी नर-मादा का मध्य भाग का मांस गुरु होता है. जिन दिनों पक्षियों के पंख गिरते हैं, उन दिनों में उनका मांस लघु होता है. सभी पक्षियों के अंडे और ग्रीवा के मांस गुरु होते हैं. उरस्थल का मांस, उदरप्रदेश का मांस, गर्भाशय का मांस, हाथ, पैर, कमर पीठ, त्वचा, यकृत तथा अंतड़ियों का मांस क्रमशः एक से दूसरा गुरु होता है. चावल आदि धान्य चुगनेवाले पक्षियों का मांस लघु तथा वातकारक होता है. फल खाने वाले शुक आदि का मांस कफकारक,लघु तथा रूक्ष होता है.



समान जाति वाले प्राणियों में बड़े शरीर वालों की अपेक्षा छोटे शरीर वालों का मांस उत्तम होता है. इन सभी मांसों का लघु तथा गुरु के अनुसार शरीर पर प्रभाव पड़ता है.

मांस रस का शरीर पर प्रभाव

शोरबा रुचिकारक होता है, श्रम, श्वास तथा क्षय का नाशक है. तृप्तिकारक, वातपित्तनाशक है और जिनके धातु अथवा शुक्र का ह्रास हो गया हो, अस्थि टूट गई हो अथवा खिसक गई हो, जिनकी स्मरणशक्ति, ओज, बल घट गया हो, जो ज्वर, उरःक्षत, से क्षीण हो गए हों,जिनकी दृष्टि, आयु एवं स्मरणशक्ति क्षीण हो गई हो, उनके लिए मांसरस अथवा मांस के अन्य

शेषांश पृष्ठ ७४ पर

आरोग्य-बुद्धिवर्द्धक सात्विक आहार

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने-वाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय लगनेवाले आहार सात्विक हैं. ऐसा भोजन या आहार सात्विक पुरुषों को प्रिय होते हैं.

ऐसे आहारों में दूध, घी, शाक, फल, चीनी, गेहूं, जौ, चना, मूंग और चावल आदि हैं. इन सात्विक आहारों के सेवन से उम्र या जीवन की अवधि बढ़ती है तथा सत्व-गुण की वृद्धि से ही बुद्धि निर्मल, तीक्ष्ण एवं सूक्ष्म-दर्शिनी होती है.

सात्विक भोजन से शरीर में बल की वृद्धि होती है. बल का अर्थ है सत्कार्य में सफलता दिलानेवाली मानसिक और शारीरिक शक्ति. शक्ति बढ़ने से मानसिक व शारीरिक रोगों का नाश होता है जिससे आरोग्यवृद्धि होती है.

सात्विक आहार की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इसके सेवन से हार्दिक संतोष, मन की प्रसन्नता और शरीर की पुष्टि होती है, साथ ही मुख आदि शरीर के अंगों पर शुद्ध भावजनित आनन्द चिह्न प्रकट होते हैं. यही जीवन का सच्चा सुख है और इनकी वृद्धि ही सुख का बढ़ना है. इससे चित्तवृत्ति प्रेमभाव से संपन्न हो जाती है.

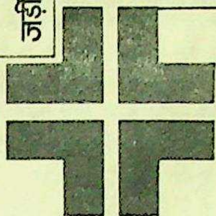
सत्वगुण प्रधान आहार पवित्र और निर्मल होते हैं. उनमें किसी प्रकार का कोई दोष नहीं होता. उससे अन्तः करण और इन्द्रियों में प्रकाश की वृद्धि होती है एवं दुख, विक्षेप, दुर्गुण और दुराचारों का नाश होता है, जिससे शांति की प्राप्ति होती है. जब सत्वगुण बढ़ता है तब मनुष्य के मन की चंचलता अपने आप ही नष्ट हो जाती है.

सात्विक आहार के कारण ही शरीर में चैतन्यता, हल्कापन तथा इन्द्रिय और अन्तःकरण में निर्मलता उत्पन्न होती है, जिससे हृदय में दिव्य ज्योति उत्पन्न होती है. इस प्रकाश के कारण सत्य-असत्य तथा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय करनेवाली विवेकशक्ति का उदय होता है, जिसे ज्ञान कहते हैं. जिस समय प्रकाश और ज्ञान दोनों का प्रादुर्भाव होता है, उस समय अपने आप ही सुख-शांति की बाढ़ सी आ जाती है तथा राग-द्वेष, दुःख-शोक, चिंता, भय, चंचलता, निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदि दूर हो जाते हैं. यही तो शारीरिक और मानसिक आरोग्यता है.

सात्विक आहार के प्रभाव से ही व्यक्ति सद्गुणों की प्राप्ति में समर्थ होता है और इसी के द्वारा ही अपने जीवन के धर्म में इन्द्रियों के विषयों में और क्रियाओं को सम्यक् सम्पन्न करके मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है. इन की प्राप्ति हमें आरोग्य के द्वारा हो सकती है. आरोग्य की प्राप्ति के लिए सात्विक आहार की आवश्यकता होती है.

इस प्रकार जो व्यक्ति नित्य हितकारी, शुद्ध सात्विक आहार का सेवन करते हैं वे ही अपने शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा ठीक प्रकार से करते हैं.

जायफल



सन् १७९६ में मलाका द्वीप पर ईस्ट इंडिया कंपनी का अधिकार था. उस द्वीप में जायफल के वृक्ष बहुतायत से पैदा होते थे. उस समय रॉक्सबर्ग नामक अंग्रेज वहां का गवर्नर था. उसे उस द्वीप के महकते जायफल के वृक्ष बहुत पसंद आये. जब उसका ट्रान्सफर हावड़ा में हुआ तो वह अपने साथ अपने प्रिय जायफल के वृक्ष लाना नहीं भूला उसने हावड़ा के अनेक सरकारी बगीचों में जायफल के पेड़ लगवा दिये. उन वृक्षों पर वहां के जलवायु का इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि वे वहां फैलते चले गये. इस तरह भारत में जायफल वृक्षों का विस्तार हुआ. वैसे जायफल वृक्ष का मूल उत्पत्ति स्थान एशिया खंड के पूर्व में मलाका द्वीप और बांडा देश है. आजकल यह मलेशिया का भाग है. इस समय जायफल सुमात्रा, लंका, जावा, चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया और हिंद महासागर के द्वीपों में विशेष उत्पन्न होता है.

वनस्पति शास्त्र के विशेषज्ञों की मान्यता है कि जायफल वृक्ष की ८० से अधिक जातियां हैं पर हमारे देश में इसकी तीस जातियां पायी जाती हैं. वैसे मुख्यतः जायफल का वृक्ष दो प्रकार का होता है. एक नर और दूसरा मादा. मादा जाति के जायफल के फूल छोटे-छोटे सफ़ेद रंग के गोलाकार फूल होते हैं, उनमें पुष्पकोश नहीं होता. ये फूल छोटी छोटी मंजरियों पर उत्पन्न होते हैं. इनके पत्ते बड़े भाले के आकार के डेढ़ इंच चौड़े तीन से लेकर छः इंच लंबे और सुंदर होते हैं. जायफल के इन पत्तों को मसलने से एक विशिष्ट प्रकार की सुगंध आती है. जायफल के पत्ते एकान्तर से लगते हैं.

जायफल का वृक्ष बड़ा सुहावना लगता है. इसके फल पकने पर अमरूद के बराबर हो जाते हैं. इसी फल के बीज को बीज होते हुए भी फल ही कहा जाता है. फल के पकने पर उसकी छाल फट जाती है - जैसा कि कभी-कभी अनार फट जाता है. छाल फटने पर बीज के आसपास लिपटी हुई पीली - जर्द - छाल दिखायी पड़ती है. उसी लिपटी हुई छाल को जावित्री बोला जाता है. जिस प्रकार नारियल को नेरटी ढंके रहती है, उसी प्रकार जावित्री भी जायफल के आसपास लिपटी रहती है. उसका भी उपयोग औषध के रूप में और औषधियों के अनेक विशिष्ट योगों में किया जाता है. जायफल जितना अधिक चिकना और वज़नदार होता है वह उतना ही गुणवत्ता की दृष्टि से उत्तम और उपयोगी माना जाता है. जायफल बड़ा तेज़ और उत्तेजक होता है. कहा जाता है कि उसका पौना तोला चूर्ण खाने से आदमी बेहोश हो जाता है. जायफल घी में रखने से बहुत बर्षों तक तरोताज़ा रह सकता है.

गुणधर्म - जायफल फीका, तीखा, वृष्य, दीपन, गीला होने पर कडुवा, लघु, ग्राही, हृद्य, उष्ण और मादक होता है. यह वीर्यवर्द्धक, वातनाशक, स्वर को सुरीला बनानेवाला, कफ का शमन करनेवाला, वायु रोगों को हरनेवाला, कंठरोग, प्रमेह, वातातिसार, मल और दुर्गंध का शामक, शरीर के रंग को निखारने वाला, कृमि, खांसी, कै, श्वास, पीनस, हृदयरोग और शोष का नाश करता है. जायफल का तेल भी निकलता है.

जावित्री - जावित्री उत्तेजक, तीखी, कड़वी, मुख को स्वच्छ करनेवाली, वर्णकारक, लघु, कांतिवर्द्धक, रुचिकर और उष्ण होती है. यह अंगों की जड़ता, कफ, रक्तदोष, श्वास, खांसी, कै, तृषा, विष, वायु और कृमि का नाश करती है.

जायफल और जावित्री पान के साथ खायी जाती है और कहा जाता है कि तनिक सी जावित्री या जायफल डालने से काम वासना आग की तरह भड़क उठती है. जायफल को संस्कृत में जातिफल, हिंदी, बंगला, गुजराती, मराठी और कन्नड़ में जायफल, तेलगू में जाजीकाया, तमिल में जोड़ी काया, मलयालम में जाती कामारे, फारसी में जो वे बुका, अरबी में जोज अलतीव, लैटिन में मिरिस्टिकास्टिकम और अंग्रेजी में नटमेग कहते हैं.

जावित्री को संस्कृत में जायपत्री, हिंदी में जावित्री, गुजराती में जावंत्री, मराठी, बंगला और कन्नड में जायपत्री, तेलगू में जाजीपत्री, फारसी में वजवार, अरबी में बिसवासा, लैटिन में मिरिस्टिका केग्रन्स और अंग्रेजी में मस कहते हैं.

जायफल के उपयोग

हैजा में

जायफल का काढ़ा पीने से तृषा शांत होती है और धीरे-धीरे आराम मिलता है. तीन माशा जावित्री को दूध में पीस कर पीने से हैजे का प्रकोप शांत होता है.

माथा दुखने पर

जायफल को घिस कर लेप करना चाहिए.

निद्रा आने पर

बहुत अधिक निद्रा आने पर जायफल को घृत में घिस कर आंखों पर चुपड़ना चाहिए.

ज़ुकाम होने पर

दूध में जायफल को घिस कर गरम करके नाक और मस्तक पर लेप करना चाहिए. इससे लाभ न मिले तो गाय के दूध में अफ़ीम मिला कर उसमें जायफल को घिस कर लेप करना चाहिए.

हिचकी और वमन में

जायफल को चावल की मांड के साथ घिस कर पिलाने से हिचकी बंद हो जाती है और वमन की शिकायत नहीं रहती.

अजीर्ण होने पर

जायफल दूध में घिस कर लेना चाहिये.

अतिसार और आमातिसार में

जावित्री का पांच माशा चूर्ण गाय के दही में उबाल कर सात दिन तक लेना चाहिए. शीघ्र आराम मिलेगा.

प्यास अधिक लगने पर

प्यास किसी भी रोग में हो, जायफल का छोटा-सा टुकड़ा मुंह में रख लेने से प्यास की बेचैनी नहीं होगी.

चेहरे पर झांई और दाग़ पड़ जाने पर

जायफल को दूध में घिस कर चेहरे पर निरंतर अनेक दिनों तक लेप करने से चेहरे की झांइयां मिट जायेंगी, धब्बे धूमिल पड़ जायेंगे और चेहरा निखर उठेगा. मुंहासों पर भी जायफल को दूध में घिस कर लगाने से निश्चय ही आश्चर्यजनक लाभ होता है.

मूत्रवेग रोकने से उत्पन्न व्याधियों की चिकित्सा

शरीर में उपस्थित होने वाले तेरह वेग ऐसे हैं, जिनको अनावश्यक रूप से धारण नहीं करना चाहिए. इन उन्मुख हुए वेगों को रोकना रोगों को निमंत्रण देना है. वे तेरह वेग निम्न हैं, जिनका अष्टांग में वर्णन इस प्रकार किया गया है.

वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्र-
क्षवतृद्क्षुधाम् ।
निद्राकासश्रमश्वासजृम्भाऽ-
श्रुच्छर्दिरेतसाम् ।।

वात, मल, मूत्र, छींक, प्यास, भूख, निद्रा, कास, श्रमजनित श्वास, जम्भाई, अश्रु, वमन (कै) और शुक्र. इन तेरह वेगों के उन्मुख होने पर इन्हें धारण नहीं करना चाहिए. यहां वात का तात्पर्य ऊर्ध्ववात व अधोवात दोनों से है. वेगों के उन्मुख होने का अर्थ बाह्यगमनोन्मुख प्रवृत्ति से है.

यहां ख़ासतौर से मूत्रवेग के रोकने से हमारे शरीर पर क्या-क्या विपरीत प्रभाव या दुष्परिणाम होते हैं, इस विषय पर विचार किया गया है. शास्त्रों में मूत्र के गुण इस प्रकार बताए गए हैं -

मनुष्य का मूत्र तीक्ष्ण, क्षार तथा लवण रसयुक्त रक्तविकार तथा पामारोगनाशक होता है एवं यह सेवन करने से रसायन है.

आहार के पाचन के पश्चात् हमारे शरीर में दो प्रकार के मल पैदा होते हैं. एक द्रवरूप और दूसरा ठोसरूप. जो द्रव भाग शरीर के लिए लाभकर नहीं होता है, उसे शरीर से बाहर स्वेद एवं मूत्र के रूप में बाहर निकाल दिया जाता है.

अगर मूत्र के रूप में उपस्थित वेग को रोका जाए तो निम्न रोगों की उत्पत्ति होती है -

अङ्गभङ्गाश्मरीबस्तिमेढ्रवंक्षण वेदनाः ।

उन्मुख हुए मूत्र वेग को रोकने से अंगों का टूटना, अश्मरी (पथरी), बस्ति मेहन तथा वंक्षण में वेदना या दर्द होने लगता है. यहां वंक्षण का अर्थ मूत्राशय के पार्श्वों का प्रदेश है.

मलरोधजन्य और वातरोधजन्य रोग भी कभी-कभी मूत्रवेग रोकने से उपस्थित हो भी सकते हैं और नहीं भी. आचार्य सुश्रुत ने कुछ और भी रोग व लक्षण बताए हैं. जैसे, मूत्र कठिनाई से होना, मूत्र का अल्प प्रमाण में आना, नाभि और शिर प्रदेश में वेदना या दर्द का होना, बस्ति में आध्मान अर्थात कभी-कभी बस्ति में शूल चुभने के समान वेदना होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं.

मूत्रवेग के रोकने से कभी-कभी मूत्रातीत व मूत्रजठर रोग भी देखने में आते हैं.

देर तक मूत्र के वेग को रोकने से मूत्र बाहर नहीं आता है या रुक रुक कर आता है. इसके फलस्वरूप थोड़ी वेदना भी उत्पन्न होती है. इसी को मूत्रातीत कहा गया है.

मूत्रवेग को अधिक समय तक धारण करने से रुका हुआ मूत्र वायु के कारण ऊपर की ओर चला जाता है. जहां से यह मूत्र नाभि के नीचे कोष्ठ में भर जाता है. फलस्वरूप तीव्र वेदना, आध्मान, अपचन और मलावरोध उत्पन्न होते हैं. इसी को मूत्रजठर कहा जाता है.

चिकित्सा

मूत्रवेग रोकने से उत्पन्न हुए रोगों की चिकित्सा या उपचार के लिए वर्त्ति, अभ्यङ्ग, अवगाहन, स्वेदन व बस्ति कर्म बताया गया है.

वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदनं बस्तिकर्म च ।

इसी प्रकार वात और मल के अवरोधजन्य रोगों के लिए भी उपरोक्त चिकित्सा बताई गयी है. वर्त्ति - फलवर्त्ति. अभ्यङ्गवातहर तेलों द्वारा किया जाता है जैसे - प्रसारणी तेल या नारायण तेल का प्रयोग इसके लिए किया जाता है. अवगाहन - तेल या गरम जल में गोता लगाना अवगाहन बताया गया है. स्वेदन चिकित्सा में वातहर द्रव्यों से और बस्ति कर्म - मल प्रवृत्ति के लिए करें.

मूत्ररोधजन्य रोग का उपाय -

मूत्रजेषु तु पाने
च प्राग्भक्तं शस्यते घृतम् ।
जीर्णान्तिक चोत्तमया
मात्रया योजना द्वयम् ।
अवपीडकमेतच्च संज्ञितम् ।।

मूत्र वेग रोकने से उत्पन्न रोगों में अवपीड़क योजनाओं का निर्देश किया गया है. एक भोजन से पूर्व घृतपान कराना चाहिए और दूसरी रात के भोजन के जीर्ण होने पर घृतपान कराना चाहिए. यहां भोजन के जीर्ण होने पर प्रचुर अर्थात् उत्तम मात्रा में घृत पान कराना चाहिए. उत्तम मात्रा यानी स्नेह (घृत) की जो मात्रा दिन-रात में जीर्ण होती है, वह उत्तम मात्रा होती है. उपरोक्त दोनों योजनाओं को अवपीड़क संज्ञा दी गयी है.

असाध्य रोग

जब रोगी अधारणीय वेगों को धारण किए रहता है तो कभी-कभी वह रोगी असाध्य अवस्था तक पहुंच जाता है.

तृट्शूलार्तं त्यजेत्क्षीणं विड्वमं वेगरोधिनम् ।

जो वेगरोधी रोगी प्यास एवं शूल से पीड़ित हों; जिसके धातु क्षीण हो गये हों तथा मल का वमन या कै करने लग गया हो उसकी चिकित्सा नहीं करने का निर्देश है क्योंकि वह अवस्था असाध्य अवस्था होती है.

इस प्रकार विपरीत कर्म या क्रिया करने से वायु का प्रकोप होता है और यह वायु ही सभी रोगों का कारण होती है. अतः अधारणीय वेगों को धारण नहीं करना चाहिए.

प्रायः जो रोग वेगों के धारण करने से उत्पन्न होते हैं उनके लिए वायु का अनुलोमन करने वाला खान-पान, औषधि आदि करनी चाहिए, क्योंकि प्रायः रोगों में वायु ही प्रकुपित होती है.

— डॉ. श्याम शर्मा

उष्ण जलपान करें और नीरोगी रहिए

- वैद्य डी. एन. शहाणे

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की कुछ विशेषताएं हैं. मूलभूत सिद्धान्त (Fundamental principles) है, जैसे कि त्रिदोष विकार, अग्नि विकार, पंचमहाभूत विकार, आहार-विहार के नियम आदि. इनका समुचित विचार एवं पालन किए बिना न कोई चिकित्सक प्रसिद्धि पा सकता है न ही कोई रुग्ण लाभान्वित हो सकता है. कोई भी रोग वात-पित्त-कफ़ इन तीन दोषों को छोड़ नहीं होता है. ख़ासतौर पर आयुर्वेद के आचार्यों ने ८० प्रकार की वात व्याधियों, ४० प्रकार की पित्त व्याधियों तथा २० प्रकार की कफ व्याधियों का उल्लेख किया है. अर्थात् वात एवं कफ दोषों से होने वाली व्याधियों की संख्या १०० हुई, इन दोनों दोषों से होने वाली व्याधियों में हम उष्ण जलपान का प्रयोग कर सकते हैं, क्योंकि इन दोनों दोषों का शमन उष्ण द्रव्यों से होता हैं, ऐसा शास्त्र का कथन है. इसी सिद्धांत और शास्त्र-कथन की मर्यादा का पालन करते हुए, हमें उष्ण जलपान की महत्ता का विचार करना है. जैसा कि अष्टांग हृदय ग्रंथ में कहा है –

दीपनं पाचनं कंठ्यं
कधूष्णी बस्ति शोधनम् ।
हिदमाडऽध्यानामिल श्लेष्म
सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ।।
कासामणीनसश्वासपार्श्वरुक्षु
च शक्यते ।

अर्थात् उबला हुआ पानी पचने में हल्का होता है. वह अपने उष्णत्व और हल्केपन के कारण पेट की अग्नि को बढ़ाता है, जिससे वह भोजन को ठीक से पचाने में सक्षम होती है. बढ़े हुए कफ़ का सम्यक् पाचन होता है और वायु अपने मार्ग से सुचारु रूप से संचार करने लगती है. शरीर की छोटी-बड़ी नलिकाएं, जिन्हें आयुर्वेद स्रोतस कहता है, खुल जाती हैं, अतः उनमें से तत्तद् धातुओं का वहन बिना अवरोध होने लगता है. पेट साफ़ न होने की शिकायत उष्ण जल सेवन से ठीक हो जाती है. परिणामतः पेट में वायु भर जाना, पेट फूल जाना या पेट में दर्द की शिकायत आदि नहीं रहता, पेशाब साफ़ आता है. ऐसे अनेक बहुगुणी उपयोग उष्ण जल के हैं.

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में प्राचीन एवं मध्यकालीन युग की तीन-तीन ग्रंथों को दो भाग में बांटा गया है. इसमें चरक, सुश्रुत और अष्टांग इन के ग्रंथों की त्रिपुटी को 'बृहत् त्रयी' और शारंगधर, भावप्रकाश और माधवनिदान इन मध्यकालीन ग्रंथों की त्रिपुटी को 'लघुत्रयी' कहते हैं. निर्दिष्ट पचन अष्टांग हृदय का है. इसमें उष्ण जलपान का प्रयोग किन रोगों में किन, अवस्थाओं में और किन दोषों के शमनार्थ इष्ट है, इसका निर्देश हुआ है.

उष्णजल का सेवन लोग बीमारी के बाद चिकित्सक के कहने पर ही करते हैं, पर कुछ ही लोग यह जानते होंगे की उष्ण जल में जीवाणु नहीं होते और जीवाणु ही तो रोगवाहक हैं, जब वे ही नहीं होंगे तो रोग कैसे होगा?

रोगों में उष्ण जल का सेवन

अग्निमांद्य एवं उससे उत्पन्न अजीर्ण, पेट के प्रायः सभी रोगों का कारण होता है. ऐसा सभी आचार्यों का मत है. जठराग्नि मंद होने से खाद्य-पेय पदार्थों का सम्यक् पाचन नहीं होता, परिणामस्वरूप 'आम' की उत्पत्ति होती है, जिसे अपचन आहार रस भी कहा जाता है. यह आम न केवल अन्तःवह स्रोत (Alimentry Canal) अपितु श्वसनसंस्थान के प्रतिश्याम (ज़ुकाम), श्वास आदि अनेक रोगों की उत्पत्ति में भी कारणीभूत होता है. ज्वर (सभी प्रकार के बुख़ार) का मुख्य हेतु भी अग्निमांद्य से उत्पन्न 'आम' ही माना गया है. तुंडिमेरी शोथ (Tonsilitis) आदि रोगों में वायुदोष का प्राधान्य होता है. आमवात (Rhematoid Arthritis) संधिवात (Osteo Arthritis) आदि वातदोष प्रधान व्याधियां एवं पेट के रोग, कफ-वात प्रधान रोगों में उष्ण जल का सेवन न केवल लाभप्रद होता है, अपितु उष्ण जल के सेवन के बिना कोई भी उपचार ज़्यादा और स्थायी लाभ नहीं दिला सकता है.

आयुर्वेद में पंचकर्म चिकित्सा (Elimination Theropy), मूलगामी (Radial) चिकित्सा मानी जाती है. उनमें वमन-विरेचन - बस्ति - नस्य इन कर्मों के पश्चात् उष्ण जल सेवन इष्ट माना जाता है. वैसे ही इन कर्मों के पूर्व कर्म स्वरूप घृतपान के समय भी उष्ण जल सेवन आवश्यक माना जाता है. उष्ण जल सेवन से मल-मूत्र के शोधन में भी मदद मिलती है.

ऋत्वानुसार उष्ण जल सेवन

जैसे वात-कफ़ के सभी रोगों में उष्ण जल का सेवन आवश्यक है, वैसे ही वर्षा और शीत काल में भी उष्ण जल का सेवन करते रहने से उन ऋतुओं में पैदा होने वाली व्याधियों से बचा जा सकता है. मधुमेह और श्वास दोनों चिरस्थायी व्याधियां हैं. श्वास रोगी को सभी ऋतुओं में उष्ण जल का ही सेवन करना चाहिए. श्वास अत्यंत कष्टप्रद व्याधि है. वह जैसे-जैसे जीर्ण होता जाता है, उसका इलाज असंभव हो जाता है, अतः जब इसकी शुरुआत हो तभी से ही उष्ण जल सेवन करते रहना चाहिए, जिससे वह कष्टप्रद न हो. वैसे ही पेट के सभी रोग अजीर्ण, एसीडीटी, प्रवाहिका, ग्रहणी, जीर्ण होने पर कष्टप्रद हो जाते हैं, इनमें भी उष्ण जल का सेवन लाभ पहुंचाता है.

जैसे ही गर्मी का मौसम शुरू हुआ, प्रायः सभी शीत पेय का स्वाद लेना चाहते हैं, किन्तु शीत व वर्षा ऋतु में कुछ अपवाद को छोड़ कर कोई भी उष्ण जल का सेवन करना नहीं चाहता. इन ऋतुओं में प्रायः ज़ुकाम, खांसी, श्वास, गले के रोग होते हैं, तब भी मरीज़ उष्ण जल सेवन नहीं करना चाहते.

उष्णजल वर्जित है ----

कुछ पित्तप्रधान व्याधियां रक्तस्राव वाली व्याधियां, आदि में उष्ण जल का सेवन नहीं करना चाहिए. गर्मी के मौसम में शृतशीत (उबाल कर ठंडा किया) जल का सेवन हितकारी होता है, लेकिन शीत जल अग्निमांद्य कर पेट, गले, सीने के रोग पैदा करते हैं.

आयुर्वेद में वर्णित - कर्मोपासना

— राधेश्याम पांडेय

आज के युग में आयुर्वेद को सैद्धान्तिक विषय मानकर इसकी उपादेयता को अन्य चिकित्सा पद्धतियों की अपेक्षा कम बताया जाता है, किन्तु शास्त्रों के सम्यक् अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें कर्माभ्यास का भी अनेक स्थानों पर उल्लेख किया गया है. संहिताओं के उद्धरण इसके प्रमाण हैं. सुश्रुत सूत्रस्थान में कर्मोपासना हेतु स्वतंत्र अध्याय में विषय का विवरण दिया है.

अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपि शिष्यं योग्यांकारयेत्।
स्नेहादिषु छेद्यादिषु च कर्मपथ भुपदिशेत्।
सुबहुश्चतोऽप्य कृतयोग्य कर्मस्वयोग्यो भवति ।

सु.सू. १

सम्पूर्ण शास्त्र के विषय में सैद्धान्तिक ज्ञान हो जाने पर भी शिष्य को योग्य अर्थात् सम्यक् कर्माभ्यास भी करना चाहिए. अतः स्नेहादि पंचकर्म विधि तथा छेदन, भेदन आदि शस्त्र कर्मों में कार्य करने की विधि का भी ज्ञान कराना चाहिए. भली प्रकार शास्त्र पढ़ लेने पर भी बिना कर्माभ्यास किये छात्र अयोग्य रह जाता है. इस विधि को आधुनिक दृष्टि से 'ऑपरेटिव' या 'प्रैक्टिकल वर्क' के नाम से चिकित्सा पद्धतियों में जाना जाता है. यह कार्य आजकल मृत शरीर पर किये जाते हैं अथवा किसी चूहे, बन्दर, खरगोश, कुत्ते आदि के शरीर पर प्रयोग करके बताया जाता है.

प्राचीनकाल में यह कार्य फलों, मृत पशुओं के अवयव या चर्म पर किये जाने का उल्लेख सुश्रुत संहिता में किया गया है.

कुष्माण्ड, घीया, तरबूज, खीरा, ककड़ी आदि में छेदन के भेदों को सिखाना चाहिए. इन्हीं में ऊपर-नीचे काटने के कार्य का अभ्यास कराना चाहिए. चमड़े की मसक (पानी ढोने की थैली), बकरे आदि की वस्ति या चमड़े के भाण्ड (बर्तन) बनाकर, पानी एवं कीचड़ से भरकर भेदन कार्य दिखाने चाहिए.

बालयुक्त चमड़े को फैलाकर उस पर लेखन कार्य, घुन खाई लकड़ी बंसी, नाली या सूखे फलों में एषण कार्य, कटहल, बिल्व फल मज्जा, मृतपशुओं के दांत में आहरण कर्म, सोम आदि से मुलायम सेमल आदि की लकड़ी को चिपकाकर सीवन कार्य, वस्त्र या मिट्टी की मानव प्रतिमाओं एवं अंगों पर बन्धन कर्म आदि का अभ्यास कराने से ज्ञान वृद्धि होती है. इसलिए प्रत्येक महाविद्यालयों में ऐसी व्यवस्था प्रथम धर्म है. अध्ययन समाप्ति पर भी चिकित्सा कार्य करते हुए, किए हुए अभ्यास को मनुष्य के रोगों में प्रयोग किए जाते हुए धीरे-धीरे अभ्यास होने में व्यक्ति कुशल चिकित्सक बन सकता है. चरक आदि ने पंचकर्म इनके पूर्व एवं पश्चात् कर्म के अभ्यास का भी उल्लेख किया है इनके लिए बनाए जानेवाले संधान यंत्र आदि का स्वयं अभ्यास करना चाहिए. कर्माभ्यास किया हुआ चिकित्सक अपयश का भागी नहीं बनता.

आयुर्वेद सिर्फ़ रोग शमन करने वाला या फिर औषधि विज्ञान भर ही नहीं है, बल्कि आयुर्वेद में निर्दिष्ट कर्मोपासना भी वैद्य व रोगी दोनों के लिए समान रूप से लाभदायी है. कर्मोपासना की महत्ता को व्याख्यायित करता लेख प्रस्तुत है, पाठकों के लिए -----

आयुर्वेद में यह तो है कर्माभ्यास का महत्व. अब यह देखना है कि ज्ञान के अर्जन में पारलौकिक सुख प्राप्ति में भी किस प्रकार कर्मोपासना करने की ओर इंगित किया है. शारीरिक कर्म करने, शरीर के स्वस्थ रखने, रोग दूर करने आदि कर्म का प्रयोजन क्या है? इस विषय पर व्यावहारिक एवं दार्शनिक विचारधारा इस प्रकार है -

यद्यपि आयुर्वेद दर्शन शास्त्रों से प्रभावित है, फिर भी यहां कर्म पर विशेष बल दिया गया है. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से पूर्व शरीर का स्वास्थ्य कर्म आवश्यक है.

अतः दार्शनिक सिद्धान्तों व मोक्ष प्राप्ति के लिए, स्वस्थ व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी के रोग की निवृत्ति प्रथम कर्म है. इसी उद्देश्य के लिए धातु साम्य क्रिया भी प्रधान रूप से बताई गयी है. आयुर्वेद चिकित्सा रोगी, रोग परीक्षा एवं शल्य कर्म, क्षार कर्म, अग्नि कर्म, पंच कर्म, पूर्व एवं पश्चात् कर्म, आदि कर्मोपासना की तरफ़ ही इंगित करते हैं. स्वास्थ्य के कर्मों में दिनचर्या, ऋतुचर्या, ब्रह्मचर्या, भोजन विधि आदि भी विशेष कर्म बताए गये हैं, जिनके आधार पर स्वस्थ रहते हुए मोक्ष के सिद्धान्त को बताया जा सकता है. अतः दर्शन शास्त्र की अपेक्षा कर्मोपासना पर विशेष बल दिया गया है.

उपरोक्त सभी कार्यों को, जिनका आयुर्वेद में यथास्थान विवरण दिया गया है, तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं -

(१) स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करनेवाले कर्म.

(२) आतुर के रोग को दूर करनेवाले नियम.

(३) धातु साम्य प्रक्रिया करनेवाले कर्म. उपरोक्त तीनों सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए ही द्रव्यों द्वारा होनेवाले कर्मों का भी तीन प्रकार से उल्लेख किया है.

स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी कर्म

यह तो पहले ही जान चुके हैं कि आयुर्वेद के प्रत्येक कर्म मनुष्य को स्वस्थ रखते हुए मोक्ष प्राप्ति तक पहुंचाने के कारण या माध्यम रूप से कार्य करते हैं. अतः 'समदोषःसमाग्निश्च' के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति में जिन गुणों का वर्णन किया गया है, उनकी रक्षा की जाए अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनकाल में उन कर्मों का एवं नियमों का पालन करता रहे, जिनसें यथावत् स्वास्थ्य बना रहे. आयुर्वेद की प्रत्येक संहिताओं में इन्हीं का वर्णन किया गया है, जिनमें दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, आदि कर्म प्रधान हैं. प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठने के बाद सायंकाल तक स्वास्थ्य लाभ देनेवाले कर्म, रात्रि में शयन आदि व्यावहारिक कर्म तथा दोषों के संचय प्रकोप, शयन आदि नियमों को जानते हुए प्रत्येक ऋतु का आहार-विहार आदि का पालन

स्वास्थ्य विभाग के अंतर्गत आता है. इनके साथ ही कुछ कर्म ऐसे हैं, जिनका पक्ष, मास आदि में उपयोग किया जाता है. इन सिद्धान्तों पर चलने वाले व्यक्ति पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करते हुए धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति करता हुआ, ईश्वर चिन्तन कर योग नियमादि द्वारा मोक्ष प्राप्त कर सकता है.

आतुर रोग निवारक कर्म

जो व्यक्ति स्वास्थ्य के नियमों का पालन नहीं करते या पालन करते हुए प्रज्ञापराध करते हैं अथवा पूर्व जन्मकृत कर्मों के द्वारा अस्वस्थ हो जाते हैं, उनको पुनः स्वास्थ्य लाभ देने के लिए किए सभी उपाय चिकित्सा कर्म कहलाते हैं. सामान्य विशेष सिद्धान्तों के आधार पर दोष एवं धातुओं की चिकित्सा की जाती है. पंच कर्म, पूर्व कर्म, पश्चात् कर्म, शल्य की दृष्टि से व्रण रोपन, बन्धन कर्म, लेप, क्षार, अग्नि आदि स्वास्थ्य लाभ के लिए किए गए उपाय चिकित्सा कर्म ही हैं.

धातु साम्य प्रक्रिया

स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा एवम् आतुर के रोग प्रशमन प्रयोजना की पूर्ति के लिए चरक ने 'धातु साम्य क्रिया योक्ता तत्श्यास्य प्रयोजनः' पर बल दिया है. इसके अनुसार शरीर के मूलभूत दोष, धातु, मल जब अपनी प्राकृतिक अवस्था से क्षीण या बढ़े हुए हो जाते हैं, तब सामान्य-विशेष सिद्धान्त द्वारा 'क्षीणाः वर्धितव्या वृद्धा ह्रासयितव्या' अर्थात क्षीण दोषों को बढ़ाकर और बढ़े हुए दोषों को घटाकर एवम् समदोषों का परिपालन करते हुए, हर समय शरीर को स्वस्थ रखते हुए पूर्व उद्देश्यों तक पहुंचाने का कर्म आयुर्वेदिक होता है.

इस प्रकार इहलौकिक कर्मोपासना द्वारा पारलौकिक कर्मों में लगानेवाला आयुर्वेद ही एकमात्र दर्शन है. अन्य दर्शनों में केवल कर्मोपासना होते हुए पारलौकिक कर्म का ही उल्लेख है, इहलौकिक कर्मों का उल्लेख नहीं है. आयुर्वेद का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति होते हुए इहलौकिक कर्मों को प्रधान बताना है.

अमीर-गरीब व्यक्तियों के स्वास्थ्य लाभ हेतु आयुर्वेदिक चिकित्सा में जितने योग्य औषधि प्रयोग, नियम एवं उद्देश्यों का वर्णन किया गया है, उतना अन्य चिकित्सा पद्धति में दृष्टिगोचर नहीं होता. साथ ही इसकी यह भी विशेषता है कि ऋतुकाल, देश, आयु, प्रकृति आदि के अनुसार आहार-विहार और औषधि का विशेष-विवेचन इसमें किया गया है.

बड़े भाग मानुस तन पावा -

एक बार एक मनुष्य अपने मित्र के संग तीर्थाटन करने गया. उन दोनों ने भारतवर्ष के अनेक तीर्थों का दर्शन किया. इसी तीर्थ यात्रा के मध्य वे एक बार नर्मदा नदी के पास प्रवाहित नाले के दलदल की ओर गये जहां एक साथ अनेक कछुए शांत भाव से इस तरह बैठे थे, जैसे वे साधु-तपस्वी हैं और उन्हें ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्म का दर्शन करने की इतनी प्रबल इच्छा आकांक्षा है कि वे सांसारिक गतिविधियों के प्रति पूर्ण तटस्थ हो गये हैं. जब वह बड़े ध्यान से उनकी ओर देख रहा था, तब उसके मित्र ने कहा - ''क्या देख रहे हैं आप, हम समस्त प्राणियों में ये ही सबसे अधिक भाग्यशाली हैं जो बिना बीमार पड़े डेढ़ सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं.''

अपने मित्र की बात सुन कर उस मनुष्य को आश्चर्य हुआ. उसने कहा - यदि यह सत्य है तो मैं भगवान से यही प्रार्थना करूंगा कि मुझे कछुए की योनि प्रदान करें. उस मित्र ने तब सुझाव दिया कि अपनी इस इच्छा पूर्ति हेतु तुम्हें इस जीवन में ही तप साधना-भक्ति करके भगवान से ऐसा वरदान प्राप्त करना होगा.

वह मनुष्य उसी दिन से कछुआ बनने की आकांक्षा साकार करने के लिए सत्त एवं तप् भावना से प्रभु से प्रार्थना करने लगा. भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली और जब उसकी शुरू में लिखी आयु की अवधि समाप्त हो गयी, तो उसकी आकांक्षा पूर्ति करते हुए भगवान ने उसे कछुए की योनि प्रदान की और साथ में पौने दो सौ बर्षों तक जीवन व्यतीत करने का वरदान भी लिख दिया. वह व्यक्ति कछुआ बन गया.

वह कछुए की योनि में एक नदी किनारे रहने लगा. जलमग्न मिट्टी से उत्पन्न कीट तथा अन्य क्षार तत्वों को खाकर जी रहा था. वह इस सत्य से निःशंक था कि उसकी पीठ इतनी कठोरतम है कि सहसा कोई उसे घायल करके मार नहीं सकता. वह मृत्युंजय है, पर इस योनि में उसने एक वर्ष भी पूर्ण नहीं किया था कि उसे अपनी भूल समझ में आयी, वह सोचने लगा, यह कैसा तटस्थ जीवन है, जहां सुख दुःख की अनुभूतियां ही नहीं हैं? यह कैसा जीवन है जिसमें काम, क्रोध, मोह, लोभ की संवेदनाओं का किसी प्रकार की जीवन की स्थितियों के साथ संघर्ष नहीं है? यह कैसा जीवन है, जिसमें अपने कर्मों से बिना फल की आशा किये कार्य करने की उमंग नहीं है? यह दो सौ वर्षों का जीवन जीवन नहीं, प्राणमय मृत्यु है, मन में यह विचार उठते ही उसने उसी कछुए की योनि में ही ध्यानावस्थित होकर साधना तपस्या की और भगवान से प्रार्थना की-''हे प्रभु, जब तक मुझे योनियों से पूर्ण मुक्ति नहीं मिलती, मुझे बार-बार मनुष्य योनि ही प्रदान करना. वही योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है. प्राणमय पिंडों की वही सबसे उज्वल कृति है. वही श्रेष्ठतम एवं सुंदरतम सृष्टि है. वह तो ऐसा जीवन है, जो सतत क्रियाशील रहता है.'' भगवान ने पुनः उसकी भक्ति प्रसन्न होकर उसे मनुष्य योनि प्रदान की.

इसी मनुष्य योनि में पुनः उसका अपने पुराने मित्र से मिलन हुआ. तब उसने अपने मित्र से कहा - ''ब्रह्मा की सबसे श्रेष्ठतम कृति मनुष्य है. इस तथ्य का ज्ञान मुझे विभिन्न योनियों मे जन्म लेने के पश्चात् हुआ है.''

संत तुलसीदास ने अपने महाकाव्य रामायण में यह उचित ही कहा है -.
बड़े भाग मानुस तन पावा ...

औषध कुमार की परीक्षा

- पं. विश्वनाथ चतुर्वेदी

बौद्ध कथाओं में औषध कुमार का बार-बार वर्णन हुआ है. उनके विषय में मान्यता है कि वे भगवान बुद्ध का दूसरा अवतार थे. आज भी बौद्ध संप्रदाय के लोग उन्हें भगवान मान कर पूजते हैं. उनके द्वारा प्रदर्शित चमत्कारों में आयुर्वेद सम्मत ज्ञान-विज्ञान भी भरा है.

मिथिला नरेश विदेह को उनके विषय में एक दिव्य स्वप्न आ चुका था. जब उन्होंने अपने स्वप्न को सत्य में परिणत होते देखा तो वे प्रसन्न हो उठे. उन्होंने औषध कुमार को मान-सम्मान के साथ अपने राज दरबार में लाने का निर्णय किया. पर कुछ राज दरबारियों को यह आशंका हुई कि कहीं औषध कुमार प्रमुख राज दरबारी बन गये तो उन लोगों की गरिमा कम न हो जाय. अतः उन्होंने सम्राट से कहा - "राजन, आप ही तो कहा करते हैं कि बिना सोचे समझे और परखे निर्णय लेना हानिकर भी हो सकता है. इसलिए हमारी प्रार्थना है कि आप औषध कुमार को और उनकी चमत्कारिक बातों को अच्छी तरह परख लें."

सम्राट ने उन लोगों के तर्क को स्वीकार कर निर्णय लिया कि औषध कुमार की विद्वता और उनकी चमत्कारिक शक्तियों के विषय में भली प्रकार खोज की जाय. उनके कार्यों को कसौटी पर कस कर परखा जाय. इस हेतु उन्होंने विद्वानों का एक प्रतिनिधि मंडल औषध कुमार के आश्रम में सत्यासत्य का निर्णय करने भेज दिया. उस प्रतिनिधि मंडल ने जो कुछ देखा वह सब बौद्ध कथाओं में वर्णित है. यहां उन कथाओं की पहली कथा प्रस्तुत की जा रही है जो औषध कुमार के आयुर्वेद संबंधी ज्ञान को उभारती है.

औषध कुमार युवावस्था में ही सबके हितैषी, शुभचिंतक और मार्गदर्शक बन गये थे. वे दीन दुखियों का कष्ट निवारण करते. दरिद्र लोगों को श्रम कार्यों में संलग्न कर सहायता पहुंचाते. आश्रम की जड़ी-बूटियों से रोगियों की सफल चिकित्सा करते. वे असाध्य रोगों की चिकित्सा करने में प्रवीण थे. उनके स्नेहसिक्त स्पर्श में भी दिव्य शक्ति थी. वे बड़े न्याय प्रिय भी थे. उनके न्याय के निर्णयों से सत्यपूर्ण तथ्यों की पुष्टि होती थी और साथ में यह भी ज्ञात हो जाता था कि उनका ज्ञान कितना विशद था.

एक दिन दो किसान बैलों को लेकर औषध कुमार के पास न्याय मांगने आये. वे दोनों किसान आंसू बहाते हुए, गिड़गिड़ा कर उन बैलों पर अपने-अपने स्वामित्व का दावा कर रहे थे.

उसमें से एक किसान ने व्यथापूर्ण शब्दों में कहा, - "स्वामीजी, देखो, मैं एक गरीब किसान हूं. इन बैलों से हल जोतता हूं तो अपने परिवार का पालन पोषण कर पाता हूं. यही बैल हमारे जीवन का सहारा हैं. यह आदमी राह चलते इन बैलों का मालिक बन बैठा है. अचानक यह मेरे खेत में आया और बैलों की जोड़ी लेकर चलने लगा. स्वामीजी, आप न्यायप्रिय हैं, मेरे साथ न्याय कीजिये."

फिर दूसरा किसान बोला, "स्वामीजी, यह सरासर झूठ बोल रहा है. सही बात तो यह है कि इसने मेरे बैल चुराये और अपना खेत जोतने लगा. यदि ये मेरे बैल नहीं होते, तो मैं उन्हें इस तरह ले जाने का प्रयास ही क्यों करता. मैं बैल चोर होता तो इसके ही बैल क्यों चुराता. अनेक किसानों के पास बैलों की पांच-पांच जोड़ियां हैं, उनमें से मैं कोई भी जोड़ी उठा लाता. जब मैंने इसे रंगे हाथों पकड़ लिया तो यह मुझे उल्टा चोर बनाने लगा है."

औषध कुमार उन दोनों किसानों की बातें सुन कर गहरे विचार में पड़ गये. आज तक उनके हाथ से किसी के साथ अन्याय नहीं हुआ. वे ध्यान से उन दोनों किसानों के शरीर एवं स्वास्थ्य को देखने लगे. पहले वाला किसान दुबला-पतला और कृशकाय था. उसका चेहरा मलीन था. ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह रात दिन अपने खेतों में कठिन श्रम में लीन रहता है. इसके विपरीत दूसरा किसान बहुत हृष्टपुष्ट था. वह साधन संपन्न लगता था. इन दोनों के शरीर को देखने के बाद उन्होंने उन बैलों की ओर देखा. दोनों बैल अधिक शक्तिशाली और शरीर से पुष्ट थे. ऐसा लगता था जैसे उन्हें भरपूर एवं आवश्यक भोजन खिलाया जाता है और उनकी सेवा भी अच्छी तरह की जाती रही है.

किसानों और बैलों के स्वास्थ्य को देखने के बाद उन्होंने दोनों किसानों से बारी-बारी पूछा कि वे अपने बैलों को क्या खिलाते रहे हैं. इस पर पहले वाला किसान हाथ जोड़कर बोला "स्वामीजी, मैं तो एक गरीब किसान हूं. मैं तो अपने बैलों को हराभरा चारा ही खिलाता रहा हूं. मैं प्रतिदिन इनकी मालिश करता हूं. पर हां, मैं इन्हें अपने बच्चों से भी अधिक प्यार करता हूं. जब मैं थक जाता हूं तो समझ जाता हूं मेरे ये दो बेटे भी थक गये होंगे. उन्हें तब खोल देता हूं. उन्हें प्यार करता हूं."

औषध कुमार ने तब प्रश्न किया - "तो फिर ये बैल इतने मोटे तगड़े कैसे हो गये?"

"स्वामीजी, यह तो कुदरत की लीला है. मैं प्रसन्न तो ये भी प्रसन्न --" इसके अलावा मैं कुछ नहीं जानता.

इसी बीच दूसरा किसान अपना पलड़ा भारी होते देख कर बोला, "स्वामीजी, सच को आंच क्या! इसने तो स्वयं सब कुछ बता दिया है कि बैलों को हरा भरा चारा खिलाने के सिवाय कुछ भी नहीं खिला सकता तो आप ही बताइये, बिना खिलाये ये बैल इतने तगड़े कैसे होते, यह तो मैं था जो इन्हें चने, जौ का दलिया, तिल के लड्डू, उड़द आदि खिलाता रहा हूं. मेरे पास इनको खिलाने की कोई कमी नहीं है. इन बैलों का भरापूरा स्वास्थ्य यही बता रहा है, इतने शालीन और बढ़िया बैल पूरे गांव में मेरे सिवाय किसी के पास नहीं हैं.

उन दोनों किसानों की बातें सुन कर स्वामी औषध कुमार ने दोनों से कहा - "तुम दोनों सरसों की हरी पत्तियां तोड़ कर लाओ और उन्हें पीस कर इन बैलों को खिलाओ."

स्वामीजी की बात मान कर दोनों ही खेतों की ओर भागे और सरसों की पत्तियां लाकर पीसने लगे. जब वे पत्तियां पिस कर चटनी बन गयीं तो दोनों ने बड़े उत्साह से उन बैलों को खिला दिया. बैलों ने वह चटनी खायी, पर खाने के कुछ देर बाद ही वे धड़ाधड़ पतले गोबर करने लगे.

उस गोबर को स्वामी औषध कुमार ने बड़े ध्यान से देखा. उस गोबर में उन्हें न तो कहीं उड़द न ही तिल के दाने नज़र आये. इस पर स्वामीजी ने मोटे ताज़े किसान को अपने पास बुलाया और उस गोबर को दिखाते हुए बोले, "देखो, इस गोबर में न तो तिल का दाना है और न उड़द, न ही कहीं दलिया खाने की निशानी मिली है. ये बैल तो केवल हरा चारा खाने वाले हैं. साफ जाहिर है कि ये बैल तुम्हारे नहीं हैं. तुम इन्हें चोरी करके ले जा रहे थे. तुम एक पाप कर्म करने जा रहे थे."

स्वामी औषध कुमार की इस निर्णायक बात में इतनी ओजस्विता और गंभीरता आ गयी थी कि वह किसान कांपने लगा. उनके पैरों में गिर कर क्षमा याचना करने लगा.

स्वामीजी ने उसे क्षमा कर दिया और कहा "जाओ ... अब भूल कर भी कभी चोरी करने का विचार मन में न लाना. यदि तुम काम, क्रोध, मोह और लोभ से दूर रहोगे तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायेगा और तुम मुक्त हो जाओगे."

स्वामी औषध कुमार का यह न्याय सम्मत निर्णय उनके औषधजन्य ज्ञान पर निर्भर था. सरसों के खाने से दस्तें लगती हैं और दस्त के साथ खाने के वे अंश भी निकल आते हैं जो पूरी तरह पच नहीं पाते. उन्हीं अन्नांश से यह पता चल जाता है कि क्या खाना खाया गया था. इतना ही नहीं, औषध कुमार यह भी जानते थे कि पशुपक्षियों का स्वास्थ्य केवल भोजन पर निर्भर नहीं करता. उसके साथ स्वामी का स्नेह और प्यार भी जुड़ा रहता है. उन बैलों के हृष्टपुष्ट शरीर का प्रमुख कारण यह था कि उसका असली स्वामी उन्हें बच्चों से अधिक प्यार करता था. उनको प्रति दिन प्यार से स्नान कराता था, साफ करता था और जब खुद काम करते-करते थक जाता था तो वह अपने बैलों को भी खोल देता था, यह समझ कर कि वे भी थक गये होंगे. उस किसान के इस स्नेहमय अपनत्व का प्रभाव उन बैलों पर पड़ा और वे अपने स्वामी की छाया में सुखी होकर स्वस्थ और मोटे तगड़े बने रहे.

सम्राट की ओर से आये विद्वानों ने औषध कुमार के इस न्याय को अपनी आंखों से देखा - और उन्होंने सम्राट के पास जाकर आंखों देखा हाल सुनाया.

अमृत वचन

मन आत्मा का दिव्य नेत्र है, अर्थात् उसी के द्वारा आत्मा आगे-पीछे, भूत-भविष्य सब देखती हैं.

- छान्दोग्य उपनिषद्

मनुष्य जैसा जीवन व्यतीत करता है वैसे ही उसके विचार हो जाते हैं.

- मेक्सिम गोर्की

नदी की बाढ़, वृक्षों के फूल, चन्द्रमा की कलाएं नष्ट होकर फिर से आती हैं, मगर देह धारियों की जवानी नहीं.

- अज्ञात

सुख और आनन्द ऐसे इत्र है, जिन्हें जितना अधिक छिड़कोगे, उतनी ही अधिक सुगंध आपके अन्दर समाएगी.

इमर्सन

आलस्य से ही दरिद्रता और परतंत्रता मिलती है.

यजुर्वेद

आदमी सदा दुःखी हो रहेगा क्योंकि उसे पता ही नहीं है कि वह चाहता क्या है?

- फ्रायड

प्रस्तुतिः माया शर्मा

नागकेशर

इसका वृक्ष सदा हरा, सुन्दर और मध्यम कद का होता है. शाखाएं कोमल तथा छाल लाल-भूरी होती हैं, जिससे पीतहरित द्रव बबूल की गोंद के सदृश निकलता है. पत्ते २-६ इंच लंबे, चौड़े व नुकीले होते हैं. इनका ऊपरी भाग चिकना तथा हरा एवं नीचे का भाग सफ़ेद छिद्रयुक्त होता है. पत्ते लाल रंग के होते हैं. पुष्प अकेले या २-३ एक साथ निकलते हैं, जिनके पराग पीले रंग के व गुच्छों में होते हैं. इसका फल १-२ इंच लंबा, अंडाकार. काष्ठीय, बाह्यकोष से युक्त होता है, जिसके भीतर १-४ गहरे भूरे रंग के, १ इंच व्यास के बीज होते हैं. बीजमज्जा मांसल तथा तैलयुक्त होती है. वसन्त में पुष्प और फल लगते हैं. इसके पुष्प में ५ पंखुड़ियां होती हैं. नरकेशर का पीले रंग का गुच्छा होता है. उसे नागकेशर कहते हैं. यही असली नागकेशर है. यह विशेषतः नेपाल, पूर्वोत्तर हिमाचल प्रदेश, दक्षिणभारत तथा अण्डमान में पाए जाते हैं. इसे संस्कृत में नागकेशर, नागपुष्प, चाम्पेय, हिंदी में पीला नागकेशर, बंगाली में नागकेशर, गुजराती में पीलु नागकेशर व लैटिन में 'मेसुआ फेरिया' के नाम से जाना जाता है.

गुणधर्म

नागकेशर लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, कटु व उष्ण प्रकृति का है. नागकेशर रूखी, गर्म व हल्की है, आम को पकाती है और दुर्गंध, कुष्ठ, विसर्प, कफ, पित्त, विष का नाश करती है.

नागकेसर, दालचीनी, इलायची, तेजपात इन्हीं का नाम चतुर्जात है. ये वात और कफ का शमन करनेवाले माने जाते हैं.

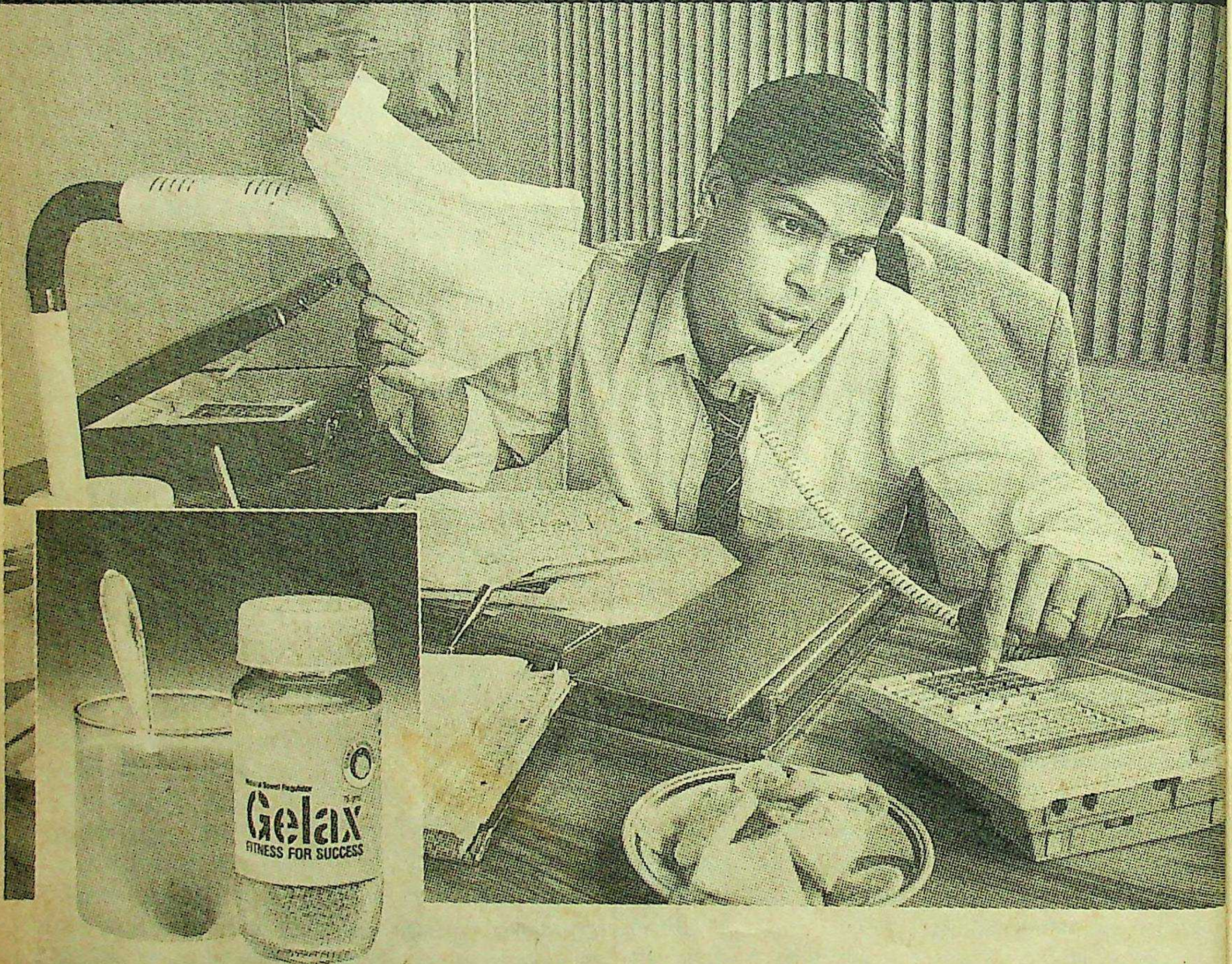
विविध प्रयोग

- बीजों के तेल की मालिश सन्धिवात आदि में करते हैं. नागकेशर का लेप दुर्गन्ध व व्रणों पर करते हैं. नपुंसकता में इसका लेप शिश्न पर करते हैं.
- मस्तिष्कदौर्बल्य, उन्माद आदि में भी इसे देते हैं.
- नागकेशर का प्रयोग अग्निमांद्य, अजीर्ण, तृष्णा, छर्दि, कृमि, अर्श तथा प्रवाहिका रोग में होता है. रक्तार्श का रक्त रोकने के लिए भी यह अति उपयोगी है.
- हृदय दुर्बलता, रक्तपित्त तथा रक्तविकार में नागकेशर लाभ पहुंचाता है.
- कास, हिक्का, श्वास में प्रयुक्त होता है.
- वाजीकरणार्थ तथा रक्तप्रदर में दिया जाता है.
- मूत्राघात में उपयोगी है.
- कुष्ठ, विसर्प आदि त्वचा रोग में देते हैं.
- ज्वर में नागकेशर शीघ्र लाभ पहुंचाता है.
- **बवासीर में नागकेशर योग** नागकेशर और खूनख़राबा (दमउलअखबेन) बराबर-बराबर मात्रा में लें. दोनों का कपड़छान चूर्ण कर लें और उसे २ ग्राम की मात्रा में ३-४ बार दूबस्वरस, मोसम्बी या मीठे अनार के रस के साथ या हरे धनिए की पत्ती के रस के साथ देने से अथवा उदुम्बरसार १ १/२ से ३ ग्राम को ६० ग्राम ठंडे जल में घोलकर, इसके साथ देने से बवासीर का खून गिरना बंद हो जाता है.
- नागकेशर १.५ ग्राम या धुले हुए काले तिल १२ ग्राम. ताज़ा घी या मक्खन के साथ खाने से बवासीर से खून गिरना बंद हो जाता है.

- सौदामिनी खण्डेलवाल

डेडलाइन. मीटिंग. टारगेट. सारा दिन काम की भागदौड़. यही है आज की तेज़ रफ़्तार ज़िन्दगी. ऐसे में होता ये है कि वहां शरीर जो आपको कामयाबी की मंज़िल तक पहुंचाता है, आप उसी की तरफ से लापरवाह हो जाते हैं. आप पूरी कुशलता से काम नहीं कर पाते और बाजी उलट जाती है. • न वक्त पर खाना-पीना. गलत चीज़ें खाना. नतीज़ा शुरू होती है पेट की गड़बड़ी. एसीडीटी, बदहजमी और कब्ज़ी. • फिर आप तलाश करते हैं तुरंत आराम देने वाले चूर्ण या ऐसे ही कुछ प्रचलित जुलाब और फंस जाते हैं इसके विपरीत असर और आदत के खतरनाक चंगुल में. • इन सबसे बचिए. **जीलेक्स** अपनाइए, **जीलेक्स** सिलियम जैसी आयुर्वेदिक वनस्पतियुक्त एक प्राकृतिक उत्पादन है. **जीलेक्स** रेशे के रूप में शरीर के लिए एक पूरक आहार है, जो स्वास्थ्य के लिए ज़रूरी है. तभी तो **जीलेक्स** जैसे सिलियम

प्रमोशन का एसिडिटी के साथ गहरा नाता है!



उत्पादन आज योरोपीय और अमरीकन देशों में तेज़ी से लोकप्रिय हो रहे हैं. • ज्यादा काम करने का मतलब ये तो नहीं कि आप अपना हाज़मा ही बिगाड़ लें. आप हर रात सोने से पहले पानी में दो चम्मच **ज़ीलेक्स** लें और अगले दिन काम के लिए पूरे चुस्ती-फुर्ती से तैयार हो जाएं. • **जीलेक्स** संतरे, नीबू और आम जैसे तीन मज़ेदार स्वादों में ७५ ग्राम की बोतल और २५ सैशे के एक्ज़ेक्यूटिव पैक में सभी कैमिस्ट और जनरल स्टोर्स में उपलब्ध.

जीलेक्स. स्वास्थ्य बनाए. सफलता दिलाए!

निर्माता u-for ऊंझा फ़ॉर्मूलेशन्स (आयुर्वेदिक डिवीज़न), खली चार रस्ता, स्टेट हाइवे, सिद्धपुर (उत्तर गुजरात)-३८४१५१.

मौसमी फल

सीताफल के प्रयोग

सीताफल का वृक्ष भारत मे सर्वत्र होता है. मूलतः यह वेस्ट इण्डीज से आया है. नरम, बलुई लाल या पीली जमीन इसके वृक्ष के लिए ज़्यादा अनुकूल है. सीताफल के वृक्ष मध्यम क़द के, बारह से चौदह फुट ऊंचे और अमरूद के पेड़ से मिलते-जुलते हैं. इसके पत्ते दो-तीन इंच लंबे और पौन-डेढ़ इंच चौड़े होते हैं.

पूर्व और पश्चिम खानदेश, तजौर तथा दक्षिण हैदराबाद के प्रदेश इसके उत्पादन के लिए प्रसिद्ध हैं. सौराष्ट्र के भावनगर और जामनगर प्रदेश में भी सीताफल का उत्पादन भारी मात्रा में होता है. आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष इसके लिए सही मौसम माने जाते हैं. सीताफल के वृक्ष बोने के बाद पांच-छः वर्षों में फल आते हैं और सात-आठ वर्ष तक फल देते रहते हैं. इसके फल गोलाकार, छोटी-छोटी गोलाकृतिवाले, बाहर की ओर उभरी हुई पेशियों वाले होते हैं. इन फलों में काले और चिकने अनेक बीज होते हैं. बीज के इर्द-गिर्द की सफ़ेद मीठी गिरी खाई जाती है.

गुण - धर्म

सीताफल शीतल, वृष्य, वातल, पित्तशामक, कफकारक, तृषाशामक और वमन निरोधक है. ये तृप्ति करनेवाले, मांसवृद्धि करनेवाले, रक्तवृद्धि करनेवाले, बलवर्धक और हृदय के लिए हितकारी हैं. ये पित्तशामक, वातशामक, कफ़वर्धक और कफ़-निःसारक भी हैं.

विविध प्रयोग व उपयोग

शरीर में अशक्ति आ गई हो, रोग के बाद शरीर में दुर्बलता महसूस हो रही हो, काम करने से थकान लगती हो, तो सीताफल खाने से अशक्ति दूर होती है और बल बढ़ता है. टाइफ़ाइड-मलेरिया सदृश ज्वर के पश्चात् वज़न कम हो गया हो तो सीताफल खाने से मांसवृद्धि होती है. जिनका वज़न बढ़ता न हो उनके लिए सीताफल अत्यंत श्रेष्ठ है. जिनका हृदय दुर्बल हो गया हो, हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हों, हृदय में घबराहट होती हो, हृदय की मांस-पेशियां शिथिल हो गई हों, उनके लिए भी सीताफल लाभदायक है.

इसके कच्चे फल अतिसार और पेचिश में उपयोगी हैं. इसके बीज पशुओं के घाव में रुझान लाते हैं. कुछ स्त्रियां गर्भपात के लिए इसके बीज के चूर्ण का उपयोग करती हैं. सीताफल के बीज का चूर्ण सिर में लगाने से बालों में पड़ी जूं मर जाती है. पके सीताफल की छाल में ज़ख्म को रुझाने और कीटाणुओं को नष्ट करने का गुण है. इसके पत्ते पीसकर फोड़ों पर बांधते हैं.

पके सीताफल सुबह ओस में रखकर, प्रातः खाने से पित्त का दाह शान्त होता है.

सीताफल के मूल पानी में घिसकर पीने से रुका हुआ पेशाब होने लगता है.

सीताफल के पत्तों को पीसकर उनका रस निकालकर, उसकी बूंदें नाक में डालने से हिस्टीरिया से मूर्छित व्यक्ति होश में आता है. इसके बीज के गर्भ को पीसकर, कपड़े में डालकर, उसकी बत्ती बनाकर, सुलगाकर नाक से इसका धुआं लेने से भी हिस्टीरिया और गिरने से आई हुई बेहोशी दूर होती है.

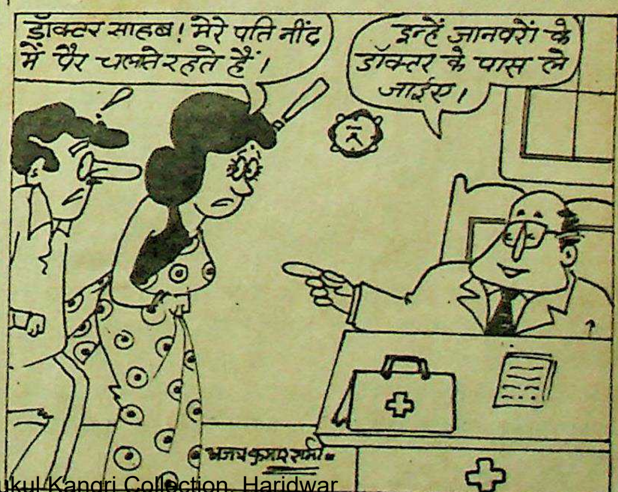
सीताफल के बीज के गर्भ की बत्ती बनाकर योनि में रखने से बंद पड़ा मासिक-धर्म चालू होता है.

सीताफल के पत्तों को कूटकर चटनी बनाइए. उसमें सेंधा नमक मिलाकर पुल्टिस बनाइए. यह पुल्टिस घाव पर बांधने से उसमें पड़े हुए कीड़े मर जाते हैं. कीड़ों को मारने के लिए कुछ लोग सीताफल के पत्ते, तमाखू और सूखा चूना शहद में मिलाकर घाव पर बांधते हैं. कच्चे अपक्व फोड़ों पर पुल्टिस बांधने से फोड़ों को वह जल्दी पकाता है और भीतरी पीब को बाहर निकालकर घाव का शोधन करता है, पके सीताफल की छाल में भी घाव का शोधन करने और कीड़ों का नाश करने का उत्तम गुण है.

सीताफल के मूल का चूर्ण उन्माद-पागलपन में दिया जाता है, इससे उन्माद की विकृति निकल जाती है.

सीताफल अत्यंत शीतल है. इसके इसी गुण के कारण इसका नाम 'शीतल' पड़ा होगा, जो बाद में 'सीताफल' के रूप में प्रचलित हुआ. सूरत के लोग 'अन्नुस' भी कहते हैं. सीताफल की एक बड़ी क़िस्म को 'रामफल' भी कहते हैं.

वैज्ञानिक मत के अनुसार सीताफल में कैल्शियम, लौह, थायमिन रीबोफ्लेविन, नियासिन और 'विटामिन बी १', 'बी २' तथा विटामिन 'सी' एवं काफ़ी मात्रा में शर्करा है. परंतु अत्यधिक मात्रा में सेवन करने से ठंडी लगकर बुख़ार आता है, जिनकी जठराग्नि मंद हो, जिनको ज़ुकाम हो, जिनका जीवन श्रम-रहित हो, उन्हें सीताफल का उपयोग विवेकपूर्वक करना चाहिए. न पचने पर सीताफल लाभ के बदले नुकसान करते हैं. सीताफल के बीज आंख में जाने पर दाह (जलन) करते हैं. इससे आंखें ख़राब होती हैं. अतः जूं मारने के लिए उनके बीज आंख में न चले जाएं इसका ख़ास ख़्याल रखें. ●



शरीर आत्मा का मंदिर है

- राधेश्याम पाण्डेय

मानव शरीर की रचना पांच भौतिक तत्वों से हुई है, जिनमें 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' का समावेश है. मानव शरीर में प्राण तत्व वायु है. इसलिए शरीर में वायु का संचरण आवश्यक है, क्योंकि वायु ही प्राण है. शरीर विषय वासनाओं के ठहरने का स्थान है, तो उसी शरीर में प्राणतत्व वायु अर्थात् आत्मा का भी निवास है. इसीलिए कहा गया है कि शरीर आत्मा का मंदिर यानी घर है. शरीर के पांच तत्व (पदार्थों) में आकाश भी एक है. आकाश व्यापक है, ब्रह्माण्ड है, शून्य है. इसमें नाना प्रकार की ध्वनियां तिरोहित होती रहती हैं. आकाश में अनहद् नाद, रंध्र, गंध, वायु का संचरण होता रहता है, पर आकाश की विशालता देखिए कि वह सबको अपने आप में समेट कर भी शून्य ही रहता है. इसी तरह से शरीर की रचना भी है, शरीर भी आकाशपुंज की भांति है, शरीर अग्नि है, शरीर वरुण है, शरीर ही ब्रह्मा है. शरीर में आत्म तत्व भी है और वायव्य तत्व भी है.

आत्मा ईश्वर का अंश है

आत्मा चिन्मय आनंद ईश्वर का अंश है, इसलिए हमारे शरीर में ईश्वर के अस्तित्व का बोध कराती है. तुलसीदास ने भी कहा है - 'ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी'। जीव जो है वह अविनाशी ईश्वर का रूप है. यह चेतन है, निर्मल है और सहज तथा सुख देनेवाला वायु तत्व है. वायु ही जीवन है. जल ही जीवन, अग्नि भी जीवन है, आकाश भी जीवन है अर्थात् सृष्टि का समरस तत्व (पदार्थ) सभी जीवनतत्व हैं और इसमें निवास करनेवाली आत्मा ईश्वर का अंश होने से अविनाशी है. निरंतर गतिमान रहने से जीवंत है. विषय-वासना का प्रभाव शरीर पर तो पड़ता है, मन पर भी पड़ता है, पर आत्मा पर इसका असर नहीं पड़ता, यह एक सूक्ष्म दर्शन है. मन का अंधकार हमारे अंदर आवृत्त रहकर आत्मा को घेरे अवश्य रहता है, पर दूषित मन और शरीर ही होता है, आत्मा नहीं, क्योंकि यह तो अमल और सहज है. तुलसीदास ने शरीर में विषयवासना की आंधी के प्रवेश को मंदिर यानी घर का द्वार ही चित्रित किया है.

'इंद्रिय द्वार झरोखा नाना।
तहं तहं सुर बइठे करि थाना॥
आवत देखहिं विषय बयारी।
ते हंसि देहिं कपाट उघारी ॥

पंचतत्व निर्मित शरीर आत्मा का निवासस्थल है. आत्मा अजर व अमर है, जो हर तरह के मनोमालिन्य से दूर है. आत्मा के इस रूप में शरीर का क्या योगदान है, आइए पढ़ें इसका विवरणात्मक वर्णन.

श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है कि शरीर में आत्मा मैं ही तो हूं -

ममैवांशो जीव लोके
जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि
प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥
(१५-७)

अर्थात् इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है. वही इस शरीर में स्थित मन और पांचों (ज्ञानेन्द्रियों को आकर्षित करता है, कहने का अर्थ यह है कि जब जीवात्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है, तब पहले शरीर में से मनसहित इंद्रियों को आकर्षित करके साथ ले जाती है.

शरीरं यदवाप्नोति
यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति
वायुर्गन्धानिवाशयत् ॥
(१५-८)

वायु गंध के स्थान से गंध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे देह का स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करता है, उससे इस मन सहित इंद्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त करता है उसका हो जाता है.

आत्मा के गुण-धर्म

गीता में श्रीकृष्ण ने आत्मा के विभिन्न गुण-धर्म को व्याख्यायित कर शरीर को उसका मंदिर (घर) प्रतिपादित किया है. जिस तरह से हम मंदिर का निर्माण करते हैं और उसमें अपने इष्ट को प्रतिष्ठापित करते हैं, वैसे ब्रह्म शरीर का निष्पादन करते हुए अपने को ही अंदर प्रतिष्ठापित कर देता है. इसीलिए ईश्वर का यह अंश है. गीता में कहा है -

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि
भुंजानं वा गुणान्वितम्।
विमूढ़ा नानु पश्यन्ति
पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः॥
(१५-१०)

यतन्तो योगिनश्चैनं
पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतंतोऽप्यकृतात्मानो
नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥
(१५-११)

शरीर को छोड़ कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को या विषयों को भोगते हुए को इस प्रकार तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानी जन नहीं जानते. केवल ज्ञानरूप नेत्रवाले विवेकशील ज्ञानी ही तत्व से जानते हैं. यत्न करनेवाले योगी जन भी अपने हृदय में स्थित इस आत्मा को तत्व से जानते हैं. किंतु, जिन्होंने अपने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहने पर भी इस आत्मा को नहीं जानते. आगे चलकर भगवान श्रीकृष्ण ने इसका परम तत्व, जो गूढ़ बना हुआ था, सब के लिए खोल दिया और कह दिया कि –

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय
जीर्णान्यन्यानि संयाति
नवानि देही ॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होती है. यह तो निश्चित हो गया कि आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाती है, वैसे ही हम नित नए मंदिर बनाते हैं, नित नए ईष्ट को प्रतिष्ठापित करते हैं. जब आत्मा ईश्वर का अंश है, तो देह उसका मंदिर. आत्मा शाश्वत तत्व है, शरीर शाश्वत नहीं है. इसलिए तुम शरीर को पकड़ते देखते हो, सम्हालते खोजते हो. शरीर के सुखों की चिंता करते हो.

आत्मा ही अमृत है

शरीर मरेगा आप चाहे स्वीकार करो या न करो, तुम्हारे मन में यह तीर चुभा ही है कि शरीर मरेगा ही. आत्मा अमृत है किसी ने जाना हो या न जाना हो, उसका अमृत स्वर हमारे भीतर प्रतिध्वनित हो रहा है. पहचानो न पहचानो, सुनो न सुनो, वह स्वर वहां गूंज ही रहा है. जो अमृत है उसे भूलना आसान है, जो मरणधर्मी है, वह भूलना कठिन है. आत्मा अमृत है, शाश्वत है. वह संपदा खोनेवाली नहीं है. वहां कभी कोई बीमारी प्रविष्ट नहीं होती. इन सब कारणों के कारण दीए तले अंधेरा है.

जब संसार व्यर्थ हो जाता है, तो तुरंत अंतर्यात्रा शुरू हो जाती है. जब एक मिट्टी का दीया बेकार हुआ, तब रोशनी सब तरफ़ गिरती है. दीए के नीचे का अंधेरा मिटता है. इसी को समस्त ज्ञानियों ने आत्मज्ञान कहा है, लेकिन आत्मज्ञान के पहले एक शर्त है और वह है 'संसार ज्ञान'. संसार एक विद्यापीठ है, एक अनुभव का विस्तार है. उस अनुभव को हम कच्चा क्यों लेते हैं. उसे पकने क्यों नहीं देते? कच्चे फलों को तोड़ना पड़ता है. तोड़ने से फल को भी घाव लगता है. पके फल चुपचाप गिर पड़ते हैं. उन्हें तोड़ना भी नहीं पड़ता है. परम प्रकाश भीतर है, लेकिन अभी हम जहां खड़े हैं वहां अंधेरा फैला हुआ है. अभी हमारी सारी रोशनी बाहर जा रही है. भीतर कुछ भी नहीं बचता. अभी हम सब ऐसे हैं कि सारी गंगा सागर की तरफ़ बढ़ रही है. गंगोत्री में कुछ नहीं बचता. गंगोत्री खाली पड़ जाती है. पानी भाग रहा है बाहर की तरफ़. दूर जा रहा है अपने से. भीतर सब रिक्त होता जा रहा है. और अगर ऐसा होता रहा, तो कितना भी प्रकाश तुम्हारे भीतर हो, अंधेरा हो जाएगा. जीवन बड़ा अनूठा है. यहां सभी हार जाते हैं. जीतता यहां कोई भी नहीं. जो जीते हुए दिखाई पड़ते हैं वे भी हार जाते हैं. जो हारे हुए हैं, वे तो हारे हुए हैं ही. यहां पराजित और विजेता सभी बराबर हो जाते हैं. मृत्यु जैसी समाजवादी और कोई घटना नहीं है. वह बिल्कुल परम साम्यवादी कर देती है. सब लिखा-पढ़ा साफ़ हो जाता है. जैसे-जैसे जीवन उतरने लगता है, वैसे-वैसे लगता है सब व्यर्थ गया. इसके पहले अगर सब सजग हो जाएं कि यह जीवन का स्वभाव ही है व्यर्थ जाना, बाहर तुम संपदा को पा ही न सकोगे और तुम जो भी खोजोगे अगर भीतर हम गलत है, तो हमारी सब खोज ग़लत होगी. कहने का अर्थ यह है कि यात्रा-पथों का सवाल नहीं है, यात्री का सवाल है.

आंतरिक प्रकाश

दो यात्राएं हैं प्रकाश की – या तो बाहर की तरफ़ या भीतर की तरफ़. और जो गहनतम घटना घटती है, वह यह है कि जैसे ही प्रकाश भीतर आना शुरू होता है, वैसे ही हम आंखें बंद करते हैं, ध्यान भीतर आता है. ध्यान कब भीतर आएगा जब बाहर कोई वासना न हो. वासना ध्यान को आकर्षित करती है. इसलिए वासनारूपी अंधकार को दूर करने के लिए राम नाम का दीप जलाना चाहिए. तुलसीदास के शब्दों में –

राम नाम मणि दीप
धरि जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरेउ
जो चाहत उजियार ॥

असार की प्रतीति हमारी अंतर्यात्रा का द्वार बन जाती है. रोशनी भीतर आ जाए, हम रोशनी के भीतर वर्तुल बन जाएं, फिर हमारे जीवन में कुछ ग़लत न होगा. हम जो भी करेंगे ठीक रहेगा. मुझे पता है कि आत्मा नहीं मरती, लेकिन जो शरीर मर गया वह भी बड़ा प्यारा था और ऐसा शरीर अब दुबारा देखने में न आएगा. परमात्मा का कोई मंदिर तोड़ा जा सकता है? यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है. तुम्हारे मंदिर तोड़े जा सकते हैं, जो तुमने बनाए हैं. क्योंकि वे परमात्मा के मंदिर नहीं हैं.

उससे यह सिद्ध हो जाता है कि वह परमात्मा का नहीं है. परमात्मा का तो कुछ भी तोड़ा नहीं जा सकता है. जो बनाया जा सकता है, वह तोड़ा जा सकता है. बनाने में ही हमने भूल की है, इसीलिए तो तोड़ दिया गया है. लोग अतीत से जीते हैं और सोचते हैं भविष्य सिर्फ़ अतीत की पुनरुक्ति है. इसलिए महात्मा लोग कहते हैं – अनुभव इकट्ठा करो, अनुभव से जीयो. अनुभव से जो जीएगा, वह अतीत के आधार पर ही भविष्य को पुनरुक्त करेगा. मैं कहता हूं कि बोध से जीयो, अनुभव से नहीं. क्योंकि अनुभव जो भरा हुआ है, वह अतीत का है. बोध सदा वर्तमान का है. जो हो चुका है वह अब कभी नहीं होगा. जिंदगी प्रतिपल बदल रही है. गंगा बहती जाती है. सूरज चलता जाता है. सब बदलता जाता है. और अगर हम अनुभव से जीते हैं, जिसका मतलब है अतीत और जब हम अतीत को भविष्य पर लगाते हैं, वर्तमान पर लगाते हैं, तभी चूक जाते हैं. जिंदगी भी ऐसे प्रतिपल बदल रही है. हर क्षण हम तैयार उत्तर लेकर उसके पास जाते हैं तो हम जिंदगी चूक रहे हैं. परमात्मा का अगर द्वार बंद है तो हमारे ज्ञान के कारण बंद है, अगर हम अपने ज्ञान को हटा देते हैं तो पाते हैं कि वह हमारे सामने खड़ा है, क्योंकि वह हर शरीर में है. इसलिए अंधकार को मिटाना होगा. अपने अंदर के तमस को भगाना होगा. तभी ईश्वर अंश जीव अविनाशी की गंगोत्री पवित्र व निर्मल रहेगी, यदि गंगोत्री ही गंदी होगी तो गंगा से निर्मलता की अपेक्षा करना ठीक नहीं. इसलिए शरीर रहते हुए भी उसके अंदर के प्रकाश की ओर देखना होगा. ●

अमृत वचन

भक्ति

जैसे समुद्र में आकर सारी नदियां एक हो जाते हैं, वैसे ही सब हृदय भगवान की भक्ति में विलीन होकर एकरूप हो जाते हैं.

– बिनोबा

विशेष लेख

समस्याओं से घिरा शहरी जीवन और उससे बचाव

— वैद्य तेजस क. माऊ

'शहर' शब्द सुनते ही चहल-पहल, भाग-दौड़, एक निरंतर गतिमय जीवन की कल्पना होती है. साथ ही दूसरी ओर गंदगी, छोटे घोसले जैसे घर, भीड़-भाड़ ये सब बातें भी मन पर उभर आती हैं. कहते हैं कि शहर कभी सोता नहीं, लेकिन शहर की लगातार जागृति को बनाए रखने के लिए शहरी मानव को तन और मन से अपनी शक्ति की अपेक्षा से अधिक कष्ट सहने पड़ते हैं, यह नितांत सत्य है. शहरी जीवन में धनोपार्जन के स्रोत अधिक रहने के कारण स्वाभाविक है कि व्यक्ति उस जीवन की ओर आकृष्ट होता है, साथ ही शहर में सुविधाओं की उपलब्धि अधिक होने के कारण भ्रम भी होता है कि अपेक्षाकृत शहरी जीवन ही अधिक अच्छा है, लेकिन वह यह भूल जाता है कि उस आकर्षण में वह अपने शरीर और मन को सदा तनाव की अवस्था में रखकर, परिणामतः शारीरिक और मानसिक तौर से प्रायः खुद को क्षीण कर देता है और रोगों को जैसे निमंत्रण दे रहा हो, ऐसी अवस्था उत्पन्न कर लेता है.

(परंतु एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है जैसे कि लेख का शीर्षक पढ़कर ऐसी भावना उभरती है कि यह लेख सिर्फ़ शहरों में बसने वाले लोगों के लिए लिखा जा रहा है, लेकिन ऐसा नहीं है. हां, यह बात ज़रूर है कि लेख का विषय शहरों में बसने वालों को ध्यान में रखकर लिखा जा रहा है, लेकिन उसमें बतायी गई सामान्य बातें जो आयुर्वेद पर आधारित हैं, यदि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में अपनाता है, तो वे सभी के लिए उतनी ही उपयुक्त होंगी.)

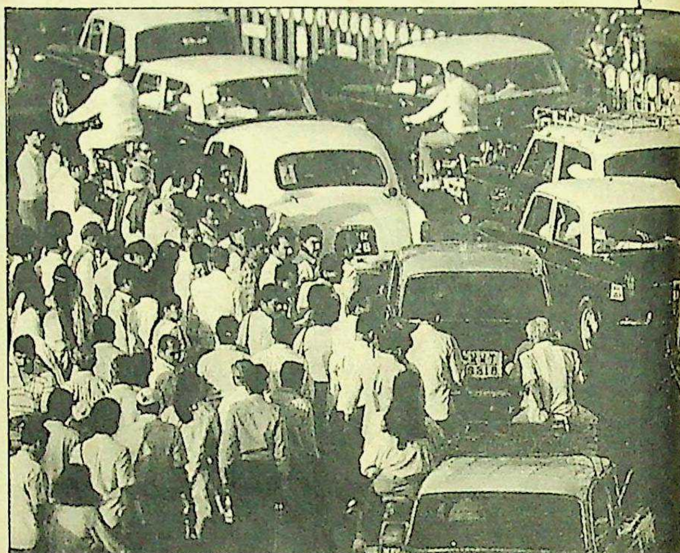
शहरी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर अनेक प्रकार से दुष्परिणाम हो सकता है, इसलिए एक-एक करके उन कारणों को जानें व उन का उपाय करें तो स्वास्थ्य रक्षा में सुगमता रहती है. इन उपायों का मूल आधार आयुर्वेद के सिद्धांतों पर आधारित होते हुए आज की परिस्थिति में अपना सकने में सुगम और सरल होने से वे यहां बताए जा रहे हैं.

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक साधन क्या-क्या हैं?

पर्यावरण

शहरी पर्यावरण प्रायः दूषित रहता है आजकल जिससे प्रदूषण बढ़ता जा रहा है. कारखानों द्वारा विषाक्त गैस तथा हानिकारक रासायनिक पदार्थों का निरंतर

शहरी व्यक्ति के आसपास का वातावरण कई तरह से दूषित होता है, जो रोग व मानसिक चिंता आदि का कारण होता है. आइए इन समस्याओं और समाधानों पर एक नज़र डालते हैं.



सिंचन, वाहनों द्वारा उत्पन्न धुआं और भारी जनसंख्या के कारण मल निष्कासन- व्यवस्था पर अत्यधिक भार, ये सब बातें शहरों में एक दूषित पर्यावरण का घेरा-सा बना लेती हैं. साथ-साथ पेड़-पौधे जो नैसर्गिक शुद्धि कारक के रूप में अपना काम करते हैं, उनका भी नाश अधिक हो चुका है. इस तरह से यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत सरल है कि शहरी पर्यावरण द्वारा स्वास्थ्य बिगड़ता है. लेकिन शहरी पर्यावरण की समस्या इतनी जटिल एवं पेचीदा होने के कारण किसी भी व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से इससे निपटना नामुमकिन सा होगा.हमको चाहिए कि पर्यावरण के दूषण से बचने के लिए जहां तक हो सके, शहरों से दूर रहकर, सिर्फ़ रोज़गार पाने के लिए ही शहर आए. इस बात का उल्लेख आयुर्वेद में भी है कि जहां की भूमि, वायु और जल दूषित हो, उस जगह का परित्याग कर देना चाहिए. शहरों से दूर रहने का उपाय वैसे तो श्रेष्ठ होगा, लेकिन यह सभी के लिए संभव नहीं है और शहरों से दूर रहकर शहर में रोज़गार के लिए आवागमन की समस्या भी व्यक्ति को तन-मन से कष्ट देती है. इस लिए कुछ सरल तथा उपयुक्त बातें हैं जिनको करने से व्यक्ति शहरी पर्यावरण से होने वाले दुष्परिणाम से कम से कम प्रभावित होगा.

खुले वातावरण में निवास

हो सके वहां तक ऊपर बताई गई प्रदूषण करने वाली बातें जहां पर ज्यादा प्रमाण में हों वहां न रहें, अर्थात् जहां कारखाने, वाहन और भीड़-भाड़ ज़्यादा हो उस स्थान में निवास न करें. यदि ऐसी ही जगह पर रहना हो तो घर के आसपास तुलसी के पौधे लगाएं (यदि बड़ी जगह हो तो नीम का पेड़ भी लगा सकते हैं) साथ ही व्यक्ति को दिन में दो बार किसी खुली जगह जैसे कि मैदान-बाग आदि में जाकर वहां

घूमना चाहिए. लंबी-लंबी सांसें भरनी चाहिए, जिससे कि फेफड़ों को व्यायाम मिले और दूषित वायु (हवा) जो दिनभर ली गई है, उससे होने वाले परिणाम भी कम हों.

जल प्रदूषण को रोकने के उपाय

शहरों में प्रायः जल-शोधन व्यवस्था रहती ही है, किंतु उस जल को आपके निवास तक लाने वाले पाईप में जल-दूषित होने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता. अतः पीने के लिए उपयोगी जल को विशेषकर उबालकर और छानकर उसका उपयोग करें. आजकल कुछ ऐसे उपकरण भी मिलते हैं जो जल को अत्यंत स्वच्छ-निर्मल बनाने का दावा करते हैं, लेकिन महंगे होते हैं, इस कारण सभी के लिए इसका उपयोग संभव नहीं है. अतः कम से कम पानी को उबालना व छानना यह दो बातें तो जल शुद्धि के लिए आवश्यक ही हैं. साथ-साथ कुछ ऐसी वनस्पतियां हैं जिनको यदि पानी के साथ उबालें तो पानी में गुणों की वृद्धि होती है व उसे पीने से स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है. इसमें विशेषकर सौंफ, पर्पट, खस, अजवाईन, जीरा, सोंठ, लौंग इलायची का प्रयोग अच्छा रहता है. प्रयोग करने के लिए बताई गई सभी वनस्पतियों (मसालों) में से पहले तीन १-१ भाग, बाद के तीन को १/२-१/२ भाग और आख़िरी तीनों को १/१०-१/१० भाग लें, सभी को मिला दें और फिर मोटा-सा चूर्ण बना लें. जब पानी उबालना हो तब लगभग पंद्रह लीटर पानी में तीन बड़े चम्मच चूर्ण को डालकर पानी को ५-१० मिनट तक उबालें. छानकर उस जल का उपयोग करना लाभप्रद सिद्ध होता है. सिर्फ़ तुलसी की १५-२० पत्तियां १ लीटर जल में उबालने पर जल का कुछ हद तक शोधन होता है.

गंदे व सीलन युक्त आवास-सुरक्षात्मक उपाय

भारी जनसंख्या के कारण शहर में आवास की कठिनाई होना स्वाभाविक है और इसी कारण जैसा आवास व्यक्ति को मिलता है, वैसा ही उसे अपनाना पड़ता है. फिर भी व्यक्ति को चाहिए कि वह ज़्यादा नमी वाले, कम हवा वाले, जहां सूरज की रोशनी न आती हो ऐसी जगह न रहे. यदि किसी कारण से ऊपर बताई बातों वाली ही जगह पर रहना पडे, तो 'धूपन' करने से ऐसी जगहो में रहने से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्परिणामों को कुछ अंश तक कम कर सकते हैं. धूपन करने के लिए मुख्य रूप से अगरू, चंदन, गुग्गुल, खस, केसर ऐसी वनस्पतियों का धूपन करना चाहिए. इन वनस्पतियों का बारीक चूर्ण बनाकर उसमें थोड़ा गोंद और घी मिलाकर उसकी बत्ती बना लें और फिर उसका धूपन के लिए प्रयोग करें. यहां पर पाठकों को एक बात से अवगत कराना है कि आजकल बाज़ार में कई प्रकार की बनी-बनाई धूप बत्तियां/अगरबत्तियां मिलती हैं, लेकिन वे प्रायः रासायनिक घटकों से बनाई जाती हैं, जिन से सुगंध तो प्रिय आती है, किंतु इनके धूपन द्वारा जो लाभ मिलने चाहिए वे नहीं मिलते. अतः प्राकृतिक सामग्री से ही निर्मित धूप-बत्ती का प्रयोग श्रेयस्कर होता है. एक बात का ध्यान रखें, धूप करते समय घर के खिड़की-दरवाज़े बंद रखें, जिससे धूप का धुआं कोने-कोने तक जा सके. किंतु उस समय व्यक्ति तथा पालतू पशु-पक्षियों को घर में नहीं रहना चाहिए, अन्यथा धुएं से हानि होगी. धूपन करने के लगभग १/२ घंटे बाद, खिड़की-दरवाज़े खोलकर सारा धुआं निकल जाने के बाद ही घर में प्रवेश करें. धूपन से घर में जंतुओं का संचरण भी कम रहता है.

ध्वनि प्रदूषण से बचाव

'ध्वनि-प्रदूषण' भी आजकल शहरों की एक आम समस्या हो गई है तथा इससे कानों को तो हानि पहुंचती है. साथ-साथ मन पर भी इसका बुरा असर पड़ता है. इससे बचने के लिए जहां कम से कम शोर हो वहां रहना चाहिए. यद्यपि शोर वाले स्थानों में रहना ही हो तो कानों में रूई भरकर जाएं, टी.वी. रेडियो आदि उपकरण ज़ोर-ज़ोर से न बजाकर धीमी आवाज़ में ही सुनें. इयर-फोन (Ear-phone) द्वारा संगीत सुनना यह भी कानों के लिए हानिकारक ही है. प्रायः रोज़ाना रात को तिल का तेल या 'बिल्वादि तैल' की तीन-तीन बूंदें कान में डालकर रुई लगाकर सोएं, तो कानों को और मानसिक शांति से नींद में लाभ होगा. (कानों में तेल का प्रयोग तभी करना चाहिए जब कानों की कोई बीमारी न हो.)

खान-पान

शहरी आदमी से यदि खाने के विषय में पूछें तो आमतौर से एक ही जवाब मिलता है - "उसके लिए समय किसके पास है?" शहरी कामकाज़ का तौर-तरीक़ा शहरी आदमी को इस तरह बंदी बना लेता है कि उसको भोजन यानि सिर्फ़ भूख लगने पर उदर भरना यहां तक ही पता होता है. न तो कोई समय की पाबंदी और न ही खाना खाते समय मन की शांति. इससे स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है. निरोगी रहना है, तो अपने भोजन के समय को नियमित करना ही होगा. इसका कोई अन्य उपाय या पर्याय नहीं. नियमित समय पर सुनिश्चित मात्रा में भोजन ही स्वास्थ्य का मूल स्तंभ बन जाता है, अतः व्यक्ति को चाहिए कि अपने भोजन के लिए वह किसी भी प्रकार की ढील न करे. यदि कभी-कभार काम की व्यस्तता से भोजन का समय निकल जाता है और फिर भी भूख लगी हो, तो उस समय सिर्फ़ हल्क नाश्ता या फलों का रस पीएं, न कि भोजन का समय चला जाने पर पेटभर भोजन करें. इससे पाचन पर विपरीत परिणाम होता है. देखा जाता है कि भोजन के समय भी ज़्यादातर शहरी व्यक्ति किसी न किसी काम में अपने आपको व्यस्त रखते हैं, कुछ नहीं तो टी.वी. देखना, बातें करना और हंसी-मज़ाक़ करना, यह तो एक रिवाज़-सा हो गया है. धंधे की बातें, मेहमानों की आवभगत आदि भोजन की टेबल पर करना यह आज की एक सामाजिक रीति (Social formality) बन गई है. लेकिन यह सब बातें व्यक्तिगत् स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, खाना खाते समय मन लगाकर खाना चाहिए और उस समय अन्य कामों से मन को हटा लें. तभी आहार के श्रेष्ठतम गुणों को व्यक्ति प्राप्त कर सकता है. आहार (भोजन) का सेवन कैसे करना चाहिए, इस पर

अन्वेषण

कहते हैं,
पुरातन वैज्ञानिक, कीमियागीर,
उस पारस-पत्थर की तलाश में थे,
जिसके स्पर्श से
निम्न धातुओं को
वे स्वर्ण बना सकते
और
उस द्रव की भी
जिसमें हर ठोस घुल सकता!
पता नहीं,
उन्हें ये वस्तुएं
मिली या नहीं,
किन्तु
मैंने इन दोनों गुणों को
पा लिया है,
तुममें
एक साथ

- अमृत खरे

तो आयुर्वेद शास्त्र में विस्तार से बताया गया है.

साथ-साथ शहरी व्यक्ति को एक और बात का ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है और वह है उनके द्वारा खाए गए खाने के गुण-अवगुण. यदि भोजन नियमित समय पर और ठीक तरीके से लें, लेकिन अगर उस भोजन में हानिकारक तत्व ज़्यादा हों, तो फिर इससे कोई लाभ नहीं होता. अस्वच्छ-अज्ञात तरीके से बनाया गया भोजन स्वास्थ्य के लिए घातक होता है, अतः इससे दूर ही रहना चाहिए. ज़्यादा मसालेदार, तीखे, ठंडे, चिकने, खट्टे, भारी, नमकीन और मीठे खाने को अपने आहार में कम से कम शामिल करें. सीधा-सादा, पचन में हल्का ऐसा खाना, जैसे रोटी-चावल, सब्ज़ी, दाल, सलाद, छाछ, ऐसा भोजन करना चाहिए. इससे शरीर का सम्यक् पालन व वर्धन होता है. फलों तथा दूध का प्रयोग नाश्ते के समय करने से वह अन्य चरपरे नाश्तों से उत्तम होता है, सिर्फ़ एक बात का ध्यान रखें कि फलों और दूध को एक साथ कभी भी न मिलाएं. मांसाहार का उपयोग यह एक विवाद का विषय है, लेकिन जो मांसाहार नहीं करते या कभी-कभार करते हों, उनको मांसाहार से दूर रहना अच्छा है. नियमित रूप से मांसाहार करने वाले व्यक्तियों के लिए भी ऐसे आहार में मसालों की संख्या कम से कम हो, इसका ध्यान रखना चाहिए. बासी खाना भी नहीं खाना चाहिए. शहरों में फ्रिज़ के अतिक्रम से और समय को बचाने के लिए दो-तीन बार का खाना एक बार में ही पकाकर फ्रिज में रख लिया जाता है. लेकिन ऐसा करने से खाना पचने में भारी हो जाता है और उसके गुणों का भी क्षय हो जाता है, अतः खाना सदैव ताज़ा और गरमागरम ही खाएं.

मानसिक स्थिति

एक समूह गणना के अनुसार शहरी व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य ग्रामीण व्यक्तियों की अपेक्षा हीन रहता है तथा नर्वस ब्रेकडाउन शहरी व्यक्तियों में ग्रामीण व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत ही अधिक पाया गया है. इसका सबसे आम कारण है तनाव. भिन्न-भिन्न प्रकार के तनाव सदा ही शहरी मानव को घेर लेते हैं, जिस के कारण सदा ही उसके मन पर बोझ-सा बना रहता है और यदि कभी इस तनाव का बोझ अधिक हो जाता है, तब व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खोकर टूट-सा जाता है और इसी को ही नर्वस ब्रेकडाऊन कह सकते हैं. यह तनाव घर, आफिस, व्यापार या संबंधों, जिम्मेदारियों को लेकर भी हो सकता है

शहरों में काम करने के समय और साथ-साथ आवागमन के समय में व्यक्ति का लगभग पूरा दिन समाप्त हो जाता है. इससे वह अपने लिए बहुत ही कम समय निकाल पाता है. सिर्फ़ रात को टी.वी. देखना यही एक मनोरंजन का साधन रह गया है. ज़्यादा से ज़्यादा केवल या वीडियो पर फ़िल्में देखना, वह भी देर रात तक जागकर देखना. परिणामतः शारीरिक कष्ट होते हैं. एक संगठित जीवन, लोगों से मेल-मिलाप प्रायः नष्ट ही होते जा रहे हैं. यहां तक स्थिति आ गई है कि अतिथि-आवभगत या कोई सामूहिक कार्यक्रम में जाना लोग नापसंद करने लगे हैं. घर की चार दीवारी में अपने आपको कैद करके लोग अपना मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य विकृत कर लेते हैं, जिससे वे अन्तर्मुखी बनकर रह जाते हैं, ऐसे में संघर्षों का सामना होने पर उनके टूटने की संभावना अधिक रहती है.

'हंसना' व 'आनंद' ये दो बातें मन की पोषक होती हैं, लेकिन थकावट के कारण शहरी व्यक्तियों में एक चिड़चिड़ापन आ जाता है. ट्रेनों-बसों और ट्रैफिक की भीड़, घंटों का सफ़र, अविश्वास की भावना, यही सब बातें शहरी व्यक्तियों के लिए घातक सिद्ध होती हैं. उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, अम्लपित्त, अल्सर और मधुमेह जैसे रोगों का उद्‌गम होता है.

असंख्य समस्याओं से बचाव के उपाय

रात को सोने के लगभग आधा घंटा पहले गाय के घी या नारियल के तेल की ३ से ६ बूंदें अपने दोनों नाक में डालकर कुछ देर तक लेटे रहें, फिर कुनकुने पानी से कुल्ला करके सोएं. इससे मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और नींद भी अच्छी आती है. लेकिन किसी भी प्रकार की नाक की कोई बीमारी न हो, अन्यथा अपने चिकित्सक की सलाह लेकर फिर इस उपाय को प्रयोग में लाएं.

योगासन का मानसिक तनाव निवारण में अच्छा असर पड़ता हैं, इसमें शवासन, पद्मासन, सुखासन जैसे आसन और उन आसनों के साथ ध्यान लगाने से मन शांत हो जाता है, साथ ही मन को आराम भी मिलता है. आसन करने के बाद व्यक्ति ताज़गी महसूस करता है. विशेष योगासन और योग क्रियाओं का अभ्यास जैसे प्राणायाम, शीर्षासन, त्राटक आदि सीख कर करें, तो लाभदायक सिद्ध होगा. साथ ही पंद्रह दिन में एक बार पूरे शरीर की तेल मालिश करें, इससे शरीर की थकावट दूर होती है.

नींद भी शरीर के लिए आवश्यक है, इस लिए सही समय पर, सही मात्रा में नींद लेना अनिवार्य है. यदि नींद अधूरी रह गई हो तो दिन में आरामदायक स्थिति में बैठकर झपकी ले लेने से नींद की आपूर्ति हो जाती है और सुस्ती भी नहीं आती.

स्नान के लिए प्राकृतिक साधनों का उपयोग अच्छा रहता है. प्रतिदिन स्नान ठीक से करना चाहिए, न कि सिर्फ़ बदन पर पानी उंड़ेलना और खूशबूदार साबुन से नहा लेना ही काफ़ी होता है. ऐसे स्नान से शरीर को कोई लाभ नहीं होता.

अब उपर्युक्त सावधानियों के साथ यदि व्यक्ति कुछ आम घरेलू उपाय भी करता रहे, तो उसके स्वास्थ्य में व उसकी रोग प्रतिकारक शक्ति में वृद्धि होगी.

आंवला यह एक अत्यंत ही गुणकारी औषधि है. इसका चूर्ण १ चम्मच सुबह उठकर कुनकुने पानी से लेने पर रोग प्रतिकारक शक्ति बढ़ती है. आंवलों के मौसम में तीन-चार आंवलों का रस, चूर्ण की जगह लेने से और भी लाभ होगा. हां, यदि कोई जोड़ों की बीमारी हो, तो आंवला नहीं लें.

त्रिफला यह तीन वनस्पतियों का योग भी शरीर पर अच्छा काम करता है, इससे दस्त भी साफ़ आती है. एक चम्मच रात को सोते समय दूध या पानी के साथ लेने से अच्छा लाभ मिलता है. लेकिन यदि इसके सेवन से दस्त अधिक हो तो चूर्ण के लेने का प्रमाण कम कर देना चाहिए.

च्यवनप्राश, रसायन चूर्ण, बल्य चूर्ण, पाचक चूर्ण जैसे अनेक आयुर्वेदिक योग उपलब्ध हैं, जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाएं रखने में सहायक होते हैं, लेकिन इनका प्रयोग करने से पहले वैद्य से सलाह ले करके ही उनका प्रयोग करें.

छोटी-छोटी बीमारियों के लिए तुरंत चिकित्सक के पास जाने की बजाय आयुर्वेद की औषधियों का प्रयोग करें.

हा हा हा!

एक मोटी महिला के घर एक दुबली-पतली भिखारिन कुछ मांगने आई और दीन स्वर में बोली, "कुछ खाने को दीजिए, मैंने तीन दिन से कुछ नहीं खाया."

महिला ने आह भरते हुए कहा, "काश! मुझ में भी तुम्हारे जैसी हिम्मत होती."

अंडा शाकाहारी या मांसाहारी

- डॉ. जगदीश शर्मा

आज यह प्रश्न अक्सर ही पूछा जाता है कि अण्डा शाकाहारी है या मांसाहारी. आधुनिक अंडा उत्पादक अंडे को नया शाकाहार कहकर प्रचारित कर रहे हैं. वे कहते हैं संडे हो या मंडे रोज़ खाओ अंडे. उनके अनुसार अंडे दो तरह से तैयार होते हैं. एक वह अंडा जिसमें जीव है और जो मुर्गे के संयोग से पैदा होता है, जब कि दूसरा अंडा इंजेक्शन द्वारा पैदा किया जाता है. उसमें मुर्गे का संयोग नहीं होता है, अतः चूजे तैयार नहीं हो सकते, जिसका मतलब है कि उसमें कोई जीव नहीं है,

वास्तव में देखा जाए तो आफ़ीडस नामक एक कीड़ा भी बिना संयोग के पैदा होता है. इसी प्रकार पपीता भी केवल मादा पेड़ों से ही प्राप्त हो जाता है. इसका यह मतलब नहीं कि संयोग नहीं तो जान नहीं.

एक शोध के बाद जाना गया है कि इंजेक्शन द्वारा पैदा अंडे का पोलीग्राफ लेने पर (अंडे को तोड़ने पर) उसने वही प्रतिक्रिया और भावना दिखाई, जो जीववाला अंडा दिखाता है. साथ ही मुर्गे के संयोग या बिना संयोग वाले दोनों अंडे मुर्गी के रक्त मांस से ही बढ़ते हैं, अतः इसे मांसाहार ही कहा जाएगा.

डॉक्टर अक्सर अंडा खाने की सलाह देते हैं, पर लोग भूल जाते हैं कि अंडे के मध्य का पीला भाग (योक) कोलेस्ट्रॉल से भरा होता है,

जो अंडे खाने वाले व्यक्ति की रक्त वाहिनियों और यकृत में धीरे-धीरे जमा होने लगता है, जिससे उन दोनों में विकृतियां आ जाती हैं और व्यक्ति हृदय की बीमारी का शिकार हो जाता है इसीलिए पाश्चात्य विख्यात वैज्ञानिक जीन मेयर हफ्ते में दो से अधिक अंडे लेने के विरुद्ध रहे हैं.

अमेरिका के डॉ. कैथरीन ने परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया था कि अंडे खाने से शरीर में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ती है, अतः हृद्रोग, उच्च रक्तचाप, पित्ताशय की पथरी, गुर्दे के रोग आदि अनेक बीमारियां हो जाती हैं. दूसरे-अंडे में कार्बोहाइड्रेट्स और कैल्शियम बहुत कम होता है, अतः अंडा बड़ी आंत में जमकर सड़न पैदा कर देता है. यही नहीं, अंडे की सफ़ेदी भी चमड़ी की बीमारी, लकवा आदि का कारण बनते देखी गई है.

डॉक्टर अंडा खाना इसलिए भी बताते हैं कि इसमें प्रोटीन के सारे अंश (अमीनो एसिड) मिल जाते हैं. वास्तव में देखें तो दूध में भी सारे अमीनो एसिड मिल जाते हैं. विटामिन 'सी' भी मिल जाता है. जब कि अंडे में विटामिन 'सी' नहीं होता.

हमारे देश में पोल्ट्री फार्मों में जो अंडे मिलते हैं, उनमें कई ख़राबियां आ जाती हैं,क्योंकि उन पर (बीमारी से बचने के लिए) डी.डी.टी. और गैमेक्सीन आदि छिड़का जाता है. ये कीटनाशक कीड़ों से अधिक मनुष्य को नुकसान पहुंचाते हैं. ये कीटनाशक (रोगप्रतिकारक) मनुष्य के अंदर अनेक दवाओं के प्रतिकारक बन जाते हैं और जब कोई महामारी फैलती है, तो मनुष्य का शरीर दवाओं से फ़ायदा उठाने में असमर्थ हो जाता है. दूसरे यकृत में खराबी आ जाने से एंजाइम बनने की प्रकिया भी बिगड़ जाती है.

अंडों द्वारा जानवरों की बड़ी बीमारी सलमोनेला बैक्टेरियम के रूप में मनुष्य में चली जाती है, विशेषतः यदि मनुष्य कच्चा अंडा खा लेता है. इस बीमारी में दस्त, उल्टी, उच्च ताप आदि होने लगता है. कुछ साल पहले यह बैक्टेरिया महामारी की तरह ब्रिटेन में छा गई थी, जिसमें बहुत से व्यक्ति रोगी हो गए और सद्यःजात बच्चे मारे गये. इसी कारण हज़ारों-लाखों मुर्गियों को नष्ट कर देना पड़ा था.

जीवाणु जब कीटनाशक के हलके असर में आते हैं, तो उनमें एक जीव-प्रतिरोधी द्रव्य का निर्माण होता है, जो दूसरे जीवाणुओं को भी प्रतिरोधी बना देता है, अतः भविष्य में रोग प्रतिकारक दवाओं का मुर्गियों पर भी असर कम हो जाता है. इसलिए बीमारी अंडे में आ जाती है मांस या दूध में भी आ सकती है - जानवरों द्वारा. यह बीमारी अधिकतर मुर्गियों में जल्दी फैलती है, क्योंकि वे झुंड में रहती हैं. इन जीवाणुओं से ग्रस्त अंडा खाने पर १० से १५ घंटे के बाद बीमारी का प्रकोप शुरू हो जाता है.

कच्चा अंडा तो इसीलिए खाने की सोचिए ही नहीं, जब तक यह निश्चय न हो जाए कि अंडे में कोई खराबी तो नहीं है.

अंडे सड़क पर बेचे जाते हैं जहां वे धूप की किरणों के कारण उसके विटामिन तत्व को खो चुके होते हैं. अंडों में हज़ारों छिद्र होते हैं, जो सड़क की धूल-हवा से बीमारियों के कीटाणुओं को अंदर खींच लेते हैं. अच्छे-भले लोग इन अंडों को खाकर बीमार हो जाते हैं और बीमारी का कारण भी नहीं समझ पाते.

अंडे को प्रोटीन का सब से सस्ता साधन प्रचारित किया जाता है, पर इंडियन वेजिटेरियन कांग्रेस के एक चार्ट के अनुसार अंडा सब से ज़्यादा महंगा सिद्ध होता है.

इसके अलावा अंडा कई बार कैंसर, हृदय रोग, यकृत की ख़राबी आदि का कारण बनता है, जबकि उपर्युक्त व अन्य शाकाहारी भोजन अधिक पाचक व पौष्टिक होते हैं, साथ ही कोलेस्ट्रॉल और बीमारियों के गढ़ भी नहीं होते और उनमें अधिक विटामिन भी होते हैं.

	एक ग्राम प्रोटीन	१०० कैलोरी
अंडे का ख़र्च	१४ पैसे	८० पैसे
गेहूं का ख़र्च	४ पैसे	८ पैसे
दालों का ख़र्च	३ पैसे	८ पैसे
सोयाबीन का ख़र्च	२ पैसे	५ पैसे

हा हा हा!

एक चित्रकारने अपने डॉक्टर दोस्त को अपनी नई पेंटिंग दिखाने के लिए बुलाया. पेंटिंग में एक आदमी मौत से संघर्ष कर रहा था. जब डॉक्टर काफी देर तक ध्यान से पेंटिंग देख चुका तो चित्रकार ने उसकी राय पूछी.

डॉक्टर ने जवाब दिया.

"मुझे तो निमोनिया का केस मालूम होता है."

- माया शर्मा

अम्लपित्त कारण और निवारण

- वैद्य - बद्रीनाथ उपाध्याय

आजकल इस रोग का प्रमाण बहुत ही बढ़ गया है. शहरों में यह रोग ज़्यादा होता है. आयुर्वेदानुसार मंद अग्नि के कारण अक्षम पाचनशक्ति यह इस रोग के मूल कारण हैं. पाचनशक्ति मंद होने के कई कारण हैं.

आजकल प्रातः उठते ही भूख हो या न हो मनुष्य नाश्ता कर लेता है या समय न होने से भूख लगने पर भी खाने के लिए वक़्त नहीं निकाल पाता. भूख लगने पर न खाना यह भी पाचनशक्ति बिगाड़ता है. हॉटल या रेस्तरां में अधिक चरपरा, मसालेदार खाना खाने से पेट का पाचक पित्त बिगड़ जाता है.

नये युग में यांत्रिक सुखसामग्रियों के साथ-साथ व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ता जा रहा है. अनेक चिंताओं से ग्रस्त व्यक्ति की पाचनशक्ति अत्यधिक बिगड़ जाती है और अंत में वह अम्लपित्त यानी एसीडिटी का शिकार हो जाता है.

अब यह देखते है कि अम्लपित्त किस प्रकार उत्पन्न होता है.

अग्नि को मंद करनेवाले आहार-विहार के अतियोग से जब अग्नि दूषित हो जाता है, तब प्रकृति की दृष्टि से लघु आहारों का भी पाचन नहीं होता. यह अपक्व हुआ अन्न विदाह (अम्लीभाव) होकर पित्त को दूषित करता है. जिससे अम्लपित्त रोग की उत्पत्ति होती है.

माधव तथा भावप्रकाश ने इस रोग की उत्पत्ति का मूल कारण ऋतु विशेष (वर्षाऋतु के अंतिम दो मास) माना है, परंतु काश्यपसंहिता में आनूप देश (जहां नदी-नद, वृक्षादि अधिक हों व कफ-वायु के रोग उत्पन्न होते हों) को इस रोग का मूल माना है.

ऋतुस्वभावज रोग

माधव आदि आचार्यों ने अम्लपित्त की उत्पत्ति निम्न पद में इस प्रकार बताई है -

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तं
प्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा
यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ।।

इस रोग में ऋतुस्वभाववश वर्षाऋतु (अंतिम दो मासों) में पित्त का संचय होता है. पुरुष प्रकृति आदि की दृष्टि से विरुद्ध, दुष्ट (सड़ा-गला), अम्ल, विदाही, तले हुए तथा पित्त प्रकोपक नवधान्य, मांस, तक्र, मदिरा आदि अन्नपान का सविशेष सेवन करें, तो इस संचित पित्त का प्रकोप होता है. इस रोग में पित्त की अम्लता बढ़ने के कारण इसे अम्लपित्त कहा गया है.

वर्षा में संचित इस पित्त का प्रकोप ऋतुस्वभाव के कारण शरद ऋतु में होता है. अतः अम्लपित्त के लक्षण प्रायः शरद ऋतु में ही आरंभ होते हैं. परन्तु ऊपर कहे निदानों का अतियोग जब कोई वर्षा ऋतु में करे तो वर्षा में भी पित्त प्रकोप होकर अम्लपित्त के लक्षण उत्पन्न होते हैं. इसके विपरीत यदि हम अपनी प्रकृति, देश, ऋतु आदि को ध्यान में रखकर अन्नपान का सेवन करें, तो पित्त के प्रकोप की ऋतु में (शरद ऋतु) भी उसका प्रकोप नहीं होता.

अम्लपित्त और अम्लरस में अन्तर

'अम्ल' शब्द से अम्ल रसवाले तथा अम्ल विपाक वाले दोनों प्रकार के द्रव्यों का मतलब समझा जाता है. पहले प्रकार में टमाटर तथा नया चावल आता है. यह रोज़ का अनुभव है कि टमाटर अच्छे से अच्छे और मधुर रसवाले लाकर उनका यूष (सूप) बनाया जाए, तो वह अम्ल ही हो जाता है. इस क्रिया में जैसे रसोई की अग्नि के संयोग से टमाटर अम्ल हो जाता है वैसे ही यदि टमाटर कच्चे खाए जाएं, तो भी जठराग्नि द्वारा पाक होने पर वे अम्ल ही हो जाते हैं.

पित्त संचय का कारण

वर्षा ऋतु में अन्नपान का विदाह (अमल) होकर संचय कैसे होता है? इसके विषय में कहा गया है कि वर्षा ऋतु में आहार (गेहूं , चना, चावल आदि धान्य) नये तथा अल्पवीर्य होते हैं. जल भी नवीन होने से अपरिपक्व, गंदा तथा पृथ्वी के मलों से युक्त होता है. उधर आकाश बादलों से घिरा तथा पृथ्वी जल से गीली होती है. मानव के शरीर भी पानी से भीगे एवं वातावरण में नमी के कारण अग्नि मंद हो जाता है.

यूं तो वर्षा ऋतु सभी की मनपसंद ऋतु है, की पर इस मौसम में व्याधियां भी अनेक हैं. उन्हीं में से अम्लपित्त भी एक है जो आहार-विहार के अतियोग से होता है.

इन सभी परिस्थितियों का परिणाम यह होता है कि ऐसे अन्न आहारों एवं जल के सेवन से ये विदाह (अम्लपाक) उत्पन्न हो जाते हैं. विदाह के कारण ही शरीर मे मलिन पित्त संचित हो जाता है.

वर्षा ऋतु में जिन गेहूं आदि अन्नों का उपयोग किया जाता है, वे पुराने होने पर भी सीलन युक्त हो जाते हैं, अर्थात् उनमें कुछ अंश तक जल समाहित हो जाता है और वे नरम या अंकुरित होकर फूल जाते हैं. अतः पुराने होने पर भी आयुर्वेद में इन्हें नया ही कहा है.

वर्षाऋतु में वातावरण तथा भूमि के भीगे होने के कारण अनाजों पर उनका प्रभाव होता है, जिससे उत्पन्न दोषों के कारण अम्लपित्त की उत्पत्ति होती है. यह स्थिति वर्षाऋतु में ही हो सकती है.

अम्लपित्त के लक्षण

अन्न का न पचना, सुस्ती, जी मिचलाना, खट्टी डकारें आना, शरीर में भारीपन, हृदय तथा गले में दाह एवं अरुचि इन लक्षणों से युक्त 'अम्लपित्त' रोग होता है.

अम्लपित्त के भेद

अम्लपित्त तीन प्रकार का होता है. अधोगामी, उर्ध्वगामी तथा उभयगामी.

अधोगामी अम्लपित्त किसी भी रोग में दूषित द्रव्य या धातु जिस द्वार के निकट होता है, स्वभावतः उसी द्वार से उसकी प्रवृत्ति होती है. इसी तरह अम्लपित्त में जब दूषित द्रव्य पच्यमानाशय के

अन्त भाग में हो तो उसकी प्रवृत्ति अधोद्वार से होकर अधोगामी अम्लपित्त की उत्पत्ति होती है. अर्थात् प्यास, दाह, मूर्च्छा, भ्रम एवं मोह (अर्द्धमूर्च्छा) उत्पन्न करनेवाला तथा बारंबार द्रवमलप्रवृत्ति (अतिसार के समान) इन लक्षणों से युक्त अधोगामी अम्लपित्त कहलाता है. इसमें निम्न लक्षण पाए जाते हैं. जी मिचलाना, रोमहर्ष, पसीना एवं अंगों में पीलापन.

ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त : इसमें निम्न लक्षण पाए जाते हैं. हरी, पीली, नीली, काली, अत्यंत लाल अथवा हल्की लाल, अत्यंत खट्टी, अत्यंत लसदार, सफ़ेद, कफ़ मिश्रित तथा अनेक प्रकार के रस से युक्त उल्टी होती है. कभी-कभी आहार के पच जाने पर कड़ुवी और खट्टी उल्टी होती है और इसी प्रकार की डकारें भी आती हैं, गले, हृदय तथा पेट में जलन होती है. सिर में दर्द, हाथ-पैरों में जलन, शरीर या सीने में गर्मी या जलन, अरुचि, पित्तज ज्वर, सारे शरीर में फुंसियां हो जाना ये सभी लक्षण ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त के हैं.

आहार के घटकों के विपाक से अम्लता

आधुनिक आहार शास्त्र के मतानुसार आहार के तीन घटक हैं - प्रोटीन, स्नेह (वसा), कार्बोहाइड्रेट. विपाक होने पर प्रोटीन अमिनो एसिड के रूप में परिवर्तित हो जाता है. यदि प्रोटीनों का अधिक मात्रा में सेवन किया जाए तो, ये अमिनो एसिड पाक हुए बिना ही महास्रोत में रहता है और अम्लपित्त के लक्षणों को उत्पन्न करता है. स्नेहों (वसा) के पचने पर उनसे स्नेहाम्लों (फैटी एसिड्स) की उत्पत्ति होती है. इनका अतिप्रयोग होने की स्थिति में ये भी पच्यमानाशय में ही रहकर अम्लपित्त के लक्षणों को उत्पन्न करते हैं. शेष कार्बोहाइड्रेट्स का पचन बराबर न होने पर उनका शुक्तपाक (सिरके का अम्ल) होकर अम्लपित्त के लक्षणों को उत्पन्न करते हैं.

साध्य-असाध्य

यह रोग अगर प्रारंभिक अवस्था में हो, तो यत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर अच्छा हो जाता है. लेकिन पुराना होने पर 'याप्य' हो जाता है. याप्य का अर्थ है - जब तक रोगी हितकर आहार-औषधियों का सेवन करता रहता है, तब तक वह शांत रहता है परन्तु थोड़ा भी अपथ्य करने पर रोग पुनः उभर आता है. किसी-किसी रोगी का अम्लपित्त कष्टसाध्य भी हो जाता है.

अम्लपित्त में निदान-परिवर्जन (परित्याग)

इस रोग में अम्लगुणवाले द्रव्यों से पित्त की वृद्धि होती है, अतः इसमें अम्ल द्रव्यों का सर्वथा परित्याग करना चाहिए. अम्ल शब्द से अम्लरस, अम्लपाकी और अम्लविपाक इन तीनों द्रव्यों का तात्पर्य है. प्रथम प्रकार के द्रव्य अपने अम्लरस के कारण पहचाने जा सकते हैं. दूसरे वर्ग द्रव्यों में टमाटर एवं नया चावल रोग बढ़ाता है. टमाटर मीठा होने पर भी उसका सेवन नहीं करना चाहिए.

अम्लपित्त की चिकित्सा

अम्लपित्त रोग की चिकित्सा के दो प्रमुख अंग हैं - शोधन और शमन. शोधन से दोष का मूल अच्छिन्न हो जाता है और उसके पुनः उत्पन्न होने की संभावना ख़त्म हो जाती है. परन्तु इस उपचार के लिए रोगी शरीर और मन दोनों दृष्टियों से बलवान हो अर्थात् एक ओर वह वमनादि के वेग को सहन करने में शारीरिक रूप से सक्षम हो, दूसरी ओर उसमें मनोबल भी होना चाहिए अन्यथा वह घबरा जाएगा.

अम्लपित्त में वमन ही विशेष रूप से विधेय होता है. आयुर्वेदाचार्यों का कथन है कि वमन को छोड़कर कोई दूसरा उपाय नहीं है. मूल के नष्ट होने से जैसे तना और शाखाएं नष्ट हो जाते हैं वैसे ही आमाशय में स्थित दोष का मूल शमन होने से अम्लपित्त के लक्षण भी शांत हो जाते हैं.

विरेचन की प्रक्रिया को सामान्यतया रोगी सहन कर लेता है. कुछ अंशों में बस्ति को भी सहन कर लेता है. परन्तु वमन के विषय में यह स्थिति बहुत कम होती है. अतः शमन और शोधनों में विरेचन का ही सहारा लेना पड़ता है.

तिक्त व क्षार द्रव्य - मुख्य औषधि: आयुर्वेद में अम्लपित्त रोग की चिकित्सा में निम्न योग प्रसिद्ध है. कटुरोहिणी (कुटकी - डेढ़ ग्राम), पटोल (पंचांग) - डेढ़ ग्राम, सर्जक्षार (सोडाबाईकार्ब) डेढ़ ग्राम सभी औषधियों को मिलाकर तीन पुड़िया बना लें. (यह एक दिन के लिए है. इसी अनुपात में जितने दिन की आवश्यकता हो, दवा तैयार कर लें.) सुबह, दोपहर व शाम को सितोपला जल के अनुपान से लें. यदि मलावष्टंभ विशेष हो तो पुड़िया तीन के स्थान पर चार बनाएं व एक पुड़िया रात को भी अनुपात से लें. कोष्ठ क्रूर होने के कारण (पेट बिगड़ जाने के कारण) इससे भी फायदा न हो तो स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण रात को सोते समय अलग से लें. उत्तम होगा कि औषध आरंभ करने के पूर्व चाय आदि में शोधित एरन्ड तेल १ औंस की मात्रा में मिला कर रोगी को पिलाएं.

कुटकी तिक्त होने से पित्त का शमन करती है. काश्यपसंहिता के अनुसार पित्त के शामक तीन रसों में प्रथम तिक्त रस का उपयोग करना उत्तम होता है. यह सामपित्त को पकाता है. शमन होने के अतिरिक्त कुटकी भेदक होने से पित्त की शुद्धि भी करती है.

पटोल: तिक्त होने से पित्त का शमन करता है. पटोल की पित्तशामक क्रिया अन्नद्रवशूल तथा परिणामशूल पर बहुत ही फलप्रद है. इनमें तिक्तपटोल का घृत आश्चर्यजनक लाभ करता है.

सर्जक्षार: क्षारवर्गीय द्रव्य है. क्षार और अम्ल परस्पर मिलकर मधुरीभूत (न्यूट्रलाइज) हो जाते हैं. इस संयोग के कारण क्षार की क्षारता और अम्ल की अम्लता नष्ट हो जाती है. नींबू का रस अथवा साइट्रिक एसिड का पानी तथा सोडाबाईकार्ब का पानी मिलाकर विदग्धाजीर्ण में पीते हैं.

क्षार में अम्लरस के अतिरिक्त शेष सभी रस भी होते हैं. इनमें कटुरस विशेष तथा लवण अनुरस होता है. अम्लरस के साथ तीक्ष्ण और लवण रसवाले क्षार का संयोग होता है, तो वह मधुर हो जाता है. इस प्रकार उत्पन्न मधुरता के योग से क्षार-जन्य उपद्रव उसी प्रकार शांत हो जाते हैं, जैसे, पानी छोड़ने से अग्नि.

अम्लपित्त रोग में चूने के पानी (सुधामंड) का उपयोग अवस्था - विशेष में करना हितकर होता है. यदि उग्र लक्षणों की शांति हो जाए, तो रोगी को प्रातः और सायं दूध में दो-दो तोला चूने का पानी मिलाकर पिलाना चाहिए. इससे शेष अम्लता धीरे-धीरे शांत होकर रोग निर्मूल होता है.

सेवनीय उत्तम औषधियां

बलादि मंडूर - इसके प्रयोग से दुःसाध्य तथा अन्य औषधों से शांत न होनेवाला अम्लपित्त एवं तीव्रशूल शांत हो जाता है. निर्माण विधि–बला, शतावरीमूल, जौ, एरंडमूल गुड़, प्रत्येक दो-दो पल (आठ तोला) लेकर चारगुना जल मिलाकर पकाएं, जब द्रव्य सार्द्र होकर चाशनी जैसा बन जाए, तो जीरक तथा पिप्पली चार-चार तोला चातुर्जात (त्वक्, एला, तमालपत्र तथा नागकेशर प्रत्येक ८-८ ग्राम) गोमूत्र एवं त्रिफला के क्वाथ में शुद्ध कर भस्मीकृत मंडूर का प्रक्षेप कर अच्छी तरह घोंटकर रख लें. योग्य अनुपान से इसे १-१

शेषांश पृष्ठ ९० पर

रत्नों का चिकित्सकीय उपयोग

— वैद्य महेंद्र मेहता

माणिक, मोती, हीरा, प्रवाल आदि का नाम सुनते ही विभिन्न आभूषण आंखों के सामने आते हैं. प्राचीनकाल से ही आभूषण मनुष्य के लिए आकर्षण बने हुए हैं. स्त्रियों में भी सौंदर्यवृद्धि के लिए इनका महत्व है.

इन रत्नों का और आयुर्वेद शास्त्र का भला क्या संबंध हो सकता है? संबंध है, तभी तो हमारे ऋषियों ने शरीर के आरोग्य रूपी सौंदर्य के लिए रत्नों का उपयोग जान लिया था. स्वास्थ्य रक्षण और रोगनिवारण के लिए इन रत्नों का किस प्रकार उपयोग होगा, इस संबंध में बहुत ही विस्तार से आयुर्वेद ग्रंथों में वर्णन मिलता है.

आयुर्वेद का एक विषय रसशास्त्र है, जिसमें धातुओं के चिकित्सकीय उपयोग के बारे में विशद वर्णन मिलता है. इसी विषय में रत्नों का भी समावेश किया गया है. रसरत्नसमुच्चय, रसतरंगिणी, रसेंद्रसारसंग्रह आदि में रत्नों की भी चर्चा उपलब्ध है. रत्न असंख्य हैं. इनके नाम माणिक, मोती, प्रवाल, पुष्पराज, पन्ना, हीरा, नीलम, गोमेद और वैदूर्य आदि हैं. इन रत्नों का संबंध ज्योतिष शास्त्रानुसार रवि, चंद्र, मंगल आदि नवग्रहों से है. आयुर्वेद में भी इन्हीं नवरत्नों का ज़िक्र मिलता है. रत्नों का युक्तिपूर्वक औषधरूप में प्रयोग करने पर ये विभिन्न रोगों का नाश करते हैं. रत्नों का शरीर के भीतर औषधार्थ उपयोग करने से पूर्व उनको विधिवत् शुद्ध करना जरूरी होता है. खानों से या जल से प्राप्त इन रत्नों में कई अशुद्ध तत्व मिले हुए रहते हैं, जो मनुष्य शरीर के लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं, अतः इनको विधिवत शुद्ध करना बहुत ही ज़रूरी है. शुद्ध करने के बाद इनकी भी लोहादि के समान भस्म बनायी जाती है.
हम सर्वप्रथम माणिक, पर विशद चर्चा करेंगे.

माणिक (Ruby)

माणिक स्वच्छ लाल रंग का स्फटिकमय रत्न है. इसे इंग्लिश में Ruby कहते हैं. रत्नों में उनकी कठोरता का बहुत ही महत्व है. जैसे हीरा सर्वोत्तम रत्न है, इसकी रचना में एल्युमीनियम, ऑक्सीज़न और साथ में अल्प मात्रा में क्रोमियम और लोह रहता है. अंतिम दो तत्वों के कारण माणिक लाल रंग का होता है.

माणिक के दो प्रकार

१) पद्मराग माणिक और २) नीलगंधि माणिक. रसरत्न समुच्चय नामक ग्रंथ में रत्नों के चार प्रकार दिये हैं.

- पद्मराग — लाल रंग का माणिक्य जो सिंहल द्वीप में मिलता है.
- कुरुविंद — सीतच्छवय - लालवर्ण का कुरुविंद माणिक्य है.
- सौगंधिक — अशोक नवपल्लव के समान मसृण, हरितच्छाय माणिक्य है.
- नीलगंधिस माणिक्य — नीलवर्णाभि रक्तवर्ण नीलगंधिमणि होता है, इनमें सिंहल द्वीप का पद्मराग सर्वश्रेष्ठ है और तुम्बक देश का माणिक्य नीलगंधि होता है.



माणिक की पहचान

१) जिस पर प्रातःकालीन सूर्य की किरण पड़ने पर जो लालरंग की रश्मि फैले.
२) जो अपनेभार से सौ गुना दुग्ध में डालनेपर रंग बदल दे और लाल ज्योति फैलाए वह उत्तम माणिक्य है.
३) इसे शिला पर रगड़ने से चमकता है और इसका भार नहीं घटता.
४) रक्तकमल की पंखुड़ियों की तरह लालवर्णवाला गुरुस्निग्ध गोल व गोल आयतन का माणिक्य उत्तम होता है.

उत्तम माणिक्य

कुछ कुशा के पत्र के समान ईषत हरित छाया लिए हुए लाल रंगत का हो, स्वच्छ, चिकना, भारी, गोल, लंबा, समान रूपवाला, देखने में भी प्रभायुक्त, सुंदर, दीप्तिमान हो वह माणिक्य उत्तम होता है.

नीलगंधी माणिक्य

जो गंगाजलवत् निर्मल नीलवर्ण का और भीतर अरुण वर्ण का होता है वह नीलगंधी मणि उत्तम होता है.

निकृष्ट माणिक्य

जिसमें छेद हो, स्पर्श में कर्कश, मैला, रूखा और चमकरहित हो, चपटा, हल्का, टेढ़ा ये आठ अवगुण हों तो निकृष्ट माणिक्य है.

आजकल वैज्ञानिकों ने कृत्रिम माणिक्य बनाने की चेष्टा की है और सफलता भी मिली है. इसके प्रतिनिधि भी आज प्राप्त हैं यथा (१) स्पिनल (२) वैलेस स्पिनल माणिक्य किंतु चिकित्सार्थ इन्हें नहीं लेते. परंतु यह धारण करने योग्य है.

ज्योतिष में माणिक्य

माणिक्य सूर्य ग्रह का रत्न होने के कारण जन्म कुंडली में सूर्य संबंधी दोष एवं पीड़ा नाश करने के लिए तथा सूर्य ग्रह प्रीति अर्थे माणिक्य का (रत्न) नग लेकर युक्तिपूर्वक सूर्य ग्रह की पूजा, अर्चना, मंत्र आदि करके सूर्य की तीसरी अंगुली में धारण करने से सूर्य ग्रह पीड़ा शांत होती है.

माणिक के उपयोग

विधिवत् शुद्ध करके भस्म की गई माणिक की भस्म स्वाद में मधुर होती है. वात और पित्त दोष का शमन करती है. यह स्निग्ध और अग्नि बढ़ाने वाली होती है. यह भस्म स्मृतिवर्धक और रसायन है. यह परम वृष्य होने से संभोगशक्ति बढ़ती है और नपुंसकता को दूर करनेवाली है. माणिक से नेत्र की ज्योति बढ़ती है. शरीर का दाह शांत होता है. यह स्वभाव से शीतल है.

हकीमी शास्त्रानुसार बवासीर जैसे रोगों में, जहां अधिक खून बहता है, वहां इसके उपयोग से खून बहना रुकता है.

इसके भस्म की सेवन योग्य मात्रा १/४ से १/२ रत्ती है.

पेशाब की पथरी का आयुर्वेदिक उपचार

आजकल जनसामान्य मूत्राश्मरी यानी पेशाब की पथरी से भलीभांति परिचित है. यह विकार वैसे काफ़ी पुराना है, क्योंकि हज़ारों साल पुराने आयुर्वेद ग्रंथों में इसका बहुत ही विस्तार से वर्णन मिलता है. आयुर्वेद के सुश्रुतसंहिता में तो पेशाब की पथरी को निकालने का अंतिम इलाज शस्त्रकर्म का भी वर्णन मिलता है.

पथरी होने के कारण

मानव शरीर में मूत्र संस्थान का अत्यंत महत्व है. प्राकृतिक स्थिति में शरीर के अनुपयोगी पदार्थ अर्थात् मलपदार्थ गुदमार्ग द्वारा व जलीय मल द्रव्य मूत्रवह संस्थान द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं. यदि मल किसी कारण से गुर्दे (किडनी) में, मूत्रवाहिनी सिराओं या मूत्राशय में संचित हो अवरोध उत्पन्न करते हैं, तो उस संचित 'कण समूह' को पथरी या 'अश्मरी' कहते हैं. आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से इसमें तीनों दोषों की विकृति होती है. इसलिए इसे भयंकर रोग माना गया है. जब मूत्रवह संस्थान में कहीं भी कफ को वायु एवं पित्त द्वारा सुखाया जाता है, तो वह कफ ठोस बन जाता है और बाद में धीरे-धीरे आकार बढ़ने लगता है और वह पत्थर के समान कठोर हो जाता है. इसे अश्मरी कहते हैं. अश्मरी के छोटे-छोटे टुकड़ों को 'शर्करा' यानी शक्कर के दाने के आकार की अश्मरी कहते हैं. सभी प्रकार की अश्मरी में कफदोष मुख्य भूमिका निभाता है.

पथरी के भेद और लक्षण

आयुर्वेद में इसके चार भेद मिलते हैं-वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज.

वातज - रोगी को पीड़ा होती है व वह बार-बार लिंग का स्पर्श करता है. साथ ही बूंद-बूंद करके पेशाब होती है. इसमें पथरी का रंग कृष्णवर्णीय होता है.

पित्तज - मूत्राशय में अत्यधिक जलन होती है. पथरी का रंग लाल, पीला या काला होता है.

कफज - बस्ति (मूत्राशय) में चुभन होती है. मूत्राशय में भारीपन महसूस होता है एवं पथरी का रंग सफ़ेद होता है.

शुक्राश्मरी - जब कभी मूत्रमार्ग में वीर्य शुष्क हो जाता है, तो वह पथरी जैसा लगने लगता है. इससे मूत्राशय में वेदना भौर मूत्रत्याग में कठिनाई होती है. यह मसलने से विलीन हो जाती है.

इन सब लक्षणों के अतिरिक्त सभी प्रकार की पथरियों में मूत्र की धारा का खंडित होना, नाभि, लिंग, मूत्राशय में वेदना होना ये सामान्य लक्षण पाये जाते हैं. मूत्रवह संस्थान में गुर्दों से लेकर मूत्राशय तक कहीं भी पथरी हो (या कोई भी इस संस्थान के विकार में) तो एक विशिष्ट प्रकार की वेदना होती है. यह वेदना शरीर में पीठ की ओर से निकलकर आगे पेट की ओर आती हुई मूत्र के विसजर्न मार्ग तक फैल जाती है. पीठ में रीढ़ की हड्डियों में पसलियां जुड़ जाती हैं, वहां एक कोना तैयार हो जाता है, जिसे रिनल एंगल कहते हैं. इस वेदना की दिशा पूर्वोक्त दिशा से विरुद्ध यानी मूत्रमार्ग से रिनल एंगल की ओर भी हो सकती है. वेदना कभी कम, तो कभी तीव्र होती है. पथरी जब खिसकती है, तो वेदना तीव्र होती है. कभी-कभी पथरी के मार्ग पर पथरी के रगड़ने के कारण घाव हो जाने से रक्तयुक्त मूत्र आता है, जो कि एक गंभीर स्थिति है.

मूत्राशय पथरी आजकल काफी लोगों को होती है. वस्तुतः रोग होते ही हैं लापरवाही के कारण, पर उनका समय रहते उपचार करके स्वास्थ्य लाभ पाया जा सकता है.

चिकित्सा

अश्मरी में कुछ सरल औषधि प्रयोग लाभ पहुंचाते हैं.

- सहिजन की जड़ का क्वाथ गर्म-गर्म पीने से पथरी गिर जाती है.
- गोखरू के बीजों का चूर्ण शहद मिलाकर भेड़ के दूध के साथ सात दिन तक पीने से पथरी में लाभ होता है.
- पंचक्षार को दूध के साथ पीना भी लाभदायी है.
- जौखार को मिश्री के साथ लेने पर भी पथरी गल कर निकल जाती है.

इसके अलावा वरूणादिक्वाथ, पाषाणभेदादि चूर्ण, चंद्रप्रभावटी, गोक्षुरादि गुग्गुल इत्यादि का प्रयोग भी लाभकारी साबित होता है.

आभ्यंतर औषधियां

अश्मरीहर क्वाथ - पाषाण भेद, गोक्षुर, शतावरी, कुश और काश की जड़, पुनर्नवा, गिलोय, ककड़ी का बीज, अपामार्ग, सभी.को सम भाग, जटामासी और खुरासानी अजवायन, प्रत्येक २ भाग, इनका काढ़ा बना कर इसमें शिलाजीत और जौखार ५०० मि.ग्रा. मिलाएं. यह काढ़ा दिन में ३ बार लें.

क्षार पर्पटी २५० मि.ग्रा. की मात्रा में दिन में ३ बार लेने से लाभ होता है.

शस्त्रकर्म - चिकित्सा

समान्यतः पथरी का अगर जल्दी निदान हो जाये तो वह औषधियों के सही एवं नियमित सेवन से ठीक हो जाती है, अन्यथा शस्त्रकर्म ही अंतिम विकल्प बच जाता है. कुछ अत्याधुनिक मशीनों की सहायता से अब पथरी का इलाज बड़ी सुगमता से किया जा सकता है. इनमें पथरी के स्थान को निश्चित करके, एक छोटे छेद द्वारा यंत्रों की सहायता से पथरी का महीन चूर्ण बना देते हैं, जो मूत्रमार्ग से आसानी से बाहर निकल आती है.

पथ्यापथ्य

किसी भी रोग का इलाज करने का सबसे सरल एवं सुलभ तरीका है रोग को होने ही न देना, अतः पूर्वरूपों के पता चलते ही निम्नवस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए.

अतिव्यायाम, पेशाब के आवेग को रोकना, शुष्क, रूक्ष एवं मिष्ठान्न के बने भोज्य पदार्थ, ज़्यादा धूप एवं वायु में बैठना, मैथुन.

त्याज्य फल - जामुन, कमलमूल एवं कसैले पदार्थ.

रोगी को भरपूर पानी पीना चाहिए (दिन भर में कम से कम १०-१२ ग्लास) जिससे कण समूह संचित न हो सकें और मूत्रमार्ग से बाहर निकल जाएं. इसके अलावा उपर्युक्त चिकित्सा कुशल वैद्य की देखरेख में करवाएं तो अधिक लाभ होगा.

– वैद्य संजय तिवारी

रक्तशुद्धि के महत्वपूर्ण यंत्र-गुर्दे

-प. ल. व्यास

कुछ दिनों पूर्व एक दैनिक समाचार पत्र में विज्ञापन प्रकाशित हुआ था जिसमें एक पिता ने अपने बेटे के लिए,जो एक अस्पताल में मृत्यु संघर्ष कर रहा था, किसी भी क़ीमत पर गुर्दे की मांग की थी. यह विज्ञापन कोई असाधारण नहीं था. वस्तुतः इन दिनों गुर्दे के क्रय-विक्रय का कारोबार बढ़ गया है. इस कारोबार में असामाजिक तत्व दलाली कर धोखाधड़ी से मुनाफ़ा भी कमाने लगे हैं. इस संदर्भ में अमानवीय कृत्य भी होने लगे हैं. सुनने में यहां तक आया है कि कोई अशिक्षित किसी अस्पताल में इलाज़ के लिए भर्ती होता है तो गुर्दों का व्यापार-गोरखधंधा चलाने वाले लोग डॉक्टरों से सांठगांठ करके उस ग़रीब का गुर्दा निकलवा कर अन्य रोगी को मुंहमांगी रक़म लेकर बेच देते हैं.

वर्तमान समय में अनेक कारणों से गुर्दे के रोग बढ़ते जा रहे हैं, जिनसे चिकित्सा क्षेत्र में गहरी चिंता व्यक्त की जा रही है.

गुर्दों की रचना और कार्य

शरीर रचना और उसकी कार्य प्रणालियों के विशेषज्ञों का कहना है कि गुर्दे रक्तशुद्धि के लिए इतने महत्वपूर्ण हैं कि उनकी प्रक्रिया में बाधा पड़ने पर शरीरस्थ समस्त कार्यप्रणालियों पर आघात पड़ता है. आम भाषा में कहा जाता है कि गुर्दे (किडनी) फेल हुए तो जीवन के सूर्य को अस्त होने में अधिक विलंब नहीं लगता.

हमारा रक्त तीन मार्गों से शुद्ध होता है, प्रथम फेफड़ों में ऑक्सीजन द्वारा, द्वितीय त्वचा से पसीने द्वारा और तृतीय गुर्दों से मूत्र द्वारा. जल और खाद्य पदार्थों में जो भी गंदगी का भाग है, उसकी सफ़ाई और निकासी होना आवश्यक है. उस दिशा में गुर्दे महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं.

गुर्दे दो होते हैं जिनका आकार बड़े सेम की भांति होता है और जो कमर के भीतर रीढ़ की हड्डी के अंत में दोनों ओर लगे हुए रहते हैं. प्रत्येक गुर्दे के पीछे बारहवीं पसली लगी हुई है, इनका रंग गुलाबी-बैंगनी सा होता है. इनकी लंबाई ४ इंच और चौड़ाई २.५० इंच और मोटाई १.२५ इंच है. पुरुष के गुर्दे का वज़न प्रायः सामान्यावस्था में ४ औंस रहता है. इसकी तुलना में स्त्री के गुर्दे का वज़न कुछ कम रहता है.

कार्यप्रणाली

गुर्दे मूत्र उत्पादक यंत्र हैं. रक्त का दूषित जलीय अंश छन-छन कर इसमें संचित होता है और फिर मूत्राशय में चला जाता है. मूत्राशय का गुर्दों से एक नली द्वारा संबंध रहता है.

वृक्क वास्तव में अनेक पतली-पतली नलियों का रहस्यमय जाल-समूह है. ये नलियां लंबी होती हैं. पर उनकी चौड़ाई अत्यंत न्यून होती है, इन नलियों के अतिरिक्त गुर्दे में धमनियां, शिराएं, कोशिकाएं, लसिका, वाहिनियां और नाड़ी सूत्र होते हैं. ये सब नलियां कुछ सोत्रिक तंतु द्वारा इकट्ठी रहती हैं

इनकी कार्य प्रणाली और कार्यक्षमता वृहत धमनी की दो शाखाओं द्वारा इन गुर्दों में रक्त पहुंचाता है.भीतर पहुंचने के साथ ही धमनी की अनेक शाखाएं हो जाती हैं. एक-एक शाखा प्रत्येक नली के फूले हुए भाग में जाती है. इसी के द्वारा कोशिकाओं की दीवारों में से रक्त का कुछ जलीय अंश चू जाता है और यह पदार्थ नली की दीवार में से होकर उनके भीतर पहुंच जाता है. नली का फूला हुआ सिरा छलनी का काम देता है. इस छलनी की विशेषता यह है कि नीरोगावस्था में रक्त में घुले प्रोटीन और अन्य शर्करा पदार्थ छन कर नली के भीतर नहीं पहुंच पाते. पर हां, कभी कभी रक्त के लवण अवश्य छन कर आ जाते हैं. यह स्थिति ज्यों ही बिगड़ती है मधुमेह, प्रमेह जैसे रोग हो जाते हैं, तो प्रोटीन और अन्य शर्करा पदार्थ शरीर की क्रियाओं से नाता तोड़ लेते हैं तब छन कर पेशाब से शुगर आने लगती है जो निरंतर शरीर को कमज़ोर बनाने के साथ-साथ हृदय रोग व अन्य स्नायु तथा रक्त दबाव संबंधी विकारों को उत्पन्न कर जीवन को मृत्यु के सन्निकट ले आती है.

उसके बाद, प्रवाहित रक्त कोशिकाओं के झुंड से एक विशिष्ट नली द्वारा पुनः बाहर निकलता है और उन कोशिकाओं में पहुंचता है जो जाल रूप में नली के शेष भाग के चारों ओर फैली हुई रहती हैं.

नली की मोटी-मोटी कोशिकाओं में एक स्वाभाविक शक्ति रहती हैं वे उन लसिकाओं में से,जो उनके पास स्पर्श की हुई सी रहती है, यूरिया, यूरिक एसिड जैसे पदार्थ लेकर उनको नली के भीतर पहुंचा देती हैं. ये पदार्थ भीतर पहुंच कर उस तरल पदार्थ में, जो पीछे के फूले हुए भाग से आता है घुल जाते हैं. इस तरल पदार्थ में हानिकारक पदार्थ और तत्व घुले रहते हैं. यही दूषित तरल पदार्थ पतली नलियों से बहता हुआ बड़ी नलियों में पहुंच जाता है, जो किनारों पर स्थित रहती हैं. वहीं से यह तरल पदार्थ मूत्र प्रणाली के प्रारंभिक चौड़े भाग में पहुंचता है. इसी को मूत्र कहते हैं. यहीं से यह दो मूत्र प्रणालियों द्वारा मूत्राशय में चला जाता है.

मूत्र प्रणालियां दो हैं. प्रत्येक के भीतरी पृष्ठों पर श्लैष्मिक झिल्ली लगी रहती है. प्रत्येक नली की लंबाई १० से १२ इंच तक होती है. मूत्र प्रणाली के दो सिरे हैं. ऊपर का भाग वृक्क से जुड़ा रहता है. इन मूत्र प्रणालियों द्वारा मूत्र गुर्दों से मूत्राशय में आता है. मूत्राशय वस्ति- गह्वर में विटपसंधि के पीछे रहता है. पुरुषों के शरीर में उससे बिल्कुल मिले हुए ठीक पीछे दो शुक्राशय रहते हैं, जिनके पार्श्व में बृहत् आंत्र का अंतिम भाग या मलाशय रहता है. स्त्रियों के मूत्राशय के पीछे गर्भाशय रहता है और इसी गर्भाशय के पीछे मलाशय रहता है. मूत्राशय का आकार कुछ त्रिकोना-सा है. जब वह मूत्र से खूब भर जाता है, तो गोलाकार हो जाता है. वस्ति गह्वर से ऊपर को निकल कर उदर की अगली दीवार के पीछे आ लगता है.

इसके सबसे निचले भाग में एक नली के रूप में मूत्र मार्ग रहता है.

गुर्दे की रक्षा-कुछ उपाय

गुर्दों की रक्षा हेतु और उन्हें विभिन्न रोगों के आक्रमणों से रक्षा करने हेतु निम्न उपाय काम में लें -

● प्रातः नाश्ते के पूर्व एक-दो संतरे खाएं या उनके रस का सेवन करें.

● पूरे दिन भर में अधिक से अधिक जल पीएं, कम से कम ढाई किलो. एक-दो बार-नींबू रस युक्त जल सेवन करें.

● त्वचा को रगड़-रगड़ कर साफ़ रखें ताकि उसकी सक्रियता बनी रहे और पसीना अधिक से अधिक बाहर निकल आए. इससे गुर्दों को कार्य नहीं करना पड़ेगा और उन पर दबाव कम पड़ेगा.

● शहद का नियमित सेवन करने से गुर्दों में रोगों से बचाव करने की शक्ति बढ़ जाती है.

● भोजन में उबली हुई सब्ज़ी, सलाद, सब्ज़ी के सूप और फलों का अधिक सेवन करें ताकि अम्ल भोजन की खुराक कम हो. क्षार तत्व प्रधान भोजन करने से गुर्दों की क्षमता नष्ट नहीं होती.

● मौसम्मी, संतरा, अनन्नास, कच्ची सब्ज़ी, लौकी, खीरा, पत्तागोभी, गाजर, मूली आदि का निरंतर सेवन करने से गुर्दे स्वस्थ रहते हैं.

● यदि मूत्र प्रवाह में अवरोध है, वह खुलकर नहीं आता है, तो हरा धनिया पीस कर सेवन करें और ३०० ग्राम दूध में ७०८ ग्राम जल मिलाकर, ऊपर से दो ग्राम फिटकिरी का फूला (भुना हुआ) डाल कर उसे घोल लें. ऐसे दूध के सेवन से मूत्र प्रवाह में कभी अवरोध उत्पन्न नहीं होगा. दूध की कच्ची लस्सी भी लाभ करेगी.

● नारियल और जौ का पानी और गन्ने का रस पीने से गुर्दों की सक्रियता मंद नहीं पड़ती.

● यदि मूत्र बार-बार अधिक मात्रा में आता है तो गुड़ के साथ भूने हुए चने खाएं. मेथी की सब्ज़ी का सेवन करें. तिल के लड्डू खाएं. गुड़ में घी डाल कर रोटी के साथ सेवन करें. इससे लाभ होगा.

● लौकी के टुकड़े गरम करके गुर्दे के दर्दवाले स्थान पर सेंक करें. उसके गूदे का गरम-गरम लेप करने से और उसके रस की मालिश करने से आराम मिलता है.

● सेब के रस का नियमित सेवन करने से पथरी बनना बंद हो जाता है और यदि पथरी पहले से बनी हुई है तो वह घिस-घिस कर स्वतः थोड़ी-थोड़ी करके बाहर निकल आएगी. सेब का सेवन गुर्दों को साफ़ करता है.

● मूली के साथ आंवले के चूर्ण का प्रयोग करने पर मूत्राशय की पथरी साफ हो जाती है.

● गुर्दों को नीरोग रखने हेतु गन्ना चूसना चाहिए.

● गाजर, जामुन, खीरा, बथुआ, चौलाई, पत्तागोभी, प्याज़, मूली, चना, छाछ, इलायची, अनार, फालसा, तुलसी, तरबूज, प्याज़ आदि का सेवन करते रहने से गुर्दे नीरोग रहते हैं और उनमें उत्पन्न विकारों का शमन होता है.

● बहुमूत्र की स्थिति में अंगूर, आंवला, केला, अनार, छुहारा, अजवाइन, प्याज़, मूली, आदि का उपयोग करें.

● पेशाब में रुकावट होने पर जीरा, शलजम व ककड़ी का सेवन करें.

● नींबू के बीजों को पीस कर नाभि पर रख कर ठंडा पानी डालते रहने से रुका हुआ मूत्र खुलकर आने लगता है.

● पेशाब करते समय वेदना होने पर दूध में पीसी हुई इलायची डाल कर पीए.

● ईसबगोल को भिगोकर उसमें बूरा डाल कर पीने से पेशाब की जलन मिट जाती है और गुर्दों के अनेक विकार दूर हो जाते हैं.

● पेशाब के प्रायः सभी रोगों में हरा और मसालों में प्रयुक्त होने वाला धनिया अत्यंत लाभदायक रहता है. रात को किसी मिट्टी के बर्तन में अधकुटा धनिया स्वच्छ जल में भिगो कर रख दें. सुबह उसे मसल कर - छान कर आवश्यकतानुसार मिश्री डालकर पीएं. वैसे भी धनिए को कच्चे दूध की लस्सी के साथ फांकने से गुर्दे संबंधी अनेक विकारों का शमन हो जाता है. हरे धनिए को पीस कर उसमें अदरक और कालीमिर्च डाल कर सेवन करने पर मूत्र प्रवाह संबंधी विकारों में लाभ होता है. इस पेय में आप सेंधा नमक भी डाल सकते हैं.

● गुर्दे में पथरी हो तो चावल और पालक का उपयोग न करें. अधिक तेज़ गर्म मसाले, तम्बाकू, सुपारी, पान मसाला गुर्दे के लिए हानिकारक हैं. ●

युवा पुरुषों में इस नली की लंबाई ७-८ इंच रहती है. इसके प्रारंभ में एक इंच भाग के चारों ओर एक ग्रंथि रहती है, उसमें से होकर मूत्र मार्ग जाता है. स्त्रियों के मूत्र मार्ग की लंबाई केवल १.५० इंच ही होती है, जो योनि की अगली दीवार से जुड़ी होती है. इसका छिद्र योनि के छिद्र से भिन्न होता है. मूत्र मार्ग की जहां से शुरुआत होती है, वहां की दीवार का मांस सिकुड़ कर उस मार्ग को बंद किये रखता है.

गुर्दे के कुछ रोग

गुर्दे के भीतर सामान्य रूप से रक्त का दबाव अधिक रहता है, अतः यदि शरीर में अन्य कारणों से रक्त का दबाव बढ़ जाता है, तो गुर्दों में भी रक्त का दबाव बढ़ जाता है. गुर्दों में यदि रक्त दबाव निरंतर अधिक बना रहे तो उसकी सूक्ष्म नलिकाएं क्षत-विक्षत हो जाती हैं. इससे उनकी क्रियाओं में बाधा पड़ती है. मूत्र प्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो जाता है अथवा शरीर के पोषक तत्व -खनिज, धातु, लवण, प्रोटीन तथा अन्य रासायनिक पदार्थ मूत्र के साथ बाहर निकल आते हैं, जिससे शरीर निर्बल और कमज़ोर पड़ जाता है. कभी-कभी ऐसी विषम स्थिति हो जाती है कि गुर्दे अपना काम तक बंद कर देते हैं. यदि क्षत विक्षत गुर्दे को नये गुर्दे से बदला न जाए, तो शरीर में और अधिक जटिलताएं एवं विषमताएं उत्पन्न हो जाती हैं और कभी कभी मृत्यु भी. गुर्दों को सबसे बड़ा ख़तरा शरीर के रक्तचाप की सामान्य स्थिति के असंतुलित हो जाने से तथा उसमें पथरी पैदा हो जाने से रहता है. ●

हा!हा!हा!

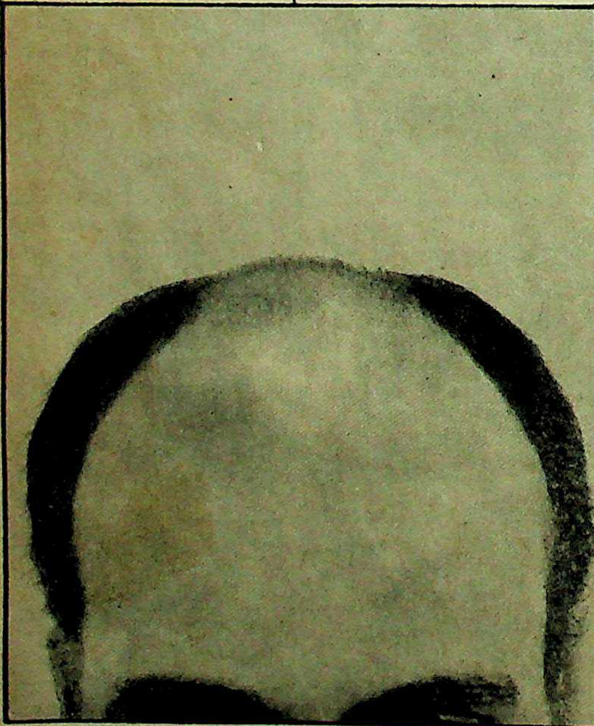
"ज़रा पड़ोस के घर से बड़ा वाला हथौड़ा तो मांग लाना." नाश्ते पर बैठे पति ने पत्नी से कहा. "वह किसलिए?" पत्नी ने आश्चर्य भरे स्वर में प्रश्न किया.
"मायके से लाये जो लड्डू तुमने नाश्ते में रखे हैं, दांतों से टूट नहीं रहे हैं." पति ने शांत स्वर में उत्तर दिया.

— बलबीर प्रकाश गुप्ता

इन्द्रलुप्त (गंजेपन) की चिकित्सा

- वैद्य भानुप्रताप मिश्र

सिर और बाल के रोगों में गंजापन का रोग बहुत ही चर्चास्पद, विश्वव्यापी और लगभग असाध्य माना गया रोग है, तो दूसरी ओर इसकी अत्यधिक सफल औषधियों का दावा भी किया जाता है.



एक मात्र ब्रिटेन में ही ५५ वर्ष से अधिक उम्र के लोगों का एक सर्वेक्षण किया गया, तो उसमें ५५ प्रतिशत लोग गंजे थे. परन्तु अमेरिका ने इससे भी अधिक प्रगति की है. वहां ९० प्रतिशत लोग अर्थात् डेढ करोड़ व्यक्ति गंजे हैं. वहां मात्र गंजेपन की चिकित्सा के पीछे प्रतिवर्ष ३५० करोड़ रुपया खर्च किया जाता है. अमेरिका में न्यू कैलिफोर्निया के मोरहेड शहर में 'बाल्डनेस लिबरेशन फ्रन्ट' नामक एक संस्था चलती है. उसमें दस हज़ार गंजों ने अपनी सदस्यता पंजीकृत कराई है, जिसके संस्थापक जॉन क्रैम्प हैं. वे एक सामयिकी भी चलाते हैं, जिसका नाम 'क्रोमडोम न्यूज़' अर्थात् चमकती टाल का समाचार है. हमारे भारत में विश्व के सबसे अधिक गंजे व्यक्ति हैं, जिनकी संख्या लगभग ढाई करोड़ है. यह भी एक कटु सत्य है.

कारण एवं लक्षण

स्वल्प कारण, स्वल्प लक्षण और स्वल्प चिकित्सा वाला होने से यह 'क्षुद्ररोग' कहा जाता है. क्षुद्ररोगों का कोई भेद न होने से भी इसे 'क्षुद्र' नाम दिया गया है. क्षुद्र शब्द 'अल्प' तथा 'रौद्र' इन दो अर्थों में लिया जाता है. कई आचार्य क्षुद्र शब्द को बाल के अर्थ में प्रयोग करते हैं. वैसे भी क्षुद्ररोग का अर्थ बालरोग माना है. आचार्य सुश्रुत ने ४४ क्षुद्ररोग माने हैं, परन्तु श्री ब्रह्मदेव ने ४८ क्षुद्ररोगों को माना है. आचार्य श्री वाग्भट ने क्षुद्ररोगों की संख्या ३६ तथा आचार्य माधव ने क्षुद्ररोगों की संख्या ४३ बतायी है. इन्द्रलुप्त को क्षुद्ररोगों में ही गिना गया है.

सुंदर, चमकीले, घने बालों की चाहत किसे नहीं होती, परंतु होता इसके विपरीत ही है. आज बाल झड़ने की समस्या आम हो गई है. इससे कभी-कभी गंजापन या चांद दिखाई देने लगती है. इसी को इंद्रलुप्त भी कहा जाता है.

इन्द्रलुप्त को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में 'एलोपेसिया एरिएटा' कहा जाता है. इस विषय में 'माधवनिदान' के क्षुद्ररोग प्रकरण में दो सुन्दर श्लोक दिए गए हैं -

रोमकूपानुगं पित्तं
गतेन सहमूर्च्छितम् ।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः
श्लेष्मा सशोषितः ।।
रुणद्धि रोमकूपांस्तु
ततोऽन्येषामसंभवः ।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं
रुह्येति च विभाव्यते ।।

अर्थात् रोमकूपों में रहनेवाला भ्राजक पित्त, वायु से मिलकर रोमों को गिरा देता है. इसके बाद रक्तसहित कफ़ रोगों को अवरुद्ध कर देता है, इससे दूसरे रोमों की उत्पत्ति नहीं होती. इस रोग को 'इन्द्रलुप्त' कहते हैं. इसका दूसरा नाम खालित्य (Simple Alopecia) और रुह्या (Alopecia Univassalis) भी है.

आचार्य श्री वाग्भट के मतानुसार इन्द्रलुप्त में बाल एकदम गिर जाते हैं, जब कि खालित्य में बाल धीरे-धीरे गिरते हैं. आचार्य श्री कार्तिक ने इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुह्या तीनों में भेद बताए हैं, जो इस प्रकार हैं. इन्द्रलुप्त में दाढ़ी,

आयुर्वेद में प्रयोगशालागत परीक्षण

- वैद्य तेजस क. माऊ

परीक्षण को सिर्फ़ जांच या निष्कर्ष की आपूर्ति का साधन मानना चाहिए, उससे ज़्यादा कुछ नहीं. चिकित्सा प्रत्येक रोगी का ध्येय होता है और उसके लिए वह अपने आपको चिकित्सक के अधीन कर देता है. उसकी चिकित्सा के लिए चिकित्सक को सबसे पहले निदान अर्थात् कौन-सा रोग है, यह जानना आवश्यक हो जाता है. क्योंकि उसी निदान के आधार पर चिकित्सक दी जानेवाली चिकित्सा का निर्णय करता है. इसके लिए चिकित्सक रोगी की भिन्न-भिन्न तरीके से जांच करता है और उसी जांच में प्रयोगशालागत परीक्षण भी शामिल है. प्रयोगशाला-परीक्षण में उन सब बातों का समावेश कर सकते हैं, जिनका परीक्षण बिना कोई उपकरण के नहीं किया जा सकता. वह उपकरण या तो मशीन हो सकता है या रसायन.

प्रयोगशाला परीक्षण क्यों?

हमारे शरीर पर त्वचा का आवरण होता है, जो शरीर के अन्य अवयवों को बाह्य वस्तुओं से बचाता है. इसलिए इस आवरण के भीतर के किसी अवयव का परीक्षण करना हो तो उपरोक्त साधनों का उपयोग ज़रूरी हो जाता है. साथ ही साथ मानवीय इंद्रियों की अपनी सीमा होती है, वे कुछ हद तक ही अपना कार्य कर सकती हैं. किन्तु किसी उपकरण की सहायता से उसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हो सकती है. इसी कारण से एक चिकित्सक के लिए रोगी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयोगशाला परीक्षण आवश्यक हो जाता है. इन परीक्षणों से कई बार ऐसी बातों का पता चलता है, जो व्यक्ति के स्वास्थ्य व जीवन की रक्षा में अत्यंत उपयोगी होती हैं.

आयुर्वेद में प्रयोगशाला परीक्षण

आयुर्वेद प्राचीन व संपूर्ण चिकित्सा शास्त्र है. यह विचार कि इसमें आधुनिक आविष्कार के उपकरणों का समावेश नहीं होता, सत्य नहीं है. आयुर्वेद का उद्देश्य है नीरोगी के स्वास्थ्य को बनाए रखना व रोगी के रोग को हरना. इसके लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न नैदानिक पहलुओं को जानने के बाद ही चिकित्सा करनी चाहिए. इस बात को आज से हज़ारों वर्ष पूर्व आयुर्वेद के प्रणेता ऋषि कह गए हैं. साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा है कि जो बातें नई आएं, नई खोजें हों और यदि उनके सिद्धान्त आयुर्वेद के संगत हों, तो उन्हें अपनाना चाहिए. आयुर्वेद में भी प्रयोगशाला परीक्षण का वर्णन किया गया है. मधुमेह रोग के परीक्षण के लिए रोगी के मूत्र को खुले स्थान में पात्र में छोड़ दें. यदि उस पर चीटियां लगें तो समझना चाहिए कि रोगी मधुमेह ग्रस्त है, इसी का आधुनिक स्वरूप है मूत्र-शर्करा परीक्षण (Urine Sugar Analysis). जिसमें चीटियों की जगह कुछ ऐसे रसायनों का प्रयोग होता है, जो शक्कर के उपस्थित होने पर अपना रंग बदलते हैं. अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोगशाला परीक्षण आयुर्वेद में किसी न किसी रूप में समाहित है.

चिकित्सा के लिए प्रयोगशाला में परीक्षण आजकल तो खैर आम बात है, पर प्रश्न यह उठता है कि क्या आयुर्वेद में प्रयोगशाला में रोग का परीक्षण किया जाता था. हां, ऐसा आयुर्वेद काल में भी होता था, कुछ रोगों में इसके बिना तो चिकित्सा की ही नहीं जा सकती.

आयुर्वेद और आधुनिक परीक्षण

आधुनिक प्रयोगशाला परीक्षण एक अत्यंत विकसित शाखा है. व्यक्ति के अंगों के कोने-कोने की जानकारी, अवयवों की रचना, उनके संगठन आदि सभी के बारे में अनेकानेक परीक्षण हैं, जो आदमी के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी देते हैं. व्यक्ति के रक्त और अन्य स्राव, उसके अवयवों की स्थिति तथा उनमें विकृति, ये सभी बातें रेखांकन रूप में अथवा चित्र के रूप में मिलती हैं, जो चिकित्सक को व्यक्ति की स्थिति के बारे में अवगत करा देती हैं, जिससे चिकित्सक के लिए निदान का निर्णय करना अत्यन्त सरल हो जाता है.

आयुर्वेद व आधुनिक परीक्षणों का समन्वय

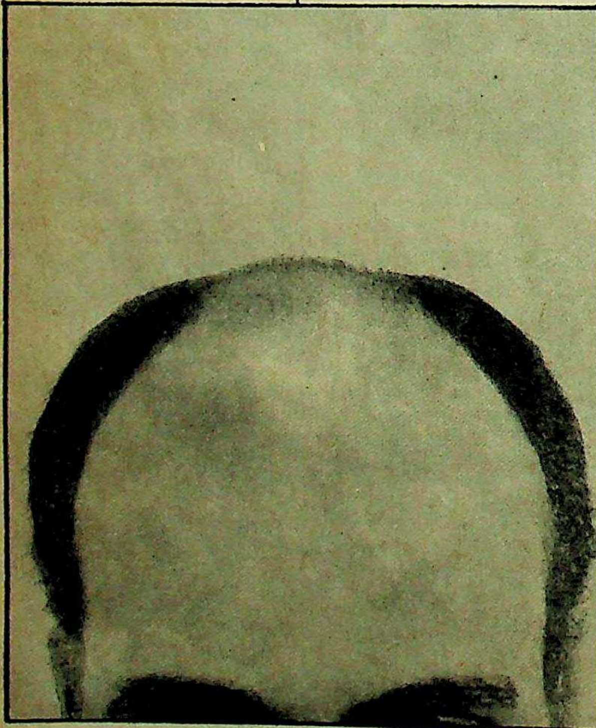
आयुर्वेद शास्त्र पंचभौतिक सिद्धान्त को मानता है तथा इन्हीं पंचमहाभूतों से अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से शरीर बना है, यह कहता है. इनसे ही शरीर के सभी अवयव बने होते हैं, जिनका पृथक्करण त्रिदोष - वात, पित्त कफ; सात धातु - रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तथा तीन मुख्य मल - पुरीष, मूत्र एवं स्वेद, और उपधातुओं के रूप में किया गया है. इन्हीं से ही हमारा शरीर अपना कार्य-व्यापार करता रहता है. तीन दोषों की स्थिति में बदलाव और धातु या मल में विकृति यही रोग है तथा इनको फिर से ठीक करना चिकित्सा है. चिकित्सा का अर्थ दोष, धातु, मल की विकृति को दूर करना है, इसलिए कौन-सा दोष तथा कौन-सी धातु-मल विकृत हुई है, यह जानना आवश्यक है. इसी को जानने के लिए प्रयोगशालेय परीक्षणों की आवश्यकता होता है.
वैसे तो आयुर्वेद में रोगी परीक्षा की बहुत-सी बातें बताई गई हैं, लेकिन

प्रयोगशालेय परीक्षण से भी यदि वैद्य अपने निदान की पुष्टि कर लेता है, तो चिकित्सा में अत्यधिक सफलता की संभावना रहती है. यहां पर एक बात को ध्यान में लेना आवश्यक है कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के जो मापदंड हैं, उनके द्वारा किसी परीक्षण के निष्कर्ष पर पहुंचने का अपना तरीका है, उससे भिन्न अपने दृष्टिकोण से वैद्य उन परीक्षणों के निष्कर्ष निकाल सकता है. इसलिए परीक्षण का नाम वही हो, किन्तु

इन्द्रलुप्त (गंजेपन) की चिकित्सा

- वैद्य भानुप्रताप मिश्र

सिर और बाल के रोगों में गंजापन का रोग बहुत ही चर्चास्पद, विश्वव्यापी और लगभग असाध्य माना गया रोग है, तो दूसरी ओर इसकी अत्यधिक सफल औषधियों का दावा भी किया जाता है.



एक मात्र ब्रिटेन में ही ५५ वर्ष से अधिक उम्र के लोगों का एक सर्वेक्षण किया गया, तो उसमें ५५ प्रतिशत लोग गंजे थे. परन्तु अमेरिका ने इससे भी अधिक प्रगति की है. वहां ९० प्रतिशत लोग अर्थात् डेढ़ करोड़ व्यक्ति गंजे हैं. वहां मात्र गंजेपन की चिकित्सा के पीछे प्रतिवर्ष ३५० करोड़ रुपया ख़र्च किया जाता है. अमेरिका में न्यू कैलिफोर्निया के मोरहेड शहर में 'बाल्डनेस लिबरेशन फ्रन्ट' नामक एक संस्था चलती है. उसमें दस हज़ार गंजों ने अपनी सदस्यता पंजीकृत कराई है, जिसके संस्थापक जॉन क्रैम्प हैं. वे एक सामयिकी भी चलाते हैं, जिसका नाम 'क्रोमडोम न्यूज़' अर्थात् चमकती टाल का समाचार है. हमारे भारत में विश्व के सबसे अधिक गंजे व्यक्ति हैं, जिनकी संख्या लगभग ढाई करोड़ है. यह भी एक कटु सत्य है.

कारण एवं लक्षण

स्वल्प कारण, स्वल्प लक्षण और स्वल्प चिकित्सा वाला होने से यह 'क्षुद्ररोग' कहा जाता है. क्षुद्ररोगों का कोई भेद न होने से भी इसे

सुंदर, चमकीले, घने बालों की चाहत किसे नहीं होती, परंतु होता इसके विपरीत ही है. आज बाल झड़ने की समस्या आम हो गई है. इससे कभी-कभी गंजापन या चांद दिखाई देने लगती है. इसी को इंद्रलुप्त भी कहा जाता है.

'क्षुद्र' नाम दिया गया है. क्षुद्र शब्द 'अल्प' तथा 'रौद्र' इन दो अर्थों में लिया जाता है. कई आचार्य क्षुद्र शब्द को बाल के अर्थ में प्रयोग करते हैं. वैसे भी क्षुद्ररोग का अर्थ बालरोग माना है. आचार्य सुश्रुत ने ४४ क्षुद्ररोग माने हैं, परन्तु श्री ब्रह्मदेव ने ४८ क्षुद्ररोगों को माना है. आचार्य श्री वाग्भट ने क्षुद्ररोगों की संख्या ३६ तथा आचार्य माधव ने क्षुद्ररोगों की संख्या ४३ बतायी है. इन्द्रलुप्त को क्षुद्ररोगों में ही गिना गया है.

इन्द्रलुप्त को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में 'एलोपेसिया एरिएटा' कहा जाता है. इस विषय में 'माधवनिदान' के क्षुद्ररोग प्रकरण में दो सुन्दर श्लोक दिए गए हैं -

रोमकूपानुगं पित्तं
गतेन सहमूर्च्छितम्।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः
श्लेष्मा सशोषितः ।।
रुणद्धि रोमकूपांस्तु
ततोऽन्येषामसंभवः ।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं
रुह्येति च विभाव्यते ।।

अर्थात् रोमकूपों में रहनेवाला भ्राजक पित्त, वायु से मिलकर रोमों को गिरा देता है. इसके बाद रक्तसहित कफ़ रोगों को अवरुद्ध कर देता है, इससे दूसरे रोमों की उत्पत्ति नहीं होती. इस रोग को 'इन्द्रलुप्त' कहते हैं. इसका दूसरा नाम खालित्य (Simple Alopecia) और रुह्या (Alopecia Univassalis) भी है.

आचार्य श्री वाग्भट के मतानुसार इन्द्रलुप्त में बाल एकदम गिर जाते हैं, जब कि खालित्य में बाल धीरे-धीरे गिरते हैं. आचार्य श्री कार्तिक ने इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुह्या तीनों में भेद बताए हैं, जो इस प्रकार हैं. इन्द्रलुप्त में दाढ़ी,

आयुर्वेद में प्रयोगशालागत परीक्षण

- वैद्य तेजस क. माऊ

परीक्षण को सिर्फ़ जांच या निष्कर्ष की आपूर्ति का साधन मानना चाहिए, उससे ज़्यादा कुछ नहीं. चिकित्सा प्रत्येक रोगी का ध्येय होता है और उसके लिए वह अपने आपको चिकित्सक के अधीन कर देता है. उसकी चिकित्सा के लिए चिकित्सक को सबसे पहले निदान अर्थात् कौन-सा रोग है, यह जानना आवश्यक हो जाता है. क्योंकि उसी निदान के आधार पर चिकित्सक दी जानेवाली चिकित्सा का निर्णय करता है. इसके लिए चिकित्सक रोगी की भिन्न-भिन्न तरीके से जांच करता है और उसी जांच में प्रयोगशालागत परीक्षण भी शामिल है. प्रयोगशाला-परीक्षण में उन सब बातों का समावेश कर सकते हैं, जिनका परीक्षण बिना कोई उपकरण के नहीं किया जा सकता. वह उपकरण या तो मशीन हो सकता है या रसायन.

प्रयोगशाला परीक्षण क्यों?

हमारे शरीर पर त्वचा का आवरण होता है, जो शरीर के अन्य अवयवों को बाह्य वस्तुओं से बचाता है. इसलिए इस आवरण के भीतर के किसी अवयव का परीक्षण करना हो तो उपरोक्त साधनों का उपयोग ज़रूरी हो जाता है. साथ ही साथ मानवीय इंद्रियों की अपनी सीमा होती है, वे कुछ हद तक ही अपना कार्य कर सकती हैं. किन्तु किसी उपकरण की सहायता से उसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त हो सकती है. इसी कारण से एक चिकित्सक के लिए रोगी के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयोगशाला परीक्षण आवश्यक हो जाता है. इन परीक्षणों से कई बार ऐसी बातों का पता चलता है, जो व्यक्ति के स्वास्थ्य व जीवन की रक्षा में अत्यंत उपयोगी होती हैं.

आयुर्वेद में प्रयोगशाला परीक्षण

आयुर्वेद प्राचीन व संपूर्ण चिकित्सा शास्त्र है. यह विचार कि इसमें आधुनिक आविष्कार के उपकरणों का समावेश नहीं होता, सत्य नहीं है. आयुर्वेद का उद्देश्य है नीरोगी के स्वास्थ्य को बनाए रखना व रोगी के रोग को हरना. इसके लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न नैदानिक पहलुओं को जानने के बाद ही चिकित्सा करनी चाहिए. इस बात को आज से हज़ारों वर्ष पूर्व आयुर्वेद के प्रणेता ऋषि कह गए हैं. साथ-साथ उन्होंने यह भी कहा है कि जो बातें नई आएं, नई खोजें हों और यदि उनके सिद्धान्त आयुर्वेद के संगत हों, तो उन्हें अपनाना चाहिए. आयुर्वेद में भी प्रयोगशाला परीक्षण का वर्णन किया गया है. मधुमेह रोग के परीक्षण के लिए रोगी के मूत्र को खुले स्थान में पात्र में छोड़ दें. यदि उस पर चीटियां लगें तो समझना चाहिए कि रोगी मधुमेह ग्रस्त है, इसी का आधुनिक स्वरूप है मूत्र-शर्करा परीक्षण (Urine Sugar Analysis). जिसमें चीटियों की जगह कुछ ऐसे रसायनों का प्रयोग होता है, जो शक्कर के उपस्थित होने पर अपना रंग बदलते हैं. अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोगशाला परीक्षण आयुर्वेद में किसी न किसी रूप में समाहित है.

चिकित्सा के लिए प्रयोगशाला में परीक्षण आजकल तो खैर आम बात है, पर प्रश्न यह उठता है कि क्या आयुर्वेद में प्रयोगशाला में रोग का परीक्षण किया जाता था. हां, ऐसा आयुर्वेद काल में भी होता था, कुछ रोगों में इसके बिना तो चिकित्सा की ही नहीं जा सकती.

आयुर्वेद और आधुनिक परीक्षण

आधुनिक प्रयोगशाला परीक्षण एक अत्यंत विकसित शाखा है. व्यक्ति के अंगों के कोने-कोने की जानकारी, अवयवों की रचना, उनके संगठन आदि सभी के बारे में अनेकानेक परीक्षण हैं, जो आदमी के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी देते हैं. व्यक्ति के रक्त और अन्य स्राव, उसके अवयवों की स्थिति तथा उनमें विकृति, ये सभी बातें रेखांकन रूप में अथवा चित्र के रूप में मिलती हैं, जो चिकित्सक को व्यक्ति की स्थिति के बारे में अवगत करा देती हैं, जिससे चिकित्सक के लिए निदान का निर्णय करना अत्यन्त सरल हो जाता है.

आयुर्वेद व आधुनिक परीक्षणों का समन्वय

आयुर्वेद शास्त्र पंचभौतिक सिद्धान्त को मानता है तथा इन्हीं पंचमहाभूतों से अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से शरीर बना है, यह कहता है. इनसे ही शरीर के सभी अवयव बने होते हैं, जिनका पृथक्करण त्रिदोष - वात, पित्त कफ; सात धातु - रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र तथा तीन मुख्य मल - पुरीष, मूत्र एवं स्वेद, और उपधातुओं के रूप में किया गया है. इन्हीं से ही हमारा शरीर अपना कार्य-व्यापार करता रहता है. तीन दोषों की स्थिति में बदलाव और धातु या मल में विकृति यही रोग है तथा इनको फिर से ठीक करना चिकित्सा है.

चिकित्सा का अर्थ दोष, धातु, मल की विकृति को दूर करना है, इसलिए कौन-सा दोष तथा कौन-सी धातु-मल विकृत हुई है, यह जानना आवश्यक है. इसी को जानने के लिए प्रयोगशालेय परीक्षणों की आवश्यकता होता है.

वैसे तो आयुर्वेद में रोगी परीक्षा की बहुत-सी बातें बताई गई हैं, लेकिन प्रयोगशालेय परीक्षण से भी यदि वैद्य अपने निदान की पुष्टि कर लेता है, तो चिकित्सा में अत्यधिक सफलता की संभावना रहती है. यहां पर एक बात को ध्यान में लेना आवश्यक है कि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के जो मापदंड हैं, उनके द्वारा किसी परीक्षण के निष्कर्ष पर पहुंचने का अपना तरीका है, उससे भिन्न अपने दृष्टिकोण से वैद्य उन परीक्षणों के निष्कर्ष निकाल सकता है. इसलिए परीक्षण का नाम वही हो, किन्तु

उसके निष्कर्ष का समन्वय त्रिदोष, सप्तधातु, तीन मलों में करने से ही उस परीक्षण का सही लाभ आयुर्वेद-चिकित्सक ले सकता है. अब तक ऐसा कोई विशेष मापदण्ड नहीं निश्चित हुआ है, जो आधुनिक परीक्षणों का समन्वय आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से बता सकता हो. आज का वैद्य समुदाय स्वानुभव से ही इन परीक्षणों का अपने दृष्टिकोण से निष्कर्ष निकाल कर उनका प्रयोग करता है. इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि आधुनिक परीक्षणों की उपादेयता आयुर्वेद शास्त्र में उपयोगी हो सकती है.

रोगी के उपचार में परीक्षणों का आधार कहां तक लेना चाहिए, इसके लिए कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए.

(१) प्रयोगशालेय परीक्षणों के निष्कर्ष के मापदण्डों में अनेकानेक भेद हैं. इसलिए केवल इनके निष्कर्ष के आधार पर ही रोग निदान नहीं किया जा सकता.

(२) परीक्षण करने के लिए रोगी तथा परीक्षक को जल्दबाजी तथा पूर्वाग्रह से परे रहना होता है. इन दोनों के रहने पर परीक्षण का परिणाम कभी-कभी ग़लत होता है. उदाहरणार्थ - जल्दबाजी में रोगी कई बार परीक्षण से पूर्व करने वाली बातों को नहीं करता, जिससे ग़लत परिणाम मिल सकता है, जैसे मूत्र को एकत्रित करने के लिए जिस पात्र का उपयोग करें वह पूर्ण रूप से निर्जन्तु होना चाहिए, लेकिन जल्दबाजी में या आलस्यवश ऐसा नहीं करने से परीक्षण के निष्कर्ष में ग़लती आती है. दूसरा उदाहरण है कि यदि परीक्षक रोगी की स्थिति को देखकर उसके परीक्षण में ऐसी बात आयेगी यह पूर्वाग्रह कर ले, तो वह बात न होते हुए भी अपने पूर्वाग्रह के कारण वह परीक्षक उस बात का आभास महसूस कर अपने निष्कर्ष में उसका उल्लेख करता है. जैसे - किसी व्यक्ति के उदर (पेट) की क्ष-किरण (X-Ray) जांच करने से पहले वह व्यक्ति यदि कैल्शियम (Calcium) की गोली खा कर जाय, तो क्ष-किरण चित्र में वह कर्क रोग की छाया जैसी प्रतीत होगी. यदि परीक्षक रोगी को देखकर यह पूर्वाग्रह कर ले कि उसे कर्क रोग हो सकता है, तो वह अपने निष्कर्ष में अन्य बातों पर ध्यान दिए बग़ैर कर्क रोग होने की सम्भावना का उल्लेख करेगा और यदि रोगी उस बात को पढ़ ले तो उसे मानसिक संताप हो जायेगा और इस संताप में ही उसकी स्थिति और बिगड़ सकती है. ये बातें व्यक्तिगत रूप से ही रोगी और परीक्षक पर लागू होती हैं. अतः शत-प्रतिशत सही निष्कर्ष निकालना बहुत ही कठिन होता है.

(३) परीक्षण कराने के लिए रोगी के लिए वह अतिरिक्त ख़र्च हो जाता है.

(४) प्रत्येक परीक्षण करते समय रोगी को कुछ हानि होने की सम्भावना रहती ही है. इनमें दर्द, व्याधि-संक्रमण (Infection), शरीर के किसी अवयव का टूट/फट जाना आदि ऐसी अनेक बातें हैं, जो परीक्षण के समय रोगी के साथ हो सकती हैं.

अतः इन बातों को देखते हुए परीक्षणों के उपयोग के बारे में आंख मूंद कर अनुकरण नहीं करना चाहिए. जब परीक्षण अति आवश्यक हो, तभी उनको करना उपयोगी सिद्ध होगा.

चूंकि यह निर्णय चिकित्सक के ऊपर निर्भर है कि कहां परीक्षण आवश्यक है और कहां नहीं, इसलिए एक आम व्यक्ति अपने प्रयोगशालेय परीक्षण पर नियंत्रण नहीं रख सकता. फिर भी, कुछ ऐसी बातें हैं जो व्यक्ति को अपने प्रयोगशालेय परीक्षण करवाते समय याद रखनी चाहिए.

परीक्षण करवाते समय ध्यान रखें

- व्यक्ति को यह हक है कि वह अपने चिकित्सक से किसी भी परीक्षण के बारे में, उसके लिए उस परीक्षण का क्या महत्व है, पूछ सकता है.
- यदि परीक्षण का निष्कर्ष सही न आया हो, तो सिर्फ़ एक ही परीक्षण का आधार नहीं लेना चाहिए. यदि चिकित्सक उसकी आवश्यकता समझे, तो वही परीक्षण पुनः कराना चाहिए.
- रोगी को कभी भी चिकित्सक से यह आग्रह नहीं करना चाहिए कि वह उसका परीक्षण करें
- क्ष-किरण परीक्षण, विशेषकर रासायनिक अंश शरीर में ले कर क्ष-किरण परीक्षण तथा जहां किसी भी अवयव को भेद कर या काट कर परीक्षण कराना हो, उन परीक्षणों में रोगी को सदा सजग रहना चाहिए. क्योंकि उन परीक्षणों में हानि होने की सम्भावना अधिक रहती है.
- परीक्षण के सभी पूर्व और पश्चात् नियमों का पालन करना चाहिए.
- परीक्षण के निष्कर्ष का अर्थ स्वतः अपने आप न निकालें, इससे मानसिक संताप ही होगा. चिकित्सक ही वह व्यक्ति है, जो यह बात सुनिश्चित कर सकता है कि किसी परीक्षण का निष्कर्ष किस प्रकार लेना है.
- परीक्षण करवाते समय किसी भी प्रकार का मानसिक तनाव न रखें, यदि ऐसा हो तो परीक्षक को इस बात से अवगत कराएं.
- परीक्षक की किसी भी अवस्था में कोई बात समझ में नहीं आए, तो उसे बिना झिझक पूछ कर अपना समाधान कर लेना चाहिए.

अमृत वचन

दासता

- जब तक कि स्त्रियां अपने - आपको स्वतंत्र करें तब तक कोई क़ानून उन्हें स्वतंत्र नहीं कर सकता.
- कौन-सी चीज है जो उन्हें दासी बनाती है?

१. पुरुष और उसके बल के प्रति आकर्षण.

२. घरेलू जीवन और सुरक्षा की कामना.

३. मातृत्व के लिए आसक्ति

अगर स्त्रियां इन तीन दासताओं से मुक्त हो सकें तो वे सचमुच पुरुषो के बराबर हो जायंगी

- पुरूषों की भी तीन दासताएं हैं -

१. स्वामित्व की भावना, शक्ति और आधिपत्य के लिए आसक्ति.

२. नारी के साथ लैंगिक संबंध की इच्छा.

३. विवाहित जीवन की छोटी-मोटी प्रतिष्ठाओं के लिए आसक्ति

अगर पुरुष इन तीन दासताओं से मुक्ति पा लें तो वे सचमुच स्त्रियों के बराबर हो जायेंगे.

श्री अरविन्द

यौन-शक्ति

वास्तव में सार्व भौम यौन शक्ति ही काम करती है, लेकिन कुछ लोग इस शक्ति से औरों की अपेक्षा ज्यादा भरे रहते हैं - जिसे आजकल यूरोप में 'सेक्स-अपील' कहते हैं. विशेष रूप से सेक्स-अपील का उपयोग स्त्रियां करती हैं और वह भी सचेतन रूप से किसी व्यक्ति-विशेष पर इसे डालने के इरादे के बिना ही. वे जानबूझकर किसी विशेष व्यक्तिपर इसे भेज सकती हैं, लेकिन हो सकता है कि वह और बहुतों पर असर करे जिन्हें फंसाने की उसमें कोई खास इच्छा नहीं है. सभी स्त्रियों में सेक्स-अपील नहीं होती पर अधिकतर स्त्रियों में यौन आकर्षण की कोई शक्ति होती है. हां, पुरुषों में स्त्रियों के लिए ऐसा ही आकर्षण होता है.

जीवन के अनेक पड़ावों का राही - बुढ़ापा

— प.ल. व्यास

वैज्ञानिकों के अनुसार बुढ़ापे की भी तीन अवस्थाएं होती हैं पैंतालीस वर्ष के बाद जब बुढ़ापा पनपना प्रारंभ होता है. उसकी पुरानी तीन अवस्थाओं की पुनरावृति होती है. उस प्रौढ़ावस्था के बाद से जब बुढ़ापा शरीर के अंगों से अंकुरित होने लगता है तब बचपना किलकारियां करने लगता है, उसके बाद वृद्धावस्था में यौवन की आग भड़कती है और तत्पश्चात वह फिर अपने अंतिम बुढ़ापे की ओर अग्रसर होता है. ये तीनों अवस्थाएं नकारात्मक होती हैं. यदि इन अवस्थाओं में सावधानी नहीं बरती जाय तो जीवन अनेक कुंठाओं से ग्रस्त हो जाता है.

पांच वर्ष तक बचपन लहराता है

बुढ़ापे में पैंतालीस वर्ष के बाद लगभग पांच वर्ष तक बचपन लहराता है.इस अवस्था में व्यक्ति जिद्दी और उसकी इंद्रियां लोलुप हो जाती हैं. इसी उम्र में वह बच्चे की तरह बातूनी और हर कार्य में हस्तक्षेप करने लगता है. उसे किसी तरह किसी काम से संतुष्टि नहीं मिलती. बात-बात में वह आवेश में आ जाता है और अपने सुख-सुविधाओं के लिए परिवार के सामने विभिन्न प्रकार की मांगें प्रस्तुत करने लगता है. बच्चे की तरह ही मन के मुताबिक किसी कार्य के संपन्न न होने पर नाराजगी प्रगट करता है और सबसे रूठ कर मुंह फुला कर बैठ जाता है. बार-बार उसे मूत्र आता है और दिन में करीब दो-तीन बार शौच जाता है. खुशी और असंतोष उग्रता से प्रकट करेगा. बच्चों की तरह ही खान-पान और कपड़ों में अपनी अभिरुचि ज़ाहिर किये बिना नहीं मानेगा.

बुढ़ापे के बचपन के पश्चात् पांच वर्ष का यौवन काल

कहा जाता है कि पचास वर्ष से लेकर पचपन साल की उम्र के मध्य व्यक्ति के अंतर्मन में यौवन की आग भड़क उठती है. यह मनुष्य के जीवन की सबसे अधिक खतरनाक उम्र होती है.

इस उम्र में वृद्ध जन समझते हैं जैसे वे अभी जवान हैं. यदि विधुर हैं तो इस उम्र में वे शीघ्र ही दूसरा विवाह करने को राजी हो जाते हैं. अपनी पत्नी से भी संभोग करने की उमंग को संयमित नहीं कर पाते. खान-पान और यौन आचरण की समस्त कियाओं के प्रवाह को वे भंग कर, उसके बांध को तोड़ कर उन्मुक्त हो जाते हैं.

वृद्धावस्था के पड़ाव पर आते ही कई अनुभव होते हैं, जहां हमारी शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक शक्तियां हमारा साथ छोड़ देती हैं व हम नितांत अकेले रह जाते हैं. बुढ़ापा तो अवश्यंभावी है जिसे टाला नहीं जा सकता,परंतु कुछ प्रयत्नों से हम इन अक्षमताओं को जरूर दूर कर सकते हैं. तो क्यों न प्रयत्न करके देखा जाय -



बुढ़ापा-जीवन का अंतिम चरण

यौवन के बाद फिर पचपन वर्ष की उम्र के बाद बुढ़ापा-जीवन का अंतिम चरण आता है. इस उम्र में वे नास्तिक, दार्शनिक और ईश्वरवादी बन जाते हैं. बीते जीवन के पाप कर्मों पर प्रायश्चित करते हैं और मृत्यु को याद कर चिंतन करने लगते हैं. पुरुष या स्त्री कितने ही नास्तिक हों, इस उम्र में मृत्यु के सन्निकट पहुंच कर अलौकिक शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण करते हुए से लगते हैं. बुढ़ापे के इस अंतिम चरण में वे दयावान और दानी बन जाते हैं.

इस उम्र में वे अन्तर्मन में अपने सत्व की खोज करते-करते आध्यात्मवादी बन जाते हैं व धार्मिक अनुष्ठानों में रुचि लेते हैं. वृद्धावस्था में वह वायु तत्व से प्रेरित रहता है और इस उम्र में वह वायु तत्व का मूल्य चुकाता है. मृत्यु से वह आकाश तत्व बन कर आकाश में मिल जाता है.

वृद्धावस्था में यदि मनुष्य तीनों अवस्थाओं को एक साथ संयुक्त कर संयम से जीवन बिताये तो वह पंचभूत तत्वों को संपुट करने में सफल रह सकता है. इस अवस्था

शेषांश पृष्ठ ८४ पर

घेंघा रोग - असाध्य नहीं

- डॉ. इरफान अलीमी

आज महामारी के रूप में प्रचलित जिन रोगों ने भारत वासियों की नींद हराम कर रखी है उनमें से 'घेंघा' या 'ग्वायटर' रोग भी एक मुख्य रोग है. आपने अपने जीवन में कुछ ऐसे लोगों को अवश्य देखा होगा जिनके गले में थैलेनुमा एक उभार लटकता रहता है, उसी को घेंघा कहते हैं.

क्यों होता है?

मनुष्य के गले में अंतः स्रावी ग्रंथि होती है, जिसको थायराइड ग्रंथि कहा जाता है. यह ग्रंथि गले में स्वर यंत्र के नीचे, आगे की ओर पायी जाती है. इसका आकार तितली के समान होता है. इसके दो खण्ड होते हैं, जो सांस की नली के दोनों ओर स्थित होते हैं. यह ग्रंथि आकार में छोटी होने के बावजूद मानव शरीर के लिए बहुत ही उपयोगी एवं महत्वपूर्ण है, क्योंकि शरीर की कार्य प्रणाली पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है. शरीर की विभिन्न क्रियाओं पर नियंत्रण रखना और संतुलन बनाए रखना इसी का कार्य है. आयुर्वेद में इसे गलगंड रोग कहते हैं. इसके ३ प्रकार हैं - वातज, कफज और मेदज.

वातज गलगंड में सूई चुभने जैसी वेदना होती है और वह स्पर्श में कठोर होता है.

कफज प्रकार में मंद वेदना, स्पर्श शीत और खुजली होती है. यह ग्रंथि आकार में बड़ी और देर से बढ़नेवाली होती है.

मेदज प्रकार की ग्रंथि स्पर्श में मृदु, खुजलीयुक्त और लटकी हुई होती है.

गलगंड में पाक अधिकतर नहीं होता, शायद इसीलिए पित्तज प्रकार को शास्त्र में नहीं माना है.

गलगंड से एक वर्ष तक का पीड़ित रोगी जो क्षीण हो गया हो व जिसकी आवाज़ बदल गई हो, ऐसा रोग असाध्य माना जाता है.

लक्षण

जब आयोडीन की प्रचुर मात्रा इस ग्रंथि को नहीं मिल पाती तो उसकी क्षतिपूर्ति के लिए यह फूल कर भारी हो जाती है ताकि वह रक्त से आवश्यकतानुसार आयोडीन की मात्रा प्राप्त कर सके. यदि काफी समय तक आयोडीन की उचित मात्रा उसे नहीं मिल पाती, तो यह ग्रंथि स्थायी रूप से फूल जाती है. इस रोग में जहां चेहरा विकृत एवं कुरूप हो जाता है, वहां मस्तिष्क रोग होने की भी सम्भावना बनी रहती है.

आरम्भ में इसका आकार इतना छोटा होता है कि मनुष्य न तो कुछ समझ पाता है और न तो उसे कोई कष्ट ही होता है, हां, डॉक्टरी जांच से अवश्य इसका पता लगाया जा सकता है. वैसे तो अपने आप ही जब इसका आकार बढ़ने लगता है, तब इस रोग को समझने में देर नहीं लगती है. जब तक आकार में यह गिल्टी छोटी रहती है, तब तक रोगी को कोई कष्ट नहीं होता है, परन्तु जब इसका आकार असामान्य रूप से बढ़ जाता है, तब रोगी को सांस लेने एवं गले से कोई वस्तु निगलने में कष्ट होने लग जाता है, क्योंकि ग्रंथि के बढ़ने के कारण सांस की नली एवं भोजन की नली पर दबाव पड़ने लगता है.

हमारे देश के पहाड़ी क्षेत्रों में इस रोग का प्रकोप अधिक दिखाई पड़ता है. पहाड़ी एवं बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में बरसात एवं बाढ़ के पानी से मिट्टी की ऊपरी परत बह जाती है, जिसमें आयोडीन घुली होती है. इस प्रकार मिट्टी, पानी एवं पौधों में आयोडीन की मात्रा घट जाती है, अतः वहां पर बसने वाले लोगों को भी आयोडीन की उचित मात्रा नहीं मिल पाती है और आयोडीन के अभाव में यह रोग हो जाता है. यही कारण है कि पहाड़ी क्षेत्रों में इस रोग का प्रकोप ज्यादा व्यापक होता है. इसके विपरीत समुद्र के निकट बसने वाले लोगों में यह रोग कम पाया जाता है, क्योंकि समुद्री मछलियों में आयोडीन की मात्रा अधिक होती है और समुद्र के निकट रहनेवाले लोग उन मछलियों के सेवन द्वारा आयोडीन की अधिक मात्रा प्राप्त कर लेते हैं और इस रोग से बचे रहते हैं.

भोजन में आयोडीन की मात्रा कम होने से घेंघा रोग हो जाता है जिसमें गले की ग्रंथि फूलकर बड़ी हो जाती है जो कि बहुत ही कष्टप्रद होती है. अतः यह आवश्यक है कि भोजन में आयोडीनयुक्त नमक का ही प्रयोग करें -

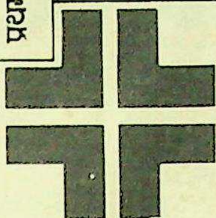
भारत में मुख्यतः जम्मू कश्मीर, सिक्किम, असम, नागालैण्ड, अरुणाचल, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल के लोग इस रोग से अधिक प्रभावित रहते हैं. इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, और बिहार के कुछ जिले इसकी चपेट में हैं.

आयोडीन का महत्व

मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए आयोडीन बहुत ही आवश्यक है. चूंकि आयोडीन, कम मात्रा में ही सही, पेयजल एवं वनस्पतियों से प्राप्त हो जाता है, अतः आयोडीन को बाहर से लेने की जरूरत नहीं पड़ती है, लेकिन आयोडीन की यदि कमी हो जाए, तो चिकित्सक के परामर्श से अलग से भी आयोडीन लेनी चाहिए, क्योंकि आयोडीन के अभाव में शारीरिक एवं मानसिक विकास नहीं हो पाता है. गर्भवती महिलाओं में आयोडीन की कमी के कारण गर्भस्थ शिशु के शारीरिक एवं मानसिक विकास में बाधा पहुंचती है. ऐसी अवस्था में जन्म लेने वाले बच्चे शारीरिक रूप से कमज़ोर एवं मंदबुद्धि के होते हैं. बच्चों के गूंगे, बहरे एवं बौने होने का भय बना रहता है.

आयोडीन की कमी से होने वाले इस रोग की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने घेंघा प्रभावित क्षेत्रों में सामान्य नमक की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और केवल आयोडीनयुक्त नमक ही बेचने व ख़रीदने की अनुमति प्रदान की है. भारत में लगभग सात लाख टन आयोडीनयुक्त नमक की

शेषांश पृष्ठ ८४ पर



पित्त ज्वर प्रकुपित हो तो

वर्षा ऋतु में पित्त के प्रकुपित होने पर पित्त ज्वर होता है. अतः इससे तुरंत बचना चाहिए. इसके लिए जुलाब लेना चाहिए और उपवास करना चाहिए. नियम से सुबह-शाम आधा नींबू पर सेंधा नमक व पिसी कालीमिर्च बुरककर धीमी आंच पर सेंक कर चाटने से बुखार उतर जात है.

उल्टी रोकने के लिए

किसी कारणवश बारंबार उल्टी हो रही हो, तो कमज़ोरी महसूस होती है. अतः शीघ्रातिशीघ्र उल्टी रोकने का उपाय करना चाहिए. इसके लिए निम्न नुस्खा लाभ पहुंचाएगा. ३५ ग्रा. इमली साफ़ की हुई, को कांच या पत्थर के बर्तन में २५० ग्रा. पानी में भिगो दें. कुछ देर बाद मलकर छान लें और चीनी या मिश्री मिलाकर रोगी को पिलाएं.

आंव या दस्त पड़ने पर

आंव के दस्त शुरू होते ही २९ ग्राम रेंडी का तेल (कैस्टर ऑयल) २३३ या ११६७ ग्राम दूध में या त्रिफला के काढ़ा में मिलाकर पीएं, इससे तुरंत फ़ायदा होगा. पीपल, अनंतमूल, निशोथ, बड़ी हरड़ की छाल, आमला, कपूर, कचरी इनको समभाग २३.२ ग्राम लेकर काढ़ा करें और शहद तथा मिश्री मिलाकर पीएं.

हिक्का (हिचकी)

लाल मिर्च, गरम मसाला आदि तीक्ष्ण पदार्थों के खाने, उत्तेजक दवा, अधिक मात्रा में खाने और अम्लपित्त रोगों के कारण हिचकी पैदा हो जाती है. जल के साथ सोंठ घिसकर सूंघने से हिचकी बंद होती है. आक के फूल को चावल के तेल से चिकना करके निगल जाने से हिचकी बंद होती है. सांस रोककर प्राणायाम करने से हिचकी में लाभ होता है.

स्वरभंग (आवाज़ बैठना)

सर्दी, ज़ुकाम, अधिक खांसी, गले के घाव आदि कारणों से बोलने की शक्ति कम हो जाती है जिसे आवाज़ बैठना कहते हैं.

७ गोलमिर्च, ५ छोटी इलायची, ३ ग्राम मुलेठी, १½ ग्राम कुलिंजन और १२ ग्राम गेहूं की भूसी इन पांचों दवाओं का काढ़ा २९ ग्राम मिश्री डालकर पीने से आवाज़ खुलती है. बच, कुलिंजन, बाकुची और कत्था — इनको समभाग लेकर पान के रस में घोंटकर चने के बराबर की गोलियां बना लें. इन गोलियों के चूसने से आवाज़ बहुत जल्द ठीक हो जाती है.

शूल रोग (पेट का दर्द)

पेट में शूल गड़ने जैसी वेदना को शूल रोग या पेट का दर्द कहते हैं. शूल रोग अधिकतर अजीर्ण के कारण पैदा होता है. हरड़, बहेड़ा, आमला और राई — इन चारों का चूर्ण ६ ग्राम, गर्म पानी के साथ देने से पेट दर्द में आराम होता है. यह कब्ज़ियत के लिए विशेषलाभकारी है. शंख भस्म, काला नमक, भुनी हींग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल इन ६ वस्तुओं को समभाग लेकर चूर्ण करें. ३ ग्राम की मात्रा में गर्म जल के साथ लेने से अजीर्ण शूल बंद हो जाता है.

भीगे हुए पत्थर के चूने में समभाग अजवायन का चूर्ण मिलाकर एक ग्राम की गोलियां बना लें. यह पेट दर्द में बहुत ही फ़ायदा करती है.

चोट लगने पर

कभी-कभी जब चोट लगती है, तो रक्त नहीं बहता,पर वह स्थान सूज जाता है या वहां पीड़ा होती है. ऐसी चोट या मोच पर प्याज़ पीसकर आमा हल्दी और थोड़ा-सा नमक सरसों के तेल में पकाएं, जब पानी सूख जाए तो उसको चोट या मोच पर हल्का गर्म-गर्म ही बांध दें. सुबह-शाम बांधने से दर्द तो तुरंत ठीक हो जाएगा, पर इसको दो-चार दिन तक बांधने पर सूजन भी ठीक हो जाएगी.

— डॉ. प्रदुम्न माथुर

अचूक औषधि अजवाइन

● बारीक पिसी हुई चूर्णनुमा अजवाइन दो चम्मच और आधा चम्मच जीरा मिलाकर उसमें स्वाद अनुसार सेंधा नमक मिलाकर फांकने से अरुचि दूर होती है.

● सुबह खाली पेट दही या मट्ठे के साथ अजवाइन, कालीमिर्च और काला नमक बराबर का चूर्ण कर फांकने से पेट के कीड़े नष्ट हो जाते है.

● वायु विकार यदि हो तो अजवाइन एक अचूक औषधि है. २० ग्राम अजवाइन. १० ग्राम काली मिर्च तथा सेंधा व काला नमक स्वाद के अनुसार मिलाकर चूर्ण कर लें. गर्म जल के साथ ५-५ ग्राम चूर्ण फांकने से वायुगोले का रोग अवश्य ठीक हो जाता है.

● यदि मसूढ़े फूले हों तो पानी गरम करके उसमें एक चम्मच अजवाइन, एक लाल मिर्च और थोड़ा-सा गुड़ डाल कर उसे उबाल लें. गुनगुने पानी के ग़रारे करने से मसूढ़ों का आकार स्वाभाविक हो जाता है. फूले मसूढ़े अजवाइन से पिचक जाते हैं. मसूढ़ों का दर्द भी दुरूस्त हो जाता है.

— कृष्णा

वायु विकार जन्य रोग

—रामकृष्ण शुक्ल

यह सारा संसार वायु के भरोसे ही चल रहा है. वही हमारे जीवन का आधार है. वायु ही शरीर को धारण करता है और उसी के द्वारा मल आदि दोषों का विसर्जन और जीवनीशक्ति (ऑक्सीजन) के ग्रहण से हम स्वस्थ, आभावान और क्रियाशील बने रहते हैं. शरीर स्थित यही वायु जब विकृत हो जाती है तो अनेक रोगों को उत्पन्न कर जीवन को कष्ट साध्य बना देती है.

रोगों की उत्पत्ति में अन्य दोषों की अपेक्षा वायु ही प्रधान है, क्योंकि यह व्यापक है. शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्रोतों में भी प्रवेश के अपने सामर्थ्य के कारण कुपित होने पर वायु शेष दोषों की अपेक्षा अधिक मात्रा में और अधिक शीघ्रता से पहुंच सकता है. उनमें रोग उत्पन्न कर सकता है. शरीर में प्रसार, प्रवेश और रोगोत्पत्ति की इसकी क्रिया दूसरे दोषों की अपेक्षा शीघ्र होती है. यह स्वयं तो रोग उत्पन्न करता ही है, दूसरे दोषों को भी कुपित कर उनके द्वारा भी रोगोत्पत्ति करता है.

वायु के भेद

कार्य और गुणों के आधार पर वायु के ५ प्रकार आयुर्वेदाचार्यों ने बताए हैं.

प्राण –

यह उरःस्थान यानी छाती में रहकर श्वासक्रिया का कार्य करता है. नासाद्वारा फेंफड़ों में लिए गए वायु को प्राणवायु कहते है.

उदान

जो वायु फेंफड़ों से निःश्वास क्रियाद्वारा बाहर फेंकी जाती है, उसे उदानवायु कहते है. उदानवायु की गति उर्ध्वगति होती है.

समान

'समानो अग्निसमीपस्थ : ।' – अर्थात् जो वायु आमाशय में जठराग्नि के आसपास रहती है, वह समान कहलाती है. इसका काम अग्नि को तेज़ करना है. जिसप्रकार भट्ठे की आग को तेज़ करने के लिए हम पंखे से हवा करते हैं, उसी तरह शरीर की समानवायु काम करती है.

व्यान

यह समग्र शरीर में व्याप्त वायु है. शरीर की सब प्रकार की गति जैसे चलना, फिरना, अंगों को फैलाना, सिकोड़ना, पलकें बंद करना, खोलना आदि इस वायु के कारण संपन्न होती है. इस वायु का प्रमुख स्थान हृदय माना है.

अपान

'शरीरमलान् अप (दूर) नयति, इति अपानः ।' शरीर से मलीन घटकों को दूर करती है, वह अपान वायु है. यह शरीर के अधोभाग में अर्थात् बृहत् आंतों एवं मलाशय, गर्भाशय आदि स्थानों में रहकर अपना कार्य करती है.

दोषों का अभिवाहक वायु

वायु चाहे प्राकृत हो या विकृत, शेष दोष सम हों या विषम, सभी दशाओं में वायु ही अन्य दोषों, धातुओं तथा मलों को जहां चाहता है ले जाता है और उस स्थान पर उनसे क्रिया कराता है. जैसे बाहरी वायु स्वयं अगतिशील मेघों को अन्यत्र ले जाता है और उससे अभिवाहित मेघ उस स्थान पर वृष्टि करते हैं. दोषों के प्रकुपित दशा में उनके प्रसार (वृद्धि के स्थान से रोगोत्पत्ति के स्थान पर गमन में) का मुख्य कारण वायु ही है, क्योंकि वायु ही गतिशील है. वायु में गतिशीलता का कारण यह है कि वह रजोगुण प्रधान है और रजोगुण सभी पदार्थों का प्रवर्तक है.

वात, पित्त और कफ शरीर के सभी स्रोतों में प्रवेश और संचार करते हैं. सूक्ष्म होने से वायु ही उनका भी प्रेरक है. प्रकुपित वायु कफ और पित्त को सवेग स्थानभ्रष्ट और संचालित कर उनको उन स्थानों पर ला छोड़ता है, जहां पहले से स्थित दोष समावस्था में हों. लेकिन दूसरे स्थान से आए हुए दोष का संयोग होने से उस स्थान पर उनके प्रमाण में वृद्धि होती है जिससे वे कुपित होकर रोग की उत्पत्ति करते हैं. जब कफ़ और पित्त कुपित होकर वायु के मार्ग को आवृत्त करते हैं, तो वायु का संचय और प्रकोप होता है, ऐसी स्थिति में भी कुपित वायु अपने आवरण दोषों को दूसरे स्थान पर लाकर उनसे रोगोत्पत्ति कराता है.

शरीरगत रोगों में एक है 'वायुरोग'. वायु दूषित होने से ही एक-दो नहीं कुल ८० रोगों के होने की संभावना होती है. वायु दूषित होता है मनुष्य के आहार-विहार में गड़बड़ी के कारण. वायुरोगों की चिकित्सा की औषधियां आयुर्वेद में भी वर्णित हैं.

वायु कुपित हो तो सम या विषम शेष दोषों, धातुओं और मलों को उनके उचित स्थान पर नहीं रहने देता. मलों को उनके बहिर्मुख स्रोतों से उन्हें बाहर न निकाल कर शरीर में ही कुपित करता है और उनके प्रमाण में वृद्धि करता है.

वायु समावस्था में हो तो उसके अनेक प्राकृत कर्मों में से एक यह है कि आहार का जठराग्नि द्वारा एवं रसादि धातुओं का अपने-अपने धात्वग्नि द्वारा पचन होने के परिणामस्वरूप जो मल उत्पन्न होते हैं, उन्हें वायु निर्गमन द्वारों से बाहर निकालता रहता है. वायु अन्नपान का मल है, कफ़ रस धातु का तथा पित्त रक्त का. वात, पित्त, कफ़ तथा पुरीषादि अन्य मल जैसे-जैसे बनते जाते हैं, वैसे-वैसे वायु की क्रिया से बाहर निकलते रहते हैं. इस प्रकार शरीर में उनका प्रमाण सम बना रहता है.

रोगोत्पत्ति का कारण वायु

रोग चाहे शाखाओं (रक्तादि धातुओं तथा त्वचा) में हों, कोष्ठ (मलाशय, धड़) में स्थित हों अथवा मर्म और सन्धियों में स्थित हों या ऊर्ध्व, अधः व तिर्यक रूप में रोग मार्ग में स्थित हों, उनकी उत्पत्ति में वायु के अतिरिक्त कोई दूसरा कारण नहीं है, क्योंकि वायु ही प्राकृतिक अवस्था में हो तो अपने अन्य प्राकृत कार्यों के समान, पुरीष, मूत्र, पित्त, कफ़, मलों को उनके स्थानों से बाहर निकालता रहता है. वही यदि विषम हो जाए, तो मलों व दोषों को बाहर न निकाल कर वहीं रहने देता है और इस प्रकार उनका संचय, वृद्धि तथा प्रकोप कर रोगोत्पत्ति करता है.

वायु मानस रोगों का मूल

वायु द्वारा अधिकांश रोगों की

उत्पत्ति का एक अन्य कारण यह है कि मन भी वायु के अंकुश में रहता है. मन अनभीष्ट विषयों में प्रवृत्त हो रहा हो, तो वायु ही उसका नियमन करता है. वही अभीष्ट विषयों में प्रवृत्त हो तो वायु उसका प्रवर्तन करता है. वायु ही सभी इन्द्रियों को अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त रखता है.

वायु प्रकोप का कारण

अधिक मात्रा में अन्न का सेवन करने से पित्तादि दोष तथा पुरीषादि मल वायु के मार्ग एवं संचरण में बाधा उपस्थित करते हैं, जिससे उसका संचय और वृद्धि होकर प्रकोप होता है. वायु प्रकोप के मुख्य कारण निम्नांकित हैं.

कषाय, कटु, तिक्त, स्वल्प, रूक्ष तथा लघुअन्न खाने से, पूर्व दिशा की वायु का सेवन करने से, अधिक जागने से, जल में अधिक तैरने से, आघात लगने से, परिश्रम करने से, शीत लगने से, उपवास करने से, अधिक मैथुन करने से, रसादि धातुओं का क्षय हो जाने से, पुरीष एवं मूत्र आदि वेगों को रोकने से, कामातुर रहने से, शोक से, चिन्ता से, भय से, अधिक रक्त निकल जाने से, रोगों के प्रभाव से अधिक मांस का क्षय हो जाने से, अधिक वमन या अधिक विरेचन से, आमदोष से, वर्षाकाल में दिन एवं रात के तीसरे भाग में, अन्न पच जाने पर और शीतकाल में वायु बलवान होकर शरीर के रिक्त स्रोतों को भर कर समस्त शरीर में अथवा शरीर के किसी एक अंग या एक से अधिक अंगों में अनेक प्रकार की व्याधियां उत्पन्न कर देता है.

उक्त कारणों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वायु प्रकोप के दो मुख्य कारण हैं - रूक्ष अन्नपान के सेवन से धातुओं के क्षय होने से और वायु मार्ग अवरुद्ध होने से. इस प्रकार इतर दोषों की अपेक्षा प्रकोप का बाहुल्य होने से वात का प्रकोप एवं तत् जन्य रोग अधिक होते हैं. वायु में योग होने पर सयुंक्त दोष के गुण-कर्मों को ग्रहण (वहन) करने का इसमें प्रवल स्वभाव है. इस संयोगवश वह दोषों के कार्य करता है, जैसे दिन में चलने वाली वायु सूर्य के प्रभाव में होने के कारण गर्मी का प्रसार करता है और रात में चंद्रमा के संसर्ग में आने के कारण उसका आह्लादक शीत गुण तथा तज्जन्य कर्म करता है. इसी तरह आन्तरिक वायु पित्त के साथ संबद्ध होने पर दाहादि पित्त कर्म करता है और वही कफ़ का अनुबन्ध होने पर शीत आदि कफ़कृत कर्म करता है.

वायु के प्रकोप-स्वरूप

पित्त और कफ़ के गुण शरीर में वृद्धि को प्राप्त होते हैं,तब इन दोनों दोषों की वृद्धि होती है. परन्तु वायु के प्रकोप स्वरूप कुछ भिन्न हैं. जब हम कहते हैं कि वायु की वृद्धि या प्रकोप हुआ है, वस्तुतः उस काल में स्वयं वायु की वृद्धि नहीं होती, अपितु शरीर के एक भाग में सम्पूर्ण शरीर में रूक्षत्वादि गुणों की वृद्धि हो जाती है. वायु का प्रभाव तो वही रहता है, परन्तु सम्पूर्ण शरीर में अपने प्राकृत कर्म करने के लिए संचरण करता हुआ वायु जब रूक्षत्वादि अवयवों, स्रोतों या आशयों में पहुंचता है, तो अपने स्थान संश्रय के लिए अनुकूल परिस्थिति पाकर वहीं स्थिर हो जाता है. परिणामस्वरूप वैसे ही विकारों को जन्म देता है.

इसके विपरीत जिन आहारौषध - द्रव्यों, विहार, देश एवं काल को वायु का प्रशमन करने वाला कहा जाता है, वे भी साक्षात् वायु को शान्त करते हों, सो बात नहीं. किन्तु शरीर के अवयवों के सम्पर्क में आकर वे उन्हें (शरीर अवयवों को) स्निग्ध, गुरु, उष्ण, मृदु, पिच्छिल तथा घना बना देते हैं. अपने प्राकृत कर्म करने के लिए शरीर में विचरण करता हुआ वायु जब इन गुणों वाले अवयवों को प्राप्त होता है, तो ये गुण उसके विपरीत होने से वायु इनमें स्थिर नहीं होने पाता. इन गुणों के पोषक आहारादि का नित्य सेवन करने के परिणामस्वरूप शरीर के अवयवों में भी इन गुणों का समत्व होता है, जिसके कारण ऐसे शरीर में वायु का प्रकोप होना संभव नहीं होता. ऐसी स्थिति में वायु विकार होने की संभावना नहीं रहती.

वायु का गुण

वायु की गणना शीत-गुण द्रव्यों में की गई है. वायु के प्रधान गुण निम्न हैं - रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद और खर. इन गुणों में भी रूक्ष गुण मुख्य है. शरीर के क्लेद और स्नेह को शुष्क करना वायु का स्वभाव है. वातारब्ध प्रकृति या विकृति (रोग) दोनों में वायु का यह गुण मुख्य रूप से लक्षित होता है. दोष-संशोषण गुण कहिए या रूक्ष गुण, इन दोनों का परिणाम यह होता है कि बाह्य द्रव्य उत्तरोत्तर घना होकर पिण्ड रूप प्राप्त करता जाता है. वायु के इस विकार को 'वर्त' नाम दिया गया है.

पुरीषादि द्रव्यों का वर्तुली भाव, शोषण के परिणामस्वरूप पिण्ड बन कर गोलाकार हो जाना ही वर्त है. उदाहरणार्थ - महास्रोत में मल की ग्रन्थियां बनती हैं, साथ ही वायु का भी अवरोध होकर उसके संचय, वृद्धि और प्रकोप के लक्षण तथा विकार उत्पन्न होते हैं.

वर्तुलीभाव यदि यकृत पित्त का वहन करने वाले पित्तप्रेषक (बाइल डक्ट) में हो तो शुष्कीभूत पित्त की अश्मरी बनती है. पिण्डीभाव मूत्रयंत्र में हो तो मूत्र के अन्तर्गत द्रव्यों की सिकता (रेती), शर्करा या अश्मरी बनती है. इनमें शुष्कता का कारण वायु ही है.

रसादि धातुओं पर वायु का प्रभाव

धातुओं के आशयों में तथा शरीर के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों में उनके पोषण के लिए रस धातु को पहुंचाने वाले स्रोत (रसवह स्रोत) वायु की क्रिया से न्यूनाधिक समय के लिए जाएं, तो धातुओं की पुष्टि आदि के लिए उपयुक्त रसधातु, ओज, ऑक्सीजन इत्यादि की प्राप्ति पर्याप्त मात्रा में न होने से धातु तथा अंग-प्रत्यंग क्षीण और बलहीन होकर रोगग्रस्त हो जाते हैं.

रसवह स्रोत संकुचित होने से रस के शरीर में विक्षेपण का कार्य जिस व्यान वायु का है, उसके मार्ग में अवरोध होने से उसका प्रकोप होता है. प्रकुपित होकर वह अपना प्राकृत कर्म रस-विक्षेपण अधिक बलपूर्वक करता है. यही शरीर में हाई ब्लडप्रेशर, भ्रम, शिरोरोग इत्यादि के रूप में प्रकट होता है.

प्रायः रोगों में वायु की क्रिया स्रोतों पर होती है. स्रोतों का वातजनित दुष्टि का परिणाम यह होता है कि उनके बाह्य द्रव्य का अभिवहन ठीक से नहीं हो पाता.

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि वायु के अनेक गुणों में एक 'बहुगुण' है. क्योंकि वायु द्वारा उत्पन्न होने वाले स्वतन्त्र या परतन्त्र रोगों की संख्या अन्य दोषों की अपेक्षा बहुत बड़ी है. इसी से वायु में 'बहुगुण' की कल्पना की गई है.

धातुओं में कुपित वायु से होने वाले विकार

रक्तगत वायु

जब रक्तगत वायु कुपित होता है तो सम्पूर्ण शरीर में दाहयुक्त तीव्र पीड़ा, वर्ण में विकृति, कृशता, भोजन में अरुचि, शरीर में फुंसियां और आहार का स्तम्भ (अनाह) होता है.

मांसगत वायु कुपित होने से शरीर में भारीपन, व्यथा, स्तब्ध, पीड़ा और डण्डे से पिटा हुआ-सा महसूस होता है.

मेद में वायु कुपित होता है तो उक्त मांसगत वायु के लक्षण और मंद-मंद पीड़ा से युक्त ग्रंथियां तथा व्रण उत्पन्न हो जाते हैं.

अस्थियों में वायु के प्रकोप से अस्थियों के पोरों में टूटने या फटने की-सी पीड़ा, सन्धियों में शूल, बल एवं मांस का क्षय, निद्रानाश और निरन्तर पीड़ा रहती है.

मज्जा में वायु कुपित होता है तब

हमेशा वेदना रहती है.

शुक्र में वायु के प्रकोप से शुक्र शीघ्र स्खलित हो जाता है अथवा प्रयत्न करने पर भी स्खलित नहीं होता. उसके द्वारा जो गर्भ ठहरता है, उसका स्राव या पात हो जाता है.

त्वचागत वायु के प्रकोप में त्वचा रूक्ष, फटी-सी, स्पर्शाज्ञान, पतली, काली तनी-सी तथा लाल-सी हो जाती है और सूई चुभने जैसी पीड़ा होती है.

कोष्ठगत वायु के प्रकोप में मूत्र एवं पुरीष में रुकावट, अण्डवृद्धि, हृद्रोग, गुल्म, अर्श तथा पार्श्वशूल होता है.

जब **आमाशय में वायु** का प्रकोप होता है तब निम्न लक्षण होते हैं – हृदय, पार्श्व, उदर तथा नाभि में वेदना, तृष्णा, उद्गारों की अधिकता, विसूचिका, कास, कण्ठशोष तथा श्वास.

गुदा या मलाशय, बस्ति, गर्भाशय में स्थित वायु निम्नविकारों को उत्पन्न करती है. अधोवायु, मूत्र, अपान वायु एवं पुरीष में रुकावट, शूल, अफरा, पथरी, शर्करा और जंघा, ऊरु, त्रिक, पार्श्व तथा पीठ में वेदना.

साध्य-असाध्य वायुरोग

हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेपक, पक्षाघात तथा अपतानक नामक वात रोग चिरकाल तक प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर शांत हो जाते हैं, परन्तु कभी-कभी नहीं भी शान्त होते. भावमिश्र का कथन है कि उक्त रोग नवीन एवं उपद्रव रहित ही शांत होते हैं, अन्यथा नहीं.

जिसका शरीर सूज गया हो, त्वचा शून्य हो गई हो, शरीर कृश अथवा कान्तिहीन हो गया हो, जो कम्प एवं अफरा से और भीतरी वेदना से पीड़ित हो रहा हो, उस व्यक्ति को वात व्याधि मार डालती है अर्थात् वह बच नहीं सकता.

यदि वायु अपने मार्गों में गतिशील हो, अपने स्थान में स्थित हो और अपनी स्वाभाविक अवस्था में हो तो वह मनुष्य स्वस्थ एवं नीरोग रह कर सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रह सकता है.

बड़े-बड़े वातवर्द्धक कारणों में अत्यन्त बलवान वायुमन्या एवं पीठ की सिरा, स्नायु एवं कण्डराओं को संकुचित कर बाहर या पीछे की ओर जब रोगी को झुकाने या नवाने लगता है तो यह 'ब्राम्हायाम' वात रोग असाध्य हो जाता है.

वायु रोगों का उपचार बस्ति द्वारा

वायु अति प्रकुपित हो गया हो अर्थात् कुपित हो स्वयं तथा इतर दोषों, मलों और धातुओं को दूषित कर उनके द्वारा रोगोत्पत्ति कर रहा हो तो उसके शमन के लिए, उसे पुनः समावस्था में लाने के लिए बस्ति को छोड़ कर और कोई उपचार नहीं है. कहा है –

'बस्तिर्वातहराणाम श्रेष्ठः'

वातहर उपचारों में बस्ति सर्वोपरि है. बस्ति इस प्रकार वायु और इतर दोषों की भी श्रेष्ठ चिकित्सा होने से ही कई आचार्य कहते हैं कि वात रोगों की आधी चिकित्सा तो बस्ति ही है. कई आचार्य तो इससे भी बढ़ कर कहते हैं – 'नहीं, बस्ति ही सम्पूर्ण (एकमात्र) चिकित्सा है.'

तीनों दोषों के प्रकोप में वायु ही मुख्य कारण है. वह प्रकुपित होकर शरीर को नष्ट-भ्रष्ट करने की स्थिति में पहुंच गया हो तो भी, बस्ति के बिना अन्य कोई क्रिया उसके वेग को शान्त करने में समर्थ नहीं होती. जैसे वायु के वेग से आहत समुद्र की लहरों का वेग समुद्र तट पर आकर रुक जाता है, उसी प्रकार बस्ति के समक्ष शारीरिक वायु भी सर्वथा परास्त हो जाता है.

बस्ति का यथाविधि उपयोग किया जाए तो शरीर की पुष्टि, वर्ण, बल, आरोग्य और आयु की वृद्धि होती है.

साबुन के जल की बस्ति अहितकर

प्रायः वैद्य आधुनिकों का अनुसरण कर साबुन के जल की बस्ति देते हैं, परन्तु साबुन अत्यन्त रूक्ष द्रव्य है. कई विशेषज्ञ इस रूक्षता के कारण ही अच्छे साबुन के भी उपयोग का निषेध करते हैं. जब त्वचा पर साबुन रूक्षता का यह अनिष्ट परिणाम होता है तो पक्वाशय की मृदु कला पर इसके अहित प्रभावं की कल्पना अनायास ही की जा सकती है.

रूक्ष गुण होने से साबुन का व्यवहार दूषणीय इसलिए है कि वायु का प्रधान गुण रूक्षता होता है और उसका प्रधान उत्पत्ति स्थान पक्वाशय है. साबुन सदृश्य रूक्ष द्रव्य का उपयोग इस स्थान पर किया जाएगा तो परिणाम में वायु की उत्पत्ति सविशेष होगी.

अतः आयुर्वेद मत से सोप वाटर गर्हित है. अन्य योजना सुलभ न होने पर दशमूल क्वाथ, एरण्ड तेल तथा श्रीवास तेल (टरपेन्टाइन) जैसे वात के अनुलोमन व प्रशमन द्रव्यों का उपयोग सरलता से किया जा सकता है. इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि शास्त्रोक्त निरूह बस्ति का भी अतियोग या अनुवासन बस्ति के बिना उपयोग वातवर्द्धक माना गया है.

स्निग्ध द्रव्यों का सेवन

रूक्ष, शीत, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद और खर ये वायु के प्रधान गुण हैं. जिन द्रव्यों में इन गुणों के विपरीत स्निग्ध-उष्ण आदि गुण होते हैं, उनके सेवन से वायु का प्रशमन होता है. इन गुणों में भी रूक्ष मुख्य है, इसलिए वायु की चिकित्सा में रूक्षता नष्ट करने वाले स्निग्ध द्रव्यों का सेवन प्रधान रूप से करना चाहिए. परन्तु ये द्रव्य उष्ण होने चाहिए अथवा उनके साथ उष्ण द्रव्यों का आहार या औषध के रूप में संयोग करना चाहिए. कारण, वायु का दूसरा मुख्य गुण शीत है.

शीत-गुण (द्रव्यों) के कर्मों में एक गुण स्तम्भन भी है. स्तम्भन का अर्थ है शरीर या उसके किसी भी अवयव में होने वाली चेष्टा (कर्म) को रोक देने वाला. वात-प्रभृति शीत द्रव्यों की यह स्तम्भन क्रिया संधियों, शारीरिक स्थूलता या अणुस्रोतों तथा मांसपेशी आदि पर देखी जाती है.

प्रकोप से पूर्व ही वायु-उपचार की आवश्यकता

यद्यपि तीनों दोषों को स्वस्थवृत्त के आचरण द्वारा सम अवस्था में रखना आवश्यक है, तथापि तीनों दोषों में भी वात को समावस्था में रखने पर विशेष ध्यान देना चाहिए. क्योंकि कुपित होने पर वायु अपने गुणों के कारण अल्पकाल में ही गंभीर अवस्था में पहुंच जाता है.

वायुरोगों की औषधीय चिकित्सा

वात व्याधि की सामान्य चिकित्सा है – मधुर, अम्ल, लवण तथा स्निग्ध द्रव्यों का सेवन, नस्य, उष्ण द्रव्यों तथा निद्रा का सेवन, गुरु द्रव्य, सूर्य की किरणों (धूप) का सेवन, स्वेदन, सन्तर्पण आहारादि से तृप्ति, अग्नि कर्म, जल का सेवन, क्रोध, अभ्यंग तथा मर्दन, ये सब क्रियाएं वायु को शान्त करती हैं.

प्रसारणी तेल – प्रसारणी की जड़, पत्र एवं शाखा, ५ सेर ले कर कूट लें और उसे एक द्रोण जल में पकाएं. चतुर्थांश रहने पर छान लें. उस क्वाथ को १०० पल (५ सेर) तिल के तेल में डालकर धीमी आग पर पकाएं. तत्पश्चात् १०० पल कांजी, १०० पल दही का पानी डाल कर क्रमशः पकाएं और अन्त में तेल से चार गुना शुद्ध गो दुग्ध डाल कर और उसमें तेल से अष्टमांश निम्न द्रव्यों का कल्क डाल कर पाक करें. कल्क द्रव्य- चित्ता, पिप्पलामूल, मुलेठी, सैंधव नमक, बालवच, सोया, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, प्रसारणी की जड़, जटामांसी, लालचन्दन, एरण्डमूल, बलामूल तथा सोंठ.

यह तेल पीने, नस्य, शिरोबस्ति, अभ्यंग तथा स्वेदन में प्रयोग करने से समस्त वात व्याधियों को नष्ट

करता है.

वात जनित कुछ प्रमुख रोगों का उपचार निम्नानुसार किया जाता है.

ऊर्ध्ववात शमन - सोंठ का चूर्ण १० भाग, विधाराचूर्ण १० भाग, हरण चूर्ण ३ भाग, घृतभृष्ट हींग ४ भाग, सैंधव नमक १ भाग तथा चिन्ता का चूर्ण एक भाग. सब को एक साथ पीस कर रख लें. इसके सेवन से 'ऊर्ध्ववात' का नाश होता है.

मांसगत एवं मेदोगत वायु प्रकोप में विरेचन एवं निरूहण बस्ति और मज्जागत वायु के कोप में स्नेह पान तथा स्नेहों का अभ्यंग करना चाहिए.

केवड़ा, गंगेरन या कंधी के क्वाथ एवं कांजी में परिपक्व तेल का अभ्यंग मज्जागत वायु प्रकोप का शमन करता है.

शुक्रगत वायु के शमन के लिए हर्ष, प्रसन्नता या सौमनस्य और बल व शुक्र को बढ़ाने वाले आहारों का सेवन करना चाहिए. कोष्ठगत वायु के प्रकोप में पाचक रसों एवं चूर्णों का प्रयोग करें, विशेषतः केवल दूध का प्रयोग करें.

आमाशयगत वायु विकार को दूर करने के लिए पहले लंघन (उपवास) फिर दीपन-पाचन औषध का प्रयोग करना चाहिए. इससे भी शान्ति न हो तो वमन व तीक्ष्ण विरेचन का प्रयोग करें और सभी दोष शांत होने पर मूंग, जौ तथा शालिधान्य का चूर्ण लें.

आमदोष युक्त वायु का शमन रोहिष अथवा खस, हरड़, कचूर तथा पोहकरमूल, गिलोय, देवदारू तथा सोंठ का क्वाथ विशेष उपयोगी है.

सम्पूर्ण शरीर में कुपित अथवा शरीर के किसी एक भाग में कुपित वायु तेल का अवगाहन (तेल पूर्ण टब में बैठना) करने से नष्ट हो जाती है, जैसे जल के प्रवाह को पर्वत रोकता है.

सर्वश्रेष्ठ औषधियां

बबूल की छाल अथवा लाल लकड़ी का बुरादा, असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावर, गोखरू, रासना, काली निसोत, सोया, कचूर, अजवायन तथा सोंठ का चूर्ण सभी समभाग. समस्त चूर्ण के समान शुद्ध गुग्गल और गुग्गल के अर्ध भाग गोघृत थोड़ा-थोड़ा घृत देकर भली-भांति कूट लें, एक लाख चोट लगाएं.

सेवन विधिः मात्रा १/२ तोला सुवह, अनुपान-जल, उड़द आदि का यूष अथवा उष्ण जल, दूध या मांस रस. यह औषधि कटिग्रह, जानुग्रह, हनुग्रह, बाहुस्थित वात, स्नायुगत वात, कोष्ठगत वायु, वात कफ़जनित रोग, वातज हृदय रोग, योनिगत वातज रोग, अस्थि मग्न, विद्ध, खंजता आदि सभी वात व्याधियों में अत्यन्त उपयोगी औषधि है. इसे पुराने चिकित्सक सर्वश्रेष्ठ औषधि मानते हैं. इसका नाम 'त्रयोदशांग गुग्गुल है.

वातज रोगों में लहसुन प्रयोग

लहसुन कल्क तिल-तेल एवं सैंधव लवण के साथ मिलाकर खाने से सभी प्रकार के वातजरोग तथा विषम ज्वरों का शमन होता है.

लहसुन के कल्क को दूध, तिल-तेल, घृत, मांस, शालिधान्यों के भात के साथ दो-दो तोला की मात्रा में सात दिन तक खाने से सभी वात व्याधियों का शमन होता है.

परिपक्व लहसुन की गुलिकाओं को छील कर और फाड़ कर भीतर के हरे से अंकुर को निकाल दें तथा उसकी तीव्र गन्ध के विनाशार्थ रात्रि भर तक्र में रखें. प्रातः काल धो कर स्वच्छ कर लें और शिला पर पीस कर कल्क बना लें. उसमें काला लवण, अजवायन, घृत में भुनी हींग, सैंधव लवण, सोंठ, मरिच, पीपल तथा जीरा का चूर्ण पंचमांश मिला कर तथा तिल का तेल चतुर्थांश मिला कर रख लें. प्रातः काल दोषादि का विचार कर १ तोला भर खाकर ऊपर से एरण्ड का क्वाथ पीएं. इसे **'रसोनाष्टक योग'** कहते हैं. यह समस्त शरीर व्यापी अथवा एकांगी वात व्याधियों को नष्ट करता है.

लहसुन के सेवन काल में मद्य, मांस तथा अम्ल रसों का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए. परिश्रम, धूप, क्रोध, अधिक जलपान, गुड़, मैथुन का सर्वथा त्याग करना चाहिए.

अतिसार, प्रमेह, पाण्डुरोग, अरोचक, गर्भ, मूर्च्छा, अर्श, रक्तपित्त, शोष, राजयक्ष्मा तथा छर्दि से पीड़ित व्यक्तियों को लहसुन का सेवन नहीं करना चाहिए.

वात व्याधि में पथ्यापथ्य

वात रोग में रोग और व्यक्ति के बलाबल के विचार से पथ्य देना चाहिए. भयानक रोगों में अन्न बंद कर दें. वात विकार प्रबल होने पर यव मण्ड, सागू, मूंग का यूष या अन्न मण्ड देना चाहिए. वात जनित विकार शांत होने पर पुराना शाली, कुलथी का यूष, बकरी का मांस यूष, कुक्कुट मांस यूष देना चाहिए. पुष्टिकर द्रव्य-घृत, गाय का दूध, आम, खजूर, बलकारक औषध देना चाहिए. पुष्टिकारक पथ्य देना उत्तम है.

वायु विकार से उत्पन्न रोग

कुपित वायु से होने वाले रोगों की कुल संख्या ८० है, जिनके नाम निम्न हैं.

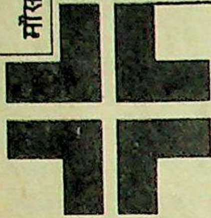
सिराग्रह या शिरोग्रह, किसी एक अंक की कृशता, अतिजृम्भा (जंभाई), हनुग्रह, जिह्वास्तम्भ, गदगदत्व, मिन्मिनत्व, मूकता, वाचालता, प्रलाप, रसाज्ञान, बाधिर्य, कर्णनाद, स्पर्शाज्ञान, अर्दित, मन्यास्तम्भ, बाहुशोष, अपबाहुक, विश्वाची, ऊर्ध्ववात, आध्मान, प्रत्याध्मान, वाताष्ठीला, प्रत्यष्ठीला, तूनी, प्रतितूनी, विषमाग्नि, आटोप,

पार्श्वशूल, त्रिकशूल, मुहुर्मूत्रण, मूत्रनिग्रह, मलगाढ़ता, मलाप्रवृत्ति गृध्रसी, कलायखंजता, खंजता, पंगुता, क्रोष्टुशीर्षक, खल्वी, वातकण्टक, पादहर्ष, पाददाह, दण्डाक्षेप, वातपित्तकृताक्षेप, दण्डापतानक, अभिघाताक्षेप, अन्तरायाम, बाह्यायाम, धनुर्वात, कुब्जक, अपतंत्रक, अपतानक, पक्षाघात, सर्वांगवात, कम्पन, स्तम्भ, व्यथा, तोद, भेद, स्फुरण रौक्ष्य, कृशता, कृष्णता, शीतता, रोमहर्ष, अंगमर्द, अंगविभ्रंश, सिरासंकोच,

अंगशोष, भीरुत्व, मोह, चलचित्तता, निद्रानाश, स्वेदनाश, बलहानि, शुक्रक्षय, रजोनाश, गर्भनाश तथा भ्रम.

ये ८० रोग वायु का संयोग होने से तथा शास्त्रों एवं लोक में प्रसिद्ध होने से 'वातव्याधि' नाम से कहे जाते हैं. ज्वर एवं अतिसार आदि अन्यान्य रोग भी वातजनित होते हैं, परन्तु वे पित्त एवं कफ़ से भी उत्पन्न होते हैं, अतः वे 'वातव्याधि' रोग नहीं कहे जाते. क्योंकि वातव्याधि या वातरोग वे ही कहे जाते हैं जो केवल वायु से ही हों अर्थात् वायु के बिना न हों.

मौसमी सब्ज़ी



भिण्डी

- विवेकभारती

रेशेदार सब्ज़ियों में भिण्डी का अपना अलग ही महत्व है. गर्मी की ऋतु में सिंचाई करके तथा वर्षा ऋतु में मक्का, ज्वार, बाजरा के साथ इसको बोकर इसकी खेती क़रीब-क़रीब सारे देश में की जाती हैं.

इस का पौधा प्रायः ४ से ६ फुट तक ऊंचा होता है. पत्ते दंतुर, चमकीले और कपास के पत्तों की तरह के रहते हैं. फूल सफ़ेद एवं पीले रंग के और कहीं-कहीं पीले और सफ़ेद में हल्की लाली वाले होते हैं. इसकी फलियां ६ से ९ इंच तक लम्बी और आधा से एक इंच तक ६ या ८ पहटल में चौड़ी होती है. यह पतली और नुकीली होती जाती हैं. इसकी किसी-किसी जाति विशेष के पौधों में पौधों, डण्ठलों और फलों पर नन्हें-नन्हें रोएं होते हैं. जंगली भिण्डी की भी तीन-चार क़िस्में होती हैं, पर उनकी फलियां खाने के काम में नहीं ली जातीं. कच्छ में माखनियों भिण्डो नामक एक विशेष किस्म की भिण्डी उत्पन्न होती है. इसके पौधे पर मक्खन के समान मुलायम रोएं होते हैं. इसकी सब्ज़ी बड़ी रुचि से खाई जाती है.

गुण धर्म

भिण्डी की कच्ची फलियां चिकनी, लुआबदार, पौष्टिक, कामोद्दीपक और मूत्रल होती हैं. गरम स्वभाव वालों के लिए पेचिश, आंत्रव्रण, सुजाक और गरम खांसी में लाभदायक है. पेचिश और सुजाक में इसका लुआब निकाल कर पिलाना गुणकारी होता है. कोमल भिण्डी जिसमें कच्चे बीज प्रारम्भिक अवस्था में हों, उसको सुखा कर चूर्ण बनाकर खिलाने से शुक्र प्रमेह तरलता स्थिति में बन जाती है. मिश्री के साथ इसका काढ़ा बनाकर पिलाने से मूत्रकृच्छ, मूत्रावरोध, पथरी तथा सुजाक में भी यह हितकारी माना जाता है.

खांसी, मन्दाग्नि, वात व्याधि वाले तथा पीनस के रोगियों के लिए इसका उपयोग हानिकारक रहता है. सब्ज़ी में हल्दी, अदरक और गरम मसाले के प्रचुर प्रयोग से वह सुपाच्य बन जाती है.

विशेष उपयोग

इसके उपयोगी अंग हैं- कच्ची फली, बीज और मूल तना. फली की सब्ज़ी, कढ़ी, अचार बनाई जाती है. ग्रामीण इलाकों में जब पर्याप्त मात्रा में यह पैदा होती है, तब इन्हें काटकर सुखा लेते हैं. जब सब्ज़ी की कमी हो तब इसे काम में ले सकते हैं. तलकर नमकीन व्यंजन के रूप में भी काम में लिया जा सकता है. तने से रेशा निकाला जाता है जो सफ़ेद होता है, वह मज़बूत भी बहुत रहता है. इसकी जड़, बीज पत्ते औषधियों के काम आते हैं. डण्ठल जलाने के लिए ही नहीं, बल्कि दीवारों पर छाया के लिए भी काम आते हैं.

आज भी देहातों में कई बीमारियों में इसको काम में लाते हैं.

भिण्डी और उसके बीजों का चेप निकालकर मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्र संस्थान की गर्मी मिट जाती है. मूत्रकृच्छ के रोगियों के लिए यह ५ से ७ माशे तक पिलानी चाहिए.

गर्मी में दाह हो रही हो तो भिण्डी और उसके बीजों का शरबत भी पिलाना ठीक रहता है. कब्ज़ रहता हो तो उसमें सोंठ का चूर्ण मिला लें.

पुरुषार्थ वृद्धि के लिए भिण्डी के तने की जड़ों को कूट-पीस कर उनका घी, शक्कर मेवा के साथ पाक बनाकर गरम दूध के साथ लेना चाहिए. शीत ऋतु में यह प्रयोग ठीक रहता है. कब्ज़ हो जाए तो हरड़ चूस लें.

भिण्डी की सूखी जड़ के चूर्ण को मिश्री मिले गरम दूध के साथ फांकने से शीघ्र लाभ होता है. छाती में जलन हो तो भिण्डी के ताज़े पत्तों की ठण्डाई और बीजों को पीसकर मिश्री के साथ पिलाना चाहिए.

दुधारू गायों को इसकी नरम फलियां खिलाने से दूध में बढ़ोतरी होती है.

इस तरह भिण्डी न केवल स्वादिष्ट सब्जी है, बल्कि एक रोग निरोधक वनस्पति भी है.

नेनुआ

नेनुआ वर्षा के आरंभ में और माघ मास में बोया जाता है. तुरई की अपेक्षा इसकी फसल १५ दिन देर से उतरती है.

नेनुए की बेल खूब फैलती है. उस पर गहरे पीले रंग के फूल आते हैं. इसके फलों को 'नेनुआ' या 'घिया तोरी' कहते हैं.

गुण-धर्म

नेनुआ मधुर, शीतल, वातल, अग्निदीपक तथा कफकारक एवं दमा, खांसी, बुख़ार तथा कृमि को नाश करनेवाला है. यह ज्वररोगी के लिए भी हितकारी माना गया है. यह रक्तपित्त और वायु को मिटाता है तथा पित्त भी नष्ट करता है.

उपयोग

नेनुआ सेंककर, उसका रस निकालकर बच्चे को पिलाने से छाती का दर्द मिटता है.

नेनुए के पत्तों का दो तोला रस पीने से तथा पत्तों को पीसकर, रस निकालकर, पेट की सूजन पर लगाने से 'शफोदर' नामक उदररोग मिटता है.

नेनुए के हरे पत्तों को कूटकर, उसका एक सेर स्वरस निकालकर, कलई वाले बर्तन में रखकर उसमें गाय अथवा बकरी का अत्यंत पुराना घी एक सेर मिलाइए. धीमी आंच पर रस जलाकर घी सिद्ध कर लीजिए. इसके बाद उसमें शुद्ध मोम पांच तोला मिलाकर, मरहम बनाइए और एक डिब्बे में भरकर रख लीजिए. यह मरहम बद, फूले हुए फोड़े, गर्मी का उपदंश, घाव-व्रण आदि पर लगाने से जल्दी रुझान आती है.

'मन' एक विश्लेषण

- डॉ. रामरतन सिंह 'भ्रमर'

मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों ने मन के स्वरूप को समझने के लिए अनेकानेक वाद चलाए हैं. उन्हीं को आधार बनाकर मन की पर्त-दर-पर्त की खोज इस लेख में की गई है.

सिगमंड फ्रॉयड पेशेवर डॉक्टर थे. उन्होंने कुछ ऐसे आविष्कार किए जिनके द्वारा वह अपने रोगियों का इलाज़ किया करते थे. मानसिक रोगों की चिकित्सा करते हुए फ्रॉयड ने अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को जन्म दिया और वे मानसिक रोग चिकित्सा विज्ञान के जन्मदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं.

मानव व्यवहार तथा व्यक्तित्व को आधार बना कर फ्रॉयड ने चार मूलभूत सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं - १. अवचेतन, २. अन्तर्द्वन्द्व और दमन, ३. शिशुकालीन प्रभाव, ४. काम (सेक्स) का महत्व.

फ्रॉयड और उनके साथियों (एडलर और जुंग) के मनोविश्लेषण का आधार अवचेतन मन है.

मन की तीन स्थितियां

मानसिक जीवन तीन भागों में बांटा जा सकता है - चेतन, अर्द्धचेतन और अवचेतन. चेतन मन का दायरा विचारों और भावनाओं तक सीमित है. चेतन में अनुपस्थित बातें अस्थायी रूप से अर्द्धचेतन में रहा करती हैं. अवचेतन मन इन दोनों से भिन्न है. यही व्यक्ति की सभी मानसिक प्रेरणाओं और संघर्षों का ख़ज़ाना है. अवचेतन मन मानसिक जीवन को बहुत प्रभावित करता है. समाज द्वारा तिरस्कृत और अमान्य प्रेरणाएं अवचेतन से चेतन मन में आने की चेष्टाएं करती हैं और 'अहं' उन्हें रोकता है. फलतः अन्तर्द्वन्द्व होता है और यह द्वन्द्व काफी गंभीर रहा, तो स्नायु विकार या उन्माद (न्यूरेसिस) पैदा हो जाता है.

फ्रॉयड की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति में ऊर्जा का स्रोत होता है. इस ऊर्जा स्रोत को वह कामवासना (लिबिडो) की संज्ञा देता है. व्यक्तियों के स्व 'सेल्फ' में तीन तत्व रहते हैं -

(क) मूलसंवेग अर्थात (इड),
(ख) अहं (ईगो) और
(ग) परम अहं (सुपर ईगो)

मूल संवेग यानी 'इड' व्यक्ति की पशु-प्रवृत्ति है. वह अवचेतन में स्थित होती है और कामवासना को शान्त करने का प्रयत्न करती है. उसकी इच्छा पूरी न होने पर मानव बचपन में ही निराश हो जाता है. इड की ऊर्जा शक्ति को जब निकलने का मार्ग नहीं मिलता, तो उस शक्ति का प्रवाह 'ईगो' और 'सुपरईगो' की ओर मुड़ जाता है. 'अहं' व्यक्ति का विवेकयुक्त 'स्व' है. यह 'इड' की पशुप्रवृत्तियों का दमन करते हुए उन्हें अवचेतन में क़ैद रखता है. वह मूल संवेगों को किसी हद तक अभिव्यक्ति का अवसर देता है.

मन एक गूढ़ विषय है, पर वह विचारों का अथाह सागर भी है, तभी तो हम विचार बुरे करें या अच्छे, उनका आधार हमारा मन ही होता है. विचारों के भी कुछ मूलभूत सिद्धांत हैं, इन्हीं सिद्धांतों का विश्लेषण प्रस्तुत लेख में है.

परम अहं (सुपरईगो) चेतना के समान नैतिक विचारों का संग्रहालय होता है. 'परम अहं' और 'इड' में निरंतर संघर्ष होता रहता है. यह इस संघर्ष को दूर करने का यत्न करता है.

फ्रॉयड की मान्यता है कि शिशु की कामवासना अनियंत्रित रहती है. आत्मरति की अवधि में नन्हा शिशु अपने प्रति ही आकर्षित हो जाता है. किशोरावस्था के साथ यह काम-वासना विरुद्ध सेक्स के प्रति केन्द्रित हो जाती है. फ्रॉयड के अनुसार अहं अप्रिय कामनाओं को अवचेतन में ढकेल देता है और उन्हें उठने नहीं देता. ये यौन सम्बन्धी दायित्व बार-बार बाह्य अभिव्यक्ति पाने का प्रयत्न करते हैं. निद्रावस्था में अहं शिथिल हो जाता है.

गतिवाद (डायनामिज्म) -

प्रत्येक व्यक्ति अपने मूल संवेग (इड) और यथार्थता के बीच एक योजना बनाता है. दमन इसी योजना का फल है. अस्वीकृत और असामाजिक विचार इसी दमन क्रिया द्वारा अवचेतन में ढकेल दिए जाते हैं. दूसरी क्रिया है उदात्तीकरण की. इसके द्वारा काम-वासना को समाज द्वारा स्वीकृत दिशाओं की ओर मोड़ दिया जाता है. जैसे - सामाजिक कार्य, व्यापार, धर्म की ओर रुझान आदि. इस प्रकार 'अहं' 'स्व' की रक्षा करता है.

फ्रॉयड के अनुसार 'ईगो' की अपनी शक्ति नहीं होती. उत्तेजना से मुक्त करने के लिए, 'इड' से उसे शक्ति मिलती है. 'इड' की कुछ आज्ञाओं को मानने वाला मन का यह स्तर व्यक्तित्व के विकास के लिए बहुत उपयोगी होता है. 'ईगो' का विकास बहुत कुछ वातावरण से होता है. 'ईगो' को अवचेतन का ज्ञान नहीं होता. 'ईगो' शारीरिक सुखसुविधाओं को जुटाने में अपनी शक्ति का जितना कम उपयोग करता है, उतना ही अधिक वह अन्य मानसिक प्रवृत्तियों को सम्पन्न करने में रुचि लेता है.

सुपर ईगो - व्यक्ति का नैतिक आधार 'सुपर ईगो' होता है. यह आदर्शोन्मुखी होता है. इसका बीज बचपन में ही पड़ जाता है, जो परम्परागत मूल्यों की ज़मीन में उगता है.

फ्रॉयड के अनुसार जीवन का झुकाव विनाश की ओर नहीं निर्माण की ओर होता है. इस प्रकार मानव के विकास को लेकर फ्रॉयड के अवचेतन मन, कामवासना (सेक्स), स्वप्न इत्यादि विषयक सिद्धांतों ने व्यक्ति की चेतना में यह भावना भर दी है कि अधिकांश मानव समाज में व्यक्ति की सफलता और व्यवहार कुशलता अनेक विरोधी स्थितियों के अनुकूल बनाती है. हम सफलता के शिखर पर तभी पहुंच सकते हैं, जब कुछ परिस्थितियों के सामने झुक जायें, कुछ से समझौता कर लें, कुछ के विरुद्ध विद्रोह कर दें और कुछ से बचकर निकल जायें.

फ्रॉयड के 'मनोविश्लेषण' सिद्धान्त की प्रतिष्ठा के क़रीब दस वर्ष बाद उनके दो सहयोगी उनसे अलग हो गए. ये दोनों व्यक्ति थे अलफ्रेड एडलर और सी.जी. जुंग. इन्होंने स्वयं दो भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों की स्थापना की एडलर के सिद्धांत का नाम 'वैयक्तिक मनोविज्ञान' और जुंग के सिद्धांत का 'विश्लेषणात्मक

मनोविज्ञान' पड़ा. फ्रॉयड और इन दोनों की चिंतनधारा में मूल अंतर यह है कि काम (सेक्स) को ये दोनों इतना महत्व नहीं देते, जितना फ्रॉयड ने दिया है.

एडलर का सिद्धान्त है - व्यक्ति के निजी 'स्व' की प्रतिष्ठा और दूसरों के 'स्व' पर अधिकार की कामना. सत्ता हड़पने की इस कामना का प्रमुख कारण व्यक्ति की हीनभावना को मानता है. उसकी मान्यता है कि मानव जीवन, वास्तव में अपनी हीन भावना, अपने भीतर पाई जानेवाली कुछ कमज़ोरियों और ख़ामियों की पूर्ति करने की इच्छा से दूसरों पर अपनी श्रेष्ठता बताने के लिए संघर्ष करता है. इस तरह 'सत्ता की कामना' ही व्यक्ति की अनिवार्य इच्छा है.

एडलर का कहना है कि स्नायुविकार काम दमन से नहीं पैदा होता. उसका कारण है सत्ता या अधिकार की कामना का निष्फल होना. स्नायु विकार का निदान एडलर शिशु के जीवन में खोजता है. उसकी मान्यता है कि रोगी को सामान्य स्थिति में लाने के लिए यह पता लगाना ज़रूरी है कि शिशु काल में उसका अपने परिवार में क्या स्थान था और उसने किस ढंग का जीवन जिया. यदि उसे फिर उसी ढंग का जीवन बिताने दिया जाए, तो वह अपनी सामान्य स्थिति में लौट आयेगा.

स्वप्न सिद्धान्त में भी एडलर, फ्रॉयड से भिन्न मत रखता है. वह नहीं मानता कि स्वप्न दमित कामवासनाओं का परिणाम है. उनका मत है कि पुरानी समस्याओं का हल न खोज पाने के कारण अथवा भविष्य में पैदा होनेवाली समस्याओं की आशंका से स्वप्न आते हैं. स्वप्न में ये समस्याएं, यथातथ्य रूप में नहीं, प्रतीकात्मक ढंग से आती हैं.

इसी प्रकार जुंग भी मनोविश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के सिद्धांत को लेकर फ्रॉयड से भिन्न मत रखता है. जुंग काम (सेक्स) को अनेक रूपों में प्रकट होनेवाली शक्ति मानता है. उसकी मान्यता है कि शिशु में वह भूख के रूप में सामने आती है. बाद में वही काम वासना बन कर प्रकट होती है. जुंग अवचेतन मन को पशु प्रवृत्ति नहीं मानता. उसमें नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों का समावेश होता है. कुछ अंशों में व्यक्तिगत और कुछ अंशों में समूहगत. अवचेतन का समूहगत अंश परम्पराओं से प्राप्त जाति या वर्गगत प्रणाली का समावेश करता है.

स्नायु-विकार अथवा उन्माद जुंग की दृष्टि में उन मानसिक ग्रंथियों का परिणाम है, जिनका निर्माण तो बाल्यावस्था में हुआ जो आज भी मौजूद है. इसके साथ ही, मनुष्य की शक्ति से अधिक दबाव डालनेवाली वर्तमान परिस्थितियां भी आंशिक रूप से स्नायु-विकार पैदा कर सकती हैं. जुंग ने व्यक्तियों को तीन कोटियों में विभक्त किया है - अंतर्मुखी (इंट्रावर्ट) बहिर्मुखी (एक्स्टरोवर्ट) विसंयुज (एम्बिवर्ट). अन्तर्मुखी व्यक्ति अपनी काम चेतना को अंतर्मुखी बनाकर अपनी ही अनुभूतियों में डूबा रहता है. व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से ही वह अपने आप को वातावरण के अनुरूप बनाता है. बहिर्मुखी व्यक्ति, वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाते हुए बाह्यजगत में रुचि लेता है. विसंयुज व्यक्ति मध्यम मार्ग चुनता है. अर्थात् एक ही व्यक्ति परिस्थितियों के अनुरूप कभी अन्तर्मुखी और कभी बहिर्मुखी बन जाता है.

फ्रॉयड, एडलर और जुंग तीनों के सिद्धान्तों में भिन्नता भले ही हो, किंतु उनके चिंतन का आधार था व्यक्ति और केन्द्र था उसका मन.

अंत में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि चेतना एक मानसिक स्थिति है, जो सोते जागते मन-मस्तिष्क में प्रवाहमान होती रहती है. स्टाऊट का कहना है कि केवल उस समय को छोड़कर, जब हम निःस्वप्न निद्रा में रहते हैं. जेम्स ने चेतना की उपमा एक नदी से की है, जो निरंतर प्रवाहित होती रहती है. ऐसा नहीं होता कि मन में एक वृत्ति आई वह समाप्त हो गई; फिर वह मन शून्य रहा और कुछ समय बीतने पर दूसरी वृत्ति आई. प्रवाह नदी की तरफ़ लगातार चलता ही रहता है. हमारी मनोवृत्तियां एक जैसी नहीं होतीं, आप की मनोवृत्तियां आप के मन में हैं और मेरी मेरे मन में. हम उन्हीं मनोवृत्तियों का रूप व्यवहार में देखते हैं, जो चेतना प्रवाह में आती है. ●

अमृत वचन

योग

जो बहुत भोजन करता है उसका योग सिद्ध नहीं होता, जो निराहार रहता है उसका भी योग सिद्ध नहीं होता, जो बहुत सोता है उसका भी योग सिद्ध नहीं होता और जो बहुत जागता है उसका भी योग सिद्ध नहीं होता.

जो मनुष्य आहार-विहार में, दूसरे कर्मों में, सोने-जागने मे परिमित रहता है, उसका योग दुःखभंजन हो जाता है.

परोपकार

फल आने से वृक्ष झुक जाते हैं. नये बरसाती जल से भरे हुए बादल खूब फैल कर झुक जाते हैं; समृद्धियों के आने से सज्जन पुरुष नम्र हो जाते हैं - परोपकारियों का यह स्वभाव ही है.

भगवान

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्य इन छहों का नाम 'भग' है. ये सब जिसमें हो, उसे 'भगवान' कहते हैं. ●

लेखकों से निवेदन है

● 'आरोग्य संजीवनी' में प्रकाशन हेतु लेख, वैद्यकीय विचार, इत्यादि भेजते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि रचना की लिखावट साफ़-सुथरी व काग़ज़ के एक ओर ही हो, जिसमें हाशिया छोड़ना न भूलें.

● रचना के साथ टिकट लगा हुआ लिफ़ाफ़ा सही व पूरे पते व पिन कोड के साथ अवश्य भेजें. अन्यथा अस्वीकृति की स्थिति में रचना वापस न भेजकर नष्ट कर दी जायेगी.

● भेजी गयी रचना की मूल प्रति की फोटो स्टेट कॉपी अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें, क्योंकि कभी-कभी रचनाएं डाक में खो भी जाती हैं.

● रचना मौलिक व अप्रकाशित होनी ज़रूरी है. किसी भी पत्र-पत्रिका में छपी हुई सामग्री को कॉपी करके न भेजें, यदि किसी अन्य की रचना कहीं से चुरा कर भेजी गयी साबित होगी तो संबंधित व्यक्ति पर कोर्ट में कार्यवाही की जायेगी.

● मूल रचना पर 'मौलिक व अप्रकाशित है' लिखना ज़रूरी है. ऐसा जिस रचना पर नहीं लिखा होगा, उस पर किसी भी स्थिति में ध्यान नहीं दिया जायेगा.

● रचनाओं पर निर्णय लेने में छः से आठ सप्ताह का समय लगता है. अतः इस विषय में निश्चित अवधि से पूर्व पत्र-व्यवहार न करें.

● किसी भी रचना के प्रकाशन की पूर्व सूचना तथा प्रकाशन से पूर्व पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा.

● हर रचना पर स्तंभ शीर्षक अवश्य लिखें.

पत्र-व्यवहार का पता -
पायोनियर बुक कं. प्रा. लि.
160 डॉ. डी.एन. रोड बंबई-400 001 ●

चश्मा न लगने के उपाय

– डॉ. आशिष फड़के

अक्सर यह देखा जाता है कि किसी व्यक्ति को चश्मा लगता है, तो वह उसे पहनकर मैं कैसा लगूंगा यह सोच कर घबराने लगता है. कई बार तो ज़्यादा पावर का चश्मा होने पर भी लोग सिर्फ़ काम करने के समय ही चश्मा लगाते हैं और धीरे-धीरे पावर बढ़ता ही जाता है. अतः किसी कारण यदि चश्मा लग ही जाए, तो शर्म कैसी? उसे पहनना चाहिए. और आंखों को अधिक परिश्रम से बचाना चाहिए, ऐसा करने से चश्मे का नंबर भी नहीं बढ़ता.

और तो और, छोटे बच्चों को भी चश्मा लगाए आसानी से देखा जा सकता है. ऐसे में उनके माता-पिता की लापरवाही भी ज़ाहिर होती है. लोग यह भी अक्सर नेत्र चिकित्सकों से पूछते रहते हैं कि 'क्या चश्मे का नंबर कम नहीं हो सकता या चश्मा नहीं हटाया जा सकता?' अतः कुछ ऐसे प्रयत्न करने चाहिए जिससे चश्मा लगने की नौबत ही न आए. क्योंकि हम सभी जानते हैं कि बच्चा जन्मसे अंधा (कुछ अपवादों को छोड़ कर) नहीं होता, बल्कि जन्म के बाद ही दृष्टि कमज़ोर होती है. अतः आरंभिक स्थिति में ही ऐसे प्रयत्न करने चाहिए कि शरीर और नेत्र दोनों स्वस्थ रहें.

वस्तुतः चश्मे का प्रयोग दीर्घदृष्टि, ह्रस्वदृष्टि, विषम दृष्टि और जरादृष्टि आदि में होता है. साथ ही आंखों के टेढ़ेपन (भैंगेपन) को ठीक करने के लिए, धूप से व तेज़ प्रकाश से बचने के लिए चश्मे का प्रयोग किया जाता है.



अब दृष्टिदोष क्या है, यह जानना भी ज़रूरी है. आधुनिक वैद्यशास्त्र में आंख की तुलना कैमरे से की जाती है. दूर से आने वाली प्रकाश किरणें आंखों के पर्दे पर पड़ती हैं तो हमें वस्तु दिखाई देती है. यदि वे किरणें पर्दे से कुछ पहले ही केंद्रित हो जाती हैं, तो उस व्यक्ति को दूर की चीज़ें साफ़ दिखाई नहीं देतीं, उसी को हम ह्रस्वदृष्टिता अर्थात् 'मायोपिया' कहते हैं. इस दोष को दूर करने के लिए नेत्र विशेषज्ञ दूर के नंबर का चश्मा पहनने को देते हैं, जिससे दूर से आनेवाली प्रकाशकिरणें ठीक-ठीक पर्दे पर केंद्रित हों एवं दूर की वस्तु साफ़ नज़र आए. प्रस्तुत लेख में इसी मायोपिया की चर्चा हम करने जा रहे हैं. कुछ कारणों की वज़ह से निम्नलिखित बीमारियां होती हैं –

चश्मा लगने के कुछ कारण

नेत्र की बीमारियों एक है 'एक्सियल मायोपिया' जो नेत्र की लंबाई में वृध्दि होने से होती है, दूसरा है क्युरेटिव मायोपिया' जो नेत्र के पर्दे की गोलाई में फर्क होने से या दृष्टिमणि में फर्क होने से होती है.

जिन लोगों की आंखें जन्म से ही कमज़ोर रहती हैं, उन्हें बहुत ही कम उम्र में चश्मा लगता है. कम प्रकाश में, मोमबत्ती की लौ में पढ़ने से भी चश्मा लग सकता है, अतः ध्यान रखें कि पढ़ाई के समय दीए या बल्ब का प्रकाश पीछे से पुस्तक पर पड़ना चाहिए.

ग्रीष्म ऋतु में काफ़ी तेज़ गर्मी होती है. तपती हुई धूप में रास्ते पर चलने से सड़क की गर्मी पैर के तलुवों द्वारा शरीर में प्रविष्ट होती है. पैर के तलुवों की गरमी का असर आंखों पर पड़ता है जिस से आंखें कमज़ोर होने लगती हैं.

लगातार पढ़ाई करने से भी आंखों पर चश्मा लगता है. अर्थात् १-२ घंटे की पढ़ाई के बाद आंखों को कुछ विश्राम देना चाहिए. नियमित देर रात तक जागने से भी आंखें कमज़ोर होती हैं.

आहार का संतुलन न होने से भी आंखों की मांसपेशियों को पोषकतत्व नहीं मिलता, जिसकी वज़ह से भी चश्मा लगता है.

आज़ का दैनिक जीवन इतना व्यस्त व प्रदूषित हो गया है कि छोटे-से-छोटे बच्चों को भी कम उम्र में ही चश्मा लग जाता है. अक्सर लोगों को चश्मा लगाने में शर्म महसूस होती है, अतः शुरू से ही उन्हें चाहिए कि वे आहार-विहार पर ध्यान दें व चश्मा लगने की नौबत ही न आने दें.

कुछ लंबी शारीरिक बीमारियां जैसे एनीमिया, टायफाईड या अन्य आंखों की बीमारियों से भी आंखें कमज़ोर होती हैं.

ह्रस्वदृष्टिता से बचने के उपाय

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि डॉक्टर के बताए गए ढंग से चश्मे का इस्तेमाल हमेशा करें. चश्मा न लगाने से आंखों पर तनाव आता है, जिससे चश्मे के नंबर में वृद्धि होती है.

अधिक समय तक, अनुचित, अव्यवस्थित प्रकाशयोजना में व मंद प्रकाश में नहीं पढ़ना चाहिए.

हरी सब्ज़ियों व गाजर का अधिक उपयोग करें.

बस, गाड़ी आदि में सफ़र करते समय न पढ़ें.

आहार में दूध, मक्खन, घी आदि पर्याप्त मात्रा में लें.

आंखों को अधिक तकलीफ़ न हो, इसलिए अधिक तनावयुक्त कार्य न करें व आंखों पर अधिक बोझ न आने दें. ह्रस्वदृष्टि के लिए आधुनिक वैद्यक पद्धति के अनुसार निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहिए- नेत्र विशेषज्ञ से आंख की जांच कराकर योग्य नंबर का चश्मा लें एवं उसका प्रयोग करें.

संतुलित आहार लें.

कॉन्टेक्ट लेन्स का प्रयोग करें, किंतु यह लेन्स लगाने से आंख का नंबर घटता है, यह एक ग़लत विश्वास है.

शस्त्रक्रिया याने रेडियल कैराटोटॉमी ऑपरेशन भी आजकल प्रचलित हुआ है. इस शल्य क्रिया में कर्णिका के ऊपर छेद करते हैं. उसकी गोलाई में परिवर्तन आने से नंबर घट जाता है, किंतु यह शस्त्रक्रिया करें या न करें, इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है.

ह्रस्वदृष्टिता का आयुर्वेदिक उपचार

त्रिफला चूर्ण, घी, शहद इनके दैनिक जीवन में प्रयोग से बढ़नेवाले नंबर में स्थिरता आती है.

● त्रिफला चूर्ण - १ भाग
यष्टीमधुचूर्ण - १/२ भाग
त्रिबंगभस्म - १/१० भाग
यह मिश्रण हररोज़ सूर्योदय से पहले ब्रह्ममुहूर्त में एवं रात को सोने के पूर्व १/२ तोला घी एवं शहद के साथ लें. शहद एवं घी विषम मात्रा में ही लें. इससे भी नंबर घटता है.

निगेटिव नंबर के लिए सप्तामृत लौह चूर्ण का प्रयोग एवं त्रिफला हिम से नेत्र धोने से प्रायः बढ़ते हुए ह्रस्वदृष्टिता के नंबर में स्थिरता आती है.

पांजीटिव नंबर के लिए शतावरी घृत, त्रिफलाघृत २-४ मि.लि. मात्रा में रोज़ सुबह एक बार लें.

पके अनार का रस १ कप, भीमसेनी कपूर १/२ चम्मच यह मिश्रण कांच की बोतल में भरकर अंधेरे में २१ दिन तक रखें. इस मिश्रण की ५ बूंद में १ चम्मच शुद्ध गुलाबजल मिलाकर मिश्रण की पट्टियां रोज़ रात को आंख पर रखें. यह उपक्रम प्रतिदिन २ माह करने से चश्मे का नंबर घट जाता है. ऐसा अनुभव है.

योगोपचार

योग में नाड़ी शुद्धि के लिए छः प्रकार की शुद्धिक्रिया बताई गई है. जैसे धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति इनमें से आंखों में स्थित रहने वाली नाड़ियों की शुद्धि के लिए त्राटक क्रिया का वर्णन है. त्राटक में आंख न हिलाते हुए, पलकों को न झपकाते हुए निश्चलता से, एकाग्रता से सूक्ष्म लक्ष्य की तरफ आंखों से पानी आने तक देखते हैं. इनसे दृष्टिपटल एवं जो नाड़ियां मस्तिष्क तक रूपज्ञान का अनुभव कराती हैं, उनकी शुद्धि होती है. जब हम किसी भी वस्तु को बहुत देर तक देखते हैं और आंखें बंद करते हैं तब भी उसी वस्तु की प्रतिमा हमारी आंख के सामने आती है. त्राटक क्रिया से आंखों के विकार दूर होते हैं, आलस्य का नाश होता है. आंख से पानी निकलने के साथ दोष दूर होता है. आंखें तेजस्वी बन जाती हैं एवं मानसिक एकाग्रता बढ़ जाती है. सूर्यत्राटक, ज्योतित्राटक, भूमध्यत्राटक, बिंदुत्राटक आदि कई प्रकार के त्राटक हैं. यह क्रिया योगोपचार में बड़ा महत्व रखती है. परंतु बिना उचित मार्गदर्शन के यह क्रिया न करें.

संतुलित आहार

आहार में विटामिन 'ए' 'बी' 'सी' एवं 'डी' नेत्र के लिए महत्वपूर्ण हैं, उनमें भी विटामिन 'ए' और विटामिन 'सी' अधिक महत्वपूर्ण है. विटामिन 'ए' के स्रोत हैं - दूध, मट्ठा, मक्खन, घी, कॉडलीवर ऑयल (मछली का तेल), गाजर, आम, पपीता, हरी पत्ते की सब्जियां आदि.

विटामिन 'ए' के अभाव में 'रतौंधी' भी हो जाती है, जिसमें शाम के समय कम दिखाई देता है.

रोज़ सुबह खाने के पूर्व नींबू शरबत पीएं, क्योंकि नींबू में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में रहता है. आंवला, संतरा, मोसम्मी, अमरूद आदि विटामिन 'सी' के अन्य स्रोत हैं.

विटामिन 'डी' - सूर्य की प्रातःकालीन किरणों से त्वचा में विटामिन 'डी' की आपूर्ति होती है. विटामिन 'डी' दुग्ध पदार्थों में, अंडों में व शार्क लिवर ऑयल में भी रहता है.

विटामिन 'डी' के अभाव से मोतियाबिंदु जल्दी होता है.

सामान्य उपचार व व्यायाम

पामिंग - जब आपको महसूस हो कि आपके नेत्र बहुत थक गए हैं, तो आंखें बंद करके दोनों हथेलियों से नेत्रों को आच्छादित करें. यह क्रिया ५-१० मिनट तक दिन में २-३ बार करें.

आंखों को ठंडे पानी के छीटें मार कर धोएं.

रश्मि चिकित्सा - सूर्योदय या सूर्यास्त के समय नेत्रों पर सूर्यकिरणों को पड़ने दें, परंतु सूर्य की ओर न देखें.

चंद्र किरण: सोकर चंद्रमा व तारों को आंखों को गोलाई में घुमा कर देखें.

आंखों से चश्मा हटाने की कुछ औषधियों का व कुछ सामान्य तरीकों का ज़िक्र हमने यहां किया है, किंतु केवल चश्मा हटाकर आंखों की देखभाल नहीं की जा सकती. बल्कि जिन सामान्य उपायों का यहां वर्णन किया गया है. उनका पालन मनुष्य को जीवनभर करना चाहिए. हमारी आंखें बहुत ही नाज़ुक व महत्वपूर्ण इंद्रिय है, जिसके बिना मनुष्य बेसहारा हो जाता है, उसकी सुरक्षा हर ढंग से करनी चाहिए. ●

अमृत वचन

कर्म - वह है जो हम दूसरों के भले के लिए करते हैं, जैसे पाठशालाएं बनवाना, कुआं बनवाना, अस्पताल व अनाथालय खोलना, आर्यसमाज मन्दिर बनवाना, दुःखी और निर्धन की सहायता करना ये सब कर्म हैं.

अकर्म - वह है जो हम अपने लिए करते हैं. खाना, पीना, नहाना, धोना सोना, वस्त्र पहनना, यज्ञ करना, ईश्वरोपासना, प्रार्थना - ये सभी अकर्म हैं.

विकर्म - वह है जो हम दूसरों को हानि पहुंचाने के लिए करते हैं, दूसरों को नीचे गिराने के लिए करते हैं. भाई को भाई से लड़ाना, देश में फूट उत्पन्न करना, जाति, भाषा और प्रदेश का नाम लेकर देश के लोगों में एक-दूसरे के लिए घृणा उत्पन्न करना - ये सब विकर्म हैं.

सुकर्म - वह है जिससे मुझे भी लाभ हो, दूसरों को भी. दान देना, ऐसे यज्ञ करना, जिनका उद्देश्य संसार की भलाई है. सन्यासी बनकर सब लोगों को सन्मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करना - ये सब सुकर्म हैं. ●

गुणकारी होता है पान

भारत के प्रांतों में अनेक क़िस्म के पान पाए जाते हैं. उनके गुणों में भी विभिन्नता पायी जाती है. लोग अपनी रुचि व शारीरिक प्रकृति के अनुसार पान का सेवन करते हैं. पान चरपरा, गर्म, कुछ कटु-कसैला व पाचक होता है. पान अपने गुणों से कफ़, मुंह की बदबू, आदि का नाश करता है. यह हृदय को शक्ति पहुंचाने वाला विटामिन 'बी' तथा विटामिन 'सी' से युक्त होता है. लेकिन पान का अधिक सेवन हानिकारक भी हो सकता है. आयुर्वेद के अनुसार पान उष्ण व पित्तकारक है, इसलिए बालक, गर्भवती स्त्री, ज्वर से पीड़ित रोगी को पान का सेवन नहीं करना चाहिए.

पान के बीड़े के प्रमुख अंग हैं - पान, सुपारी, चूना, कत्था व तम्बाकू तथा मसालों में इलायची, नारियल की गरी, लौंग, सौंफ, जायफल, गुलकंद आदि. पान के बीड़े में प्रयुक्त इन पदार्थों का अपना-अपना महत्व है. भोजन के बाद पान का बीड़ा सेवन करना लाभदायक है क्योंकि यह पाचक क्रिया में भी सहायता प्रदान करता है. पान के बीड़े में प्रयुक्त विभिन्न पदार्थों के गुणों के कारण इनका विशेष महत्व है.

चूना - यह उष्ण तथा दाहक गुणधर्म वाला पदार्थ है और कफ को नष्ट करता है. चूने में कैलशियम की मात्रा अधिक होती है, जो हड्डियों के निर्माण व मज़बूती के लिए बहुत आवश्यक है. इससे बढ़ी हुई तिल्ली तथा पेट वृद्धि का रोग ठीक हो जाता है. यह दांतों को मज़बूती प्रदान करता है.

कत्था - चूने के साथ कत्थे का प्रयोग होने से वह त्रिदोषनाशक बन जाता है. कत्था ठंडी प्रकृति का होता है. यह डायरिया तथा ब्रेन हैमरेज की रामबाण दवा है. यह रक्त शुद्धिकारक भी है.

सुपारी - सुपारी कसैली, कफ, पित्तनाशक, शीतल गुणधर्म वाली है. नयी व गीली सुपारी हानिकारक होती है. सुपारी विषनाशक है. सुपारी हृदयोत्तेजक व मुख को स्वच्छ करने वाली है. सुपारी चबाने की क्रिया से दांतों का अच्छा व्यायाम हो जाता है. सुपारी के मध्य का सफ़ेद भाग कुछ मादक-सा होता है. पान के साथ सुपारी खाना हितकर है, किंतु केवल सुपारी अधिक मात्रा में खाना हानिकारक है क्योंकि इसमें एक प्रकार का तीव्र एसिड होता है.

इलायची - इसके सेवन से पान की श्रेष्ठता बढ़ जाती है. इलायची यकृत की क्रिया में सुधार करती है. यह आंत्र के पाचक रस की उत्तम स्रावक, पाचक एवं मूत्र मार्ग की दाहनाशक है. इलायची कफ, खांसी, श्वास, बवासीर आदि कम करती है. यह उल्टी, सिर दर्द में भी लाभदायक है. इसके खाने से जोड़ों के दर्द में राहत मिलती है.

लौंग - पान के साथ लौंग का सेवन पान के बीड़े की महत्ता में वृद्धि करता है. यह अग्निप्रदीप्त करने के गुणवाला पाचक, यकृत के लिए हितकारक, रक्ताभिसारण क्रिया में लाभदायक है. लौंग कृमि, दांत दर्द व वातनाशक है. इसके सेवन से दांतों में लगे कीड़े धीरे-धीरे ख़त्म हो जाते हैं.

नारियल - पान के बीड़े में लगे चूने की तीव्रता नारियल की गरी कम करती है. नारियल की गरी में तेल के कारण पाचन शक्ति में वृद्धि होती है.

सौंफ - इसमें अनेक औषधीय गुण हैं. पान के साथ सौंफ का प्रयोग किया जाता है. यह मुंह की दुर्गंध दूर करती है. सौंफ एक विशेष प्रकार के एंटीसेप्टिक औषधि की तरह कार्य करती है.

जायफल - यह पाचक, कफ, वात, सर्दी, खांसी और कृमिनाशक पदार्थ है. जायफल का प्रयोग पान के बीड़े में यदा-कदा किया जाता है.

गुलकंद - यह मधुर, शीतल व शक्तिवर्द्धक हैं. यह टिटनेस की बीमारी में बहुत लाभदायक है. गुलकंद पान में चूने की तीव्रता का नाश करता है, इसमें कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होती है. यह मेटाबोलिक क्रिया में भी काम करता है.

तम्बाकू - यह मुंह में उत्पन्न कीड़ों को नष्ट करने का काम करता है. यह एंटीसेप्टिक की तरह भी काम करता है किंतु तम्बाकू का सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है. तम्बाकू में निकोटिन होता है, जो अधिक मात्रा में रक्त में सीधे पहुंच जाता है. तम्बाकू के निकोटिन की मादकता से मनुष्य तम्बाकू का सेवन ज़ारी रखता है. इससे धमनियां व रक्त नलिकाएं कड़ी हो जाती हैं, जिससे ब्लड प्रेशर और हृदय के अन्य रोग होने की संभावना बढ़ जाती है, पान में तम्बाकू खाने वालों को मुंह, जीभ, गला, दांत, जबड़े व गले का कैंसर होने की अधिक आशंका होती हैं.

तम्बाकू के बिना पान के बीड़े का सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभदायक व आनंदायक है. पान के बीड़े में प्रयुक्त पदार्थों सहित पान के सेवन के बाद हर बार मुंह, दांत तथा मसूढ़ों को अच्छी तरह साफ़ करना चाहिए ताकि किसी भी संभावित बीमारी की आशंका से सदा दूर रह सकें.

पान के बीड़े का गुण

पान नागवल्ली नामक लता से उत्पन्न होता है. यह पान उत्तम अग्निदीपक एवं पाचक है. स्वाद में ये तीखापन लिए हुए रहता है, जिससे यह कफदोषनाशक का कार्य करता है. अतः सर्दी की शिकायत हो, फेफड़ों में अधिक कफ जमने की वजह से दमे की तकलीफ़ हो, ऐसे कफकारक विकारों में पान उत्तम औषधि-सा कार्य करता है.

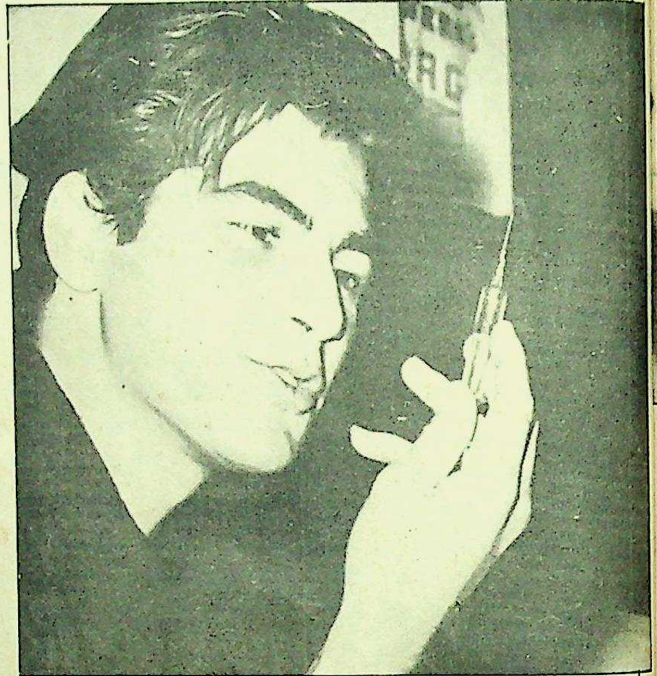
पान की पत्तियों में एक प्रकार का सुगंधित तेल रहता है, जिसमें फिनॉल और टर्पिन नामक तत्व होते हैं. फिनॉल तत्व के कारण यह पान जंतुघ्न भी माना गया है. डिप्थीरिया जैसे रोगों में जंतुओं का आक्रमण गले के कोशों पर होता है. वहां सूजन होती है जिससे सांस लेने में कष्ट होता है. इस में नागवल्ली पान के रस से जंतुनाश होता है व सांस लेने में बच्चे को सुविधा होती है.

पान के पत्ते गरम करके सूजन वाले स्थान पर बांध देने से सूजन और उस स्थान की पीड़ा कम होती है. इस तरह से भोजनोपरांत शास्त्रशुद्ध रीति से बनाया हुआ पान बहुत ही लाभदायक और स्वास्थ्यवर्द्धक है.

—दिलीप जैन

मादक पदार्थ - एक नज़र में

- सुनिल कुमार



आज क़रीब-क़रीब २५ प्रतिशत युवा वर्ग नशे की लत का शिकार है. नशा, यह चाहे जिस भी चीज का हो, नुकसानदेह ही होता है. कोई भी काम सीमा में हो, तो ठीक है. लेकिन जब सीमा से परे होने लगता है, तो वह बुरे परिणाम लाता है. ठीक यही बात नशे के लिए भी लागू होती है. फिर भी एक मत है कि मादक द्रव्यों का औषधि रूप में सेवन ही धीरे-धीरे लत में बदल जाता है. फिर जिस वस्तु का उत्पादन उद्देश्य विशेष से किया जाता हो, तब उससे किसी अन्य फल की अपेक्षा करना खुद को धोखा देना ही है. जहां तक सार्वजनिक जीवन में इन मादक-पदार्थों के प्रयोग का प्रश्न है, यह एक विवादास्पद विषय है. हमें मात्र गुण-दोषों की ही विवेचना करनी है अर्थात् मादक पदार्थों के पक्ष-विपक्ष में प्रस्तुत है एक विवेचन.

नशीले पदार्थों के सम्बन्ध में जब कभी हम विचार करने लगते हैं, तब हमारा ध्यान इनके सर्वव्यापी प्रचलन पर भी चला जाता है. यदि यह कहा जाए कि आज संसार की अधिकतर जनता नशीली चीज़ों का सेवन करती है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी.

यदि हम नशीले पदार्थों का सेवन करने वाले और न करने वाले दोनों वर्गों के दृष्टिकोणों पर विचार करें, तो कुछ बातें सामने आती हैं. जो नशा नहीं करते, वे लोग नशीली चीज़ों को -

- तामसी - जिनका मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है.
- रोगोत्पादक समझते हैं.
- वे नशे के व्यसन से दूर रहते हैं और
- नशाबाज़ों को सामाजिक दृष्टि से नीचा सिद्ध करते हैं तथा
- नशीली चीजों को व्ययकारी मानते हैं.

जबकि जो लोग नशा करते हैं वे १) आदत पड़ जाने के कारण उसे छोड़ नहीं पाते, २) थकान दूर करने के लिए उसका सेवन करते हैं, ३) परिस्थितिवश प्रयोग करते हैं, ४) मानसिक चिन्ता दूर करने के लिए नशीली चीजों का सहारा लेते हैं या ५) उत्तेजना प्राप्ति के लिए अथवा ६) नींद के लिए उन्हें लेते हैं. नशा करने वाले लोग नशीली चीजों को प्राकृतिक वस्तु मानते हैं और हानिकारक नहीं समझते. वे अन्य अनेक दृष्टिकोणों से भी नशीली चीज़ों का उपयोग करते हैं.

असंख्य नशीली वस्तुएं

नशा लाने के लिए जिन वस्तुओं का उपयोग होता है, उनमें मदिरा, भांग, अफीम, गांजा, तम्बाकू, कोकीन, चाय, संखिया, ताड़ी, चरस, कोको, कहवा, धतूरे के बीज आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

नशीले पदार्थों के गुण-दोष

यदि ये सभी नशीले द्रव्य सर्वथा अहितकारी ही होते, तो ईश्वर की सृष्टि में इनका कोई स्थान ही न होता. इस विषय पर जब हम और गम्भीरतापूर्वक विचार करते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि रोग की विभिन्न अवस्थाओं में इनका प्रयोग बड़ा ही चमत्कारिक सिद्ध होता है. लेकिन यह उपयोगिता यहीं तक सीमित रहती है. व्यसन के रूप में सेवन करने वालों को यही पदार्थ हानिकारक सिद्ध होते हैं.

एक बात और है, जो लोग तात्कालिक उत्तेजना या अन्य किसी उद्देश्य से इनका उपयोग करते हैं, उन्हें बार-बार उसी प्रकार की उत्तेजना प्राप्ति के लिए इन चीजों की आवश्यकता महसूस होती रहती है और वे इनका निरन्तर सेवन करने से इनके आदी बन जाते हैं. वे इन नशीले पदार्थों के बिना रह ही नहीं सकते. यही आदत व्यसन का रूप धारण कर लेती है, तब इसके और अधिक हानिकारक परिणाम होते हैं.

भांग: भारत में भांग और उससे बनने वाली अनेक वस्तुएं व्यवहार में बहुत बड़े परिमाण में काम आती हैं. जहां तक गुणों का सम्बन्ध है, भांग दीपन और पाचन करनेवाली, नींद लानेवाली, कफ़ और वायु को नष्ट करने वाली, अग्निमांद्य, अजीर्ण, गुर्दे का दर्द, बवासीर, विसूचिका (हैजा) और सिरदर्द के अतिरिक्त कुछ स्त्री रोगों में भी लाभकारी सिद्ध होती है. लेकिन इसका हितकारी प्रभाव तभी होता है, जब औषधि रूप में, चिकित्सक के परामर्श से इसका सेवन किया जाए.

जो लोग आदत के रूप में भांग का सेवन करते हैं, उनका वात नाड़ी-



संस्थान पहले उत्तेजित होकर बाद में शिथिल हो जाता है और उन्हें कई बार उन्माद जैसा रोग भी अधिक सेवन से होता है. भांग में तामसी गुण होने से यह कामवासना प्रदीप्त करती है, जिससे अन्त में इंद्रियों की शिथिलता आदि विकार उत्पन्न होते है. मूर्छा, चक्कर आना, आंखों का लाल होना, बुद्धि भ्रष्ट होना, क्रोध आदि अनेक शारीरिक उपद्रव भी इसके सेवन से होते हैं.

गांजा: गांजा आदि वस्तुएं भी इसी प्रकार अहितकर परिणाम दिखाती हैं. गांजा खून को सुखाकर शरीर की अन्य धातुओं को भी सुखाने लगती है.

तम्बाकूः आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि इसमें 'निकोटिन' नामक पदार्थ होने से शरीर पर इसका हानिकारक प्रभाव पड़ता है. विशेषतः गला, फेफड़ा और हृदय पर तो इसका बहुत ही बुरा प्रभाव होता है. श्लैष्मिक कला पर इसका क्षोभकारक प्रभाव होने से धीरे-धीरे कैन्सर की सम्भावना बढ़ती है.

कॉफीः इसका हानिकारक प्रभाव स्त्री-पुरुषों के प्रजनन संस्थान पर विशेष रूप से पड़ता है, इससे स्त्री को वंध्या (बांझ) की स्थिति तक प्राप्त हो जाती है. लेकिन यह स्थिति तभी होती है, जब इसका अधिक मात्रा में व्यसन के रूप में सेवन किया जाए.

कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर इसका प्रभाव हृदय की क्रियाशक्ति बढ़ाने में हितकारी भी सिद्ध होता है.

मदिराः इसके कई प्रकार हैं, जैसे कि अरिष्ट, आसव, सुरा, सीधू, मद्य आदि. ये प्राचीन प्रकार हैं. आजकल तो ब्राण्डी, रम, बीयर, व्हिस्की प्रसिद्ध हैं. इनके अतिरिक्त कई देशी प्रकार भी पाए जाते हैं.

जहां तक मदिरा के नाम का प्रश्न है यह पेय है, जो मद अर्थात् नशा पैदा करती है.

सभी प्रकार की मदिरा गरम, पित्त तथा रूक्षता को बढ़ाती है. मदिरा स्वभावतः तीक्ष्ण होती है. आजकल मदिरा के जो प्रकार प्रचलित हैं, वे वायु, पित्त, कफ तीनों दोषों को उत्पन्न करते हैं. ये हृदय में हानिकारक दाह (जलन) उत्पन्न करते हैं तथा मुख को दुर्गन्धित करते हैं. तामसी प्रकृति के व्यक्तियों को मदिरा के सेवन से नींद बहुत अधिक आती है. मदिरा अधिक पीने से वे निन्दनीय कार्यों को करने लगते हैं.

मद्य के सेवन से तात्कालिक रूप में उत्साह की वृद्धि मालूम पड़ती है. और इसके पच जाने पर पहले से भी ज़्यादा कमज़ोरी महसूस होने लगती है. जो लोग अधिक शराबी (पियक्कड़) हो जाते हैं उनके हाथ-पैर तथा शरीर में कंपन होने लगता है. उनको फेफड़ा दिमाग तथा गुर्दे की बीमारियां हो जाती हैं. कभी-कभी जलोदर (पेट में पानी होना); क्षय तथा चर्बी बढ़ जाने की बीमारी हो जाती है.

चायः

चाय दो प्रकार की होती है, हरी चाय और काली चाय दोनों के गुणों में काफी अंतर है. हरी चाय स्वास्थ्य-वर्धक है. यह स्वाद में कसैली होती है. गले के रोग, टॉन्सिल अगर बढ़ गए हों तो, भी इनके सेवन से ठीक होते हैं. वैसे ही पित्त के रोग एवं उनसे उत्पन्न रक्त के रोगों में यह उपयोगी सिध्द होता है. पेट का दर्द, खांसी में एवं अन्य कफ रोग, बुख़ार इनमें भी यह फ़ायदा करती है. हरी चाय के बारे में कहा जाता है कि इनके पत्तों में एक सुगन्धित तेल होता है. जो कि बलकारक उष्ण, पसीना लानेवाला तथा अफारा को दूर करनेवाला होता है. हरी चाय की जड़ का अनुलेपन ज्वर में उत्तम माना गया है.

काली चाय : आज कल काली चाय ही अधिक प्रचलित है. इस चाय को कभी-कभी अल्प मात्रा में सेवन किया जाए, तो यह थकान दूर करती है, शीत का नाश करती है एवं पसीना लाती है.

चाय का अधिक सेवन करने से शरीर के जीवनीय तत्त्व (विटामिन्स) नष्ट होते हैं. श्वास की वृद्धि होती है और स्वप्न-दोष जैसी भयंकर बीमारियां उत्पन्न होती हैं. अधिक चाय पीने से लीवर (जिगर) के ऊपर भी बुरा प्रभाव पड़ता है. किन्तु जो कुछ भी हानियां होती हैं, वे चाय के अति सेवन करने से होती हैं. शीत ऋतु तथा वर्षा में एवं रुग्णावस्था में यदि चाय का सेवन किया जाय तो लाभकारी सिद्ध होता है.

गर्द - (ब्राऊन-शुगर) एक बहुत ही ख़तरनाक क़िस्म का मादक पदार्थ है. देश का युवा वर्ग काफी बड़ी मात्रा में इसका सेवन करता है. बहुत महंगा होने के बावजूद भी इसका सेवन लोग करते हैं. इससे कोई फ़ायदा नहीं है सिर्फ़ नुकसान ही है. गर्द कई प्रकार के सांपों की खाल, श्मशान की राख और कई प्रकार के जहरीले वस्तुओं से बनती है. अगर इसकी लत किसी को पड़ जाती है, तो फिर वो इसके बग़ैर जी नहीं सकता. इसका सेवन करने वाले ज़्यादा से ज्यादा साल भर जीवित रहता है. शरीर में इसका इतना बुरा प्रभाव पड़ता है कि इंसान को ज़्यादा देर तक होश नहीं रहता, शरीर की तमाम ग्रंथियां इसके इशारे पर ही काम करती हैं. इसके न मिलने पर शरीर निष्क्रिय हो जाता है, गला सूखने लगता है, ऐसा लगता है कि बदन में सैकड़ों धमाके होने वाले

आज का हर दसवां व्यक्ति किसी न किसी नशे की चपेट में है. पहले यह जुबान से लगती है यार-दोस्तों के कहने पर, उकसाने पर और धीरे-धीरे बन जाती है जिन्दगी की दुश्मन. यह एक तरह का धीमा ज़हर ही तो है, तभी तो लोग इसके मायाजाल में खिंचे चले आते हैं, अपनी अमूल्य ज़िंदगी गंवाने के लिए.

हैं. ज्यादा दिनों तक सेवन करने पर सांप का ज़हर भी असर नहीं करता. इसका सेवन करने वाले ज्यादातर दुनिया से अलग रहते हैं. ये लोग जब ज्यादा मात्रा में इसका सेवन करते हैं, तब इससे भी इसके पीने वालों को कोई नशा नहीं होता और ऐसी हालत में या तो वे जान दे देते हैं या फिर सांप से अपने जीभ पर डसवाते हैं.

अफीम : भारत इसका प्रमुख उत्पादक है. इसका इस्तेमाल ज्यादातर दवाइयों में होता है. यह स्निग्ध पदार्थ है. अफीम खस-खस के पेड़ से तैयार किया जाता है.यह पाचक, भूख बढ़ाने वाला काम-वासना पैदा करने वाला, बलवर्धक होता है. यह भूख बढ़ाने वाला होने के बावजूद बड़ी मात्रा में खून सोखता है. अधिकतर देखा गया है कि मेहनत का



काम करने वाले इसका ज्यादा इस्तेमाल करते हैं. इसके इस्तेमाल से लीवर, हृदय, मूत्र-पिंड वगैरह प्रमुख भागों पर इसका बुरा असर पड़ता है. इसका सेवन बंद करने से व्यक्ति नपुंसक तक हो जाता है.

हमारी-आपकी ज़िम्मेदारी

इन सब चीजों से देश के हर नागरिक को सचेत रहना चाहिए. क्योंकि जो काम हमारे देश के दुश्मन न कर पाये वे काम ये नशीले पदार्थ कर रहे हैं और अभी से यह इशारा कर रहे हैं कि आने वाली पीढ़ियों को बर्बाद करने की भी ताकत रखते हैं. वैसे इन पदार्थों के सेवन से हमारे बच्चों पर बड़ा बुरा असर पड़ रहा है. सरकार को इन पदार्थों की रोकथाम के बारे में विशेष कदम उठाने चाहिए. सच तो यह है कि पुलिस और बहुत से बड़े स्मगलर सिर्फ़ अपना भला देखते हैं और इस तरह के पदार्थों के सेवन को बढ़ावा देते हैं. इसके प्रति देश के हर नागरिक को सदैव होशियार रहना चाहिए.

भाग्यहीन नर पावत नाहीं

अर्थस्योपार्जनं कृत्वा
नैवाभाग्यः समश्नुते।
करतलगतमपि नश्यति तु
भवितव्यता नाऽस्ति ॥

"भाग्य में न हो तो हाथ में आए धन का भी उपयोग नहीं होता."

एक नगर में सोमिलक नामक मेहनती जुलाहा रहा करता था. परंतु वह मेहनत के अनुसार अर्थोपार्जन नहीं कर पाता था. दिन-रात की मेहनत के बावजूद खाने-पहनने से अधिक उसके पास कुछ नहीं था. एक दिन उसने पत्नी से कहा कि वह विदेश जाकर धन कमाएगा. यहां थोड़ी बहुत विद्या रखने वाले उससे अधिक कमा रहे हैं व वह अन्य लोगों से कुशल होने के बावजूद कमा नहीं पा रहा है. इस पर पत्नी ने समझाया कि यदि भाग्य में इससे अधिक धन लिखा होता तो यहीं मिल जाता. विदेश जाने से कुछ लाभ नहीं.

परंतु सोमिलक नहीं माना और विदेश जाकर दिन-रात मेहनत कर ३०० मोहरें जमा की वापस घर लौटते समय एक पेड़ के नीचे उसकी आंख लग गई. उसने स्वप्न में देखा कि दो भयंकर आकृति के पुरुष आपस में बात कर रहे हैं. एक ने कहा - हे पौरुष. मुझे क्या मालूम नहीं है कि सोमिलक के पास भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं रह सकता. तब तूने इसे ३०० मोहरे क्यों दीं? दूसरा बोला - हे भाग्य! मैं तो प्रत्येक पुरुषार्थी को एक बार उसका फल दूंगा. उसे उसके पास रहने देना या न रहने देना तेरे अधीन है.

जब सोमिलक की नींद खुली तो उसने देखा मुहरों की थैली खाली है. वह बहुत दुःखी हुआ. सोचा अब पत्नी को क्या मुंह दिखाऊंगा,अब और मेहनत कर पैसा कमाकर ही घर जाऊंगा, यह सोच वापस लौट आया. दिनरात मेहनत करके किसी तरह ५०० मुद्राएं अर्जित की. उन्हें लेकर घर की ओर चला, रास्ते में रात पड़ी परंतु सोमिलक ने निश्चय किया था कि इस बार वह सोएगा नहीं. वह चलता ही रहा. चलते-चलते उसने फिर दोनों - पौरुष और भाग्य को पहले की ही तरह बातचीत करते सुना. इस बातचीत के बाद सोमिलक ने जब अपनी गठरी देखी तो मुहरों से खाली थी.

इस बार सोमिलक बहुत ही दुःखी हुआ दो-दो बार खाली हाथ हो कर उसने जान दे देना ही उचित समझा. उसने सोचा धनहीन जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी. गले में फंदा लगा टहनी से लटकने वाला ही था कि आकाशवाणी हुई - सोमिलक! ऐसा दुस्साहस मत कर. तेरे भाग्य में भोजन-वस्त्र से अधिक धन नहीं है. व्यर्थ के धन संचय में अपनी शक्तियां नष्ट मत कर.

साभार - पंचतंत्र से

अर्श के दर्द से छुटकारा पाइए

—वैद्य तेजस क. माऊ

एक बार सभी चार पैर वाले प्राणी भगवान के पास गए और उनसे शिकायत की कि, हे प्रभु! आपने हमें चार पैर वाला बनाकर हम पर बहुत अन्याय किया है, क्योंकि मनुष्य दो पैर वाला होने पर अपने दोनों हाथों से काम करके काफी प्रगति कर ली है, जब कि चार पैरों पर खड़ा रहने के कारण हम कुछ नहीं कर सकते.

उनकी बात सुन कर प्रभु सोच में पड़ गए. फिर खूब सोच-विचार कर वे बोले, "हे वत्स! यह ठीक है कि मनुष्य के पास हाथ होने से और वह दो पैरों पर खड़ा होकर जीवन में उन्नति कर पाया है, लेकिन तुम्हें इससे व्यथित होने की ज़रूरत नहीं है. क्योंकि खड़े रहने के कारण ही मनुष्य को 'अर्श रोग' होगा, जो तुम्हें नहीं होगा.

यह कहानी अपने आप में ही बवासीर की शुरुआत को उजागर करती है और इस रोग का कारण भी कहानी में समाहित है.

बवासीर को आयुर्वेद में अर्श रोग कहा जाता है. सामान्यतया गुदा भाग (जहां से दस्त निकलती है) में होने वाली गांठों में बड़ा ही दर्द होता है व उनसे खून निकलता है. बवासीर मूलतः क्या है? वह क्यों होती है? उससे स्थानिक व संपूर्ण शरीर में क्या तकलीफ़ें होती हैं? उससे बचाव किस तरह हो? यह सब जानना ज़रूरी है, जिससे हम अपना बचाव सुगमतापूर्वक कर सकते हैं.

बवासीर बड़ा ही कष्टदायी रोग है. इसके होने के कुछ कारण व लक्षण हैं, जिन्हें जानकर या बवासीर न हो, ऐसी सावधानी अपना कर हम इसकी चिकित्सा कर सकते हैं.

आयुर्वेद में अर्श के बारे में वर्णित है 'अरिवत्‌विशसन्तीत्यर्शांसि'। अर्थात् जो 'अरि' यानी शत्रु के समान व्यक्ति को मार डालता है वही अर्श है. इस प्रकार अर्श को आयुर्वेद में एक भयंकर बीमारी माना गया है.

बवासीर क्या है?

बवासीर गुदा भाग के भीतर त्वचा के फूलने को कह सकते हैं. हमारी गुदा को प्रकृति ने बड़ा ही कोमल व विशेष स्वरूप में बनाया है. उसका मुख्य काम है, मल को शरीर से बाहर निकालना. मलांश एक विशेष मात्रा में जब एकत्रित होता है, तब मन द्वारा उसके निष्कासन का संकेत पाकर व्यक्ति मल त्याग के लिए जाता है और गुदा की वलियां खुल कर मल को बाहर निकालती हैं. जैसे, दरवाज़ा बंद होने पर कोई आवागमन नहीं होता. उनके खुलने पर ही आवागमन हो सकता है,

वैसे ही गुदा तीन वलियों से बना है, जो क्रमशः खुल कर मल का व पाचन के समय वायु का सम्यक् रूप से त्याग करती है. वैसे गुदा का मुख्य कार्य मल व वायु का विसर्जन ही है, किंतु इससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता. इस गुदा का ऐसा ही विकार 'अर्श' है. अर्थात् वलियों में या गुदा के अंतिम भाग में मांसांकुर की फूली हुई गांठ को अर्श कहते हैं.

बवासीर बनता कैसे है?

मानव ऐसा प्राणी है, जो सीधे खड़ा रहता है, जिसके कारण गुरुत्वाकर्षण का ज़ोर उसके कूल्हों में व पैरों में ज्यादा रहता है. इसी कारण से वहां रक्त ले जाने वाली रक्तवाहिनियों पर दबाव पड़ता है. साथ ही साथ हमारे कूल्हों की रचना कुछ इस प्रकार की है कि वहां हड्डियों व मांसपेशियों से ज़्यादा चर्बी होती है. इसलिए उस भाग में विशेष प्रकार की नर्मी होती है. अब यदि किसी कारण से वहां की सिराओं पर दबाव पड़ने लगे तो वे फूल जाती हैं. चूंकि अन्य सिराएं मांस से ढंकी हुई रहती हैं इसलिए सारा दबाव गुद भाग की सिराओं पर पड़ता है और इसी वजह से गुद भाग की सिराएं फूलती हैं और बवासीर को उत्पन्न करती हैं. आधुनिक शास्त्र में इसे ही vericose condition of veins कहकर piles या Hemorrhoids नाम दिया गया है. आयुर्वेद में इसी बात को त्रिदोष सिद्धान्तानुसार समझाया गया है.

गुदा को ४ अंगुल या लगभग ५ इंच का बताया गया है. इसी में तीनों वलियां व गुद मुख, जिसे गुदौष्ठ कहते हैं, रहती हैं और इस सारे भाग में कहीं भी मांसांकुर का निर्माण होना ही बवासीर है.

बवासीर के प्रकार

गुद भाग को एक घड़ी समझ लें तथा उस पर एक से लेकर बारह तक निशान बनाएं, तो देखने में आएगा कि गुदा भाग की मुख्य सिराएं तीन-सात व ग्यारह अंक जहां बने होते हैं, वहां लगी होती हैं. इसलिए बवासीर के प्रमुख तीन स्थान तीन-सात व ग्यारह ऐसे ही बताए गये हैं. इसी के साथ पांच और नौ के अंक पर भी बवासीर उत्पन्न होते हैं, जिसे उपप्रमुख कहते हैं, क्योंकि इन स्थानों पर दो छोटी-छोटी सिराएं होती हैं.

इस प्रकार स्थान के अनुसार बवासीर के जो स्थान हैं, उन्हें समझने के बाद चिकित्सा की दृष्टि से बवासीर के अन्य भेदों को देखें.

खूनी (सूखे) बवासीर रक्त वाहिनी के फूलने से निर्मित होते हैं. इसी कारण से उनमें घाव बन बनता है व रक्तस्राव की संभावना रहती है. इसी को खूनी बवासीर

कहते हैं यह बवासीर का गंभीर स्वरूप है. यदि खून न बहे या मांसांकुर सूखा हो, तो उसे सूखा बवासीर कहते हैं. साथ ही साथ कई बार बवासीर में खून की जगह सफ़ेद या जल जैसा स्राव होता है. इस बवासीर को सूखी बवासीर या स्रावी अर्श कहा जाता है.

आजन्म -जन्मोत्तर: कई बार माता-पिता के वीर्य में ही कुछ दोष के कारण बच्चे को जन्म से ही बवासीर होता है तो इसे आजन्म बवासीर कहते हैं, जबकि बवासीर का निर्माण करने वाले कारणों का सेवन करने से उत्पन्न बवासीर जन्मोत्तर बवासीर है.

आभ्यंतर - बाह्य: गुदा की लंबाई ५ इंच बतायी गयी है. यदि इसके बाहरी १/२-३/४ इंच में बवासीर हो तो वह बाह्य बवासीर कहलाता है, जब कि उससे भीतर की ओर का बवासीर आभ्यंतर कहा जाएगा. जितना गहरा बवासीर होगा उसकी चिकित्सा उतनी ही कठिनाई से होती है.

बवासीर के लक्षण

प्रायः देखा गया है कि बहुत सारे व्यक्तियों में बवासीर की गांठ होती है, पर तकलीफ़ न होने से इससे अनजान रहते हैं. जब तकलीफ़ होती है तभी उसका पता चलता है. विशेषतः आजन्म बवासीर शुरू में शांत रहता है तथा यह व्यक्ति के संपूर्ण स्वास्थ्य पर ज़्यादा प्रभाव डालता है. स्थानिक रूप से दो तकलीफ़ें देखने में आती हैं. पहली तो वेदना व दूसरा स्राव या खून का गिरना. इसके अलावा पूरे शरीर में भी इसके चिह्न दिखाई देते हैं जैसे, पेट का फूलना, शौच की असम्यक् प्रक्रिया (कभी कब्ज दस्त का होना), शरीर में दर्द व थकान गुदा में खुजली, मुंह के स्वाद का बिगड़ना, जलन, दस्त में दुर्गंध, आंखों के सामने अंधेरा छाना आदि लक्षणे के साथ जब व्यक्ति दुर्बल हो जाता है तो समझें कि वह बवासीर से ग्रस्त है. पेशाब क्रिया, कमर व सीने में दर्द व जकड़न महसूस होना. ऐसे लक्षण दिखाई देते ही चिकित्सक से अवश्य मिल कर चिकित्सा कराएं.

बवासीर पर उपाय

बवासीर के बारे में साधारणतया सभी बातों को जान लेने के बाद उस पर किए जाने वाले उपचारों के बारे में भी जान लेना श्रेयस्कर रहेगा.

औषधोपचार - सिर्फ़ दवाई से ही बवासीर मिटा डालना यह इस उपाय के अंतर्गत आता है, लेकिन यह उपाय मुख्यतया नूतन और कम चिह्नों वाले बवासीर पर ही सफल होता है. (आजकल के वैद्य इस उपाय के साथ-साथ अन्य उपायों का सहारा लेकर बवासीर की चिकित्सा करते हैं.) इसमें मुख्यरूप से दो प्रकार से दवाइयों का प्रयोग करते हैं, एक तो खाने के लिए और दूसरी लगाने के लिए. साथ-साथ विशेष प्रकार की औषधि युक्त भाप और धुएं का भी प्रयोग करने से बवासीर में लाभ मिलता है. विशेष मलहम भी हैं, जिनको लगाने से वेदना में आराम, खून और स्राव का रुकना तथा बवासीर मिट जाता है.

क्षार चिकित्सा-उपाय - इसके दो प्रभाग बन जाते हैं. पहला 'प्रतिक्षारणीय क्षार' तथा दूसरा 'क्षार सूत्र'. इसमें क्षारीय द्रव्य लेकर या तो उनको बवासीर पर लगाकर बवासीर को जला दिया जाता है अथवा उन क्षारीय द्रव्य को एक सूत्र (धागे) पर लगाकर उस धागे को बवासीर के मूल भाग पर बांध दिया जाता है, जिससे वह मूल जल जाने से बवासीर अपने आप कटकर गिर जाता है. यह उपाय कोमल तथा जिस बवासीर का मूल गहरा हो उन पर किया जाता है.

अग्नि-कर्म उपाय - क्षार जैसे ही, लेकिन गर्मी के माध्यम से बवासीर को जलाने का उपाय यानी अग्नि-कर्म. इसमें बवासीर रूखे, कठिन, अलग आए हुए तथा स्थिर रहने चाहिए.

रबर द्वारा संकोच का उपाय - बवासीर के मूल पर रबर को कसकर लगा दिया जाता है, जिससे बवासीर की गांठ अपने आप सूखकर गिर जाती है, वैसे तो यह एक सरल उपाय है, लेकिन रबर खिसकने से तथा दर्द व अन्य उपद्रव होने की संभावना से इसका प्रचलन ज़्यादा नहीं है.

क्रायो फ्रीजिंग (Cryo freezing) उपाय - इसमें अत्यधिक ठंडी छड़ से बवासीर को जमा दिया जाता है. अन्य उपायों की अपेक्षा यह उपाय थोड़ा महंगा है क्योंकि इसमें एक गांठ को बार-बार जमाना पड़ता है.

इंजेक्शन उपाय - विशेष प्रकार की औषधि लेकर बवासीर की गांठ के भीतर उनको इंजेक्शन द्वारा प्रविष्ट कराते हैं, जिससे बवासीर संकुचित होकर गिर जाता है या वहीं बैठ जाता है. यह उपाय सिर्फ कुछ विशेष बवासीरों की अवस्था में ही किया जा सकता है.

शस्त्र-कर्म उपाय - अर्थात् ऑपरेशन. इसमें बवासीर को कुछ हद तक मूल के भाग में से काटकर, उसे वहीं पर बांध दिया जाता है, जिससे वह सूख कर कुछ ही दिनों बाद गिर जाता है. यह उपाय कम गहरे तथा चिकनाई लिये हुए बवासीरों में श्रेष्ठ है, किंतु इस के उपद्रव तथा शस्त्रकर्म के बाद की देखभाल अन्य उपायों की अपेक्षा ज़्यादा रहती है.

आयुर्वेदिक औषधि से उपचार

इन सभी उपायों के साथ-साथ, कुछ साधारण उपाय हैं, जो व्यक्ति अपने आप कर सकता है, जिससे उसको लाभ ही मिलेगा.

हरड़ का चूर्ण तथा गुड़ इन दोनों को सममात्रा में मिलाकर पानी के साथ सुबह लें. इसके सेवन की मात्रा व्यक्तिगत रूप से निश्चित करनी होती है, जिस से व्यक्ति को दस्त तो साफ़ आए, किंतु जुलाब न हो.

सदा निश्चित समय पर निश्चित मात्राओं मे उचित आहार लें.

दस्त करते समय कभी भी ज़ोर न लगाएं, यदि दस्त साफ़ न आती हो, तो उसके लिए क्या करना चाहिए यह अपने चिकित्सक की सलाह अनुसार करें.

भारी वज़न न उठाएं.

गर्म वातावरण में एक ही स्थान पर ज़्यादा देर तक न बैठे रहें.

विशेषकर ठंडी के दिनों में और वैसे भी थोड़े कुनकुने पानी से गुद को धोना चाहिए.

सूरन की सब्ज़ी का प्रयोग बवासीर में बहुत ही लाभदायक होता है.

'कासीसादि तैल' रूई को भिगोकर गुदा भाग में रखने से भी अच्छा लाभ होता है.

बवासीर की गांठ को कतई खींचें या रगड़ें नहीं.

सूती जांघिए पहनें तथा गुदा को साफ रखें.

अपना पाचन ठीक रखें तथा पाचन के लिए हिंग्वाष्टक चूर्ण, चित्रकादि वटी, ऐसी दवाइयों का प्रयोग चिकित्सक की सलाह लेकर करें.

अमृत वचन

माता

**मातासमं नास्ति शरीरपोषणं,
चिन्तासमं नास्ति शरीरशोषणाम्
भार्यासमं नास्ति शरीरतोषण, विद्यासमं नास्ति शरीरभूषणम् ।।**

माता के समान शरीर का पालन-पोषण करेवाली, चिन्ता के समान देह को सुखानेवाली, स्त्री के सामन शरीर को सुख देनेवाली और विद्या के समान शरीर को अलंकृत करनेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है.

वातरक्त के निदान एवं उपचार

वैद्य वि. भा. म्हैसकर

अन्य रोगों की तरह ही 'वातरोग' भी एक तकलीफ-देह रोग है. आयुर्वेद में इसे कई नामों से जाना जाता है. जैसे, वात रक्त, खुडवात, वातवलास एवं वातशोणित अर्थात् ऐसा रोग जो संधियों (जोड़ों) में वायु के आवरण के कारण होता है. सुश्रुत ने इसको 'महावात व्याधि' भी कहा है.

महर्षि चरक के अनुसार सुकुमार शरीर वाले, मिष्ठान्न खानेवाले एवं सुखी जीवन वाले लोगों में यह रोग होता है. भोजन में अतिनमक युक्त पदार्थ, अत्यंत खट्टे पदार्थ, अतिशय तीखे, क्षारयुक्त, स्निग्ध, गरम अन्न-उपयोग, क्लेदयुक्त अथवा अति सूखे पदार्थ का उपयोग, पानी में रहनेवाले प्राणियों के मांस का भक्षण, पिण्याक (तिल का स्नेहांश निकालने पर बचा हुआ घन भाग और उससे बनाए गए पदार्थ), सानी नाम की सौराष्ट्र के कुछ भागों में प्रचलित विशिष्ट मिठाई, मूली, कुलथी, उड़द जैसे विदाहकारक एवं पित्तकारक पदार्थों का अतिसेवन, दही, कांजी, अतिशय खट्टी छांछ, सुरा-आसव-मद्य-खास करके मधुर मद्य. इसके साथ ही शारीरिक श्रम की कमी, अथवा अत्यंत गतिशील जीवन जीना, किसी कारण जोड़ों पर आघात होना, शरीर के शोधन का (वमन, विरेचन प्रकार से) अभाव, इन्हीं कारणों से वातवृद्धि और रक्त की ख़राबी भी होती है. इसके साथ ही 'पृष्ठयान' अर्थात हाथी, घोड़ा, ऊंट जैसे प्राणियों की पीठ पर सवारी करना, शिकार करना, साइकल-मोपेड-स्कूटर-मोटरसायकल आदि उदाहरण 'पृष्ठयान' के ही हैं. उष्ण ऋतु में ज़्यादा घूमना, अति मैथुन, अधिक देर पानी में तैरना, या कूदना इत्यादि से भी वातप्रकोप तो होता ही है, साथ ही शरीर के जोड़ों में दुर्बलता उत्पन्न होती है. आहार-विहार संबंधी उपरोक्त वर्णन समाज के विशिष्ट वर्ग में और विशिष्ट वय मर्यादा में मिलनेवाले कारणों का वर्णन है. यह मध्यवयो वर्ग में मिलता है. मोटापा भी एक कारण है. पर भारत में इस रोग से कम ही लोग पीड़ित होते हैं, क्योंकि हम श्रम युक्त जीवन जीते हैं.

आधुनिक वैद्य इस रोग का कारण कुल प्रवृत्ति को भी मानते हैं.

(१) संप्राप्ति अर्थात् रोगोत्पत्ति क्रम विविध कारणों से दोषप्रकोप विशेषतः वात की वृद्धि.

(२) साथ ही विदाही – उष्ण तीक्ष्ण कारणों से रक्त की खराबी.

(३) स्निग्ध, गुरु इत्यादि कारणों से अग्निमांद्य एवं आम की उत्पत्ति और रस धातु की दुष्टि.

(४) व्यायाम से शरीरगत जोड़ों में दुर्बलता उत्पन्न होती है.

(५) रसरक्त धातु के साथ ही रसरक्तवह स्रोतों की खराबी.

(६) बढ़े हुए वायु की गति का अपक्व रसधातु एवं प्रमाणाधिक रक्त से अवरोध, ख़ास संधियों में होने से सूज़न आना और दर्द होना. संधियों का हिलना-डुलना एकदम बंद हो जाना. इस प्रकार रोग की उत्पत्ति होती है. साथ ही संधि के आसपास की त्वचा में विवर्णता व रूक्षता आना.

चरकाचार्य ने इसके 'उत्तान' एवं 'गंभीर' दो भेद माना है. सुश्रुत ने दोनों का उल्लेख करते हुए इस विभाजन को 'युक्तिसंगत नहीं है'. ऐसा बताया है. व्यवहार में भी 'उत्तान' स्पष्ट रूप में देखने में नहीं आया है.

आहार-विहार का मनुष्य के शरीर पर गहरा असर होता है. गलत ढंग के आहार वात विकार उत्पन्न करते हैं इससे वातरक्त जैसी बीमारी उत्पन्न हो जाती है. आइए जानें इसके लक्षण, कारण व उपचार को –

पूर्वरूप

रोग पूर्णतः व्यक्त होने से पूर्व के लक्षण इस प्रकार हैं. पसीना अधिक आना या बिल्कुल न आना, संधि के आसपास के भाग में कालापन आना, स्पर्शज्ञान कम होना, व्रण हो तो उसमें बहुत दर्द होना, जोड़ों में शिथिलता और आलस्य आना, शरीर पर फुंसियां उत्पन्न होना, कंधों, घुटनों, जांघों, कमर पर एवं हाथ-पैर के जोड़ों में सूई चुभने जैसी वेदना होना, जगह-जगह पर फड़कन महसूस होना, भारीपन लगना, संधियों के आसपास खुजली होना, संधियों में तीव्र पीड़ा होना, संधियों के आसपास तथा शरीर के अन्य भाग की त्वचा पर चकत्ते होना, रंग में फर्क आना आदि अनेक प्रकार के लक्षण पूर्वरूप होते हैं.

इसकी कुछ बातें कुष्ठरोग के समान हैं. स्वेदवह स्रोत ख़राबी के समान भी कुछ लक्षण हैं. फिर भी संधियों में शूल होना और संधि संबंधी व त्वचा में विकृति की उपस्थिति इन लक्षणों से कुष्ठ रोग की व इस रोग की अलग पहचान आसानी से हो जाती है.

पैर की संधि में यह पहले होता है. बाद में शरीर के सभी जोड़ों में फैलता है. शरीर के दूर के जोड़ों से उत्पन्न होकर शरीर के मध्य की ओर बढ़ना इस रोग का स्वभाव है. हाथ-पैर की उंगलियों में छोटी संधियां होती हैं. इन संधियों की रचना टेढ़ी होती है, जिससे स्रोतोरोध एवं स्थान जमाने के लिए अनुकूल स्थितियां बन जाती हैं.

आधुनिक वैद्यक में गाऊट या पोडाग्रा को ही वात रक्त का पर्याय माना गया है अर्थात् पैर का 'अग्रभाग'.

सर्वप्रथम होनेवाली यह विशिष्ट संधि संबंधी वेदना अत्यंत तीव्र स्वरूप की होती है फूटने जैसी.दंश के समान व असहनीय इस प्रकार चरकाचार्य इसकी तीव्रता का वर्णन करते हैं.

प्रकारानुसार इनका वर्णन इस प्रकार है –

वातज : सिराएं.फूल.जाना, तीव्र शूल, तोद (सूई चुभने जैसी वेदना), फड़कन, शोथ में

कालापन, वेदना और शोथ अपने आप एकदम बढ़ना या कम होना, उंगलियों की संधियों का संकोच यानि सिकुड़ना, जकड़ाहट (स्तंभ), अतिशय पीड़ा, शीतोपचार से रोग लक्षण का बढ़ जाना.

रक्तज : जोड़ों में सूज़न, उसमें वेदना, तोद, त्वचा का लाल होना, चुनचुनाहट, त्वचा की आर्द्रता (गीलापन) ऐसे लक्षण मिलते हैं.

पित्तज : गहरा लाल वर्ण, शोथ पक जाना, तड़कने जैसी वेदना और मांसशोष.

कफ़ज़ : संधि की हलचल बंद होना, भारीपन, त्वचा की स्निग्धता, स्पर्शज्ञान का कम होना, परंतु इसमें पीड़ा कुछ कम होती है.

दो दोषों से होनेवाले प्रकारों में दोनों दोषों के मिले-जुले लक्षण एवं त्रिदोषज अथवा सन्निपातिक प्रकार में सभी दोषों के संयुक्त लक्षण पाए जाते हैं.

यह वेग से होने वाला रोग है. मध्यरात्रि में अचानक एकदम से तीव्र संधि शूल और शोथ से व्यक्ति जाग जाता है. असह्य वेदना व संधि भाग शोथयुक्त व लाल श्याम या अरुण वर्ण का हो जाता है. संधि की त्वचा अत्यंत रूक्ष हो जाती है. हिलना-डुलना असम्भव हो जाता है. शूल से नींद नहीं आती, भोजन की भी अनिच्छा होती है. मूत्रप्रवृत्ति कम मात्रा में और गहरे वर्ण की होती है. कुछ-कुछ घंटे बाद त्वचा झड़ने लगती है, साथ ही बुखार मलसंग, संपूर्ण शरीर में पीड़ा ऐसे लक्षण भी दिखाई देते हैं.

चोट लगने से, मद्यपान का अतियोग, भोजन संबंधी (अजीर्ण- असाम्य भोजन) एवं सहसाशीत संपर्क जैसे कारणों से वेग आता है.

व्यवच्छेदक निदान : संधियों में पीड़ा, सूजन, हिलना-डुलना सीमित होना जैसे लक्षण दूसरे रोगों में भी होते हैं. इन्हें एक दूसरे से अलग पहचानना ज़रूरी है.

गठिया जैसे लक्षण संधिगतवात, आमवत सिफिलिस से उत्पन्न संधिशूल इन रोगों में भी मिलते हैं. लक्षणों के आधार पर देखा जाए तो आमवात और इन में रक्तधातु की ख़राबी कारणीभूत नहीं है. इन रोगों में बड़ी संधियां वेदनाग्रस्त होती हैं. गठिया के जैसा रंगपरिवर्तन इन रोगग्रस्त संधियों पर नहीं मिलता. आमवात में संधियों की जकड़न विशेष रूप देखी जाती है और आमवात में आक्रांत जोड़ों पर मालिश करने से वेदना बढ़ती है. सिफिलिस से उत्पन्न संधिशूल यह सिफिलिस (गुप्तरोग) के उपद्रवरूप में रोगोत्पत्ति के पश्चात् देखा जाता है. सिफिलिस के विशिष्ट व्रण, रोगोत्पत्ति में मैथुन का इतिहास और रक्तपरीक्षण में 'ट्रिपोनीमा पैलीडम' के जीवाणु मिलते हैं. इस संधिवेदना में मालिश या शोक का कोई परिणाम नहीं मिलता.

उपद्रव – गठिया रोग आसानी से ठीक होनेवाला रोग नहीं है. अतः कितनी भी चिकित्सा करने के बावजूद व्यक्ति पूर्णतः रोगमुक्त नहीं होता और साथ ही में उपद्रव स्वरूप लक्षणों से ग्रस्त होता है.

इन उपद्रवों में निद्रानाश, उस स्थान के मांस का सड़ जाना, सिरदर्द, क्वचित् मूर्च्छा, बुखार, कंप, लंगड़ापन उंगुलियों की वक्रता और सांधों पर छोटी बड़ी पिड़ीकाएं, जिन्हें मॉडर्न साइन्स में टोफी (Tophi) कहते हैं. उत्पन्न होना आदि मुख्य रूप से देखे ज़ाते हैं.

चिकित्सा

वातरक्त के कारण एवं उत्पत्ति के कारण शोधन चिकित्सा महत्वपूर्ण होती है. शोधन में भी विरेचन, बस्ति एवं रक्तमोक्ष इनका विशेष उपयोग सावधानी से करें, जिससे शरीर अधिक दुर्बल होकर वायु की वृद्धि न हो. विरेचन के लिए एरंड तेल, दूध व गो मूत्र, त्रिवृत् चूर्ण अथवा मुनक्का, हरीतकी, आरग्वध क्वाथ इनका उपयोग कोष्ठ तथा अग्नि और बल को ध्यान में रखकर उचित मात्रा में करना चाहिए. व्यवहार में स्वादिष्ट विरेचन चूर्ण, दीनदयाल चूर्ण, स्रंसन चूर्ण इनका उपयोग करते हैं.

बस्तिप्रयोग भी बड़े लाभकर होते हैं. दशमूल क्वाथ, बलागोक्षुर क्वाथ, गुडूच्यादि क्वाथ इनका उपयोग निरुह बस्ति में करते हैं. अनुवासन के लिए बला तैल, निर्गुंडी तेल, गुडूची तेल का उपयोग करते हैं.

संधियों में जलन, वर्णपरिवर्तन और पाक होता हो, तो रक्तमोक्षण यानि जोंक लगाकर या सिरामार्ग से रक्त निकालते हैं. किंतु इनका प्रयोग वैद्य की उपस्थिति में ही करना चाहिए.

आभ्यंतर - शमन औषधियों में **गिलोय** की बेल के कंद का चूर्ण, उसका क्वाथ, तेल, घी या अमृतारिष्ट ऐसे विविध स्वरूपों में उपयोग कर सकते हैं.

- चूर्ण की मात्रा - १ से १।। ग्राम प्रतिदिन ३ से ४ बार लें.
- क्वाथ की मात्रा - २ से ४ चम्मच दिन में ३ बार.
- अमृतारिष्ट - २ से ४ चम्मच प्रतिदिन २ बार पानी मिलाकर भोजन के बाद लें.

अन्य गिलोय के कल्पों में -

- अमृतागुग्गुल - २-३ गोली प्रतिदिन ३ बार पानी या दूध से सेवन करें.
- कैशोरगुग्गुल - यह भी गठिया की एक उपयोगी औषधि है. मात्रा अमृतागुग्गुल के समान ही है.

गिलोय के समान दूसरी उपयोगी औषधि है **सुरंजान** यह यूनानी औषधि है. गठिया में कड़वे सुरंजान का उपयोग करते हैं. सुरंजान के कंद का चूर्ण १२५-२५० मि.ग्रा. की मात्रा में दिन में दो बार लें.

सुरंजान का सत्व - ६०-१२० मि.ग्रा. की मात्रा में दें.

सुरंजान पाचक, रक्तशुद्धिकर, मूत्रल और विरेचक है.

अनंतमूल (सारिवा) भी एक उपयुक्त दवा है. पित्तज और रक्तज गठिया में इसका विशेष प्रयोग करते हैं.

- अनंतमूल का चूर्ण - १ ग्राम पानी के साथ दिन में दो बार दें.
- अनंतमूल सिद्ध दूध.
- सारिवाद्यासव - २-३ चम्मच दिन में २ बार दें.

जलनयुक्त गठिया में **मुक्तापिष्टी** यानि मोती की भस्म (१२५-२५० मि.ग्रा. मात्रा) भी उपयुक्त है.

बाह्योपचार

स्थानिक लेप - ईसबगोल का लेप लाभ पहुंचाता है.

अभ्यंग और लेप के लिए शतधौतघृत, मेंहदी का लेप, पद्मकादि तेल या अमृता तेल इनका उपयोग करें.

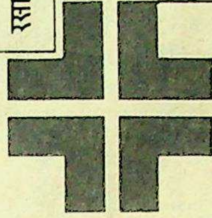
पथ्यः गेहूं, चावल, मूंग एवं अरहर की दाल, करेला, कुष्पाण्ड (कोहड़ा) की सब्ज़ी-द्राक्ष, आंवला जैसे फल, बकरी व भैंस का दूध, बहुत खट्टी न हो ऐसी छाछ, मक्खन व घी इत्यादि.

मांसाहारी के लिए - मुर्गी या कबूतर का मांस सेवनीय है.

अपथ्यः उड़द, कुलथी, मटर और जलीय प्राणियों का मांस, विरुद्धान्न, कांजी, दही, मद्य, तिल वर्ज्य है. दिन में सोना, अतिव्यायाम, भी अहितकर है.

प्रस्तुत अंक की क्रिया-प्रतिक्रिया

जी हां, 'आरोग्य संजीवनी' पाठकों की रुचि आदि को ध्यान में रख कर प्रकाशित की जाती है. फिर भी लेखों के संबंध में कुछ कमी या कुछ सुझाव आदि भेजना चाहें, तो स्वागत है आपकी क्रिया व प्रतिक्रिया का.



अभ्रक भस्म - निर्माण और उपयोगिता

सरोज शुक्ला
(आयुर्वेदरत्न)

अभ्रक कसैला, मधुर, शीतल, आयुवर्द्धक तथा धातुवर्द्धक होता है. यह त्रिदोष, प्रमेह, व्रण, कुष्ठ, प्लीहोदर, ग्रन्थि, विषविकार तथा कृमि रोग को नष्ट करता है. इसके सेवन से शरीर दृढ़ होता है एवं शुक्र की वृद्धि होती है. अधिक स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति उत्पन्न करता है. दीर्घायु एवं सिंह के समान पराक्रमी पुत्रों को उत्पन्न करने की क्षमता प्रदान करता है. इसके निरन्तर सेवन से अकाल मृत्यु का भय दूर हो जाता है.

अभ्रकस्तवबीजन्तु
ममबीजन्तु पारदः ।
अनयोर्मेलनं देवि ।
मृत्युदारिद्र्यनाशनम् ।।

अर्थात् पार्वती के वीर्य रूपी अभ्रक व शिव के वीर्य रूपी पारद का मेल मृत्यु तक का नाश करने वाला है और दरिद्रता को दूर करनेवाला है.

अभ्रक के भेद

गुण और रंगों के आधार पर अभ्रक चार प्रकार का होता है. इनमें से काला 'वज्र' अभ्रक सबसे उत्तम माना गया है -

तत्र कृष्णाभ्रके वज्रं
पीतात्मनि तु ग्राहिकम् ।
सितात्मके तारकं
स्याद्भीरुकं रक्तके वरम् ।।

काला, पीला, श्वेत और लाल - इनमें से काले अभ्रक की जाति में से 'वज्र' अति उत्तम है. पीले अभ्रक की जाति में से 'ग्राहिक' अच्छा होता है. श्वेत अभ्रक में 'तारक' तथा लाल अभ्रक की जाति में से 'भीरुक' अच्छा होता है.

उत्तम अभ्रक वज्र

जो अभ्रक कठोर अंगवाला, भारी, कज्जली के समान काला हो और जो आग में रखने पर न तो किसी प्रकार का शब्द करे और न फूले, जो उत्तम खान से निकला हो उसे 'वज्र' अभ्रक कहते हैं. काले अभ्रक के जो चार प्रकार (पिनाक दर्दुर, नाग और वज्र) हैं, उनमें वज्र सर्वश्रेष्ठ है. क्योंकि -

ध्यातमभ्रं दलचयं
पिनाकं विसृजत्यलम् ।
फुत्कारं भुजगः कुर्यात्
दर्दुरं भेकशब्दवत् ।
चतुर्थंच वरं श्रेयं
न वहौ विकृतिं व्रजेतच ।।

पिनाक को आग में तपाने से चिट-चिट शब्द के साथ उसके पत्र अलग-अलग हो जाते हैं. नाग अभ्रक आग में तपाने से सर्पवत फुंकार छोड़ता है और दर्दुर अभ्रक मेंढक के समान शब्द करता है. चौथा अभ्रक 'वज्र' को ही श्रेष्ठ जानो. वह आग में किसी भी विकार को प्राप्त नहीं होता है. वह ज्यों का त्यों रहता है.

इसके अतिरिक्त पिनाक अभ्रक की भस्म के सेवन से कुष्ठ और दर्दुर के सेवन से मृत्यु होती है. नाग अभ्रक के सेवन से भगन्दर रोग हो जाता है. इसलिए औषध के रूप में सदैव वज्र अभ्रक का ही सेवन करना चाहिए.

रसे रसायने चैव
योज्यं वज्राभ्रकं प्रिये ।
तस्मात् वज्राभ्रकं
ग्राह्यं व्याधिवार्द्धक्यमृत्युजित् ।।

अतः रसों और रसायन कर्म में वज्राभ्रक का ही प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि पिनाक आदि अभ्रकों की तरह यह किसी विकार को प्राप्त नहीं होता और कुष्ठ, मृत्यु भगन्दर प्रभृति का कारण भी नहीं होता. अतः वज्र अभ्रक का ही सेवन करना अभीष्ट है. यह रोग, बुढ़ापा और अकाल मृत्यु से बचाव करता है.

अशुद्ध अभ्रक के दोष

अशोधित अभ्रक अनेक विकारों को उत्पन्न करता है. यह शरीर में अनेक प्रकार की पीड़ा, कुष्ठ, क्षय, पाण्डुरोग और हृदय विकार उत्पन्न करता है. इसके सेवन से पसलियों में भीषण पीड़ा होती है और गुरु तथा मंदाग्निकारक होता है. अशुद्ध अभ्रक की भस्म आयु का नाश करती है. वायु और कफ को बढ़ाती है. शुद्ध भी अभ्रक हो परन्तु कच्चा हो अथवा ठीक से भस्म न बनाया गया हो तो गात्रों (शरीर) का छेदन करता है, मंदाग्नि और कृमि उत्पन्न करता है.

शोधन विधि

अभ्रक को आग पर धौंकनी से तपा-तपा कर त्रिफला का काढ़ा, गोमूत्र, दूध अथवा कांजी किसी एक में सात बार सिंचन करने से वह शुद्ध हो जाता है. कहीं-कहीं चारों में सात-सात बार बुझाने का भी विधान है. भावप्रकाश के अनुसार -

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ
ततः क्षीरे विनिक्षियेत् ।
भिन्न पत्रं तु तत्कृत्वा
तण्डुलीयाम्लये द्रवैः ।।
भावयेदष्टयामं
तदेवमभ्रकं विशुद्धयति ।।

अर्थात् काले अभ्रक को अग्नि में तपाएं और फिर दूध में बुझाएं, तत्पश्चात् उसे कूट कर चौलाई के रस एवं नींबू के रस की भावना दें. इस प्रकार अभ्रक शुद्ध हो जाता है.

अभ्रक भस्म बनाने की विधि

धान्य अभ्रक को लेकर नागर मोथे के क्वाथ से एक दिन घोंटकर पुट दें. ऐसे तीन बार पुट दें. इसी प्रकार पुनर्नवा के रस से, कसौंदी के रस से, पान के रस से तथा आक के दूध से एक-एक दिन पृथक-पृथक घोंटकर तीन-तीन पुट दें. फिर गोखरू के काढ़े से तीन पुट दें. तत्पश्चात् कौंच के काढ़े से तीन पुट दें. अनन्तर तालमखाने के रस से तीन बार पुट देना चाहिए. इसके बाद लोध के काढ़े से तीन पुट दें. पुनः गो के दूध में घोंटकर एक-एक पुट देना चाहिए. फिर दही से एक पुट, घी से एक पुट, शहद से एक पुट तथा स्वच्छ खांड अथवा मिश्री के साथ घोंटकर एक पुट दें. इस प्रकार से अभ्रक मर जाता है.

यह अभ्रक भस्म सब रोगों को हरनेवाली, योगवाही, स्त्रियों के मद को नाश करनेवाली, नपुंसकों को पुरुषत्व देनेवाली, वृष्य, आयुवर्द्धक, वीर्य बढ़ानेवाली तथा संतान देनेवाली है.

अभ्रक का अमृत किरण करने की विधि यह है कि अभ्रक भस्म को समान भाग गोघृत में मिलाकर लौह पात्र में पकाएं. घी जल जाने पर पीसकर रख लें और सभी कार्यों

में प्रयोग करें.

भस्म निर्माण की अन्य विधियां

शुद्ध वज्राभ्रक को एक हांडी में डालकर 'रम्भादिगण' अर्थात् केले आदि क्षारवर्ग के क्षारजल (चतुर्गुण) से उपलों की आग देकर पकाएं. जब तक हांडी के बाहर का भाग सिन्दूर के समान लालवर्ण का न दिखाई दे तब तक आंच देते जाएं. तत्पश्चात् उसे उतार कर तपे हुए को ही दूध से सिक्त करें. अनन्तर जल से धो कर और सुखा कर चूर्ण बना लें. इससे अभ्रक की भस्म बन कर तैयार हो जाती है अथवा -

रम्भाद्भिरभ्रं लवणेन पिष्ट्वा
चक्रीकृतं तद्दलमध्यवर्ति ।
दग्धेन्धनेषु व्यजनानिलेन
स्नुह्यकमूलाम्बु पुटेन सिद्धम् ।।

अभ्रक में कुछ सेंधा नमक मिलाकर केले की जड़ के रस से घोंटें और तत्पश्चात् टिकिया बनाकर सुखा लें. फिर केले के पत्तों में लपेट कर अंगारों पर रख कर पंखे से हवा देते जाएं. इसके बाद थोहर की जड़ रस से और आक की जड़ के रस से पुट दें तो अधिक अभ्रक सिद्ध होता है.

सिद्ध होने के पश्चात् भस्म को जल से धोकर लवणांश को निकाल देना चाहिए.

अभ्रक मारकगण

● चौलाई, बड़ी कटेरी, पान पिण्डतगर, पुनर्नवा (श्वेत) हिलमोचिका, मण्डूकपर्णी, कुटकी मूषापर्णी, मदन आक, ताजी पालक (अथवा अदरक और पालक), सूतमातृका (घीकुवार) इनको विद्वानों ने अभ्रक का मारकगण कहा है.

● तीन दूध, घीकुवार का रस, नागरमोथा, पुरुष-मूत्र, बड़ के अंकुर, बकरी का खून, इन सबसे अभ्रक को घोंटें. घोंट-घोंटकर सौ पुटे दें तो पद्मराग के समान लाल रंग की निश्चन्द्र भस्म होती है. वमन, विरेचन आदि से शुद्ध शरीर में निश्चन्द्र अभ्रक का सेवन रसायन है. यहां तीन दूध से तात्पर्य बरगद, सेहुण्ड और मदार के दूध से लिया जाता है.

अभ्रक भस्म का विविध प्रयोग

अभ्रक भस्म अनेक रोगों में विशेष गुणकारी है. यह शक्तिवर्द्धक, पुरुषत्व प्रदान करनेवाला तथा वातज, पित्तज, कफज, सभी रोगों को शमन करनेवाली है. कुछ रोगों में इसकी प्रयोग विधि दी जा रही है.

ग्रहणी, अतिसार में : अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, लौह भस्म, कौड़ी भस्म, चांदी भस्म, अतीस का चूर्ण प्रत्येक द्रव्य एक-एक कर्ष लें. पहले पारे, गन्धक की कज्जली करें. फिर सब द्रव्य मिलाकर सब को पीसकर धनिया और सोंठ के क्वाथ से पृथक-पृथक भावना दें. फिर एक-एक रत्ती की गोलियां बना लें. प्रातः काल एक गोली बकरी के दूध के साथ या जामुन की छाल के काढ़े के साथ पीएं. यह अतिसार, घोर ज्वर, ग्रहणी, अरुचि, आमशूल, भ्रम, शोथ, आदि में अत्यधिक लाभकारी है.

ज्वरनाशक : अभ्रक भस्म, हरड चूर्ण, शुद्ध पारा, शुद्ध विष. शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, बहेड़ा चूर्ण, आवला चूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध दन्ती बीज प्रत्येक द्रव्य समभाग में लें. पहले पारा-गंधक की कज्जली करें. फिर अन्य द्रव्य मिलाकर द्रोणपुष्पी (गूमा) के रस से भावनाएं देकर सुखा लें. बाद में कपड़े से छानकर शीशी में रख लें. यह चिंतामणि रस आठों प्रकार के ज्वरों का नाश करता है तथा सभी प्रकार के शूल दूर करता है. एक रत्ती की मात्रा में अदरक के स्वरस के साथ लेना चाहिए.

कृमि : अभ्रक भस्म, लौह भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, चाय के फूल, हरड़-बहेड़ा, लोध, वायविडंग, दारुहल्दी-इन सब के चूर्ण समभाग हो. पारा गंधक को कज्जली करने के बाद सभी को एक साथ मिला कर पीसें. अदरक के रस से सात बार भावना देकर चने के बराबर गोलियां बना लें. इसे प्रातः काल त्रिफला के रस के साथ सेवन करें तो कृमिरोग शांत हो जाता है. वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, त्रिदोषज सभी प्रकार के कृमियों का यह नाश करता है.

वातव्याधि: अभ्रक भस्म एक पल, शुद्ध पारा आधा पल, शुद्ध गंधक आधा पल, वला, नागबला, शतावर, विदारीकन्द, काले धतूरे के शोधित बीज, समुद्रफल, गोखरू, विधारे के शुद्ध बीज, शुद्ध भांग के बीज, जायफल, जावित्री, कपूर - प्रत्येक का चूर्ण एक-एक कर्ष और एक कर्ष का आठवां भाग स्वर्णभस्म लें. पारा-गन्धक की कज्जली करके यथाक्रम शेष द्रव्यों को मिलाकर पान के पत्तों के स्वरस में घोंट कर उबले चने जितनी गोलियां बना लें. यह वायुरोगों में तथा मांसगत वायु में अधिक लाभ करता है. वीर्यक्षय से कुपित वात में भी अतीव हितकर है. मात्रा दो रत्ती से चार रत्ती तक ले सकते हैं.

कफज रोग: वज्र अभ्रक की भस्म एक पल, शुद्ध गन्धक आधा पल, बंग भस्म एक कर्ष, शुद्ध पारा आधा कर्ष, शुद्ध हड़ताल आधा कर्ष, ताम्रभस्म चौथाई कर्ष, कपूर आधा कर्ष, जायफल एक कर्ष, जावित्री एक कर्ष, शोधित विधारे के बीज एक कर्ष, शुद्ध धतूरे के बीज एक कर्ष, स्वर्णभस्म एक शाण लें, पारा-गंधक को कज्जली करके फिर सभी द्रव्य मिलाकर खरल करें और जल से पीस कर दो रत्ती भर की गोली बना लें.

यह रस कफज रोगों का शमन करता है. सन्निपात से उत्पन्न महाभयंकर रोगों का नाश करता है. गले के रोग, आन्त्रवृद्धि, अतिसार, ग्यारह प्रकार के कुष्ठ, बीस प्रकार के प्रमेह, नासूर, घोर व्रण गुदा के रोग, भगंदर, खांसी, राजयक्ष्मा, रक्तदोष, सभी प्रकार का आमवात, उदर रोग, सभी प्रकार के शूल, स्त्री रोग - इन सभी रोगों का नाश करता है.

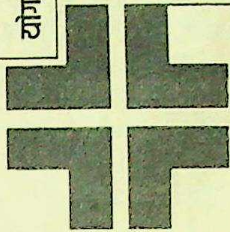
इसकी एक गोली नित्य प्रातः काल बलानुसार खाने और ऊपर से चावल के आटे के पदार्थ, दूध, दही का अनुपान सेवन करने से कामदेव के समान रूप हो जाता है.

हृदय रोग में 'नागार्जुन अभ्रक भस्म': हृदय विकारों में यह औषधि अत्यंत उपयोगी है. इसके निर्माण की विधि निम्न प्रकार है - सहस्रपुटी अभ्रक भस्म को अर्जुन की छाल के क्वाथ से सात दिन तक खरल करके सुखाएं. तत्पश्चात् (एक रत्ती भर की) गोली बना छाया में सुखा लें. इसके सेवन से हृदय रोग, सभी प्रकार के शूल, बवासीर, वमन, अरुचि, अतिसार, अग्निमान्द्य, रक्तपित्त, क्षतक्षय, शोथ, उदर रोग, अम्ल पित्त, विषम ज्वर तथा अन्य रोग भी नष्ट होते हैं. यह बलदायक, वृष्य तथा रसायन है. प्रतिदिन एक गोली अथवा चिकित्सक के निर्देशानुसार सेवन करें.

पित्तरोग में 'अभ्रसत्व भस्म' का प्रयोग: अभ्रकसत्व के गोलक को अग्नि में लाल कर धानयुक्त कांजी में बुझाएं और लौहदण्ड से कूट लें. जो मोटे कण हों उन्हें पुनः गरम करके कांजी में बुझाते जाएं, फिर पुनः कूटकर चूर्ण कर लें. पुनः गाय के घी से तर करके कड़ाही में रखकर तीव्र आग दें जिससे अंगारों के सदृश्य लाल हो जाएं. भूनने के पूर्व लोहे की कड़छी से हिलाते भी रहना चाहिए. पुनः इसे उतार कर ठण्डा होने पर कूटें. दुबारा फिर घी मिलाकर पूर्ववत् आग पर लाल करें. ऐसा ही तीसरी बार भी करके आंवले के पत्तों के रस से भी तीन बार मर्जन करें. प्रत्येक बार भूनने के बाद उसे पीस अथवा कूट लेना चाहिए. फिर पुनर्नवा के रस और कांजी से एकत्र

शेषांश पृष्ठ ११ पर

योगासनों से क़द बढ़ाइए



योग भारत-की एक प्राचीन-अर्वाचीन परंपरा रही है. ऋषि-मुनियों ने योग के बल पर ही कई चमत्कार कर दिखाए, और अब आधुनिक काल में पाश्चत्य वैद्यक शास्त्र द्वारा भी इसकी उपयोगिता तथा महत्व सिद्ध हो चुका है.

योगाभ्यास-व्यक्ति के शारिरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करता है. स्वास्थ्यरक्षण तथा अनेक व्याधियों की चिकित्सा में भी यह सहायक है.

क़द के विकास में सहायक ग्रंथियां

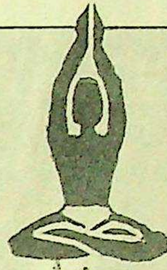
व्यक्ति के उचित विकास में शरीरस्थ अंतः स्रावा ग्रंथियां मुख्य रूप से सहायक होती हैं. इन ग्रंथियों में पिट्युटरी (शीर्षस्थ) ग्रंथि प्रमुख है. इन ग्रंथियों से निर्मित स्राव शरीर की ऊंचाई बढ़ाने में भी प्रमुख रूप से सहायक है. किसी भी कारण से यदि इन ग्रंथियों के कार्य में अवरोध पैदा हो जाए तो व्यक्ति का विकास रुक सकता है. योगाभ्यास द्वारा इन्हीं ग्रंथियों के कार्य को सुचारु रूप से करने में मदद मिलती है.

क़द बढ़ाने में सहायक योगासन

शारीरिक विकास की दृष्टि से योगाभ्यास में सर्वाधिक महत्व योगासनों का है - 'स्थिरसुखमासनम्' - शरीर की स्थिरता तथा सुख की अनुभूति कराने वाली स्थिति को 'आसन' कहा गया है. योगाभ्यास में अनेक आसनों का समावेश किया गया है. उनमें से कुछ प्रमुख आसन जो व्यक्ति के क़द को बढ़ाने में सहायक हैं, उनका वर्णन यहां किया जा रहा है -

पर्वतासन - इस आसन में शरीर को पर्वत के समान आकार प्राप्त होता है, शरीर के उत्तमांग तथा मेरु दंड पर खिंचाव का निर्माण होता है. इस आसन से मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के रक्ताभिसरण में सुधार हो कर इनकी कार्य क्षमता बढ़ती है.

तड़ासन - ताड़ के वृक्ष के समान इस आसन में संपूर्ण शरीर में ऊपर



पर्वतासन



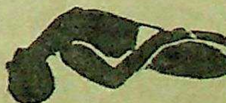
ताड़ासन



पश्चिम तानासन



सुप्त वज्रासन



मत्स्यासन



सर्वांगासान



शीर्षासन

हमारी योग साधना की जो प्राचीन परपरा है वह इतनी समृद्ध है कि हमें स्वस्थ तो रखती ही है और हमारे क़द के विकास में भी सहायक साबित होती हैं. यदि आप भी छोटे क़द से चिंतित हैं, तो इन सात आसनों को अपनाइए.

की तरफ़ खिंचांव की निर्माण किया जाता है. इस आसन की अंतिम स्थिति में पैर के पंजों पर (एंड़ी ऊपर उठा कर) खड़े रहना होता है. इस आसन से उपर की शिराओं का कार्य सुधरता है, मेरुदंड में भी रक्त का प्रवाह सुधरता है तथा

सुषुम्ना नाड़ियों को उत्तेजना प्राप्त होती है. मेरुदंड में लचीलापन भी बढ़ता है.

पश्चिम तानासन-इस आसन में पैर की एड़ियों से मस्तिष्क तक के शरीर के पश्चिम भाग (पीठ के भाग) पर खिंचाव का निर्माण किया जाता है. इसके कारण शरीर के पृष्ठ भाग के स्नायुओं में लचीलापन बढता है और शरीर के इन भागों में यदि कोई दोष या विकृतियां हों तो वे नष्ट हो जाती हैं. इन भागों के स्नायुओं में रक्तप्रवाह की क्रिया में भी सुधार होता है.

सुप्त - वज्रासन - पश्चिम तानासन में शरीर का पूर्व भाग पूर्णतः निष्क्रिय रहता है. सुप्तवज्रासन के करने पर शरीर के पूर्व भाग में खिंचाव आता है. इस आसन को करने से पश्चिम तानासन से होने वाले लाभ अधिक प्रमाण में प्राप्त हो सकते हैं.

सर्वांगासन - सर्वांगासन में शरीर का वज़न कंधों पर आने से कंठस्थ ग्रंथी पर दबाव का निर्माण होता है, जिससे इन ग्रंथियों के स्राव नियमित होते हैं. कंठस्थ ग्रंथि के कार्य पर शरीर की ऊंचाई, वज़न, शरीर और मस्तिष्क की वृद्धि, जननेन्द्रियों का कार्य, त्वचा की कांति- इत्यादि बातें निर्भर करती हैं. इसलिए इस ग्रंथि के ठीक प्रकार से कार्य करने पर सर्वांगीण आरोग्य की प्राप्ति संभव है.

मत्स्यासन -.यह आसन सर्वांगासन का ही एक पूरक आसन है.

सर्वांगासन के पश्चात् इस आसन को करने से अधिक लाभ - की प्राप्ति संभव होती है.

शीर्षासन - इस आसन में पैर ऊपर कर के सिर के बल खड़े रहना होता है. इस आसन के द्वारा - पिट्यूटरी, पीनियल, थायराइड और पैराथायराइड इन सभी ग्रंथियों की कार्यक्षमता बढ़ जाने से ऊंचाई बढ़ने के मार्ग में जो भी अवरोध होता है, वह दूर हो जाता है और व्यक्ति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता है.

इन सभी आसनों का अभ्यास किसी योग्य 'योग-प्रशिक्षक' की देख-रेख में १४ वर्ष की आयु से लेकर २० वर्ष की आयु तक नियमित और रोज़ करने से अवश्य लाभ होता है. योगाभ्यास के लिए सुबह या शाम का समय अधिक उपयुक्त होता है. इसके लिए खुले-स्वच्छ तथा प्राकृतिक स्थान को प्राथमिकता देनी चाहिए. आधे घंटे का समय इन सभी आसनों को करने के लिए पर्याप्त होता है. योगाभ्यास करते समय सूती तथा ढीले-ढाले कपड़े पहनना बेहतर होता है. योग-अभ्यास के २ घंटे पहले कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिए. सूर्यनमस्कार, तैरना तथा अन्य व्यायाम एवम् पौष्टिक आहार भी क़द बढ़ाने में मदद करते हैं. उपरोक्त सभी बातों पर विचार करके व उनका पालन करने से निश्चित रूप से युवक-युवतियां अपने क़दका उचित विकास कर सकती हैं.

पृष्ठ २४ का शेष

पदार्थ लाभदायक होते हैं.

अन्य तामसी पदार्थ

जिन वस्तुओं में उपर्युक्त पदार्थों के दोष थोड़े या अधिक हों, वे सभी वस्तुएं तो तामस हैं ही, उनके अतिरिक्त गांजा, भांग, अफीम, तम्बाकू, सिगरेट-बीड़ी, अर्क, आसव और अपवित्र दवाइयां आदि तमोगुण उत्पन्न करनेवाली जितनी भी खान-पान की वस्तुएं हैं - सभी तामस हैं

इनके अलावा आजकल बड़े शहरों में बाज़ार का खाना.बड़ी चाव से खाया जाता है, उन सबका भी समावेश तामसिक आहार में होता है. इन आहारो में शरीर के लिए पोषक कोई भी अंश नहीं मिलता. इनको खाने से शरीर और मन में सात्विकता की जगह तामसिकता आ जाती है.

तामसी आहारों का प्रभाव

अन्तःकरण और इन्द्रियों में ज्ञानशक्ति का अभाव करके उनमें मोह उत्पन्न कर देना ही तामसी आहार का गुण है.

तामसी आहार से अज्ञान बढ़ता है और अज्ञान से तमोगुण बढ़ता है. इन दोनों में बीज और वृक्ष की भांति अन्योन्याश्रय संबंध है, इसीलिए कहीं तामसी आहार-गुण से अज्ञान की और कहीं अज्ञान से तमोगुण की उत्पत्ति बतलाई गई है. इसलिए जब तमोगुण बढ़ता है, तब

वह कभी तो मनुष्य की कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय करनेवाली विवेकशक्ति को नष्ट कर देता है और कभी अंतःकरण और इन्द्रियों की चेतना को नष्ट करके निद्रा की वृत्ति उत्पन्न कर देता है. इस प्रकार तामसी आहार मनुष्य के ज्ञान को आच्छादित करता है और कर्त्तव्य पालन में अवहेलना कराके व्यर्थ चेष्टाओं में नियुक्त करके 'प्रमाद' में लगाता है.

जिस समय तमोगुण बढ़ता है. उस समय मनुष्य के इन्द्रिय और अन्तःकरण में दीप्ति (प्रकाश) का अभाव हो जाता है. कोई भी काम अच्छा नहीं लगता, केवल पड़े रहकर ही समय बिताने की इच्छा होती है. शरीर और इन्द्रियों द्वारा व्यर्थ चेष्टा करते रहना और कामों की अवहेलना करना ऐसे व्यक्तियों का स्वभाव हो जाता है. मन का मोहित हो जाना, किसी बात की स्मृति न रहना, तन्द्रा, स्वप्न या सुषुप्ति अवस्था का हो जाना, किसी विषय को समझने की शक्ति का न रहना आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं. ये सब लक्षण तमोगुण की वृद्धि के समय उत्पन्न होते हैं.

तमोगुण की वृद्धि होने पर मनुष्य अपने वश में नहीं होता, वह मन और इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है. ऐसे पुरुषों में श्रद्धा और आस्तिकता का अभाव होता है. तामसी गुण के कारण इनके स्वभाव में कठोरता आ जाती है. इनमें विनय का अत्यन्त अभाव होता है और सदा ही घमंड में चूर रहते हैं. अपने सामने दूसरों को कुछ भी नहीं समझते. ऐसे व्यक्ति द्वेष को छिपाकर गुप्तभाव से दूसरों का अपकार करते हैं. मन ही मन दूसरों का अनिष्ट करने के दावपेंच सोचते रहते हैं. इस प्रकार से ये दूसरों की जीविका का नाश करते हैं. दूसरों की वृत्ति में बाधा डालना इनका स्वभाव होता है. इस प्रकार उपर्युक्त सभी अवगुण तामसी आहार के सेवन से उत्पन्न होते हैं. अतः जिनमें ये लक्षण हों उन्हें तामसी प्रवृत्ति का समझना चाहिए और उन्हें तामसी भोजन ही विशेष प्रिय होते हैं. ऐसे तामसी व्यक्तियों की अधोगति होती है. अतः कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को अपने में तामसी लक्षणों का कोई भी अंश न रहने देने के लिए ऐसे आहारों से बचना चाहिए.

- रामकृष्ण शुक्ल

हा हा हा!

एक बार एक देहाती डॉक्टर से एक आदमी ने सर्दी की दवा मांगी.

डॉक्टर ने कहा - 'घर जाकर ठण्डे पानी से नहा लो और बिना शरीर पोंछे सो जाना.

'इससे तो निमोनिया हो जायेगा.'

डॉक्टर बोला - 'मैं निमोनिया का इलाज जानता हूं, सर्दी का इलाज मुझे नहीं मालूम है.'

चुंबक चिकित्सा

दस्त व पेचिश की चिकित्सा

- डॉ. नेविले एस. बेंगाली

व्यस्त शहरों में जहां रहने की व्यवस्था दिन प्रति दिन बदतर होती जा रही है. जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ होटलों व रेस्टोरेंटों की संख्या भी बढ़ रही है, जहां भोजन पकाने में बहुत ही अस्वच्छता होती है साथ ही पीने का पानी भी साफ़ नहीं मिल पाता, जिससे गैस्ट्रोस्टाइनल बीमारियां सामान्य रूप से बढ़ रहीं हैं. विशेषकर बरसात के मौसम में जहां अधिक मात्रा में कीटाणु पानी द्वारा संक्रमित होते रहते हैं, जिससे पेचिश व दस्त की बीमारियां फैलती जा रही है. इस प्रकार गैस्ट्रो एन्ट्राइटिस (जठरान्त्र शोथ) व कॉलरा की वजह से अनेक मौतें हो रही हैं, विशेषकर इस रोग के कारण बच्चों की मौतें ज़्यादा होती हैं.

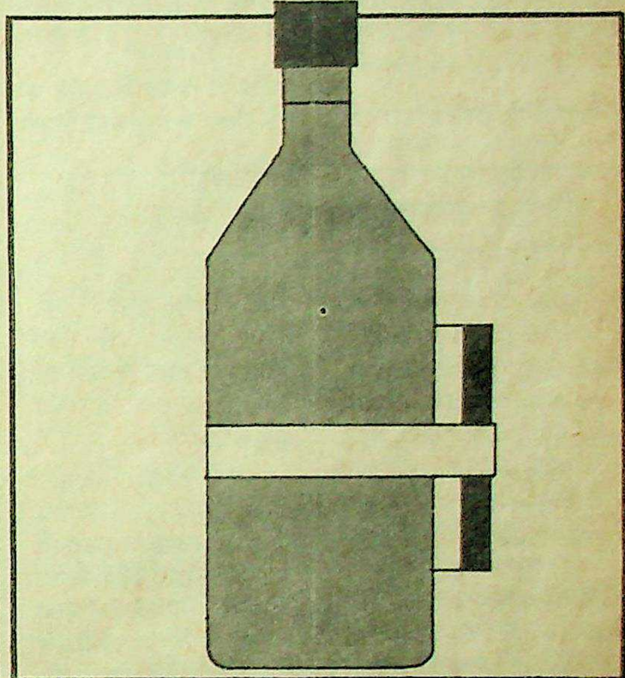
मनुष्य का शरीर बहुत संवेदनशील होता है. इन जीवाणुओं की वज़ह से शहरों में अधिक संक्रामक बीमारियां फैलती हैं. भोजन जो खुला रहता है उसमें डीसेंट्री बैसिली या सल्मोनेला एन्ट्राइटिस जैसे जीवाणु हो सकते हैं, जो गैस्ट्रो-एन्ट्राइटिस नामक बीमारी उत्पन्न कर सकते हैं जिसमें तेज़ दस्त व उल्टी होती है.

कॉलरा में चावल के धोवन जैसी दस्त होती है और मरीज़ को मांसपेशियों की ऐंठन व शक्ति-क्षय होता है. यदि दस्त व उल्टी समय पर जांच कर बंद करने का प्रयत्न न किया जाय, तो शरीर में निर्जलीकरण हो सकता है, जैसा कि इलेक्ट्रोलाइट डेप्लीशन अनियंत्रित कॉलरा में होता है, जो मृत्यु का कारण बन सकता है.

पेचिश जैसा रोग शहरों की जनसंख्या के एक बड़े भाग को प्रभावित करता है. इस बीमारी में निचले इन्टेस्टिनल ट्रैक्ट विशेषकर कोलोन में जलन व अल्सर महसूस होता है. अमीबिक पेचिश (अमीबाजन्य) जो इन्टोमोइबा हिन्टो लाइटिका के कारण होता है वह अमीबिक कोलाइटिस भी कहलाता है. यह अधिक तनाव से होता है. बेसिलरी डिसेन्ट्री, शिगेला के कारण उत्पन्न होता है. पेचिश के मरीज़ को खून व कफ़ से युक्त मल निकलता है. ऐंठन के साथ मलाशय में पीड़ा महसूस होती है. पेचिश अब एक दीर्घकालिक बीमारी बनती जा रही है, जिसे एक लंबे उपचार की आवश्यकता है.

तीव्र दस्त का उपचार

अनियंत्रित पेचि जठरांत्र शोध के कारण शरीर में पानी का ह्रास हो जाता है. अतः शरीर में जल की आपूर्ति करनी चाहिए. 'ओरल रिहाड्रेशन थेरेपी' या ओ.आर.टी. घोल में. इसकी आपूर्ति कर सकते हैं. ओ.आर.टी. घोल नमक व शक्कर से बनता है. यह पैक केमिस्ट की दुकानों पर उपलब्ध होता है. अथवा इसे आप घर पर भी बना सकते हैं. एक गिलास पानी में चुटकी भर नमक व दो चम्मच शक्कर डालकर इसे तैयार किया जाता है. इसे नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी देर बाद या हर दस्त के बाद पिलाते रहना चाहिए. शिशुओं को दस्त के बाद दो या तीन चम्मच पिलाते रहना चाहिए. पानी अच्छी तरह उबाला हुआ व छाना हुआ होना चाहिए. यदि ओ.आर.टी. का घोल दिया जा रहा है तो इंट्रा-वेनस डेक्सट्रोस (द्राक्षशर्करा) देने की कोई आवश्यकता नहीं है. एलोपैथिक एंटी-डायरियल औषधियों की तभी आवश्यकता होती है, जब दस्त बंद न हो. उसे बंद करने का उपचार करना चाहिए.



पानी भरे बोतल में दक्षिणी ध्रुव इस तरह चुम्बकीय जल बनाने के लिए क्रोमो मैग्नेट लें और उसका दक्षिणी ध्रुव (नीला भाग) बोतल से इस तरह बांधे.

वर्षाऋतु रोगों का वाहक है. इस दौरान बच्चों या बड़ों को दस्त या पेट में मरोड़ की समस्या आम हो जाती है. समय रहते इसकी चिकित्सा कर ली जाए, तो रोग ठीक हो जाता है. आइए देखें कि चुंबक चिकित्सा किस तरह इसमें लाभकारी है.

चुंबकीय चिकित्सा व होमियोपैथी

यद्यपि आधुनिक दवाइयां रोग को तुरंत नियंत्रित करती हैं, परंतु लंबे समय तक बड़ी मात्रा में ये दवाइयां नुकसानदेह हो सकती हैं. यदि मैग्नेट थेरेपी व होमियोपैथी चिकित्सा साथ-साथ दिए जाएं, तो मरीज़ को ज़रूर इसका फ़ायदा होगा. इस प्रकार के इलाज से तीव्र दस्त व पेचिश को जल्दी नियंत्रित किया

जा सकता है.

(होमियोपैथी व मैग्नेट थेरेपी शरीर के असंतुलित बायोएनर्जी लेवल या प्रान को नियंत्रित करता है.)

होमियोपैथी व मैग्नेट थेरेपी दीर्घकालिक रोगों के लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं. मैग्नेट चिकित्सा को ती भागों में बांटा जाता है –

- शरीर को मैग्नेटिक पोल से सीधे संपर्क करवाना. यह डॉक्टरी निरीक्षण में ही कराना चाहिए.
- मैग्नेटाइज्ड (चुंबकीय) पानी का प्रति दिन सेवन
- होमियोपैथिक दवाइयां जो मैग्नेटाइज्ड बेस (चुंबकीय आधार) पर बनाई गई हों (गोलियां व दूध शक्कर का पावडर आदि.) का सेवन.

दस्त व पेचिश के मरीज़ को सिर्फ दक्षिण ध्रुव का पानी पिलाना चाहिए. इस मानी को तैयार करने का सबसे अच्छा तरीका है कि उबाला व छान कर ठंडा किया हुआ पानी बोतल में भरकर चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव (नीला भाग) बोतल के एक ओर पीने के दो घंटे पहले तक रखें. मैग्नेट पूरे दिन व रात तक रखें. आधा-आधा गिलास पानी दिन में चार बार पीएं. इस चुंबकीय पानी (मैग्नेटाइज्ड वाटर) को रेफ्रिजरेटर में न रखें.

होमियोपैथिक दवाइयां जैसे एलो, अर्सनिकम अल्बम, नक्स वोमिका व मरक्यूरिस को जब मैग्नेटाइज्ड बेस में बनाया जाता है, तो वह दस्त या मरोड़ में अधिक लाभ पहुंचाती है. परंतु इस चिकित्सा को संबंधित डॉक्टर के निरीक्षण में ही कराना चाहिए. ●

नीरोगता के लिए रोगी को खूब हंसाइए

हास्य थेरेपी के परिचालकों की मान्यता है कि जब रोगी खिलखिला कर हंसते हैं तो उनके शरीर में कंपन होता है और उसी कंपन से शरीरस्थ कॉस्मिक मैग्नेटिक विद्युत प्रवाह फूट पड़ता है. शरीर में कॉस्मिक विद्युत प्रवाह बहने लगता है. उससे उष्मता एवं ऊर्जा शक्ति उत्पन्न होती है. प्रमाण के लिए उन्होंने प्रयोग करके बताया कि गुमसुम रोगी के शरीर में जो तापक्रम था, वह हंसने के बाद द्विगुणित हो गया. उसमें एक लौ उत्पन्न हो गयी. उससे शरीरस्थ संचरना क्रियाशीलता का आवेग बढ़ा. पसीना आया, रक्त में गरमी पैदा हुई और शरीर में, उसकी कोशिकाओं, तंतुओं रक्त प्रवाह एवं रस प्रवाह नाड़ियों को धक्का लगा. उससे विजातीय पदार्थों के संचय से उत्पन्न बाधाएं और अवेराधक बर्फ की तरह पिघल गये.

इस हंसने-हंसाने की क्रियाओं की गतियों और आवेगों में परिवर्तन करते रहने से शरीरस्थ क्रियाओं का भी मंथन होता है. उनमें लहरें, उत्पन्न होती हैं, जो अपने आवेग से स्वयं विद्युतमयी होकर विकारों को भस्मीभूत करने का चमत्कार दिखाती हैं.

आहार-विहार और आचार-विचार में असंतुलन होने पर, उनकी मर्यादाओं का अतिक्रमण होते ही मनुष्य के शरीर में दोष इस परिमाण में संचित हो जाते हैं कि वे अपने आप निकल नहीं पाते. बल्कि शरीरस्थ संरचनाएं क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करते हैं. इस प्रकार दोषों के बढ़ने पर शरीर की अनेक क्रियाएं मंद पड़ जाती हैं. पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, शौच साफ नहीं होता, आंतें शुष्क हो जाती हैं और तब विजातीय द्रव्य शरीर में संचित होते रहते हैं, इन्हीं विजातीय द्रव्यों के संचित होने पर रोग जन्म लेते हैं.

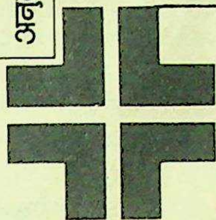
इन व्याधियों को दूर करने हेतु चिकित्सक रोगोपचार करते हैं. ये चिकित्सक प्रायः औषधिजन्य चिकित्सा करते हैं और साथ में आहार-विहार पथ्य संबंधी निर्देश भी देते हैं. पर कुछ रहस्यमय चिकित्साएं भी हैं जिनका संबंध औषधि से न होकर शारीरिक और मानसिक क्रियाओं से जुड़ा है. इन रहस्यमय चिकित्साओं में एक चिकित्सा पद्धति हंसी के साथ जुड़ी हैं. इस थेरेपी के चिकित्सकों का कहना है कि रोग मुक्ति के लिए बीमारों को खूब हंसाइए. रोगियों को हंसाने से उनके रोगों के दोषों का निवारण सहज ही हो जाता है. उनकी चिकित्सा पद्धति का सिद्धांत है कि बीमारों को ज़ोर-ज़ोर से और खूब हंसाने से उनके शरीर में संचित विजातीय पदार्थों से उत्पन्न 'अवरोधक' नष्ट हो जाते हैं और शरीर में नयी शक्ति एवं चेतना का संचार होता है.

स्वीडन के एक चिकित्सक लार्स लजुंगदहल ने हाल ही में हास्य चिकित्सा पद्धति का विकास किया है, पर हमारे आयुर्वेदशास्त्र में इसकी परंपरा अत्यंत प्राचीन है. वैद्यगण मानते हैं कि रोगी प्रसन्नचित्त रहेगा, तभी चिकित्सा सफल होगी. वे रोगी का निदान करते हुए भी उन्हें हंसाते रहते हैं. वे रोगियों के लिए आमोद-प्रमोद की व्यवस्था करने की हिदायतें उनके घरवालों को देते हैं. वे घरवालों को इस बात का भी निर्देश देते हैं कि आप रोगी को अपने रोग के संबंध में चिंता करने और सोचने का समय मत दीजिए.

अब इस चिकित्सा पद्धति का विकास किया जा रहा है. इस चिकित्सा पद्धति से मांसपेशियों और हड्डियों के दर्द दूर होते देखे गये हैं. कब्ज की शिकायत रोगी को खिलाखिला कर हंसाने से दूर होती पायी गयी, क्योंकि हंसने की क्रिया से उसके पेट की मांसपेशियों में मंथन-प्रवाह हुआ व पेट साफ़ हो गया.

हास्य चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों की यह भी मान्यता है कि इस क्रिया से मस्तिष्क की सारी कुंठाएं दूर हो जाती हैं. उन कुंठाओं के नाश होने से शरीर में प्राणवायु तेज़ी से संचरित होती है. जिस प्रकार जल प्रवाह के नीचे स्नान करने से अनेक रोग दूर होते देखे गये हैं, उसी प्रकार हंसी के प्रवाह के नीचे-हंसी की विद्युतमयी किरणों में स्नान करने से शरीर नीरोग और प्रफुल्लित हो जाता है.

- प.ल. व्यास



नपुंसकता

बरगद के नए पत्ते, बेलफल का मूदा, दालचीनी, कबाबचीनी और शक्कर इन सब को समान मात्रा में लेकर महीन पीसकर घी और शहद विषम मात्रा में लेकर उसमें मिला खाने से १५ दिन में ही नपुंसकता दूर हो जाती है.

नोट - इस प्रयोग में घी और शहद विषम मात्रा में ही लें. क्योंकि यह तो सर्वविदित है कि समान मात्रा में घी और शहद को मिला सेवन करने से वह विष जैसा कार्य करता है.

कुत्ते के काटने पर

बीजौरे नींबू की जड़ को पानी डालकर चन्दन की तरह रगड़ें, १ चम्मच भर लेप तैयार होने पर उसमें १०-१२ दाने काली मिर्च के पीस कर डालें, सुबह खाली पेट शीतल जल के साथ कुत्ते काटे हुए रोगी को पिला दें. यह प्रयोग १ महीने लगातार करने पर कुत्ते का विष पेशाब के द्वारा धीरे-धीरे, निकल कर रोगी ठीक हो जाता है.

शीतपित्त में आजमाइए

शीतपित्त का वेग होने पर ५ दाने कालीमिर्च के १ चम्मच शुद्ध घी में भून कर उसमें मिश्री मिला कर खाना चाहिए. ऊपर से गरम दूध पी लें. गरम चद्दर शरीर पर डाल कर कुछ समय हवा से त्वचा का बचाव करें, तुरंत ही आराम हो जाता है.

मुखपाक हो जाने पर लगाएं

मुंह में छाले हो जाने पर फिटकिरी, कत्था, कपूर, हल्दी को एकत्र कर इरिमेदादि तैल में मिलाकर लगाएं तथा फिटकिरी के पानी से कुल्ला करें.

प्रतिश्याय (साइनस)

महालक्ष्मी विलास रस की २ गोली मीठे पान के पत्ते में रख चबाकर खाना तथा केसर से सिद्ध किया घृत रातको सोते समय नाक में डालना चाहिए. पुराने से पुराने प्रतिश्याय में निश्चित लाभ होता है.

इन्द्रलुप्त (गंजापन)

कल्मी शोरे को काग़ज़ी नींबू के रस में घोंटकर इन्द्रलुप्त वाले स्थान में लगाने से नये बाल फिर से आ जाते हैं.

आयुर्वेदिक हेयर रिमूवर

तपकिया हरताल और शंख भस्म को गरम पानी में पीसकर जहां से बाल हटाना हो वहां लेप करने से वहां के बाल गिर जाते हैं. हेयर रिमूवर के स्थान पर इसका प्रयोग किया जा सकता है.

- वैद्य प्रदीप एस. मिश्र

दाद की अचूक दवा

शनिवार के दिन सुबह उठते ही बासी मुंह थोड़ा मुंह से थूक लेकर दाद पर लगाएं. सात दिन तक लगातार लगाते रहें. आपका दाद अवश्य मिट जायेगा. इससे बहुतों को लाभ हुआ है.

दाढ़ और दाँत के दर्द की अनुभूत दवा

काकडा सिंगी १ तोला, छोटी पीपर १ तोला.

दोनों को महीन पीसकर आठ आनेभर खाने का सोडा मिलाकर रख लें. जहां दर्द हो, वहां मलें और नीचे मुंह कर दें ताकि सब लार गिर जाए. उसके बाद गरम पानी से कुल्ला करके डालें. दस मिनट में दर्द मिट जायेगा. यह मेरा अनुभव किया हुआ योग है. बहुत-से व्यक्तियों को लाभ हुआ है.

सुज़ाक पर परीक्षित योग

'तरबूज (मतीरा या कलींदा) का फल अधपका-सा हो (अर्थात उसमें सफ़ेद बीज रहें,) को लेकर प्रातःकाल उसको काट कर ऐसे स्थान पर रख दीजिए, जहां आप ओट में पेशाब कर सकें. आपको २४ घंटे तक एक ही बार के कटे हुए टुकड़ों पर ही पेशाब करना है. रोज़ प्रातःकाल उन्हें बदल दीजिये. इस प्रकार केवल तीन ही दिन में स्वस्थ हो जाएंगे.

मिरगी की अचूक दवा

मीठी बच को १ छटांक लें और उसको अच्छी तरह से कूट डालें, फिर कपड़छन कर रोज़ चार आनाभर सुबह-शाम शुद्ध मधु (शहद) के साथ चाटें. क़रीब-क़रीब १५ दिन तक ऐसा करें. भोजन में सिर्फ़ दूध-भात खिलाना चाहिए. ज़्यादा-से-ज़्यादा फल खिलाया जा सकता है.

दर्दशामक तेल

जिस तरह बाम दर्द को राहत देता है उसी तरह कुछ तेल भी दर्द निवारक होते हैं. ऐसे कई तेल बाज़ार में उपलब्ध हैं. कुछ असरकारी तेल की निर्माण विधि इस प्रकार है.

सामग्री : एक किलो तिल्ली का तेल, मुश्क कापूर ६ ग्राम, पिपरमेंट १२ ग्राम.

विधि : मुश्क कापूर और पिपरमेंट को एक बोतल में डाल दें और बोतल का मुंह कार्क से बंद कर दें. एक-दो दिन दोनों चीजें पानी-सी बन कर आपस में मिल जाएगी. अब तेल को भी बोतल में मिला दें. दर्द वाली ज़गह पर इसकी मालिश करने से कुछ ही दिनों में दर्द ठीक होता है.

जले पर लगाने वाला तेल

यह तेल एक तरह का मलहम है, जो जले हुए स्थान पर लगाने से ज़ादू का काम करता है. जलन कम करता हैं घाव भी शीघ्र ठीक होने लगता है.

सामग्री : चूने का पानी - १० भाग, अलसी का तेल १० भाग, पान का कत्था १ भाग.

विधि : कत्थे को पीस कर बारीक कपड़े से छान लें और, फिर उसमें अलसी का तेल डाल कर अच्छी प्रकार से घोंटें जब यह दोनो चीजे मिल जाएं तो इसमें धीरे-धीरे चूने वा पानी डालते जाएं और हिलाते जाएं. अंत में लेई जैसा तेल तैयार हो जाएगा. जलने पर यह मलहम लगाने से तुरंत लाभ होता है.

जा सकता है.

(होमियोपैथी व मैग्नेट थेरेपी शरीर के असंतुलित बायोएनर्जी लेवल या प्रान को नियंत्रित करता है.)

होमियोपैथी व मैग्नेट थेरेपी दीर्घकालिक रोगों के लिए ज़्यादा उपयुक्त होते हैं. मैग्नेट चिकित्सा को ती भागों में बांटा जाता है –

- शरीर को मैग्नेटिक पोल से सीधे संपर्क करवाना. यह डॉक्टरी निरीक्षण में ही कराना चाहिए.
- मैग्नेटाइज्ड (चुंबकीय) पानी का प्रति दिन सेवन
- होमियोपैथिक दवाइयां जो मैग्नेटाइज्ड बेस (चुंबकीय आधार) पर बनाई गई हों (गोलियां व दूध शक्कर का पावडर आदि.) का सेवन.

दस्त व पेचिश के मरीज़ को सिर्फ दक्षिण ध्रुव का पानी पिलाना चाहिए. इस पानी को तैयार करने का सबसे अच्छा तरीका है कि उबाला व छान कर ठंडा किया हुआ पानी बोतल में भरकर चुम्बक का दक्षिणी ध्रुव (नीला भाग) बोतल के एक ओर पीने के दो घंटे पहले तक रखें. मैग्नेट पूरे दिन व रात तक रखें. आधा-आधा गिलास पानी दिन में चार बार पीएं. इस चुंबकीय पानी (मैग्नेटाइज्ड वाटर) को रेफ्रिजरेटर में न रखें.

होमियोपैथिक दवाइयां जैसे एलो, असेंनिकम अल्बम, नक्स वोमिका व मरक्यूरिस को जब मैग्नेटाइज्ड बेस में बनाया जाता है, तो वह दस्त या मरोड़ में अधिक लाभ पहुंचाती है. परंतु इस चिकित्सा को संबंधित डॉक्टर के निरीक्षण में ही कराना चाहिए.

नीरोगता के लिए रोगी को खूब हंसाइए

हास्य थेरेपी के परिचालकों की मान्यता है कि जब रोगी खिलखिला कर हंसते हैं तो उनके शरीर में कंपन होता है और उसी कंपन से शरीरस्थ कॉस्मिक मैग्नेटिक विद्युत प्रवाह फूट पड़ता है. शरीर में कॉस्मिक विद्युत प्रवाह बहने लगता है. उससे उष्मता एवं ऊर्जा शक्ति उत्पन्न होती है. प्रमाण के लिए उन्होंने प्रयोग करके बताया कि गुमसुम रोगी के शरीर में जो तापक्रम था, वह हंसने के बाद द्विगुणित हो गया. उसमें एक लौ उत्पन्न हो गयी. उससे शरीरस्थ संचरना क्रियाशीलता का आवेग बढ़ा. पसीना आया, रक्त में गरमी पैदा हुई और शरीर में, उसकी कोशिकाओं, तंतुओं रक्त प्रवाह एवं रस प्रवाह नाड़ियों को धक्का लगा. उससे विजातीय पदार्थों के संचय से उत्पन्न बाधाएं और अवेराधक बर्फ की तरह पिघल गये.

इस हंसने-हंसाने की क्रियाओं की गतियों और आवेगों में परिवर्तन करते रहने से शरीरस्थ क्रियाओं का भी मंथन होता है. उनमें लहरें, उत्पन्न होती हैं, जो अपने आवेग से स्वयं विद्युत्मयी होकर विकारों को भस्मीभूत करने का चमत्कार दिखाती हैं.

आहार-विहार और आचार-विचार में असंतुलन होने पर, उनकी मर्यादाओं का अतिक्रमण होते ही मनुष्य के शरीर में दोष इस परिमाण में संचित हो जाते हैं कि वे अपने आप निकल नहीं पाते. बल्कि शरीरस्थ संरचनाएं क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करते हैं. इस प्रकार दोषों के बढ़ने पर शरीर की अनेक क्रियाएं मंद पड़ जाती हैं. पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, शौच साफ नहीं होता, आंतें शुष्क हो जाती हैं और तब विजातीय द्रव्य शरीर में संचित होते रहते हैं, इन्हीं विजातीय द्रव्यों के संचित होने पर रोग जन्म लेते हैं.

इन व्याधियों को दूर करने हेतु चिकित्सक रोगोपचार करते हैं. ये चिकित्सक प्रायः औषधिजन्य चिकित्सा करते हैं और साथ में आहार-विहार पथ्य संबंधी निर्देश भी देते हैं. पर कुछ रहस्यमय चिकित्साएं भी हैं जिनका संबंध औषधि से न होकर शारीरिक और मानसिक क्रियाओं से जुड़ा है. इन रहस्यमय चिकित्साओं में एक चिकित्सा पद्धति हंसी के साथ जुड़ी हैं. इस थेरेपी के चिकित्सकों का कहना है कि रोग मुक्ति के लिए बीमारों को खूब हंसाइए. रोगियों को हंसाने से उनके रोगों के दोषों का निवारण सहज ही हो जाता है. उनकी चिकित्सा पद्धति का सिद्धांत है कि बीमारों को ज़ोर-ज़ोर से और खूब हंसाने से उनके शरीर में संचित विजातीय पदार्थों से उत्पन्न 'अवरोधक' नष्ट हो जाते हैं और शरीर में नयी शक्ति एवं चेतना का संचार होता है.

स्वीडन के एक चिकित्सक लार्स लजुंगदहल ने हाल ही में हास्य चिकित्सा पद्धति का विकास किया है, पर हमारे आयुर्वेदशास्त्र में इसकी परंपरा अत्यंत प्राचीन है. वैद्यगण मानते हैं कि रोगी प्रसन्नचित्त रहेगा, तभी चिकित्सा सफल होगी. वे रोगी का निदान करते हुए भी उन्हें हंसाते रहते हैं. वे रोगियों के लिए आमोद-प्रमोद की व्यवस्था करने की हिदायतें उनके घरवालों को देते हैं. वे घरवालों को इस बात का भी निर्देश देते हैं कि आप रोगी को अपने रोग के संबंध में चिंता करने और सोचने का समय मत दीजिए.

अब इस चिकित्सा पद्धति का विकास किया जा रहा है. इस चिकित्सा पद्धति से मांसपेशियों और हड्डियों के दर्द दूर होते देखे गये हैं. कब्ज की शिकायत रोगी को खिलखिला कर हंसाने से दूर होती पायी गयी, क्योंकि हंसने की क्रिया से उसके पेट की मांसपेशियों में मंथन-प्रवाह हुआ व पेट साफ़ हो गया.

हास्य चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों की यह भी मान्यता है कि इस क्रिया से मस्तिष्क की सारी कुंठाएं दूर हो जाती हैं. उन कुंठाओं के नाश होने से शरीर में प्राणवायु तेज़ी से संचरित होती है. जिस प्रकार जल प्रवाह के नीचे स्नान करने से अनेक रोग दूर होते देखे गये हैं, उसी प्रकार हंसी के प्रवाह के नीचे-हंसी की विद्युतमयी किरणों में स्नान करने से शरीर नीरोग और प्रफुल्लित हो जाता है.

- प.ल. व्यास

नपुंसकता

बरगद के नए पत्ते, बेलफल का मूदा, दालचीनी, कबाबचीनी और शक्कर इन सब को समान मात्रा में लेकर महीन पीसकर घी और शहद विषम मात्रा में लेकर उसमें मिला खाने से १५ दिन में ही नपुंसकता दूर हो जाती है.

नोट - इस प्रयोग में घी और शहद विषम मात्रा में ही लें. क्योंकि यह तो सर्वविदित है कि समान मात्रा में घी और शहद को मिला सेवन करने से वह विष जैसा कार्य करता है.

कुत्ते के काटने पर

बीजौरे नींबू की जड़ को पानी डालकर चन्दन की तरह रगड़ें, १ चम्मच भर लेप तैयार होने पर उसमें १०-१२ दाने काली मिर्च के पीस कर डालें, सुबह खाली पेट शीतल जल के साथ कुत्ते काटे हुए रोगी को पिला दें. यह प्रयोग १ महीने लगातार करने पर कुत्ते का विष पेशाब के द्वारा धीरे-धीरे निकल कर रोगी ठीक हो जाता है.

शीतपित्त में आजमाइए

शीतपित्त का वेग होने पर ५ दाने कालीमिर्च के १ चम्मच शुद्ध घी में भून कर उसमें मिश्री मिला कर खाना चाहिए. ऊपर से गरम दूध पी लें. गरम चद्दर शरीर पर डाल कर कुछ समय हवा से त्वचा का बचाव करें, तुरंत ही आराम हो जाता है.

मुखपाक हो जाने पर लगाएं

मुंह में छाले हो जाने पर फिटकिरी, कत्था, कपूर, हल्दी को एकत्र कर इरिमेदादि तैल में मिलाकर लगाएं तथा फिटकिरी के पानी से कुल्ला करें.

प्रतिश्याय (साइनस)

महालक्ष्मी विलास रस की २ गोली मीठे पान के पत्ते में रख चबाकर खाना तथा केसर से सिद्ध किया घृत रातको सोते समय नाक में डालना चाहिए. पुराने से पुराने प्रतिश्याय में निश्चित लाभ होता है.

इन्द्रलुप्त (गंजापन)

कल्मी शोरे को काग़ज़ी नींबू के रस में घोंटकर इन्द्रलुप्त वाले स्थान में लगाने से नये बाल फिर से आ जाते हैं.

आयुर्वेदिक हेयर रिमूवर

तपकिया हरताल और शंख भस्म को गरम पानी में पीसकर जहां से बाल हटाना हो वहां लेप करने से वहां के बाल गिर जाते हैं. हेयर रिमूवर के स्थान पर इसका प्रयोग किया जा सकता है.

- वैद्य प्रदीप एस. मिश्र

दाद की अचूक दवा

शनिवार के दिन सुबह उठते ही बासी मुंह थोड़ा मुंह से थूक लेकर दाद पर लगाएं. सात दिन तक लगातार लगाते रहें. आपका दाद अवश्य मिट जायेगा. इससे बहुतों को लाभ हुआ है.

दाढ़ और दाँत के दर्द की अनुभूत दवा

काकड़ा सिंगी १ तोला, छोटी पीपर १ तोला.

दोनों को महीन पीसकर आठ आनेभर खाने का सोडा मिलाकर रख लें. जहां दर्द हो, वहां मलें और नीचे मुंह कर दें ताकि सब लार गिर जाए. उसके बाद गरम पानी से कुल्ला करके डालें. दस मिनट में दर्द मिट जायेगा. यह मेरा अनुभव किया हुआ योग है. बहुत-से व्यक्तियों को लाभ हुआ है.

सुजाक पर परीक्षित योग

'तरबूज (मतीरा या कलींदा) का फल अधपका-सा हो (अर्थात उसमें सफेद बीज रहें,) को लेकर प्रातःकाल उसको काट कर ऐसे स्थान पर रख दीजिए, जहां आप ओट में पेशाब कर सकें. आपको २४ घंटे तक एक ही बार के कटे हुए टुकड़ों पर ही पेशाब करना है. रोज़ प्रातःकाल उन्हें बदल दीजिये. इस प्रकार केवल तीन ही दिन में स्वस्थ हो जाएंगे.

मिरगी की अचूक दवा

मीठी बच को १ छटांक लें और उसको अच्छी तरह से कूट डालें. फिर कपड़छन कर रोज़ चार आनाभर सुबह-शाम शुद्ध मधु (शहद) के साथ चाटें. क़रीब-क़रीब १५ दिन तक ऐसा करें. भोजन में सिर्फ़ दूध-भात खिलाना चाहिए. ज़्यादा-से-ज़्यादा फल खिलाया जा सकता है.

दर्दशामक तेल

जिस तरह बाम दर्द को राहत देता है उसी तरह कुछ तेल भी दर्द निवारक होते हैं. ऐसे कई तेल बाज़ार में उपलब्ध हैं. कुछ असरकारी तेल की निर्माण विधि इस प्रकार है.

सामग्री : एक किलो तिल्ली का तेल, मुश्क कापूर ६ ग्राम, पिपरमेंट १२ ग्राम.

विधि : मुश्क कापूर और पिपरमेंट को एक बोतल में डाल दें और बोतल का मुंह कार्क से बंद कर दें. एक-दो दिन दोनों चीजें पानी-सी बन कर आपस में मिल जाएगी. अब तेल को भी बोतल में मिला दें. दर्द वाली जगह पर इसकी मालिश करने से कुछ ही दिनों में दर्द ठीक होता है.

जले पर लगाने वाला तेल

यह तेल एक तरह का मलहम है, जो जले हुए स्थान पर लगाने से ज़ादू का काम करता है. जलन कम करता हैं घाव भी शीघ्र ठीक होने लगता है.

सामग्री : चूने का पानी - १० भाग, अलसी का तेल १० भाग, पान का कत्था १ भाग.

विधि : कत्थे को पीस कर बारीक कपड़े से छान लें और, फिर उसमें अलसी का तेल डाल कर अच्छी प्रकार से घोटें जब यह दोनो चीजे मिल जाएं तो इसमें धीरे-धीरे चूने वा पानी डालते जाएं और हिलाते जाएं. अंत में लेई जैसा तेल तैयार हो जाएगा. जलने पर यह मलहम लगाने से तुरंत लाभ होता है.

अस्थिधातु-वृद्धि-क्षय से उत्पन्न विकार

— रामकृष्ण शुक्ल

अपनी ऊष्मा से परिपक्व और वायु द्वारा अत्यन्त शोषित हो जाने वाला मेद 'अस्थि' कहलाता है. यह अस्थि ही शरीर में सार या कठोर द्रव्य है. जैसे वृक्ष भीतरी सार के बल पर खड़े रहते हैं, उसी प्रकार प्राणियों का शरीर अस्थियों के बल पर खड़ा रहता है. अतः मांस एवं त्वचा आदि के नष्ट हो जाने पर भी अस्थियां चिरकाल तक नष्ट नहीं होतीं.

सुश्रुत आदि आचार्यों के मतानुसार अस्थियों की संख्या ३०० है, लेकिन आधुनिक शल्य चिकित्सकों के अनुसार २०० से २०६ तक अस्थियां हमारे शरीर में हैं. प्राचीन आचार्यों ने अस्थियों की जो संख्या निरूपित की है, उसके अनुसार - चारों शाखाओं (पैरों व हाथों) में १२०, पार्श्व कटिभाग, वक्ष, पृष्ठवंश तथा उदर में ११७ तथा ग्रीवा के ऊपर ६३ अस्थियां होती हैं.

उपरोक्त अस्थियां ५ प्रकार की होती हैं जैसे, १- तरुण, २- कपाल (चौड़ी), ३-रुचक, ४-वलय तथा ५-नलक अर्थात् नलाकार.

तरुण - नेत्रकोश, कान, नाक तथा ग्रीवा में स्थित अस्थियां तरुण (झुकने योग्य) कहलाती हैं.

कपाल (चौड़ी) - सिर, शंख, कपोल (गण्ड), तालु, अंसफलक, नितम्ब तथा जानु की अस्थियां कपाल होती हैं.

रुचक - दांतों की (अर्थात् स्वयं दांत) अस्थियां रुचक हैं.

वलय - हाथ, पैर, दोनों पार्श्व, पृष्ठवंश, वक्षस्थल, भग, गुदे की अस्थियां वलय (झुकाववाली तथा कुंडलाकार) होती हैं.

नलक - हाथ-पैर की अंगुलियों, तलुओं, कुचों तथा मणिबन्धों में स्थित अस्थियां नलक या नलाकार होती हैं.

शरीर में अस्थियों का प्रयोजन

संपूर्ण शरीर की अस्थियों का एक नाम 'अस्थि पंजर' या कंकाल है. यह अस्थि सफ़ेद एवं कठोर होती है जो शरीर को दृढ़ता प्रदान करती है. पृष्ठवंश की अस्थियों का नाम 'कशेरुका' है. ये अंगूठी के समान होती हैं और सुषुम्नानाड़ी में पिरोई रहती हैं. पार्श्व की 'पर्शुका', सिर की 'करोटि' तथा तालु की 'जतूका' कहलाती है. नलकास्थि खोखली एवं तरुणास्थि कोमल होती है. अस्थियों पर मांसपेशियां सिरा स्नायुओं द्वारा बंधी हुई रहती हैं. इसलिए अस्थियां साधारण आघात या चोट लगने से न खिसकती हैं और न गिरती हैं.

अस्थिसार

किसी धातु की विशेषरूप से शुद्धि उस धातु की सारवत्ता है. इस दृष्टि से अस्थिसार शरीर में सम-प्रमाण में शुद्ध अस्थि रहती है. उत्कृष्ट अस्थिवाले पुरुषों की एड़ी, गुल्फ, जानु, मुट्ठी, स्कंध-संधि (कंधे का जोड़), स्कंध, चिबुक (ठोड़ी), सिर और पर्व-ये अंग तथा अस्थि, नख और दंत (दांत) लम्बे-चौड़े और दृढ़ होते हैं, ये अस्थिसार पुरुष अति उत्साही, क्रियाशील, कष्टसहन करने की क्षमता वाले और बलिष्ठ शरीर वाले तथा दीर्घायु होते हैं.

शरीर की अन्य धातुओं की जानकारी हमने 'आरोग्य संजीवनी' के पिछले अंकों में दी है. इस अंक में प्रस्तुत है अस्थि धातु से संबंधित जानकारी.

दांतों को आयुर्वेद में अस्थि का उपधातु माना गया है. इसलिए अस्थिसार पुरुषों के दांत और नख विशेषरूप से दृढ़ और स्थूल होते हैं. अस्थि की कम या अधिक जैसी भी पुष्टि होगी, वैसी ही पुष्टि दांतों की भी होगी. अस्थि दीर्घ होंगे, तो दांत भी बड़े होंगे और उनके मूल (जड़) मसूढ़ों के अन्दर गहरे तक जाएंगे, अतः उनमें कार्य कौशल और बल विशेष होगा.

अस्थिवह स्रोतों के मूल

यद्यपि सुश्रुत आदि आचार्यों ने अस्थि, मज्जा एवं शुक्र के स्रोतों का उल्लेख नहीं किया है, लेकिन परवर्ती आचार्यों के अनुसार अस्थि को पोषक रस पहुंचाने वाले स्रोतों का मूल मेद तथा जंघा है. अधिक व्यायाम (शक्ति से अधिक श्रम), अस्थियों को झटके लगना, इनका अधिक हिलना-डुलना एवं वातकारक आहार का सेवन करने से अस्थिवह स्रोतों की दुष्टि होती है. इन स्रोतों के दूषित होने से नाना प्रकार के अस्थिज रोग उत्पन्न होते हैं.

अस्थि के वृद्धि-क्षय के लक्षण

अस्थि धातु की वृद्धि होने पर अस्थि तथा दांतों की अधिक पुष्टि तथा केश एवं नख की अतिवृद्धि-ये लक्षण होते हैं.

अस्थि का क्षय होने पर संधियों की शिथिलता, अस्थियों में तोद (चुभने की-सी व्यथा), अस्थियों में शूल, दांत, नख, केश और रोम-इनका झड़ना; शरीर, दांतों एवं नखों की रूक्षता-ये लक्षण होते हैं. आयुर्वेद के मत से अस्थियों की संघात (रचना) में घनत्व की मात्रा कम होना अस्थिक्षय है. घनत्व की न्यूनता थोड़ी होती है, तो इसे 'पोरॉसिटी' या 'रेअरीफैक्शन' कहते हैं. अधिक क्षीणता 'नेक्रोसिस' कहलाती है. इससे अस्थि में कोटर (छेद) बन जाते हैं, जिसे 'केविटी' कहते हैं.

अस्थि धातु की क्षीणता में वसन्त कुसुमाकर आदि सुवर्ण के योग उत्तम कार्य करते हैं.

अस्थि दोषज रोग

अस्थितोद - अस्थि में सूई चुभने की-सी वेदना होती है. वायु का प्रकोप अस्थि धातु में होने के कारण उसके धात्वंश का क्षय हो जाता है, जिससे वायु के गुण सौषिर्य (छिद्रयुक्तता), लघुता आदि प्रकट होते हैं. रोग की अधिक वृद्धि होने पर स्पष्ट कोटर पड़ जाते हैं. इनके कारण अस्थि में भंगुरता आ जाती है.

आयुर्वेद मत से वात के इस प्रकोप को ध्यान में रखकर वातक्षयकारी घृतों तथा रसों का सेवन करना लाभप्रद होता है.

अस्थिशूल - अस्थियों में विकार होने से अस्थियों में शूल होता है.

अस्थिभेद - अस्थियों में उपरोक्त कारणों से भेदनाकार (वे टूट रही हों, ऐसा प्रतीत होना) वेदना, मामूली कारणों से भी टूट जाना आदि लक्षण पाए जाते हैं.

अध्यास्थि - अस्थि की अधिक वृद्धि होना. कभी-कभी यह अर्बुद का रूप धारण कर लेता है.

अधिदन्त - एकाध दांत अधिक होना. दांत और नख अस्थि के ही उपधातु और मल हैं, अतः अस्थियों

के दोष-दूषित होने से इन दोषों का प्रभाव दांत व नख पर पड़ना स्वाभाविक है. अस्थिधातु की दुष्टि से केश, श्मश्रु, रोम और नखों की भी दुष्टि होती है, क्योंकि केश तथा नख अस्थि के मल माने गए हैं, अतः अस्थिदुष्टि ये रोगग्रस्त होते हैं.

अस्थिक्षय का उपचार

अस्थिक्षय के इन विकारों का मूल कारण वायु है. अतः अस्थिक्षय-सूचक विकृतियों में कैल्शियम के अतिरिक्त दूध, घी, अश्वगन्धा आदि वातशामक औषधियों का सेवन करें. साथ ही धातुपोषक स्निग्ध द्रव्यों का सेवन करते हुए चिकित्सा करनी चाहिए. अस्थि भी एक धातु है. धातु की क्षीणता वायु से और पुष्टि तद्विपरीत गुण-कर्म वाले द्रव्यों के उचित ढंग के सेवन से होती है. प्राचीन आचार्यों ने अस्थि विकारों को दूर करने के लिए स्निग्ध, बृंहण उपचारों का ही विधान किया है -

अस्थ्याश्रयाणां व्याधीनां पंचकर्माणि भेषजम्।
बस्तयः क्षीरसर्पींषि तिक्तकोपहितानि च ॥

अस्थि वायु का आश्रयभूत होने के कारण इसके पोषणार्थ उष्ण-अग्नि दीपन और स्रोतोविबन्धहर द्रव्यों का उपयोग उचित होता है. कैल्शियम के कल्प भी ऐसे ही ग्राह्य होने चाहिए, जो उष्ण वीर्य हों, जैसे - गोदन्ती, कच्छपास्थि, कूर्मास्थि, शंख, शुक्ति कपर्द आदि की भस्म.

अस्थिभग्न

भग्न का अर्थ है टूटना या अलग होना. यह दो प्रकार का होता है - काण्ड-लम्बी अस्थि का भग्न तथा अस्थियों के संधि का भग्न.

काण्डभग्न - लंबी अस्थि के नलकाकार अस्थि को काण्ड कहते हैं. इनका टूटना 'काण्डभग्न' कहलाता है. संधि दो या दो से अधिक अस्थियों का नाम है. इसमें अस्थि नहीं टूटती है. इसमें अस्थियों का चिपक जाना, खिसक जाना, घूम जाना आदि लक्षण पाए जाते हैं.

अस्थिभग्न के सामान्य लक्षण

भग्न अंग का लटक जाना, भग्न स्थान पर शोथ तथा वेदना होना, दबाने पर कड़कड़ ध्वनि होना, कम्पन, सूई चुभने की सी वेदना, शूल, लेटने-बैठने आदि अवस्था में शांति न होना आदि अस्थि भंग के सामान्य लक्षण हैं. ये लक्षण उस काण्डभग्न के हैं, जो बाहर से दिखाई नहीं पड़ते. एक्सरे द्वारा टूटी अस्थि का चित्र लेकर पता लगाया जाता है. लेकिन अनुभवी अनुमान द्वारा भी जान लेते हैं.

अस्थिभग्न की असाध्यता

कपाल अस्थियां यदि टूट गई हों, कटि की संधि खिसक गई हो या भग्न हो गई हो और उत्पिष्ट नामक भग्न हो गया हो, तो उसके जोड़ का प्रयत्न विफल होता है, अर्थात् ये असाध्य हैं.

कपाल की अस्थियों का जोड़ खुल गया हो, ललाट की अस्थि चूर-चूर हो गई हो, उर की अस्थि, शंख तथा सिर की अस्थियां टूट गई हों, तो ये भी असाध्य हैं.

अस्थिभग्न का उपचार

भग्न अस्थि को भलीभांति समझकर शीतल जल का सेक करें अथवा मिट्टी का लेप करें या बांस आदि की पट्टियां रख कर पट्टी बांधें. भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में तथा शरीर के स्थानभेद से यह तीनों क्रियाएं टूटी हुई अस्थियों के जुड़ने

विशालकाय तथा वामन शरीर

पोषणिका ग्रंथि (पिट्यूटरी) के अन्तःस्राव के प्रकोप का प्रभाव सबसे अधिक अस्थियों की पुष्टि पर होता है. इस ग्रन्थि के अग्रिम भाग का प्रमुख अन्तःस्राव 'पुष्टिवर्धन' अन्तःस्राव (ग्रोथ हॉर्मोन) कहलाता है. (त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् इत्यादि वेद मंत्र में आया 'पुष्टिवर्धन' शब्द 'ग्रोथ हार्मोन' के लिए ही आया है). इसकी अतिवृद्धि का प्रभाव अस्थि धातु की वृद्धि पर विशेष पड़ता है.

अस्थियों की वयोभेद से होने वाली पुष्टि की अवस्थानुसार अस्थियों की यह अति पुष्टि दो प्रकार की होती है. जब किसी व्यक्ति की वृद्धि पूरी न हो चुकी हो अर्थात् प्राग् अस्थियां (एपीफिसिस-अस्थियों के तरुणास्थि से कठोर अस्थि में परिणत होने वाले भाग) अभी परस्पर संयुक्त न हुई हों. इस अवस्था में पुष्टिवर्धन अन्तःस्राव का प्रकोप हो जाए, तो शाखाओं की अस्थियां अति विशाल (लम्बी-चौड़ी) हो जाती हैं. इस विरूपता को 'दानव-काय' (जायगेंटिज्म) नाम दिया गया है. सर्कसों में देखे जाने वाले सभी विशालकाय पुरुषों में पोषणिका का ऐसा ही प्रकोप होता है.

पुष्टिवर्धन स्राव का प्रकोप यदि शरीर की वृद्धि पूर्ण हो जाने के बाद अर्थात् प्राग् अस्थियां संयुक्त होने के पश्चात् हो, तो नलकास्थियों की लम्बाई की दिशा में वृद्धि संभव नहीं होती, परन्तु संपूर्ण शरीर की अस्थियां समभाव से बढ़ती हैं. मुख के नीचे के भाग (हनु आदि), हाथ और पैर पर इसका प्रभाव विशेष होता है. नाक मोटी हो जाती है, गण्डास्थियां उभर आती हैं, जबड़े बहुत बड़े हो जाते हैं, जिससे दांत भी पृथक-पृथक हो जाते हैं. हाथ तथा पैर भी मोटे हो जाते हैं. इन अवयवों के मृदु अंग भी फैल कर मुख और शाखाओं की परिधि को बढ़ा देते हैं. इस विकार का नाम पर्वस्थौल्य (एक्रोमेगेली) है.

प्रकोप के विपरीत पोषणिका के अगले भाग के कोई कोष किसी कारण से नष्ट हो जाएं अथवा उनका स्राव क्षीण (अल्प) हो जाएं, तो उक्त विकारों के विपरीत पुरुष 'वामन' (बौना, ड्वार्फ) रह जाता है. इस विकार को 'वामनत्व' (ड्वार्फिज्म, लोरेन-लेवी इन्फेंटाइलिज्म) कहते हैं. इनमें विरूपता प्रायः नहीं होती. परन्तु ये प्रजनन की दृष्टि से पूर्ण नहीं होते. पुष्टिवर्धन अन्तः स्राव देने से इनमें कुछ सिद्धि मिलती है.

वामन दो प्रकार के होते हैं. एक प्रकार के वामन स्वरूपवान, बाल सदृश तथा बुद्धिशाली होते हैं. दूसरे प्रकार के वामन मेदस्वी, निद्रालु तथा स्त्री-तुल्य स्थानों पर मेद का संचय होने से अत्यन्त शिथिलांग, कन्या के समान प्रतीत होते हैं. प्राचीन आचार्यों ने वामनों की गणना जन्मबलं प्रवृत्त रोगों में की है.

में उपयोगी सिद्ध होती हैं. नीचे झुकी अस्थि को ऊपर उठाएं, उठी हुई को नीचे करें, अर्थात् सही स्थान पर लाएं पट्टियां महुआ, गूलर, पीपल, कदम्ब, वेत, बांस, चीड़, देवदारु तथा अर्जुन के लकड़ी की बनाएं और यथासंभव बंधन भी इन्हीं की छाल से करें. कपड़ा रखकर ऊपर से पट्टियां बांधें.

ये बंघन ठंडी में ७-७ दिन पर, गर्मी में ३-३ दिन पर और समशीतोष्ण काल में ५-५ दिन पर खोल कर पुनः बांधें.

भग्न स्थान पर तत्काल मंजीठ, मुलेठी को जल में पीस कर तथा शतधौत घृत में फेंटकर अथवा शालि चावलों को पीसकर लेप करें. उर्द की पीठी, लवण तथा इमली की खटाई मिलाकर भी लेप कर सकते हैं. इन लेपों से वेदना तथा शोथ शांत रहते हैं, फलस्वरूप अस्थियों के जुड़ने में सुगमता रहती है.

अम्बाड़ा की जड़, इमली के फल, सहजन के पत्ते, पुनर्नवा की जड़, मानकन्द तथा सुपारी की जड़-इन सबको पीस कर तक्र (मट्ठा) तथा कांजी में पकाकर खाने से पीड़ा तथा शोथ शांत हो जाते हैं. भग्न अस्थियों का सन्धान (जोड़) शीघ्र हो जाता है.

भग्न पर बटादि के, पंच वल्कल के शीतल क्वाथ का सेचन करें अथवा उष्ण तेल का सेचन करें.

भग्न रोगी को विषाद (दुख या चिंता करना) हितकर नहीं होता, उससे अस्थियों के भग्न जुड़ने में विघ्न पड़ता है, अतः विषाद नहीं करना चाहिए. उसे मांस, मांसरस, दूध, घी तथा पुष्टिकारक आहार देना चाहिए.

भग्न रोग में सद्यः प्रसूता गाय का दूध जीवनीय, गुण की औषधों के संयोग से सिद्ध शीतल करके घृत तथा लाक्षाचूर्ण मिलाकर प्रातःकाल प्रतिदिन पीएं.

सभी प्रकार के अस्थिभग्न में लहसुन, मधु, लाख, घी तथा मिश्री का कल्क (चटनी) खाना लाभ पहुंचाता है.

अस्थि भग्न में अर्जुन की छाल तथा लाख का चूर्ण शुद्ध गूगल तथा घी मिलाकर खाएं और घी-दूध के साथ भोजन करें. इससे तीन सप्ताह में टूटी हुई अस्थियां जुड़ जाती हैं. बबूल की छाल का चूर्ण मधु में मिलाकर खाने से २ से ३ सप्ताह में भग्न अस्थि वज्र जैसी दृढ़ हो जाती है.

उपचार ऐसा होना चाहिए, जिससे भग्न स्थान में पाक न होने पाए अन्यथा पाक होने पर वह कष्टसाध्य हो जाता है. क्योंकि पाक का प्रारंभ हो जाने पर सिरा एवं स्नायु भी पक-गल जाते हैं. इसलिए गिरने अथवा चोट लगने से भग्न के साथ घाव भी हो गया हो, तो घृतमधु का मलहम लगाएं और कषाय त्रिफला आदि के क्वाथ का सेचन करें. वातव्याधिनाशक तेलों का उपयोग भी भग्न रोग में हितकर होता है.

इस प्रकार उपचार करने से युवावस्था में एक माह में, उतरती अवस्था में दो माह में और वृद्धावस्था में तीन महीने में अस्थिभग्न का संधान (जोड़) स्थिर हो जाता है.

भग्न रोग में अपथ्य कटु, क्षार, अम्लपदार्थ, परिश्रम, मैथुन, व्यायाम तथा रूक्ष आहार अस्थिभग्न रोग में वर्जित हैं.

कुछ पहेलियां

१. मेरे हिय में प्रभु बसे, तू भी हृदय बसाव,
जो-जो उसकी सृष्टि है, उसको गले लगाव.
उसको गले लगाव, अल्प दर आते चंगे.
स्वार्थ टेकरी लिए, अधिक आते भिखमंगे.
कहते राजाराम, देख तो प्रभु की माया.
जिसकी छतरी जगत रहे मेरी छतछाया.

२. दो सुरंग, दो कमरे, दो हैं नर्म कपाट,
जो रहती है मांद में, खुश होती वह चाट.
खुश होती वह चाट, ललाए से दो चौरे.
कुछ जन चातक भांति, देखकर इसको बौरे.
कहते राजाराम, एक दर्पण कहलाता.
इसके घर का हाल, बिम्ब बन इसमें आता.

३ बाहर से सुंदर लगे, अन्दर लकड़ी कींच.
बन बन जाता, उस समय, जब कट जाता बीच.
जब कट जाता बीच, पांच तप करते ज्ञानी.
सुख दुःख पांच किसान, हमें दें भोजन-पानी.
कहते राजाराम व्यवस्था सबको भाए.
सिर में शासक एक, लेट कर हुकुम चलाए.

४. पग काटे तो काज हूं, सिर काटे तो नीर.
धड़ काटे तो काल हूं, नयन कोर शमशीर.
नयन कोर शमशीर, नशीली जब-जब चितवन.
आभूषण-सा लगूं, चपल साजन मनभावन.
कहते राजाराम, रंग रजनी-सा पाया.
अनामिका सन गई, सुलोचन जब दर आया.

५. कर लटकूं रेखा बनूं, दो मुख फांसो माल.
सुग्रीवा को घेर कर, हूं जी का जंजाल.
हूं जी का जंजाल, पकड़ उसको न पाए.
जो हर मुझको संग, भागता लेकर जाए.
कहते राजाराम, वर्ण से वर्ण सुहाया.
अपने पिय के साथ, मुझे भी गले लगाया.

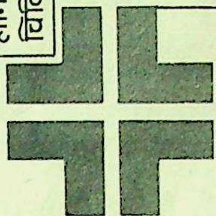
६. पति को संग में डालते, रगड़ बजाते ताल.
धीरे-धीरे मसलते, पकड़ दबाते गाल.
पकड़ दबाते गाल, नये के सिर चढ़ जाऊं.
छी-छी करते लोग, अगर सम्मुख पड़ जाऊं.
कहते राजाराम, पकड़ कर चुटकी भरते.
हरदम रगड़ा करें, बाद में कैंसर से मरते.

उत्तर

१ - मंदिर, २ - चेहरा, ३ - बदन, ४ - काजल, ५ - गले की जंजीर, ६ - खाने की तम्बाकू.

- राजाराम फतेहपुरी

होमियोपैथिक चिकित्सा



काली खांसी की चिकित्सा

- डॉ. प्रीति जाधव



यह श्वसनसंस्थान से संबंधित रोग है. नये जन्मे शिशुओं से लेकर चार वर्ष तक की उम्रवाले बच्चों में यह अधिकतर होता है. जिन बच्चों को इस रोग का प्रतिबंधक टीका नहीं दिया जाता, उन बच्चों पर इसका संक्रमण जल्दी होता है. इस रोग को फैलानेवाले जीवाणु "बॉडरेला परट्युसिस" है. जिन माताओं में रोगप्रतिकारक शक्ति कम होती है, उनके बच्चे इस रोग के शिकार होते हैं. टीका न लगाए हुए बच्चों में बड़ी उम्र में भी यह रोग होने की संभावना रहती है.

यह रोग वसंत और ग्रीष्म ऋतु में अधिक पाया जाता है. बालिकाओं को विशेष रूप से यह रोग अधिक होता है.

इस रोग का संसर्ग श्वासमार्ग से होता है. संक्रामक जीवाणु श्वसन द्वारा बच्चों के शरीर में प्रविष्ट होते हैं और सात से चौदह दिनों के भीतर लक्षण प्रकट होते हैं.

लक्षण

शुरू में लक्षण सामान्य खांसी की तरह होते हैं. नाक से पानी बहना, खांसी और मंदज्वर रहता है. इसके बाद खांसी की शिकायत सहसा बढ़ जाती है और खांसी के दौरे से पड़ते हैं. निःश्वास ज़ोरदार घुरघुराहट की आवाज़ के साथ होती है. खांसी के दौरों के दरमियान रोगी का चेहरा लाल होता जाता है. आंखें बाहर निकल रही हों, ऐसा लगता है और जीभ बाहर रहती है. बहुत कठिनाई से थोड़ा-सा बलगम नाक और मुंह से निकलता है. रोगी पसीने से तर होता है, थक जाता है. कभी बारबार उल्टियां भी होती रहती हैं. इस प्रकार के दौरे दिन में ३-४ बार से लेकर १४-१५ बार भी होते हैं.

टीका लगाए हुए बच्चों में या बड़ों में दौरे कम तकलीफ़दायक रहते हैं.

प्रयोगशाला रक्तपरीक्षण में श्वेतकणों की संख्या वृद्धि मिलती है. शुरू में जब नाक या मुंह से स्राव गिरता है, उस स्राव के परीक्षण में परट्युसिस जंतु मिलते हैं.

४ महीने से कम उम्र वाले शिशुओं में हुआ यह रोग अतिशय कष्टसाध्य या असाध्य होता है.

एंटीबायटिक दवाइयों का असर नहीं होता, अतः ऐसी दवाइयों की आवश्यकता है जो रोगप्रतिरोधक शक्ति बढ़ाए एवं इस वायरस से जीवन को प्रतिरक्षक बनाए. होमियोपैथी में इस बीमारी का इलाज है. इनकी औषधियों का कुछ दिन सेवन करने से लाभ पहुंचता है.

काली खांसी बच्चों को परेशान करनेवाली सबसे बड़ी बीमारी है. इसमें बच्चा खांसते-खांसते परेशान हो जाता है और माता-पिता कुछ नहीं कर पाते क्योंकि अक्सर इसका दौरा रात में ही पड़ता है. प्रस्तुत है, इसके लक्षण के अनुसार चिकित्सा.

उपयोगी औषधियां

एंटिम टार्ट: जब बच्चा खांसता है तो उसकी छाती से घर्र-घर्र की तेज़ आवाज़ निकलती है जिससे पता चलता है कि छाती में कफ़ भरा हुआ है, जिसकी वज़ह से सांस लेने में परेशानी होती है.

सीना: यह उपचार कृमि से ग्रस्त बच्चों के लिए किया जाता है. बच्चे अक्सर अपने नाक को खुजलाते व रगड़ते रहते हैं. इसमें नीलापन लिए आंखों के नीचे व मुंह पर काले घेरे हो जाते हैं और गालों पर सफ़ेद धब्बे पड़ जाते हैं. रात में हमेशा गले में खुजली व चुनचुनाहट महसूस होती है.

कॉकस कैक्टाइ: यह चिकित्सा तब की जाती है जब बच्चे के खंखारने पर चिपचिपा बलगम का

थक्का निकलता हो. सुबह खांसी आती है. ठंडे कमरों में या खुली हवा में बच्चा आराम महसूस करता है.

कोरैलियम रयूब्रमः यह चिकित्सा उस विशेष प्रकार की खांसी में की जाती है जहां खांसी का दौरा बहुत तेज़ हो, व्यक्ति को दम घुटने का एहसास हो और अत्यधिक थकावट महसूस हो. अति आक्रामक खांसी के लिए यह चिकित्सा की जाती है.

क्युप्रम मेटः यह चिकित्सा वहां दी जाती है जहां खांसी इतनी तीव्र होती है कि इसका अंत बच्चों में ऐंठन व फिट से होता है.

खांसी इतनी तेज़ होती है कि बच्चे का चेहरा नीला व काला पड़ जाता है. चेहरा ऐसा नज़र आता है कि प्रहार के लिए बहुत अधिक तनाव झेलना पड़ा हो जिसकी वज़ह से मृत्यु हो गई हो.

ड्रॉसेराः काली खांसी के उपचार के लिए यह मुख्य चिकित्सा है, जब सूखी खांसी आ रही हो. खांसी का दौर तब शुरू होता है जब बच्चा सोने लगता है, खांसी के इस दौर के कारण बच्चा ठीक से सो नहीं पाता. उसकी नींद ख़राब हो जाती है. इसमें बच्चे को जागते रहने पर खांसी नहीं आती.

डल्कामैराः ठंडी व सर्दी के मौसम में होनेवाली खांसी का उपचार इस विधि से किया जाती है.

इपीकैफः खांसी के दौर के बाद उल्टी होती है, हमेशा मन में मतली रहती है. गाढ़ा, लसदार कफ़ निकलता है. सांस लेने में तकलीफ़ होती है. कभी-कभी नाक से ख़ून निकलता है या बलगम में ख़ून के चिन्ह दिखाई पड़ते हैं.

काली बिचः इसमें दौर की भांति खांसी आती है जिससे सांस लेने में भी कठिनाई होती है. इससे अचानक बच्चा सोते से जाग जाता है. बच्चे का दम घुटने लगता है और खांसी के लागतार दौर पड़ते हैं, जो सुबह तक चलता है. इसमें बलगम निकलता है व कफ का रंग हरा दिखाई पड़ता है.

मेफाइटिसः दिनभर कुकुर खांसी आती है, परंतु रात के समय बच्चा आराम महसूस करता है.

इन सभी औषधियों को २०० पोटेंसी में उपयोग करना चाहिए. जब तक खांसी शांत न हो जाय, प्रत्येक एक घंटे बाद दवा खानी चाहिए. ऊपर बताए गए दवाओं के साथ नौसादर, जो परट्युसिन २०० के नाम से भी जानी जाती है, भी प्रयोग किया जा सकता है. इसकी रोज़ सुबह एक खुराक लें. ●

शरीर को स्फूर्ति और ताज़गी देते स्नान

हमारे यहां अक्सर साबुन और पानी से ही स्नान करने की प्रथा है. कोई-कोई उबटन लगाकर या मुल्तानी मिट्टी से भी त्वचा की सफ़ाई करके स्नान करते हैं. गांवों के तो अधिकांश घरों में आज भी साबुन बहुत ही कम मात्रा में इस्तेमाल किया जाता है.

प्रतिदिन स्नान करना स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद माना गया है, पर इन दिनों देखने में आता है कि अधिकांश महिलाएं ठंड की वजह से हाथ-पैर व चेहरे को धोकर ऊपरी लीपा-पोती से अपने आपको तरो-ताज़ा कर लेती हैं पर शरीर से निकलने वाले पसीने की दुर्गन्ध उनकी इस लापरवाही को उजागर कर ही देती है.

स्नान रक्त संचार को सही रखता है. शरीर को मज़बूत बनाता है और पसीने की दुर्गन्ध को दूर करके त्वचा को नीरोग भी रखता है. सादा स्नान तो आप पूरे वर्ष करती ही होंगी.

कुछ स्नान ऐसे भी हैं, जो शरीर को नई स्फूर्ति और ताज़गी देकर त्वचा को कोमल और कान्तियुक्त बनाने में सहायक होते हैं. स्नान करने की कुछ विधियां इस तरह हैं –

● गरम पानी में एक या दो बड़े चम्मच समुद्री (सादा) नमक मिलाकर उसमें ठंडा पानी मिलाएं. इस कुनकुने पानी से स्नान करके सूखे तौलिए से थपथपाते हुए शरीर को पोंछ लें. यह स्नान त्वचा को साफ़ करके रोमछिद्रों को खोलता है और गंदगी को साफ़ करता है.

● रोमछिद्रों को खोलने के लिए दूसरा स्नान भाप द्वारा किया जाता है. एक बड़े बर्तन में पानी खूब गरम कर लें. एक रोएंदार तौलिए को इसमें भिगोकर निचोड़ लें और उससे पूरे शरीर पर भाप दें. आजकल यही स्नान अधिक प्रचलित है. स्नान के बाद सूखे तौलिए से त्वचा को सुखाकर कपड़े पहनें.

● सूखी व कान्तिहीन त्वचा में निखार लाने के लिए कुनकुने पानी में सेब का ताज़ा जूस मिला लें. फिर इस पानी से स्नान करें. यह स्नान त्वचा को स्निग्ध करने के साथ-साथ शरीर की थकावट को भी दूर करता है.

● शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आप गुलाब या गेंदे के फूलों को कुनकुने पानी में डालकर कुछ देर छोड़ दें. फिर इन्हें मसल कर पानी को छान लें. इस पानी से स्नान करने पर त्वचा के दाग़-धब्बे भी दूर होते हैं और त्वचा निखर उठती है.

● त्वचा को मुलायम रखने व सांवला रंग निखारने के लिए पाव लीटर ताज़ा दूध कुनकुने पानी में मिलाएं. दो बर्तनों से इस पानी को इधर-उधर करके अच्छी तरह से मिला लें. इस पानी से स्नान करके शरीर को सूखे तौलिए से पोंछ ले.

● साबुन की जगह उबटन से स्नान करने पर भी त्वचा पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है. सबसे अधिक उपयोगी उबटन हल्दी और बेसन का माना जाता है.

● शरीर की थकावट को दूर करने व स्फूर्ति देने के लिए एक टब में पानी गर्म करें. उसमें पैरों को सुहाता जितना ठंडा पानी मिला लें. पैरों को टब में डुबोकर एक रोएंदार तौलिए को शरीर के चारों ओर इस तरह लपेटें कि पानी की भाप बाहर न निकले. दस मिनट बाद पैर से लेकर पूरे शरीर में एक नई ताज़गी पैदा होगी.

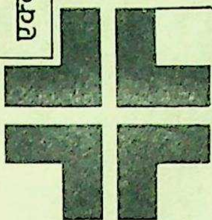
– राज जैन

कृपया ध्यान दें

'आरोग्य संजीवनी' की विशेषांक नारी स्वास्थ्य अंक में पृष्ठ ८६ पर एवं पृष्ठ ८८ पर प्रकाशित बॉक्स मैटर की लेखिका अनिता होलानी का नाम प्रकाशित नहीं हुआ है, जिसके लिए हमें खेद है.

एक्युपंक्चर

नाड़ी दौर्बल्य की चिकित्सा



एक्युपंक्चर यह एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है, जिसमें विभिन्न आकार की सूइयों को पीड़ित स्थान पर अथवा कुछ निर्धारित बिंदु पर धंसाया जाता है, और इसके द्वारा कुछ समय तक चिकित्सा करवाने के बाद रोग से पूर्णतः राहत मिलती है. एक्युपंक्चर पद्धति आजकल जापान व चीन में ही ज़्यादा प्रचलित है, परंतु भारत में भी इसे असरकारक चिकित्सा के कारण अपनाया जा रहा है.

भौतिक युग की चकाचौंध एवं प्रतिस्पर्धा में तीव्र गति से निरंतर आगे बढ़ने की कामना रखनेवालों के लिए तथा दैनिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हमारा जीवन दिन-ब-दिन संघर्षमय होता जा रहा है. हर कदम पर कठिनाइयों का सामना, कभी सफलता तो कभी असफलता पाने के बाद हमें शारीरिक व मानसिक असंतुलन सहना पड़ता है. हर मनुष्य का ऐसा समय उनके जीवन में २५ से ४५ वर्ष की उम्र के दौरान ही आता है, जब व्यक्ति मानसिक रूप से परेशान होता है.

एक्युपंक्चर चिकित्सा अनेक मानसिक व्याधियों में लाभदायक सिद्ध हुआ है, जैसे-सायकोन्यूरोसिस, सीजोफ्रीनिया, डिप्रेशन, एपिलेप्सी (मिरगी), नशीली दवाइयों का व्यसन, बच्चों की व्यावहारिक समस्याएं, नाड़ी दौर्बल्य (न्यूरस्थीनिया) की चिकित्सा एक्युपंक्चर द्वारा संभव है.

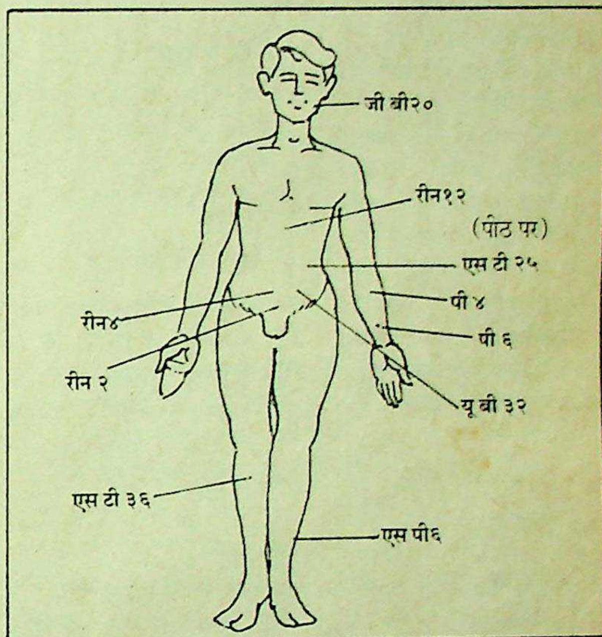
मूल कारण

नाड़ी दौर्बल्य रोग (न्यूरस्थीनिया) कोई शारीरिक बीमारी नहीं है. अधिकांशतः यह रोग मानसिक रूप से परेशान व्यक्तियों को होता है. मनुष्य अपने आप को थका, हुआ हारा हुआ महसूस करता है. जिसके कारण मानसिक संतुलन ठीक नहीं रहता. उसमें अधीरता, चिड़चिड़ापन, चिंता, उदासी या हताशा, अनिद्रा, सिरदर्द एवं यौन विकार आदि आते हैं.

इस रोग से स्वयंचालित तंत्रिका तंत्र पर भी कभी-कभी विपरीत असर होता है. प्रथम — आंत्र तंत्रिका रोग में बीमार व्यक्ति को भूख नहीं लगती. कब्ज़ की शिकायत रहती है. मरीज़ को उल्टी व दस्त होने लगती है.

दूसरा — हृदय तंत्रिका रोग में रोगी के हृदय की धड़कन बहुत तेज़ हो जाती है, जिससे व्यक्ति को घबराहट महसूस होती है तथा सांस लेने में उसे परेशानी होती है.

आजकल वैसे तो कई चिकित्सा विधियां प्रचलित हैं, एक्युपंक्चर भी उन्हीं में से है. नाड़ी दौर्बल्य की स्थिति में आइए देखें कि एक्युपंक्चर कितना असर दिखाता है.



तीसरे — नाड़ी दौर्बल्य रोग में, यौन-शिथिलता आती है. इसका महत्वपूर्ण लक्षण रोगी को रात्रि में स्वप्नदोष होता है. रोगी को समयपूर्व ही स्खलन होने लगता है तथा नपुंसकता का भय हो जाता है.

उपचार

मानसिक रोगों में एक्युपंक्चर बहुत लाभदायी चिकित्सा है. इससे शरीर पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ता. तंत्रिका रोग में मन की थकावट, उदासी व अन्य जो लक्षण होते हैं उनको दूर करने के लिए प्राणशक्ति को उद्दीप्त करना होता है.

एक्युपंक्चर में अधिकतर सिर में, पैर में, हाथों में निर्धारित बिंदु को सूई द्वारा दस से बीस मिनट तक धीरे-धीरे हस्तचलित उद्दीपक या इलेक्ट्रोड (विद्युत उद्दीपक) द्वारा उद्दीपित किया जाता है.

सिरदर्द के लिए जी बी २०, हृदय विकार के लिए पी ६ या पी ४, पीठ या पेट की शिकायत के लिए रीन १२, एस टी २५ या एस टी ३६ बिंदुओं पर पंक्चरिंग की जाती है. यौन विकार के लिए रीन ४, यू बी ३२, रीन २, एस पी ६ बिंदुओं पर पंक्चरिंग करके चिकित्सा की जाती है.

इस तरह अलग-अलग बीमारी में अलग-अलग एक्युपंक्चर के बिंदुओं को चुनकर उद्दीप्त करते हैं, ऐसा १५ दिन तक लगातार करने पर व सात दिन का अंतर रखकर पुनः उपचार करने पर, रोगी स्वस्थ हो जाता है.

— डॉ. सीमा खांडवाला

पृष्ठ ५१ का शेष

में वह परम सुखी, शांत और कर्मयोगी बन सकता है. वह अपनी वृद्धावस्था को सार्थक और सफल सिद्ध कर सकता है.

बुढ़ापे के कष्टों से बचने के कुछ अनुभूत उपाय

जीवन का अंतिम क्रम है बुढ़ापा. यह ऐसी अवस्था है जब शरीर शिथिल हो जाता है. त्वचा में झुर्रियां पड़ जाती हैं, नजर कमजोर हो जाती है, व्यक्ति अपने आप को असहाय, अक्षम समझने लगता है. व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप से थक जाता है तथा अपने आप को उपेक्षित महसूस करने लगता है. लेकिन जीवन है तो बुढ़ापा अवश्य आएगा, अतः इससे परेशान होने की बजाय उसका मुकाबला करना चाहिए.

प्रातःकालीन सैर

प्रातःकाल जल्दी उठकर नंगे पैर हरी घास पर सैर करने से शरीर के रक्त का दौरा ठीक रहता है और शरीर में चुस्ती आती है. बुढ़ापे के कष्टों से बचने का यह एक उत्तम उपाय है.

खाने को चबाकर खाएं

बुढ़ापे में पचन-अपचन की गड़बड़ी अक्सर होती है. अतः भोजन में साग-सब्ज़ी का अधिक प्रयोग करना चाहिए और भोजन हल्का व खूब चबाकर खाना चाहिए, ऐसा करने से आंतों को अन्न पचाने में सहायता मिलती है और आंतें मज़बूत रहती हैं. पाख़ाना साफ़ होता है और भूख भी खुलकर लगती है.

शरीर की मालिश

नियमित रूप से एक-आधा घंटे की मालिश से खून का दौरा ठीक रहता है और शरीर में फुर्ती आती है. इस क्रिया से काफी लाभ होता है.

पेय पदार्थ धीरे-धीरे पीना

किसी भी पेय पदार्थ को चाय की तरह धीरे-धीरे पीना चाहिए. इस तरह पीया गया पेय पदार्थ उन्हें हितकर होगा, कोष्ठबद्धता नहीं होगी और स्वास्थ्य ठीक रहेगा. थोड़ा-थोड़ा करके दिनभर में ५-७ गिलास जल अवश्य पीना चाहिए.

खाद्य पदार्थ

कुछ खाद्य-पदार्थ ऐसे होते हैं जो स्वास्थ्य के साथ-साथ आयु बढ़ाने में सहायक होते हैं. जैसे गेहूं की दलिया, फलों में गाजर, अमरूद, केला, सेब, अनार, संतरा, अंगूर, नींबू, सिंघाड़ा, बेल, आंवला, खजूर, हरा चना आदि स्वास्थ्य कर और आयुवर्द्धक हैं. इसी प्रकार त्रिफला, च्यवनप्राश, दूध, दही, मेवे का सेवन भी स्वास्थ्यवर्द्धक हैं. कभी-कभी निराहार, उपवास करना भी बहुत लाभप्रद होते हैं.

अपक्व भोजन

अपक्व भोजन से मतलब है जो आग पर न पकाया गया हो, जैसे भिगोए हुए गेंहू, चना, मूंग वगैरह, कच्चे कंद-मूल, फल, हरी मटर की फली, कच्ची ताजी साग-सब्ज़ी, कच्ची तोरई, लौकी, टमाटर सब कच्चे ही खाने चाहिए. इससे शरीर स्वस्थ रहता है और आयुवृद्धि होती है. यह एक सिद्ध अनुभूत प्रयोग है.

व्यायाम तथा विश्राम

वृद्धावस्था में अधिक व्यायाम नहीं हो सकता. अतः कुछ साधारण श्रम या व्यायाम करना चाहिए. जैसे, रोज़ सुबह-शाम दस-बीस बार उठें-बैठें, दस-बीस कदम दौड़ें अथवा कोई हल्का व्यायाम करें. सूर्यनमस्कार भी लाभदायक है. रात्रि के अतिरिक्त दिन में भी भोजन के बाद घंटे-दो घंटे विस्तर पर निश्चिन्त होकर विश्राम करना चाहिए. हमेशा प्रसन्न रहना चाहिए. सदा प्रसन्न रहने से शारीरिक एवं मानसिक विश्राम के साथ-साथ स्वास्थ्य लाभ भी होता है.

योगासन

सिद्धासन, पद्मासन पश्चिमोत्तान आसन आदि आसन वृद्धों के लिए उपयोगी होते हैं.

इन्हें प्रातःकाल खाली पेट ५-७ मिनट रोज़ करने से स्वास्थ्य में परिवर्तन होता है व शरीर चुस्त बना रहता है.

सूर्यस्वर

दाहिना स्वर चलता हो, तब भोजन करने से वह जल्दी पच जाता है और किसी प्रकार की हानि नहीं करता. इसलिए याद रखकर जब दाहिना स्वर चलता हो, तभी भोजन करना चाहिए अथवा कोई जल अथवा पेय पदार्थ पीना हो तो यथासम्भव जब बायां स्वर चलता हो, तब पीना लाभदायक होता है.

इन दैनिक क्रिया-कलापों एवं योगासनों से वृद्धावस्था पास नहीं फटकेगी और दीर्घायु के आरोग्य साथ ही प्राप्त होगा एक उल्लसित व नीरोगी जीवन, जो हर एक को उपलब्ध नहीं होता. इसके अलावा खुद को बूढ़ा नहीं, सदा जवान समझ कर यदि जीया जाए, तो जीने का आनंद ही कुछ और होगा. ●

पृष्ठ ५२ का शेष

ज़रूरत है, परन्तु अभी इसका उत्पादन सीमित है.

यदि सामान्य व्यक्ति भी आयोडीनयुक्त नमक का सेवन करें, तो घेंघा रोग से बचाव भी होगा और स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद भी; इस रोग से बचाव के लिए आयोडीन की उचित मात्रा ज़रूरी है. यदि आयोडीनयुक्त नमक का अभाव हो, तो स्वयं भी बनाया जा सकता है. पोटैशियम आयोडाइड में सामान्य नमक की एक निश्चित मात्रा मिलाने से आयोडीनयुक्त नमक बन जाता है.

आयुर्वेदिक चिकित्सा

आयुर्वेदिक चिकित्सा में गलगण्ड के तीनों प्रकारों में सेंक (स्वेदन) रक्तमोक्षण (खून निकलना) इन दो उपचारों की ही प्रधानता है. स्थानिक लेप में लेप गुटी, दशांग लेप का उपयोग इस रोग में लाभकारी होता है.

- आरोग्य वर्धिनी-२५०-५०० मि.ग्रा. २ बार सुबह-शाम सेवन करें. शीघ्र लाभ होगा.
- कांचनार गुग्गुल - २-४ गोली २-३ बार प्रतिदिन लें, फ़ायदा होगा.
- त्रिफला गुग्गुल - २-४ गोली २-३ बार प्रतिदिन लेने से भी अवश्य लाभ होता है.
- त्रिकटु चूर्ण - १/२-१ ग्राम २ बार शहद के साथ सुबह-शाम लेने से राहत मिलेगी.

अगर इस चिकित्सा से अधिक लाभ न हो तो शस्त्रकर्म ज़रूरी होता है. अधिक तकलीफ़ होने की स्थिति में किसी कुशल वैद्य की देखरेख में चिकित्सा करवाएं.

आवश्यकता इस बात की है कि सरकार के साथ-साथ समाजसेवी संस्थाएं भी लोगों को आयोडीनयुक्त नमक का सेवन करने के लिए प्रेरित करें. चिकित्सक और पढ़े-लिखे लोग भी दूसरों को आयोडीन की उपयोगिता एवं महत्व से अवगत कराते रहें, ताकि आयोडीन की कमी से होने वाले इस भयंकर रोग से बचा जा सके. ●

लाजवाब परांठे

सभी गृहिणियां चाहती हैं कि वे अपने परिवारवालों को नित नए व स्वादिष्ट व्यंजन बनाकर खिलाएं व प्रशंसा पाएं, पर प्रशंसा पाने के लिए अधिक तेल व मिर्च मसाले खिलाकर उनका स्वास्थ्य भी नहीं बिगाड़ सकतीं. परंतु आप चिंतित न हों क्योंकि वर्षा ऋतु एक ऐसा सुहाना मौसम है, जिसमें लोगों की पाचन-शक्ति अधिक सक्रिय होती है, तेल-मसाले के व्यंजन भी थोड़ी-अधिक मात्रा में वे आसानी से पचा सकते हैं. परांठा, यह एक स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ है जिसे खिलाकर आप 'स्वाद व स्वास्थ्य' दोनों बना सकती हैं. परांठा बनाने की कुछ नवीन विधियां निम्न हैं.

आलू का मीठा परांठा

सामग्री: ५०० ग्राम गेहूं का आटा, ३०० ग्राम आलू, १०० ग्राम गुड़, २ बड़ी इलायची, पिसी हुई सोंठ, आवश्यकतानुसार घी.

विधि: आलुओं को उबालकर, छीलकर उसमें बड़ी इलायची, सोंठ, नमक व गुड़ को एक साथ डालकर मिला लीजिए. आटा गूंधकर उसकी छोटी-छोटी लोई बनाइए. उसे रोटी की तरह गोल बेलें, फिर उसमें आलू का मिश्रण भरकर उसे अच्छी तरह बन्द कर दीजिए. बाद में इसे थोड़ा और बेल कर गर्म तवे पर डालें. दोनों तरफ़ घी लगाकर सुनहरा होने तक पकाइए व गरम-गरम नाश्ते में परोसिए.

मेथी का भरवां परांठा

सामग्री: २५० ग्राम मेथी, ५०० ग्राम गेहूं का आटा, नमक-मिर्च, अमचूर,अनारदाना स्वाद के अनुसार, आवश्यकतानुसार घी.

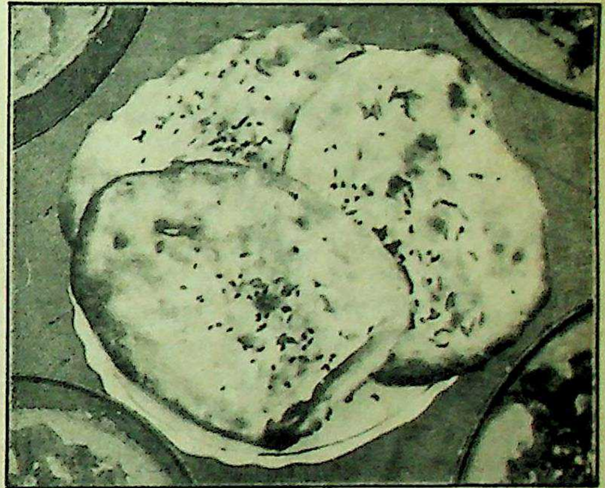
विधि: मेथी को साफ़ करके बारीक काटकर, अच्छी तरह धो लें. पानी को निचोड़कर उसमें नमक, मिर्च, अमचूर व अनारदाना अंदाज़-से डाल दीजिए. आटे को गूंधकर लोई बना लीजिए. उसपर तेल लगाकर थोड़ा बेलकर मेथी का तैयार मिश्रण भर कर बेलें और तवे पर सेंककर उतारें व घी लगाकर गरम-गरम परोसिए, चटपटी सब्ज़ी के साथ.

मूली का भरवां दोहरा परांठा

सामग्री: ३०० ग्राम मूली, ६० ग्राम घी, ४०० ग्राम गेहूं का आटा, नमक, मिर्च, गर्म मसाला, अनारदाना स्वादानुसार.

विधि: गेहूं के आटे को छानकर, उसमें थोड़ा घी डालकर गूंध लीजिए. मूली को धोकर, छीलकर कद्दूकस कर अलग थाली में निचोड़ कर रख लें. उसमें नमक, मिर्च, गर्ममसाला, अनारदाना डालकर मिला लें. अब आटे के दो पेड़े बना रोटी की तरह बेलें. अब एक तह रोटी की रखकर ऊपर से थोड़ा घी लगाकर मूली के मिश्रण को उस पर बिछाइए, ऊपर से दूसरी रोटी रखकर उसके किनारे चिपका दें. गर्म तवे पर डालकर सादे परांठे की तरह सेंक लीजिए. बाद में उतारकर घी लगाकर दही के साथ परोसें.

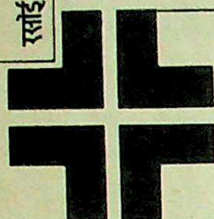
मौसम हो बारिश का तो जीभ कुछ ज़्यादा ही स्वाद के फेर में मचलने लगती है. ऐसे में मन तो नहीं मार सकते, पर कुछ ऐसा तो बना कर खा-खिला ही सकते हैं जो जीभ की मांग भी पूरी करे और शरीर के स्वास्थ्य की भी.....



चने की दाल का खमीरी परांठा

सामग्री: २०० ग्राम चने की दाल, आवश्यकतानुसार घी, हींग, जीरा, अदरक इच्छानुसार, २-३ हरी तथा लाल मिर्च (पिसी), धनिया (पिसा), छोटा टुकड़ा अदरक का तथा हरा धनिया, स्वादानुसार नमक व दही.

विधि: चने की दाल को रात में भिगोकर रखें. सुबह दाल को उबालकर ख़ूब बारीक़ पीस लें. कड़ाही में घी डालकर जीरा तथा हींग का छौंक दे कर पिसी दाल को भून लें. अब इस पिसी-भुनी दाल में सारे मसाले, कटा हुआ अदरक, हरा धनिया, हरी मिर्च डालकर पिट्ठी बना लीजिए. अब आटे को दही में थोड़ा-सा पानी मिलाकर गूंधिए. आटे की छोटी-छोटी लोइयां बनाकर बेल लीजिए. अब इस बेले हुए आटे में थोड़ा-सा घी चुपड़कर पिट्ठी भर लीजिए. एक और लोई को बेलकर पिट्ठीवाली लोई पर चिपकाकर परांठा बेल लीजिए. आंच पर कुरकुरा होने तक सेंक कर गरम-गरम ही परोसिए. ●



कम सुनने वालों के लिए हितकारी

● बारीक पिसा हुआ सुहागा कान में डालकर उसके ऊपर ५-६ बूंद नींबू का रस डालने पर कान के भीतर गैस उत्पन्न होगी और मैल फूलकर बाहर आ जाएगी और कान का परदा साफ़ हो जाएगा और सुनाई देने लगेगा.

● ताज़ा मूली का रस, सरसों का तेल और शहद तीनों बराबर मात्रा में लेकर खूब हिला कर मिला लें. इसको दो से चार बूंद दिन में चार बार डालने से श्रवण-शक्ति बढ़ती है.

● सोंठ, गुड़ और घी खाने से कम सुनने में लाभ होता है और कान की सांय-सांय की आवाज़ भी बन्द होती है.

● ४-५ बूंद राई का तेल कान में टपकाने से कम सुनाई पड़ना दूर होता है.

● अदरक का रस और शहद व उसमें थोड़ा-सा नमक मिलाकर २-४ बूंद कान में डालें, अवश्य फ़ायदा करेगा.

रोगी को पसीना कभी कम तो कभी अधिक मात्रा में आता. रोगी गाना, नाचना, हंसना, रोना आदि विकृत चेष्टाएं करता रहता है. प्यास बहुत लगती है.

बहुमूत्र

● ५-५ ग्राम काला तिल और मिश्री, ४ ग्रेन नौशादर, इन तीनों को कूट-पीसकर १-१ मात्रा सुबह-शाम लेने से बहुमूत्र रोग मिटता है.

● रेवड़ी, गज़क, तिल के लड्डू बहुमूत्र में अत्यंत लाभकारी होते हैं.

● आधा ग्राम रीठे की गुठली का चूर्ण सुबह-शाम लेने से लाभ होता है.

● २०-२० ग्राम काले तिल और अजवायन को बारीक पीसकर उसमें ६० ग्राम गुड़ मिलाइए. ६ ग्राम की मात्रा सुबह-शाम नियमित लेने से शीघ्र लाभ होता है.

● ४० ग्राम मिश्री, ३० ग्राम मुलहठी, २० ग्राम कालीमिर्च सबको कूट-पीसकर चूर्ण बना लीजिए. ४ ग्राम की मात्रा में गाय के घी में मिलाकर दो बार चाटने से एक सप्ताह में ही बहुमूत्र रोग दूर हो जाएगा.

● १० ग्राम इमली के बीज की गिरी सुबह पानी में भिगो दीजिए. रात में उसका छिलका उतारकर दूध के साथ चबाइए अवश्य लाभ होगा.

● एक किलो कुटे हुए त्रिफला को ८ किलो पानी में काढ़ा बना लीजिए. जब पानी दो किलो रह जाय, तो उतार कर ठंडा होने के बाद कपड़े से छान लीजिए. फिर इस पानी को मन्द आंच पर रखकर गाढ़ा करें, जब गोली बनने लायक लुगदी हो जाए तो २-२ ग्रेन की गोलियां बना लीजिए. बच्चों को २ गोली और बड़ों को ४ गोली की मात्रा में सुबह-शाम दें. कुछ दिन के प्रयोग से लाभ दिखाई देगा.

● २०-२० ग्राम खसखस के दाने और गुड़ को लेकर कूट-पीस लीजिए. इसकी १ ग्राम की मात्रा सुबह-शाम जल के साथ सेवन करने से बहुमूत्र रोग में फ़ायदा होता है.

● १० ग्राम बेलगिरी को ५ ग्राम सोंठ में कूटकर रखें और ५०० ग्राम पानी में इसका काढ़ा बनाएं. जब पानी आठ भाग रह जाए, तो उसको निकालकर ५ ग्राम की मात्रा में दिन में दो बार देने से लाभ होता है.

असरकारी नुस्खे

● खुजलाने पर शरीर की चमड़ी से पानी निकलता है. १०० ग्राम चिरौंजी को बारीक पीसकर, उसमें पन्द्रह ग्राम कच्चा सुहागा मिलाकर पीस लीजिए. अब इसमें गुलाबजल डालकर खूब मिलाए, जिन स्थानों पर खुजली होती है उन स्थानों पर लगाइए. एक दिन के प्रयोग से ही रोग दूर हो जाएगा.

● यदि सर्दी के कारण पेशाब बूंद-बूंद करके टपकता हो तो ६ ग्राम मेथी के बीज को पानी से धोकर सुखाकर पीस लें और १२ ग्राम शहद, मिलाकर रात को सोते समय चाटने से कुछ ही दिनों में यह तकलीफ़ दूर हो जाएगी.

● यदि कान में दर्द हो तो गेंदे के पत्तों का रस निकालकर हल्का गरम करके दो-चार बूंद कान में डालने से कान के दर्द में राहत मिल जाती है.

● बढ़ी हुई तिल्ली को कम करने के लिए नींबू काटकर उस पर थोड़ा लाहौरी नमक, सुहागा, नौसादर और कालीमिर्च बारीक पीस कर बुरक दें और दिन में दो-तीन बार उसे चूसें. ऐसा करने से कुछ ही दिनों में तिल्ली अपनी असली हालत में आ जाती है.

● यदि जुकाम के कारण नाक बंद हो जाने से सर में दर्द होने लगे, तो अजवाइन को एक पोटली में बांधकर गर्म करके सूंघने से छींक आने लगेगी और सर का दर्द ठीक हो जाता है.

● यदि आप को भूल जाने की शिकायत हो, आपकी स्मरण शक्ति कमज़ोर हो तो इस कमी को दूर करने के लिए सोंठ ६० ग्राम पीसकर १०० ग्राम शहद में मिला लें और सुबह-शाम ३-३ ग्राम सेवन करें, कुछ ही दिनों के सेवन से आपकी भूल जाने की शिकायत दूर हो जायेगी.

● बलग़मी खांसी और दमा से छुटकारा पाने के लिए सुहागा भुना हुआ १२ ग्राम और मुलेठी २५ ग्राम बारीक पीस कर १०० ग्राम शहद में मिला लें और ६ ग्राम की मात्रा लें.

● यदि कान बहता हो तो लहसुन ६ ग्राम और सिंदूर ३ ग्राम पीसकर सरसों के तेल में पका लें और तेल साफ़ करके रख लें. ज़रूरत पड़ने पर दो-तीन बूंद कान में टपकाने से कान दर्द में आराम मिलेगा.

– डॉ. इरफान अलीमी

ध्यान रखें

जिनकी पाचन क्रिया ठीक न हो उन्हें भोजन के साथ फल नहीं खाना चाहिए. कच्चे फल नहीं खाएं. खट्टे फल ज्यादा नहीं खाना चाहिए. ज़रूरत से ज्यादा फल नहीं खाएं. भोजन के दो घंटे बाद ही फल खाना चाहिए. शीत ऋतु में रात को फल नहीं खाएं. इतनी सावधानियों से जो फल आप खाएंगे वह आपके स्वास्थ्य के लिए अमृत बन जाएगा.

सन्निपातज ज्वर और उसकी चिकित्सा

डॉ. एल. बी. शर्मा

ग़लत आहार-विहार से जो ज्वर होता है उसी को सन्निपातज ज्वर कहते हैं. यह ज्वर वर्षाकाल में ही अधिक प्रकुपित होता है, परंतु इसे शुरुआती दौर में ही चिकित्सा द्वारा काबू में किया जा सकता है.

मिथ्या आहार-विहार करने से वात, पित्त और कफ के प्रकुपित होने से जो भयंकर ज्वर होता है उसे हम सन्निपातज ज्वर कहते हैं. इस ज्वर में तीनों दोषों के लक्षण रहते हैं.

सन्निपात ज्वर होने के कारण

विरोधी अन्नाहार-पानादि करने से, अजीर्ण से, मिश्रित पदार्थों के सेवन से सन्निपात कुपित होकर ज्वर उत्पन्न होता है. अत्यन्त खट्टे, स्निग्ध, गर्म, तीक्ष्ण, कटु, मधुर कषाय रस, शराब आदि सेवन करने से अत्यंत काम, क्रोध, रूक्ष, गुरु तथा मांसादि आहार तथा बहुत अधिक खाने से, अतिशीत, शोक, व्यायाम, चिंता, अत्यंत स्त्री प्रसंग एवं अस्वाभाविक मैथुनादि से प्रायः पुरुषों को वसन्त, शरद और वर्षाऋतु में त्रिदोष कुपित होकर ज्वर उत्पन्न हो जाता है.

सन्निपातज ज्वर के लक्षण

इस ज्वर में तापक्रम अति तीव्र रूप से बढ़ता है. इसमें कभी ठंडी लगती है, कभी गरम (दाह) होता है. शरीर के जोड़ों तथा सिर में भयंकर दर्द विशेष रूप से होता है. आंखों से आंसू निकलते रहते हैं. नेत्रों का रंग लाल और मैला रहता है और वे विस्फारित अथवा अंदर धंसे हुए रहते हैं. कानों में दर्द तथा

अकारण ही सनसन की आवाज़ आती रहती है. गला कांटों से भरा हुआ-सा लगता है. तन्द्रा, मूर्च्छा, बड़बड़ाना, शरीर का कांपना, खांसी, श्वास लेने अथवा निकालने में कष्ट, श्वास फूलना, अरुचि, वमन तथा चक्कर आते हैं. जिह्वा जली हुई जैसी काले रंग की तथा स्पर्श में खुरदरी लगती है. सम्पूर्ण अंग ढीले (शिथिल) लगते हैं. थूक में कफ, पित्त के साथ रक्त भी निकलता है. रोगी अपने सिर को इधर-उधर घुमाता रहता है. दिन में सोना तथा रात में जागना अथवा कभी तो रोगी को रात-दिन नींद आती रहती है या कभी बिल्कुल नींद नहीं आती है. रोगी को पसीना . कभी कम मात्रा में तो कभी अत्यधिक आता है. रोगी नाचना, गाना, हंसना, रोना आदि विकृत चेष्टाएं करने लगता है. प्यास बहुत लगती है. हृदय प्रदेश में पीड़ा होती है. मलमूत्र देर से व थोड़ा निकलता है.

दुबला-पतला हो जाता है. रोगी के गले में लगातार घुरघुराहट होती रहती है तथा वह कराहता रहता है. शरीर पर सांवले या लाल रंग के चक्त्ते (ददोरे) पड़ जाते हैं. कभी-कभी रोगी बोलने में असमर्थ हो जाता है. मुख, नासा, कान तथा गुदा आदि पक जाते हैं. मल-मूत्र का रंग पीला तथा लाल होता है. कमज़ोरी, प्रतिश्याय (जुकाम), तथा पतले दस्त भी हो जाते हैं. गला तथा मुख सूखे हुए रहते हैं फिर भी रोगी बार-बार थूकता रहता है. हिचकियां भी आने लगती हैं. पेट भारी हो जाता है तथा इन दोषों का देर से परिपाक होता है. अग्नि-मांद्य हो जाता है. सन्निपातज ज्वर का प्रभाव सब धातुओं एवं अंगों पर पड़ता है अतः कमज़ोरी कई दिनों तक नहीं जाती है.

साध्यासाध्यता

इस ज्वर में वात, पित्त, कफ, मल, मूत्र आदि के अप्रवृत्त होने पर, पाचकाग्नि के नष्ट हो जाने पर तथा सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त ज्वर असाध्य होता है. इसके विपरीत यदि थोड़े लक्षणों वाला है तथा जठराग्नि भी नष्ट नहीं हुई हो तथा दोष, मल, मूत्रादि भी कुछ प्रवृत्त होते हों, तो सन्निपातज ज्वर कष्ट-साध्य होता है. यह ज्वर अच्छा होने में कई दिन भी ले लेता है तथा हाथ-पैरों में ढीलापन, टेढ़ापन, पतलापन तथा उनमें शुष्कता आ जाती है. हकलाना, बधिरता, अंधता आदि कुछ न कुछ लक्षण हमेशा के लिए छोड़ जाता है. इसके बाद कर्णशूल शोथ भी हो जाता है. सन्निपातज ज्वर की काल मर्यादा एक सप्ताह से तीन सप्ताह तक की होती है.

चिकित्सा एवं पथ्यापथ्यादि

सन्निपातज ज्वर में सबसे पहले आमदोषनाशक और कफ क्षीणता की चिकित्सा की जाती है. कफ के क्षीण हो जाने पर पित्त शमन की और फिर वायु के शमन होने की चिकित्सा की जाती है तथा दोषों के स्थान उर, कोष्ठ और बस्ति प्रदेश से समान भाव दोषों की चिकित्सा की जाती है.

एक दोष को बढ़ाकर अथवा बढ़े हुए एक दोष को घटाकर न्यूनाधिक भाव में विषम दोषजन्य सन्निपात की चिकित्सा की जाती है.

दोषानुसार लक्षणों की कल्पना करके त्रिदोषज ज्वर के प्रारम्भ में उपवास (लंघन), मध्य में पाचक औषध तथा अंत में रेचक औषधियों का प्रयोग करके चिकित्सा की जाती है. सन्निपातज ज्वर में बालुका स्वेदन, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह, अंजन आदि क्रियाओं द्वारा भी उचित समय पर इलाज किया जाता है.

पाचक औषधि

- आंवला, हरड़, पिप्पली और चित्रक इन चारों द्रव्यों का क्वाथ बनाकर चार-चार चम्मच दो बार प्रातः-सायं देने से दोषों का शमन होकर सन्निपातज ज्वर नष्ट हो जाता है.
- छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सोंठ,

धनिया, देवदारु समान भाग लेकर क्वाथ तैयार कर चार-चार चम्मच प्रातः-सायं भोजनोत्तर देते हैं. सर्वज्वरहर तथा पाचक है.

बालुका स्वेदन विधि - एक मिट्टी के बर्तन में बालू मिट्टी को भली भांति गर्म करके फिर एक कपड़े में गरम मिट्टी बांधकर उस मिट्टी के पात्र में पोटली रखकर उस पर कांजी से सिंचन से जो भाप निकले, उससे रोगी का स्वेदन (सेंक) किया जाता है.

नस्य चिकित्सा विधि

बिजौरा नींबू का रस, अदरक रस को थोड़ा गरम करके समभाग सैंधव, बीड़ तथा सौंचर नमक मिलाकर चार बूंद दवा नाक में छोड़ने से कफ का भेदन होकर कफ का स्राव होने लगता है. इससे सिर, कण्ठ, हृदय, मुख और पार्श्वभागों की पीड़ा शांत होती है.

तन्द्रानाशक नस्य - सेंधा नमक, श्वेत मरिच, सरसों, कूठ और पीप्पली सबको समान भाग लेकर बकरे के मूत्र में पीसकर नाक में दो दो बूंद डालने से तन्द्रा रोग नष्ट हो जाता है.

(३) चेतना कारक नस्य
सेंधा नमक, बच, कालीमिर्च और पीप्पली, महुए का रस सब समान भाग लेकर पानी से भली-भांति पीस छानकर नाक में दो-दो बूंद डालने से अचेत रोगी को चेतना आ जाती है.

निष्ठीवन विधि

अदरक के स्वरस में सेन्धा नमक, सोंठ, पीप्पली और काली मिर्च को समभाग मिलाकर मुख में कण्ठ तक भर कर थोड़ी देर रखें और फिर बार-बार थूकना चाहिए.

अवलेह विधि -

कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी और पीप्पली को समभाग लेकर चूर्ण बनाकर १ तोला मधु के साथ मिलाकर लेह जैसा बनाकर चाटने से श्वास, कास ज्वर का नाश होता है.

सप्तमुष्ठिक यूष - जौ, बेर, कुलथी, मूंग और मूली, सोंठ, धनिया इन सबको एक-एक मुट्ठी आठ गुणे पानी में पका कर इस यूष का प्रयोग करने से त्रिदोषज ज्वर नष्ट हो जाता है.

औषधोपचार

दशमूलक्वाथ तथा भारंग्यादि को तीन-तीन चम्मच दो बार प्रातः सायं दें. संजीवनी वटी २-२ गोली तीन बार शीतल पर्पटी के जल से दें. ज्वरांकुश रस २-२ गोली दो बार प्रातःसायं शहद से दें.

दोष, काल, देश, प्रकृति एवं लक्षणानुसार अन्य कई औषधियों का प्रयोग भी उचित रहता है जैसे - आनन्द भैरव, महागंधक रसायन वटी, सम्मीर पन्नग रस, सिद्धप्राणेश्वर रस, लक्ष्मीनारायण रस, सूतराज रस, सचेतनी वटी आदि.

ज्वर के रोगी को शीघ्र तथा आसानी से पचने वाले खाद्य पदार्थ या पेय मंड-विलेयी आदि का प्रयोग करना चाहिए. फल एवं फलरस जैसे संतरा, मौसंबी, अनारदाना आदि. जौ का पानी, नारियल पानी, पुराने गेहूं, चावल, मूंग, चना, कुलथी, दुग्ध आदि उपयोगी रहते हैं. लाज (खील) की पेय बहुत ही लाभदायक होती है. एक लीटर पानी को उबालकर चौथाई लीटर शेष रहने पर उतार कर रोगी को रुचि व दोषानुसार शीत, उष्ण एवं शीतोष्ण करके पिलाना चाहिए. ताप अधिक बढ़ जाने पर माथे पर नमक के पानी की पट्टियां आधे घंटे तक रखनी चाहिए, जिससे ताप उतर जायेगा. मूर्च्छा व तन्द्रा आने पर चेहरे पर शीतल जल के छींटे बार बार मारने चाहिए, जिससे मूर्च्छा व तन्द्रा का नाश हो जाता है. रोगी को पूर्ण विश्राम कराना चाहिए.

अमृत वचन

अबला नहीं सबला

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।

(ऋ. १०/८६/९)

नारी अपने संबंध में कहती है कि मैं सबला हूं, अबला नहीं. समय-समय पर नारी ने अपनी वीरता अपने धैर्य का प्रदर्शन हर-क्षेत्र में किया है.

मैं वीर-पत्नी हूं. मैं कायरों और डरपोक प्रवृत्रिवालों के साथ मैत्री नहीं करती. उनके साथ सहानुभूति नहीं रखती. अपितु जो मरने-मारने के लिए तैयार रहते हैं, उन्हें ही मैं अपनापन दे सकती हूं. मेरा पति वीर है संसार में उस जैसा कोई दूसरा वीर नहीं है.

टिप्पणी: वेदों में भी नारी की महिमा का उल्लेख किया गया है. कुछ लोग भले ही उन्हें अबला समझें परंतु वे अपने में काफी सामर्थ्य रखती है और समय पड़ने पर अपने साहस से उसने हर कार्य संभव कर दिखाया है. वे भीरुओं व कायरों से दोस्ती नहीं रखतीं वे वीर-पत्नी हैं. और वीर लोगों को ही सखा बनाती हैं.

हर्षयुक्त सौ वर्ष की आयु

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुध्दा भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ।।

(अथर्व १२/२/२८)

अर्थात्:

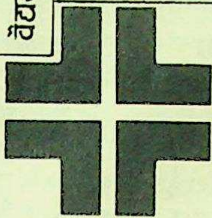
१. प्रत्येक मनुष्य को बल, वीर्य और प्राणशक्ति से युक्त होकर कम से कम सौ वर्ष तक हर्ष और आनन्द से युक्त जीवन व्यतीत करना चाहिए.

इसके लिए बुरे चाल-चलन को दुष्टाचार और दुष्ट व्यवहार को सर्वथा छोड़ देना चाहिए. 'दुरित' पद में आयु को कम करनेवाले सभी दुर्गुणों यथा अधिक या न्यून भोजन, व्यायाम न करना, शरीर को स्वच्छ न रखना, मैले वस्त्र धारण करना आदि का समावेश हो जाता है.

बुरे चाल-चलन को छोड़ने के लिए स्वयं मन, वाणी और कर्म से शुध्द, पवित्र और निर्मल बनना चाहिए. अपने सम्पर्क में आने वालों को भी शुद्ध और पवित्र बनाएं.

शुद्ध-पवित्र बनने के लिए प्रभु-प्रदत्त वेद का स्वाध्याय करे. वेद के स्वाध्याय से आपको शुद्ध, पवित्र रहने और दीर्घायु प्राप्त करने का ठीक ज्ञान प्राप्त होगा.

विशेष: प्रत्येक मनुष्य को आनन्द पूर्वक सौ वर्षों तक जीवन व्यतीत करने के लिए बल, वीर्य और प्राणशक्ति से युक्त होना चाहिए. इसके लिए सभी बुरे चाल-चलनें को, दुर्गुणों को छोड़ देना चाहिए. स्वयं मन, वाणी और कर्म से शुध्द बनकर और सम्पर्क में आनेवालों को भी शुध्द और पवित्र बनाओ. शुध्द-पवित्र बनने के लिए प्रभु - प्रदत्त वेद का स्वाध्याय करना चाहिए.



मेरी उम्र २४ वर्ष है. इतनी कम उम्र में ही मेरे आधे से अधिक बाल सफ़ेद हो गये हैं. मैंने कई एलोपैथी दवाइयों का प्रयोग किया, पर लाभ बिल्कुल ही नहीं हुआ. क्या आप मुझे कुछ जड़ी-बूटियां या आयुर्वेदिक औषधियों के प्रयोग की सविस्तार जानकारी दे सकते हैं?

- प्रदुम्न कुमार सलारिया बिहार

सफ़ेद बालों को काला करने के लिए कोई स्थाई उपचार आयुर्वेद में नहीं है. बालों को सफ़ेद होने से बचाने के लिए पौष्टिक आहार और व्यायाम करना चाहिए. दुग्ध, फल, सूखे मेवे, गाजर का प्रयोग अधिक करना चाहिए. हमेशा प्रसन्नचित्त रहना चाहिए. दो आंवले का मुरब्बा रोज़ सुबह खाना चाहिए. ब्राह्मी, आंवला, रीठा, भृंगराज, चमेली, मेंहदी, शिकाकाई आदि समभाग में लेकर जौ चूर्ण बना लें. चूर्ण से चार गुना पानी मिलाकर भिगोकर रखें, फिर दूसरे दिन इसका चार गुना तिल तेल लेकर लोहे की कड़ाही में इसको पकाएं. जब आधा शेष रह जाये, तब काले तिल का तेल भी इसमें डालकर पानी जल जाने तक पकाएं. ठंडा करके छान कर शीशी में भर लें और हमेशा स्नान के बाद इसकी मालिश बालों में करें.

मेरे विवाह को पांच वर्ष हो गये हैं, पर अभी तक बच्चा नहीं हुआ है. मैंने तथा पति ने चेकअप करवाया, तो पता चला कि पति के शुक्राणु कमज़ोर हैं, जिससे गर्भधारण नहीं होता. कई औषधियां लीं पर लाभ नहीं हुआ. सो, आपको पत्र लिख रही हूं. कुछ औषधियां बताइए, जिससे कि कमज़ोर शुक्राणु पुष्ट हों.

- श्रीमती कमलिनी राठौर (उड़ीसा)

शुक्राणुओं के कमज़ोर या कम होने पर बलप्रद आहार-विहार, सूर्य-नमस्कार, प्रातःभ्रमण, प्राणायाम आदि नियमित रूप से करना चाहिए. प्रतिदिन सुबह-शाम शतावर्यादि चूर्ण २-२ माशा एक गिलास दूध के साथ लें. १ तोला मूसली पाक प्रातः दूध से खाएं. वसन्त कुसुमाकर रस १-१ गोली प्रातः-सायं शहद के साथ चाटकर ऊपर से दूध पी लें. १ चम्मच क्रौंच पाक रोज प्रातः १ कप दूध के साथ सेवन करें. अति अम्लक्षार व कटुतिक्त रसों का सेवन नहीं करना चाहिए.

मेरी आयु २२ वर्ष है. मेरे चेहरे पर बड़ी-बड़ी फुन्सियां निकलती हैं व चेहरे पर अनचाहे बाल भी हैं, जो भद्दे लगते हैं. कृपया, कोई समाधान बताइए. मैं आपकी आभारी रहूंगी.

- सीमा (सहारनपुर)

चेहरे पर बड़ी-बड़ी फुंसियां निकलने पर आहार में मिठाई, चीनी, चाय, तले हुए पदार्थ, गर्म पेय एवं मसालों की मात्रा कम करनी चाहिए. दालें, मूंगफली, सोयाबीन अधिक खाना चाहिए. अजीर्ण तथा कब्ज़ियत हो तो उसे दूर करना चाहिए. मन शांत रखें. जल में नींबू का सेवन करना उपयोगी रहता है. चेहरे को बार-बार नीम के पत्तों के पानी से धोना चाहिए फिर उस पर रात में जायफल और चंदन को कच्चे दूध में घिसकर लेप करें. सूख जाने पर चेहरे को साफ़ कर लें. चेहरे के बालों को हटाने के लिए बेसन, शहद व कच्चे दूध का लेप बना कर लगाएं. सूख जाने पर रगड़ कर छुड़ा दें. कुछ दिन के प्रयोग से बाल निकल जाएंगे.

मेरे एक परिचित का लड़का है, उसका पैर सूजकर ३ वर्षों से फलेरिया जैसा हो गया है. उसमें कुछ घाव भी हो गया है. फलेरिया का इलाज अच्छे-अच्छे डॉक्टर से करवाया, लेकिन कुछ फ़र्क नहीं हुआ. कृपया, आप कोई इलाज बताइए.

- उमेश कुमार (बिहार)

फीलपांव अथवा श्लीपद से पैर में स्थाई रूप से असाध्यता के लक्षण हैं, अतः कुशल चिकित्सक की देखरेख में पंचकर्म, रक्तमोक्षण, आलेपन आदि चिकित्सा करवाएं. साथ-साथ इन औषधियों का प्रयोग भी करते रहें.

- निलान्द रस २-२ गोली दो बार प्रातः-सायं शहद से दें अथवा श्लीपद गजकेशरी रस २-२ गोली प्रातः-सायं शहद से सेवन कराएं या गंधक रसायनवटी २-२ गोली दो बार प्रातः-सायं शहद के साथ खिलाएं.
- गुडुच्यादि लेप या धूपरादि लेप महारास्नादि क्वाथ से लगाएं. इनसे पैर की सूजन कम होगी व रोग भी दूर होगा.

करीब दस वर्षों से मुंह के छाले से परेशान हूं. काफी इलाज किया पर लाभ न के बराबर हुआ. छाले इतने ज्यादा होते हैं कि खाते-पीते और बोलते समय कष्ट होता है. मुझे कोई असरकारक आयुर्वेदिक उपचार बता कर समस्या का समाधान कीजिए.

- प्रेमचंद द्वितीय
उज्जैन (म.प्र.)

बार-बार मुंह में छाले पेट की ख़राबी से ही होते हैं. तीखे ऊष्ण, अम्ल पदार्थों का सेवन बंद कर दें. मांस, मछली आदि मिर्च-मसालेदार खाना न खाएं. शराब, बीड़ी, सिगरेट का प्रयोग बंद कर दें.

मुंह में छाले हो जाने पर १ चम्मच त्रिफला को शहद में मिलाकर दो बार सुबह-शाम चाटना चाहिए.

खाना खाने के आधा घंटे पहले एक मीठे पान पर केवल कत्था लगवाकर उस पर शुद्ध तुत्थ भस्म १/२ रत्ती (१२५ मि.ग्रा.) डालकर मुंह में रखकर धीरे-धीरे चबाएं तथा लार को मुंह में ही १-३ मिनट रखें तथा मुंह में ही घुमाएं, फिर केवल पानी थूक दें तथा पान धीरे-धीरे चबाएं और पानी थूकते रहें. ध्यान रखें, पान का पानी मुंह के अंदर नहीं जाना चाहिए. दूध, गेहूं दलिया, चोकर समेत आटे की रोटी, केला, सेब, चीकू, मोसम्बी आदि खाना चाहिए.

- डॉ. एल.बी. शर्मा
- बी.एस.ए.एम (बम्बई)

दवा-डॉक्टरी सलाह से ही लें

सुबह छः बजे की घंटी बजी. उधर से आवाज़ आयी – "डॉक्टर साहब हैं?" "जी बोल रहा हूं, कहिए". "साहब मैं हरी

बीमार होते ही सलाह देने वालों का तांता लग जाता है कि "फलां नहीं फलां दवा खाओ. पद्धति से चिकित्सा करो" और कुछ खुद को ही चिकित्सक मान जब मन में आया दवा खा लेते हैं. और जब नतीज़ा सामने आता है, तो दोषी किसी और को मानते हैं.

माली बात कर रहा हूं. परसों मैं ज़ुकाम के लिए आपके दवाखाने में दवा लेने आया था, अब ज़ुकाम तो ठीक है, लेकिन नाक से खून गिरता है."

हरी साहब को मैंने त्रिभुवनकीर्ति दिन में ६ गोली खाने को कहा था. उन्होंने पहले दिन बराबर ६ गोली गरम पानी के साथ ली थी. दूसरे दिन ज़ुकाम कुछ कम रहा. जल्दी से जल्दी आराम पहुंचने के लिए दूसरे दिन उन्होंने दिन भर मे १८ गोली अपने ही मन से ले ली. किसी ने उनसे कहा था कि आयुर्वेदिक दवा से नुकसान नहीं होता. सो, खुद ही मन से उन्होंने दवा की मात्रा बढ़ा ली. नाक में दूर्वा स्वरस डालते ही खून बहना बंद हो गया, लेकिन कुछ देर तक बहुत तकलीफ़ उठानी पड़ी.

एक स्त्री, क़रीब पैंतीस साल की उम्र रही होगी, शाम को मुझसे दवाख़ाने मिलने आयी. देखा तो उसके पूरे बदन पर एक भी बाल नहीं था. मैंने पूछा – "यह सब कैसे हुआ?"

"जी आपकी वजह से."

"लेकिन मैंने तो आपको कभी पहले देखा भी नहीं."

"अगर देखते तो यह सब नहीं होता."

"पर मैं कुछ समझा नहीं." पूरी कहानी सुनाती हूं, "करीब डेढ़ माह पहले की बात है. मैं आपके दवाख़ाने आयी थी. उस समय मुझे सिर्फ़ दांत का दर्द था. एक घंटा रुकने पर भी मेरा नंबर नहीं आया इसलिए मैंने वापस घर जाने का सोच लिया. क्योंकि मुझे रात में नागपुर जाना था अतः ज़्यादा देर तक रुक भी नहीं सकती थी.पड़ोसी ने कुछ गोली देकर कही 'मुझे भी इसी प्रकार,का दर्द होता था, तो इस गोली से दर्द तुरंत बंद हो गया था. तुम भी ४ दिन यह गोली लेकर देखो.' उस गोली ने दांत का दर्द तो बंद कर दिया, लेकिन बाल झड़ने शुरू हो गये और महीने भर में मेरी यह हालत बना दी."

इस बात से हमें इतना ही समझ लेना आवश्यक है कि तज्ञ डॉक्टर या वैद्य की सलाह के बिना मामूली से मामूली दवा भी नहीं लेनी चाहिए. ऐसा करने से लाभ हो या न हो, हानि ज़रूर होती है.

कफ प्रधान दोषों को शरीर से बाहर निकालने के लिए आयुर्वेद में वमन चिकित्सा करने का विधान है. इसके पूर्व कर्म स्वरूप स्नेहन स्वेदन करने का भी विधान है. एक रुग्ण, १६-१७ साल की उम्र, किसी बीमारी के लिए उसे वमन करना ज़रूरी था. महातिक्त घृत नामक दवा स्नेहन के लिए आठ दिन तक खाने को कहा और नवें दिन स्वेदन और वमन के लिए बुलाया था. स्वेदन पूरा होने पर वमन चालू किया जैसे-जैसे वमन होना शुरू हुआ वैसे उसके पूरे बदन में लाल रंग के चकत्ते और खुजली उठने शुरू हो गए. बढ़ते-बढ़ते असह्य होने लगी. मैंने उसको पहले भी पूछा था कि स्नेहन के लिए जो दवा दी थी वह ख़त्म कर दी या नहीं? उसने कहा – "हां, कल तक तो बराबर लेती रही" बाद में उसकी खुजली देखकर फिर से पूछा तो उसने क़बूल किया कि उस दवा का स्वाद मुझे अच्छा नहीं लगा इस लिए मैंने सिर्फ़ एक ही बार लिया था, मैंने पहले आपसे झूठ कहा, मुझे माफ़ कर दीजिए.' असलियत जान कर उसे दूसरी दवा दी गयी. पूरा दिन वह लड़की खुजली से परेशान थी.

ये सारे उद्धरण सिर्फ़ उद्धरण भर ही नहीं हैं, यह एक कड़वी सच्चाई है कि लोग कभी खुद ही दवा कम-ज़्यादा कर देते हैं या किसी और की दवा ही खा लेते हैं. या फिर नहीं पसंद हुआ या दवा समय पर न लेकर जब मन में आया खा लिया, ऐसा करते रहते हैं. और उनकी करनी का नतीज़ा जब सामने आता है, तो दोष दिया जाता है कि यह चिकित्सा (पैथी) ही ऐसी है, या फिर वैद्य या चिकित्सक को दोषी माना जाता है. पर ध्यान रखें, औषधि से संबंधित बातें जो चिकित्सक कहे उसका पूरा पालन करें. खुद ही दवा लेकर अपने स्वास्थ्य के दुश्मन न बनें.

— वैद्य संतोष जलूकर

पृष्ठ ४१ का शेष

माशा की मात्रा में तीन बार (प्रातः-दोपहर-सायं) सेवन करें.

सप्तामृत मिश्रणः अम्लपित्त सौम्यरूप का हो तो यह मिश्रण उत्तम होता है. सप्तामृत लौह १ ग्राम सुवर्णमाक्षिक भस्म १/२ माशा, प्रवालपिष्टि १/२ माशा, अमृत सत्व अथवा शतावरी १/२ माशा सभी मिलाकर तीन पुड़िया बना लें. (यह एक दिन के लिए है.) सुबह-दोपहर-शाम विषम प्रमाण में घी तथा मधु के साथ सेवन करें. (ध्यान रहे घी और मधु का बराबर-बराबर मात्रा में सेवन विषतुल्य है.)

क्षारपर्पटीः अच्छा कलमी सोडा ४० तोला, फिटकरी ५ तोला और ढाई तोला नौसादार-सबका मोटा चूर्ण करके मिट्टी की हांडी में अग्नि पर पकाएं. जब सब द्रव हो जाएं, तो जमीन पर गोबर बिछा ऊपर से केले का पत्ता रखकर उस पर डाल दें और तुरंत ऊपर से दूसरा केले का पत्ता रख कर दबा दें. ठंडा होने पर निकाल कर कपड़छनकर चूर्ण करके शीशी में भर लें. इसको शीतल पर्पटी, श्वेत पर्पटी, वज्रक्षार (सुरापर्पटी) भी कहते हैं.

मात्रा १/२ -१ माशा, अनुपान ठंडा जल, कपूर भिगोया, जल या कच्चे नारियल का पानी से लो. इसके अलावा कामदुधा रस व अमृतासत्व भी लाभदायक औषधि है.

पृष्ठ १२ का शेष

भी इन्हीं दो कालों में करना चाहिए.

उपरोक्त बतलाए गए कालानुसार अगर कोई व्यक्ति आहार ग्रहण करता है तो उसके लिए कहा है –

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद् देह धारणः ।
स्मृत्यायुः शक्ति वर्णोजः सत्वशोभाविवर्धनः ॥

'कालानुसार व क्षुधा लगने पर ग्रहण किया हुआ आहार प्रसन्नता देनेवाला, तत्काल बल देनेवाला, शरीर को स्थिर रखनेवाला, आयु, शोभा तथा कांति को बढ़ाने वाला होता है.' यहां पर एक तथ्य गौर करने लायक है कि आहार की मात्रा क्या होनी चाहिए? अति लघु आहार और अति आहार दोनों ही स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं. जैसा कि अष्टांग हृदय सूत्रस्थान में कहा है –

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे ।
सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते ॥

आवश्यकता से कम आहार ग्रहण करने से न तो शरीर को बल मिलता है और न ही शरीर की पुष्टि होती है तथा शरीर कांतिहीन हो जाता है. कम मात्रा में किया हुआ आहार वात रोगों को उत्पन्न करने में योगदान देता है.

इसी प्रकार अति भोजन के बारे में कहा है –

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् । पीड्यमाना हि वाताद्या युगपत्तेन कोपिता ॥

आवश्यकता से अधिक ग्रहण किया हुआ आहार सभी दोषों को प्रकुपित कर नाना प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करता है. जिस तरह स्वस्थ दीर्घायु के लिए आहार का वर्णन है, उसी प्रकार से निद्रा का भी अपना विशेष योगदान होता है. निद्रा के बारे में आयुर्वेद में निम्न महत्व बतलाए गए हैं. सुख, दुख, शरीर की निर्बलता, वृषता, क्लीबता, ज्ञान, अज्ञान और मृत्यु ये सभी निद्रा के आधीन हैं. निद्रा के न आने पर दुख, कृशता, निर्बलता, अज्ञानता, मृत्यु होती है.

इसलिए इन सबसे यह स्पष्ट होता है कि समयानुसार निद्रा लेना नीरोग जीवन के लिए अति आवश्यक है. आवश्यकता की दृष्टि से रात्रि में कालानुसार निद्रा की पूर्ति करनी चाहिए. आज के इस आधुनिक युग में जो रात्रि-जागरण किसी भी कारण से होता है, वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है क्योंकि असमय निद्रा से (रात्रि के अलावा), अतिनिद्रा से और निद्रा न करने से आयु क्षीण होती है. अगर कोई व्यक्ति रात्रि जागरण व दिन में निद्रा करता है तो उसके भी दुष्परिणाम होते हैं, जैसा कि अष्टांगहृदय में कहा है –

यदा तु मनसिक्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्वित : ।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानव :॥
तथा
तमोभवा श्लेष्मसमुद्भवाच मनः शरीरश्रम संभवाच ।
रात्रिस्वभाव प्रभवा च निद्रा ॥

तमोगुण की आधिकता, कफ दोष की वृद्धि, मानसिक व शारीरिक श्रम ये निद्रा आने के मुख्य कारण हैं.

शारीरिक श्रम करनेवाली ज्ञानेन्द्रियों का प्रेरक मन और जीवात्मा जब श्रम के कारण अपने विषयों से थक कर निवृत हो जाती है तब निद्रा आती है.

आहार और निद्रा की तरह ब्रह्मचर्य का भी अपना विशिष्ट महत्व है.

निरोग आयु प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार सत्य, अहिंसा, दान, देवतार्चन आदि सदाचार रूप से करना चाहिए, उसी तरह से स्वस्थ दीर्घायु के लिए ब्रह्मचर्य पालन भी आवश्यक होता है. इन सब नियमों का सुचारु रूप से पालन करने से आयु वृद्धि में ये औषधि के समान सहायक होती हैं.

'ब्रह्म' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं. यहां पर ब्रह्म अर्थात् तप ऐसा मानना चाहिए. अर्थात् तप का आचरण करते समय जो नियम पाले जाते हैं, वे सब 'ब्रह्मचर्य' शब्द से ग्रहीत समझना चाहिए. फिर भी स्त्री समागम में अलिप्त होना यही अर्थ मुख्य रूप से व्यवहार में लेना चाहिए. इसके कारण मानव की नैसर्गिक प्रवृत्ति खान-पान तथा निद्रा के अनुसार ही मैथुन में लगी रहती है. यह मैथुन क्रिया समयानुसार कर उचित आयु के पश्चात् ही करनी चहिए और शुक्र धातु का रक्षण करना चाहिए, जिससे शरीर का बल क्षीण न हो तथा रोग की उत्पत्ति में कारण न बने.

जिस प्रकार रहन-सहन, खान-पान, निद्रा, ब्रह्मचर्य, धातुएं, दोष, मल, आत्मा. इन्द्रियां आदि के विषय में ज्ञान की बातें आयुर्वेद में विस्तृत प्रचार और प्रसार किया जाय तो समाज व देश में एक नई क्रांति लाई जा सकती है आयुर्वेद आज भी उतना प्रासंगिक है, जितना कि पहले था.

पृष्ठ ७२ का शेष

घोंट-घोंट कर १० पुट दें. इसी प्रकार कांजी मिश्रित बांस के रस से १० पुट दें. यह 'अभ्रसत्वभस्म दिव्याभ्र' कहाती है. इसके सेवन से पित्त रोग शांत होते हैं.

बहुमूत्र रोग में - अभ्रक भस्म, रस सिन्दूर, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक समभाग लें. सबको पीस लें. फिर शहद से दिन भर पीसकर गोली बना लें. इसे शहद से एक ग्राम प्रमाण में खाने से बहुमूत्र (मूत्राघात भी) रोग दूर हो जाता है.

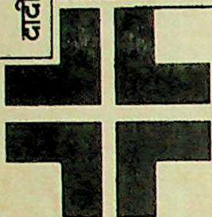
प्रमेह में - अभ्रक भस्म, रससिन्दूर दोनों को समभाग लेकर बड़ के दूध में दो पहर मर्दन करें. फिर सुखाकर भूधर यंत्र में पकाएं. तत्पश्चात् निकाल कर पीस लें. प्रमेह रोगों में इसे डेढ़ रत्ती भर लेकर त्रिफला का चूर्ण और शहद मिला कर प्रयोग करें. इस रोग में यह अत्यंत लाभकारी है.

कुष्ठरोग में - अभ्रक भस्म, रससिन्दूर, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शिलाजीत, अम्लवेत - इन सबको समभाग लेकर तीन दिन तक घोंटें, फिर शहद और घी से दो रत्ती भर की गोली बनाएं. शहद व घी उसी मात्रा में डालें जिससे वटी बन जाय. यह निरन्तर प्रयोग से कुष्ठ को ऐसे नष्ट करता है, जैसे शेर हाथी को मार देता है. इसे 'लंकेश्वर रस' कहते हैं.

शिरोरोग में - अभ्रक भस्म, लौह भस्म, ताम्र भस्म, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक - प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एकत्र थोहर के दूध से दिन भर मर्दन करें. इसे उड़द भर लेकर शहद के साथ लोहपत्र में मर्दन करके रोगी नित्य खाए तो शिरो रोग शीघ्र नाश होते हैं.

इस प्रकार अभ्रक भस्म अनेक रोगों में एक उत्तम और सर्वश्रेष्ठ औषध है.

दादी का पिटारा



नाक में कीड़े व दुर्गंध आना

● यदि नाक से दुर्गन्ध आती हो तो कड़वे तुंबे का रस नाक में टपकाएं, तुरंत लाभ होगा. ताज़ा तुंबा न मिलने पर सूखे तुंबे को पानी में भिगोकर ओस में रखिए और निचोड़ कर नाक में रस को डालिए.

● नाक में कीड़े हों तो पुनर्नवा का रस नाक में टपकाने से नाक के कीड़े बाहर निकल आते हैं.

● शुद्ध कपूर और तारपीन का तेल बराबर लेकर शीशी में भरकर दो घण्टा धूप में रखकर खूब हिलाइए सुबह-शाम ३-४ बूंद नाक में डालने से नाक के कीड़े संबंधी रोग दूर हो जाते हैं.

● दस ग्राम कायफल, ४ ग्रेन पोटेशियम परमैगनेट दोनों को कूटपीस कर कपड़े से छान लें. करीब २ ग्रेन की मात्रा में औषधि लेकर नाक से सूंघने पर नाक संबंधी सभी रोग दूर हो जाते हैं.

चेहरे की झांई के इलाज

● तगर और चिरौंजी पीसकर उबटन लगाने से झांइयां दूर होती हैं.

● नींबू का रस, बादाम रोगन और ग्लिसरीन तीनों समभाग मिलाकर शीशी में रख लें. सुबह-शाम चेहरे पर मलने से एक सप्ताह में ही झांइयां दूर हो जाएंगी.

● सन्तरे के छिलकों को छाया में सुखाकर बारीक पीसिए और कपड़े से छान कर गुलाबजल में मिलाकर मुख पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है.

● सन्तरे का ताज़ा रस लगाने से भी मुख की झांइयां मिट जाती हैं.

● बादाम की गिरि को बकरी के दूध में रगड़कर मुख पर लगाने से झांई मिट जाती है.

● सिरस की छाल और काले तिल बराबर मात्रा से सिरके में पीसकर मुख पर लगाने से भी लाभ होता है.

● कलौंजी सिरके में पीसकर लगाने से भी झाइयो में लाभ होता है.

● पीली सरसों दूध में पकाकर सुखाने के बाद पीसकर उबटन लगाने से लाभ होता है.

● मजीठ, लाल चन्दन, मसूर, लोध्र लहसुन की कली कूटकर रात को मुख पर लेप करके सोएं और सुबह धो लें इससे शीघ्र लाभ होता है.

● आम और जामुन की गुठ[ली] पानी में पीसकर लगाने से भी फ़ाय[दा] होता है.

● कुलिजन का लेप करने से [भी] लाभ होता है.

दांत हिलने पर लाभकारी नुस्खे

● सेंधा नमक, जीरा और पिप्प[ली] प्रत्येक १०-१० ग्राम ले[कर] कूट-पीस व छान कर मंजन बना[कर] प्रतिदिन दो बार दांत साफ़ करने [से] दांत का हिलना बन्द हो जाता है.

● अजवायन खुरासानी, वायबिडं[ग] अकरकरा तीनों को समान मात्रा [में] कूटकर बारीक पीस कर मंजन क[रने] से दांतों का हिलना रुक जाता है.

● २५ ग्राम गेरू में २५० ग्[राम] सफ़ेद फिटकिरी मिलाकर बारी[क] पीसकर मंजन बना लीजि[ए] सुबह-शाम मंजन करने से दांतों [का] हिलना बन्द हो जाता है.

● सोंठ, लौंग, काली मिर्च प्रत्ये[क] २० ग्राम, पुरानी सुपारी और तमा[खू] के पत्ते २५-२५ ग्राम, सेंधा नम[क] २०० ग्राम, गेरू २५० ग्राम [इन] सबको बारीक कूट-पीसकर मं[जन] करने से हिलते दांत मज़बूत बनते हैं.

● मौलश्री की दातुन करने से [भी] इसमें लाभ होता है.

● खाने का सोडा और ह[ल्दी] मिलाकर मंजन करने से भी हि[लते] दांत मज़बूत हो जाते हैं.

● बहुत अधिक हिलने वाले दां[त] पर सेहुंड़ का दूध रुई के फाहे [से] लगाने पर दांत गलकर गिर ज[ाता] है, यह फाहा अन्य दांतों पर न ल[गने] पाए अन्यथा उसको हानि होगी.

काली खांसी की औषधियां

● सामान्यतया यह रोग छोटे बच्चों को होता है, गधी, घोड़ी अथवा ऊंटनी का दूध पिलाने से खांसी दूर हो जाती है.

● १०-१० ग्राम प्रत्येक पीपल और जवाखार, २० ग्राम काली मिर्च, ८० ग्राम अनारदाना, १७० ग्राम पुराना गुड़, इन सबको कूट पीसकर गोली बनाकर खिलाइए, इससे काली खांसी दूर हो जायेगी.

● लौंग, २०-२० ग्राम प्रत्येक जायफल और छोटी पीपल, ४० ग्राम काली मिर्च और १०० ग्राम चीनी मिलाकर, कूट-छान कर चूर्ण बनाकर प्रातः-सायं खिलाने से काली खांसी मिटती है.

● ३-४ ग्राम शुद्ध किया नारियल का तेल दिन में तीन बार पिलाने से भी शीघ्र लाभ होता है.

● केले के सूखे पत्तों को जलाकर राख करें, इस राख को शहद में मिलाकर रोगी को तीन-चार बार चटा दीजिए. बच्चों को १ ग्रेन और बड़ों को ४ ग्रेन की मात्रा दें.

● भटकैया जिसे 'पसर कटेली' भी कहते हैं. उनके रेशों को छाया में सुखाकर पीस कर मधु के साथ बच्चों को १ ग्रेन और बड़ों को ३-४ ग्रेन की मात्रा में चटाने से भी काली खांसी में लाभ होता है.

● भुनी हुई फिटकिरी २ ग्रेन, २ ग्रेन चीनी में मिलाकर दिन में दो बार देने से काली खांसी दूर हो जाती है.

● अनार के फल का छिलका खूब बारीक पीसकर दो ग्राम चूर्ण उबाल कर पिलाने से तुरन्त लाभ होगा.

● मुलहठी व अनार का छिलका जलाकर बारीक पीसकर १ ग्राम शहद में रोगी को चटाइए, जिससे वह आराम से सो सके.

एलर्जी

एक अस्वाभाविक प्रतिक्रिया

- डॉ.पी.बी. वडवाइक

एलर्जी उस प्रवृत्ति को कहते हैं, जिसमें शरीर अहानिकारक पदार्थों के साथ प्रतिकूल प्रतिक्रिया दिखाती है. 'एलर्जी' शब्द का उद्गम यूनानी भाषा से हुआ है. एलर्जी का अर्थ है. 'अस्वाभाविक प्रतिक्रिया'.

एलर्जी के लक्षण विविध होते हैं, जैसे, छींकना, आंखों में पानी भर जाना, नाक का बन्द होना, पेट में गड़बड़ी पैदा होना, त्वचा पर फुंसी होना, फेफड़ों में दौरे आना (जिसकी वजह से सांस लेने में कष्ट होता है) आदि.

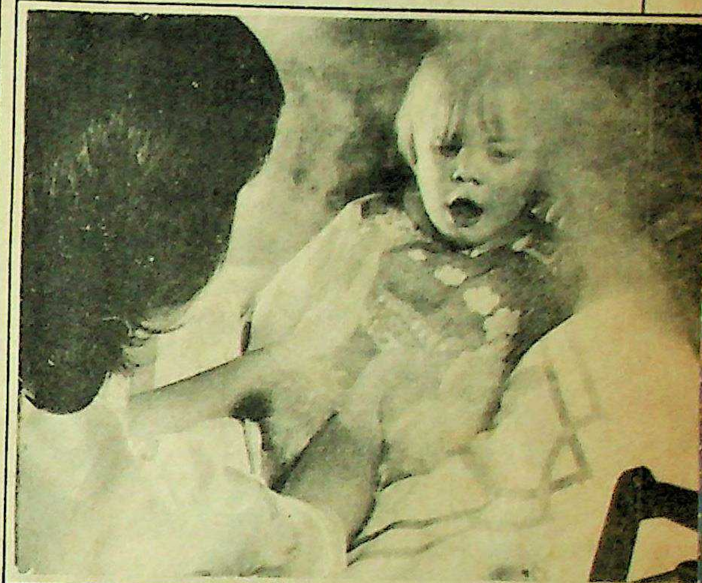
व्यक्ति को अनेक पदार्थों से एलर्जी हो सकती है, जैसे दवाइयां (उदाहरण - पेनसिलिन, एस्पिरिन), धूल, पराग (वृक्षों के पोलेन), पक्षियों के पंख, सौन्दर्य प्रसाधन, धुआं, जीवाणु, पौधे, वायुमण्डल में विद्यमान प्रदूषण करनेवाले रसायन, पशु-मल, वस्त्रों की रंगाई में प्रयोग किये जानेवाले रसायन आदि.

अतिसंवेदनशील व्यक्तियों में गर्मी, सर्दी तथा प्रकाश के कारण भी एलर्जी हो जाती है. एलर्जी उत्पन्न करनेवाले तत्व या कारण, जिन्हें एलर्जन कहते हैं, श्वास लेने पर, इंजेक्शन लगने पर, खाद्य पदार्थों का सेवन करने पर अथवा त्वचा से स्पर्श होने पर सक्रिय हो सकते हैं.

एलर्जी के प्रकार

एलर्जी के अलग-अलग प्रकार होते हैं, जैसे परागज ज्वर दमा, आहार-सम्बन्धी, स्पर्श-सम्बन्धी आदि. यदि आपको एलर्जी है, तो इसका कारण आपके माता-पिता या दादा-दादी भी हो सकते हैं, क्योंकि एलर्जी में वंशानुगत होने की प्रवृत्ति होती है. आपके परिवार के किस सदस्य को एलर्जी होगी, इसका सही निर्धारण करना सम्भव नहीं है और न ही यह ज़रूरी है कि जिसकी वंश-परम्परा में एलर्जी होने की संभावना है, उस व्यक्ति में एलर्जी के कारण लक्षण नज़र आएं. उसी प्रकार यह भी ज़रूरी नहीं कि जिन तत्वों से आपके माता या पिता को एलर्जी है, उन्हीं तत्वों से आपको भी एलर्जी हो. उदाहरण के लिए, यदि आपकी माता को धूल से एलर्जी हो सकती है तो आपको दवाइयों से. आपको किससे एलर्जी होने की

पंचमहाभूतों के मिश्रण से बना यह शरीर हमेशा तरोताज़ा नहीं रहता. लापरवाही और अज्ञानता के अभाव में जब-तब अस्वस्थ हो ही जाता है, पर, एलर्जी एक ऐसा लक्षण है, जिसमें शरीर अहानिकारक पदार्थों के कारण प्रतिकूल प्रतिक्रिया दिखाता है. इस निदान का उपचार क्या है?

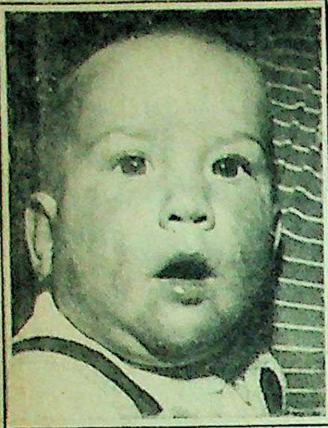


संभावना है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस वस्तु से आपका सम्पर्क अधिक रहता है.

उदाहरणार्थ, यदि आप परागग्रस्त (वृक्षों के पोलेन) इलाके में रहते हैं तो आपकी एलर्जी परागज ज्वर का रूप धारण करके उभर सकती है. एलर्जी की प्रतिक्रिया होने से पूर्व यह आवश्यक है कि शरीर में पर्याप्त मात्रा में रोगप्रतिकारकों (एन्टी बॉडीज) का निर्माण हो. (शरीर में बाहरी पदार्थ के प्रवेश होने पर प्रतिक्रिया के रूप में कोशिकाएं जो तत्व निर्माण करती हैं, उन्हें रोगप्रतिकारक कहा जाता है.) जब आप पहली बार कोई विशेष आहार ग्रहण करें, बिल्ली या किसी पालतू जानवर के शरीर को सहलाएं या पेनसिलिन का इंजेक्शन लगवाएं, तब हो सकता है कि आपको एलर्जी का कोई भी लक्षण नज़र न आए, परन्तु दूसरी या तीसरी बार यही क्रियाएं दोहराने पर संभव है कि शरीर में पर्याप्त रोगप्रतिकारकों का निर्माण हो जाए और शरीर प्रतिक्रिया दर्शाने लगे. ऐसा भी संभव है कि कई वर्षों तक आपके शरीर में कोई प्रतिक्रिया न हो.

एलर्जी के लक्षणों की तीव्रता हर व्यक्ति में अलग-अलग होती है. किसी व्यक्ति में लक्षण अत्यंत कष्टदायक होते हैं, तो किसी में अत्यंत कमज़ोर. कुछ लोगों में लक्षण आते-जाते रहते हैं और अनेक बार नज़र भी नहीं आते, तो कुछ लोगों में यह लक्षण जानलेवा भी सिद्ध होते हैं.

कुछ तत्व अन्य पदार्थों की तुलना में अधिक एलर्जी-गुण दर्शाते हैं अर्थात् उनमें, अधिक लोगों में एलर्जी पैदा करने की क्षमता होती है, परन्तु शायद ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जिससे किसी अन्य व्यक्ति में एलर्जी की कोई प्रतिक्रिया न हो. उसी भांति, वही पदार्थ किसी अन्य व्यक्ति के शरीर में भिन्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न कर सकता है.



परागज ज्वर

परागज ज्वर की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्ति की समय-समय पर नाक बहती है, नाक की श्लेष्मल झिल्ली (म्यूकस मेंब्रेन) फूल जाती है, नाक और आंखों में खुजली होती है तथा छींक और खांसी की शिकायत रहती है. वृक्षों के पराग, पशु-मल और धूल, परागज ज्वर का कारण होते हैं तथा संवेदनशील व्यक्ति पर इनसे कितना गंभीर प्रभाव पड़ता है, यह इस बात पर निर्भर है कि हवा में इन कारक तत्वों की मात्रा कितनी है. पुष्प प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि सामान्यतः परागज ज्वर का कारण सुगन्धित, बहुरंगी पौधों के पराग नहीं होते. इस प्रकार के पौधों के पराग ज्यादातर भारी और चिपचिपे होते हैं. दोषी होते हैं वृक्षों, घास-तृण के हल्के प्रचुर पराग, जो वज़न में हल्के होने की वजह से बहुत आसानी से वायुवाहित हो जाते हैं.

परागज ज्वर से पीड़ित रोगी अपने जुकाम का कारण मौसम को मानता है. बाद में वह पाता है कि जुकाम रुकने का नाम नहीं ले रहा. श्वसन-सम्बन्धी कोई भी बीमारी यदि एक सप्ताह से अधिक ज़ारी रहे तो यह ज़रूरी है कि व्यक्ति चिकित्सक से परामर्श करके इलाज प्रारम्भ कर दे. परागज ज्वर के इलाज में त्रुटि लापरवाही बरती गई, तो वह बढ़कर दमा का रूप धारण कर सकती है.

परागज ज्वर से पीड़ित व्यक्तियों को चाहिए कि वे अत्यधिक घास वाले मैदानों से दूर रहें, स्वच्छ कॉटन के रूमाल का प्रयोग करें, एलर्जी उत्पन्न करनेवाले आहार (जिनसे एलर्जी के लक्षण बढ़ने की संभावना हो) का निषेध करें.

एलर्जी से दमा

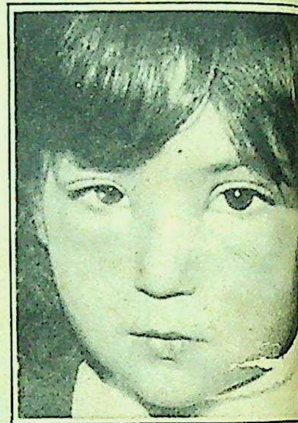
श्वासनली में हवा के बहाव में जब बाधा उत्पन्न होती है, उस अवस्था को दमा कहते हैं. हवा के बहाव में बाधा तब उत्पन्न होती है, जब श्वासनली में विद्यमान झिल्लियों में सूजन आ जाती है, आसपास की छोटी मांसपेशियों में अनियमित सिकुड़न होती है तथा नाक में श्लेष्मा - (म्यूकस) उत्पादन में वृद्धि होती है.

एलर्जी-सम्बन्धी दमा अक्सर बचपन में शुरू होता है. हो सकता है कि ऐसा दमा किशोरावस्था में गायब हो जाए. कभी-कभी वयस्क-जीवन में यह बढ़कर चिरकालिक श्वास-रोग का रूप धारण करता है. एलर्जी-सम्बन्धी दमा से पीड़ित बालक को सांस लेने में तकलीफ़ होती है (विशेषकर सांस बाहर छोड़ते समय) और खांसी व छींक की शिकायत रहती है. जो तत्व दमा के कारक हैं, यह उन पर निर्भर है कि दमा वर्ष भर रहता है या समय-समय पर रुक-रुककर होता है. कुछ रोगियों को दमा का इतना गंभीर दौरा पड़ता है कि उन्हें अस्पताल में रखना अनिवार्य हो जाता है.

आहार-संबंधी एलर्जी

आहार द्वारा व्यक्ति में दो प्रकार की प्रतिक्रियाएं हो सकती हैं. तात्कालिक तथा विलम्बित.

तात्कालिक प्रतिक्रिया अचानक होती है. जैसे ही व्यक्ति दोषपूर्ण अन्न ग्रहण करता है या जब वह अन्न मुंह में ही होता है. विलम्बित प्रतिक्रिया कई घंटों बाद या अगले दिन होती है. यही वजह है कि एलर्जीग्रस्त व्यक्ति को यह निर्धारित करने में कठिनाई होती है कि किस अन्न या आहार से उसे एलर्जी हुई.



आहार से अतिसंवेदनशीलता विविध लक्षणों में उभर सकती है, जैसेः नाक के लक्षण, आंखों के लक्षण, श्वसन-सम्बन्धी, दमा के लक्षण, पेट में गड़बड़ी जैसे-दस्त हो जाना, पेट में दर्द, पेट में मरोड़ उठना (शिशुओं में उदरशूल होना), आंख, होंठ, चेहरे, जीभ अथवा शरीर के किसी अन्य अंग का सूज जाना, एक्जिमा, माइग्रेन आदि.

आहार-सम्बन्धी एलर्जी किसी भी समय हो सकती है, परन्तु बाल्यावस्था में इसका होना आम बात है. गाय के दूध से एलर्जी होने की संभावना रहती है, इसलिए अधिकतर डॉक्टर यह परामर्श देते हैं कि माताएं स्तनपान द्वारा ही शिशु को दूध पिलाएं, जिससे एलर्जी के लक्षण पैदा होने की संभावना कम हो जाए. यही वजह है कि डॉक्टर अक्सर सलाह देते हैं कि जब तक बच्चा एक साल का न हो जाए, तब तक गेहूं, अंडे, नींबू-वंश फल, मीठी मकई जैसे एलर्जीकारक पदार्थ बच्चे को न दें.

एलर्जी के लिए उपचार

विरुद्ध द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न विकारों की निवृत्ति के लिए वमन, विरेचन आदि के रूप में संशोधन करना चाहिए या विरुद्ध गुण-वीर्यादि वाले द्रव्यों के सेवन द्वारा लक्षणों का शमन करना चाहिए.

संख्या व उग्रता को देखते हुए लक्षण अधिक हों तो शोधन व लक्षण कम एवं सौम्य हों तो शमन चिकित्सा करनी चाहिए या ज़रूरी हो तो दोष का संपूर्ण शोधन करके शेष दोष का शमन करना चाहिए. क्योंकि संपूर्ण शुद्धि करने में कभी-कभी आवश्यकता से अधिक शोधन हो जाता है

और दोष - क्षय उत्पन्न हो जाते हैं. विरुद्ध द्रव्यों में जो गुण-वीर्य हों उनके विरोधी गुण-वीर्य रखने वाली औषधियों का सेवन कर शरीर को पहले से संस्कारित कर लेना चाहिए. जैसे, मधु हरीतकी आदि. जो द्रव्य पित्त - श्लेष्महर हों उनका निरंतर सेवन किया जाए तो शरीर उनसे संस्कारित होने से ऐसी स्थिति में आ जाता है कि पित्त श्लेष्मकर विरुद्ध द्रव्य का सेवन किया जाय तो भी कोई विपरीत क्रिया उत्पन्न नहीं होती. अर्थात् -

विरुद्ध द्रव्य प्रतिपक्षभूत गुणवाले द्रव्यों के योग से शरीर में वह दृढ़ता आ जाती है कि द्रव्य विरुद्ध होते हुए भी विकृति उत्पन्न नहीं होती. जैसे - पुराने जमाने में विषकन्याओं को थोड़ा-थोड़ा खिलाया जाता था. बाद में मात्रा बढ़ाई जाती थी तो वे विष की आदी हो जाती थीं और विष उन पर असर नहीं करता था. पर उनके संसर्ग में आने वाले तुरन्त मर जाते थे.

एलर्जी-प्रतिक्रिया होने की संभावना तब बढ़ जाती है, जब आप ख़ाली पेट या शराब के साथ दोषपूर्ण आहार ग्रहण करते हैं.

आहार-सम्बन्धी एलर्जी किस पदार्थ से हुई, यह पता लगाना एक बहुत ही लम्बी, निराश कर देने वाली पद्धति होती है, जो कई कारणों से अधिक जटिल हो जाती है.

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आहार को कच्चा खाने पर एलर्जी की प्रतिक्रिया हो जाती है, परन्तु पकाकर खाने से नहीं होती. कुछ लोगों में इसके लक्षण तब नज़र आते हैं, जब कोई विशेष आहार किसी अन्य आहार के साथ-साथ ग्रहण किया जाए.

स्पर्श से उत्पन्न एलर्जी

स्पर्श से होनेवाली एलर्जी से ग्रस्त व्यक्ति को विशेष वस्तु या तत्व का स्पर्श करते ही दिदोरा (रैश) हो जाता है. सामान्यतः बारम्बार और लम्बे समय तक एलर्जीकारक पदार्थ को स्पर्श करने से स्पर्श के स्थान पर ही (जैसे हाथ पर) दिदोरा होता है.

स्पर्श द्वारा उत्पन्न एलर्जी का एक आम उदाहरण हैं - पौधे. पौधों के प्रति कुछ लोग इतने संवेदनशील होते हैं कि जिस पशु ने पौधों का नाममात्र के लिए स्पर्श किया हो, ऐसे पशु को दुलारने मात्र से उन्हें एलर्जी हो जाती है.

अनेक प्रकार की धातुएं भी एलर्जी का कारण होती हैं जैसे, निकल, क्रोम तथा पारा. घड़ी का पट्टा, नक़ली ज़ेवर, जिप, चांदी के बर्तन - इन सभी से एलर्जी हो सकती है. अन्य जिन वस्तुओं के स्पर्श मात्र से एलर्जी हो सकती है, वे हैं - सौन्दर्य प्रसाधन, केश-रंजक (हेयर डाई), नाखूनों की पॉलिश, रसायन, प्लास्टिक, रबर आदि.

ध्यान रखने योग्य बातें

एलर्जी की प्रतिक्रिया के ख़तरे को कम करने के लिए कुछ क़दम उठाए जा सकते हैं. आप अपने शिशु को जन्म से छः महीने तक स्तन द्वारा ही दूध पिलाएं. शिशु के चार महीने का होने तक ठोस आहार देना आरम्भ न करें. ठोस आहार में शिशु को फल और सब्ज़ियां दें, न कि ऐसे आहार जिनसे एलर्जी के लक्षण उत्पन्न हों. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चों का सम्पर्क पालतू जानवरों से न होने दें. बच्चा जितनी जल्दी पशु-चर्म से स्पर्श पाएगा, उतनी ही जल्दी उसे एलर्जी होने का ख़तरा भी बढ़ जाएगा.

धूम्रपान तथा अत्यधिक शराब पीने से एलर्जी उत्पन्न होने का ख़तरा रहता है. ज़रूरत से ज़्यादा खाना भी एलर्जी में हानिकारक होता है. किसी दवाई से यदि आपको कोई प्रतिक्रिया होती हो, तो डॉक्टर से परामर्श करके दवाई बदलना ही उचित रहेगा.

यदि आपको एलर्जी होने का डर हो तो पालतू जानवरों से दूर ही रहें तथा ऐसे कामकाज न करें, जिसमें आपका सम्पर्क एलर्जीकारक रसायनों से होता हो.

प्राकृतिक चिकित्सा और एलर्जी

प्राकृतिक चिकित्सा - पद्धति के अनुसार अधिकतर दवाओं में रक्त की अशुद्धि भी एलर्जी का मुख्य कारण होता है. रक्त अशुद्ध होता है शरीर में विजातीय पदार्थों के जमाव से, इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति प्राकृतिक-चिकित्सा द्वारा शरीर की शुद्धि करे, जिससे एलर्जी उत्पन्न होने का ख़तरा कम हो जाए.

एलर्जी का कोई भी लक्षण नज़र आते ही रोगी को तुरन्त उपवास प्रारम्भ कर देना चाहिए. दिन में तीन-चार बार नींबू और शहद मिलाकर शुद्ध जल (जल को उबालकर ठंडा कर लेना उत्तम होता है) पीना चाहिए. एनिमा के जल में उबालते समय नीम की पत्ती डाल सकते हैं या ठंडा होने पर आधा नींबू निचोड़ सकते हैं. बाद में कटि-स्नान लेना चाहिए, अर्थात् घुटने से नीचे और नाभि से ऊपर के भाग को पानी से पूरी तरह बचाकर, पानी में डूबे पेड़ू को लम्बे ब्रश द्वारा हल्के-से सहलाना चाहिए.

कटि-स्नान हमेशा ख़ाली पेट करना चाहिए. दो दिनों तक सन्तरे, अंगूर या मौसंबी का रस लेना चाहिए, तीसरे दिन फल खाने चाहिए. चौथे दिन नियमित भोजन लिया जा सकता है.

तबीयत ठीक होने के बाद यदि अंगूर, सन्तरे, आंवले, नींबू आदि का नियमित सेवन किया जाए और हफ़्ते में एक बार एनिमा लिया जाए तो भविष्य में भी एलर्जी और अन्य ऐसे बहुत-से रोगों से बचे रहेंगे.

ग्वारफली

ग्वारफली भारत के कई प्रदेशों में होती है. इसका उपयोग सब्ज़ी के रूप में होता है. अच्छे निथारवाली बेसर या लाल ज़मीन इसकी उपज के लिए ज़्यादा अनुकूल रहती है. इसके पौधे दो-तीन हाथ ऊंचे होते हैं.

ग्वार की कई किस्में होती हैं. 'तरडिया ग्वार', 'फटकनिया ग्वार', 'मक्खनिया ग्वार' या 'विदेशी ग्वार'. साग के अलावा इसकी फलियों का अचार भी बनाया जाता है. कुछ ग्वार की फलियां पशुओं के चारे के लिए उपयोग में लायी जाती हैं, तो कुछ ग्वार की फलियों का सागभाजी में महत्वपूर्ण स्थान है. मक्खनिया ग्वारफली के साग में अजवाइन और लहसुन डालने से उनके गुण व स्वाद दोनों बढ़ते हैं.

गुण-धर्म

ग्वारफली मधुर, रूक्ष, शीतल, भारी, अग्निदीपक, पौष्टिक, सारक, पित्तहर और कफ़कारक एवं वायुकारक है.

- ग्वारफली का पोषण मूल्य फनसी (फ्रेंच बीन्स) जितना ही समृद्ध माना जाता है. बैलों को खिलाने से उनकी ताकत बढ़ती है. दुधारू पशुओं को ग्वार खिलाने से दूध बढ़ता है. गोंद (गम) बनाने के लिए भी ग्वार की कुछ किस्मों का उपयोग होता है.

विविध उपयोग

- ग्वार के मुलायम पत्तों का साग खाने से रतौंधी दूर होती है.
- ग्वार के पत्तों का रस घाव पर लगाने से घाव पकता नहीं और जल्दी रुझान आती है.
- ग्वार के पत्तों का रस और लहसुन का रस एकत्र कर दाद पर लगाया जाता है.

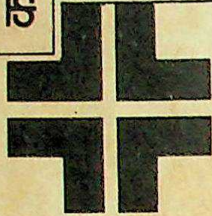
ग्वारफली का साग तो पौष्टिक माना जाता है, परंतु ग्वार की पकी फलियों का साग अधिक मात्रा में खाने से पेट दर्द होता है और सिर चकराता है. स्तनपान करनेवाले बच्चों की माताओं को ग्वारफली का साग नहीं खाना चाहिए, क्योंकि इससे बच्चे को मरोड़ (आंत्र-पीड़ा) होने की संभावना रहती है.

ज़िंदगी निगल जानेवाली सर्पिणी: चीनी

चीनी इतनी जहरीली सर्पिणी है कि वह ज़िंदगी को निगल जाती है. वह पूरे भोजन की शक्ति और पौष्टिकता को ख़त्म कर देती है.

फॉस्फोरस से जीवन चलता है पर चीनी उसी तत्व को चट कर शरीर को निर्बल बना देती है.

कहा जाता है कि किसी को मारना ही है, तो बंदूक, पिस्तौल, चाकू, छुरे का उपयोग करने के बदले उसके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार का दिखावा करते हुए किसी न किसी रूप में उसे चीनी खिलाते रहिये.



दीया और चांद

– सुखबीर

आग की तरह तपते हुए अपने बीमार बच्चे को उठाकर उसने कन्धे से लगा लिया और हौले-हौले थपकाती, लोरी गुनगुनाती हुई अपनी कोठरी में इधर-उधर घूमने लगी.

बच्चा, जो पहले बिस्तर पर पड़ा खांसता हुआ लगातार रोए जा रहा था, चुप हो गया. एक बार उसने कमरे के धुंधले-से प्रकाश में अपनी मासूम आंखें फैलाकर इधर-उधर देखा और फिर मां की लोरी के ज़ादू के प्रभाव में आंखें बन्द कर लीं.

वह लोरी गुनगुनाती हुई कोठरी में इधर-उधर घूमती रही. चार क़दम भरती, तो सामने की दीवार आ जाती. फिर घूमकर चार क़दम भरती, तो दूसरी दीवार आ जाती. दो दीवारों के बीच की वह छोटी-सी दूरी थी, जिसे उसके क़दम बार-बार नाप रहे थे. चलते हुए उसकी नज़र कभी कोने में रखे उस दीए की ओर जाती, जिसकी लौ कांप रही थी और बत्ती दीए का बचा-खुचा तेल पी रही थी, तो कभी कोठरी के एक कोने में पड़े कई प्रकार के खिलौनों की ओर जाती, जिन्हें वह पिछले कई महीनों से इकट्ठा कर रही थी. वे खिलौने विभिन्न प्रकार के और बहुत सुन्दर थे. इस छोटी-सी कोठरी में, जिसके हर कोने से ग़रीबी झांकती थी, उन खिलौनों की एक अलग ही दुनिया थी. किसी देखने वाले को उस कोठरी में उनके अस्तित्व पर शायद आश्चर्य होता. लेकिन सारे खिलौने उसने ख़रीदे नहीं थे. उनको ख़रीदने की उसमें शक्ति कहां थी? उन्हें तो वह खिलौनों के उस कारखाने से एक-एक करके लाई थी, जिसमें वह अभी पांच महीने पहले काम करती थी और जिसमें उसका पति मशीन पर डाइयां बनाया करता था, तब तक उनके उस बच्चे का जन्म भी नहीं हुआ था.

उसकी आंखों में दो बड़े-बड़े आंसू छलके और कपोलों की गहराइयों को लांघ कर चू पड़े. उसने एक

वह सोच रही थी कि आज उसका पति यहां होता, तो क्या यह दीया तेल के अभाव में इस प्रकार मद्धिम-सा जलता? – लेकिन अब एक महीना रह गया है. वह जेल से छूट कर आ जाएगा, तो इस कोठरी में फिर भरा हुआ दीया जलेगा...

सुखी और स्वस्थ जीवनकी पथप्रदर्शिका

आरोग्य संजीवनी
त्रैमासिक पत्रिका

शीत ऋतु | अंक ६

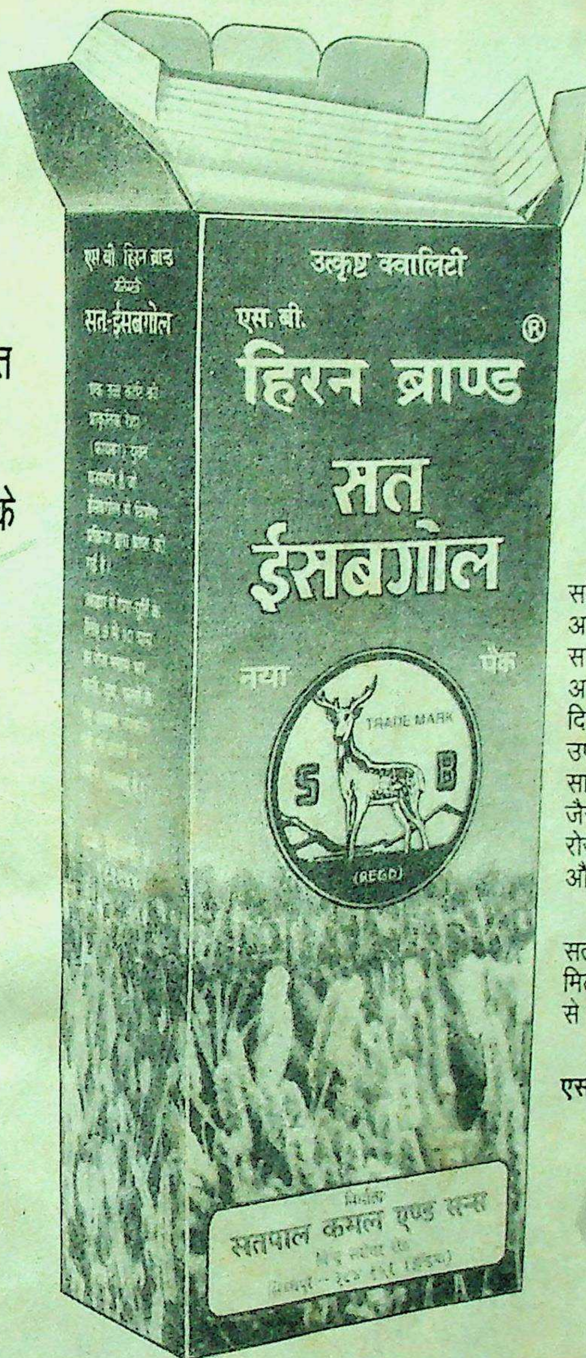


मूल्य १० रु.

तकलीफें आपकी, उपाय कुदरती !

अतिशय
मानसिक तनाव,
बिठाऊ जिंदगी, अस्तव्यस्त
खान पान के कारण
आप स्वयं घिरे है
अनेक शारीरिक विकारों के
विषचक्र में....

भोजन में
हरी सब्जियों की कमी,
अनियमितता व
अस्तव्यस्त पाचनतंत्र
इस विष चक्र का
कारण है ।



एस.बी. हिरन ब्राण्ड सत-ईसबगोल में हरी सब्जियों जैसे कुदरती रेशा तत्व हैं । जो आपके पाचनतंत्र को ठीक रखता है । आँतो को साफ करता है, नित्यकर्म के बाद ताजगी का अनुभव होता है । यह दवा नहीं है किन्तु दिलो दिमाग को ठंडक देनेवाला एक निर्दोष कुदरती उपचार है । पानी, दूध, शरबत या लस्सी के साथ सेवन कर आप भोजन में हरी सब्जियों जैसे रेशा तत्वों की कमी पूरी कर सकते हैं । रोजाना उपयोग से इसकी आदत नही पडती और न ही कोई एलर्जी होती है ।

शुध्ध सात्विक एस.बी. हिरन ब्राण्ड सत-ईसबगोल ही डबल सीलबंध पैक में मिलता है । जो सीलन, कीडों व मिलावट आदि से सुरक्षित है ।

**अपने स्वास्थ्य से खिलवाड न करें ।
एस.बी. हिरन ब्राण्ड का ही आग्रह रखे ।**

**२००,१००,५० ग्राम
डबल सीलबंध पैक में उपलब्ध
५०० ग्राम व १० ग्राम
पाउच पैक में भी....**



नकल से सावधान

एस.बी.

हिरन ब्राण्ड सत-ईसबगोल

"कुदरत का उपहार, गुणों का भंडार"

उत्पादकः सतपाल कमल एण्ड सन्स
बिंदु सरोवर रोड, सिध्धपुर- 384151
फोनः (O) 441 ● 511 (R) 600 ● 541
टेलेक्सः 126-205 DEER IN ग्रामः FAMOUS

पं० द्वारका प्रसाद शर्मा (वैद्य भूषण) की अनुपम भेंट

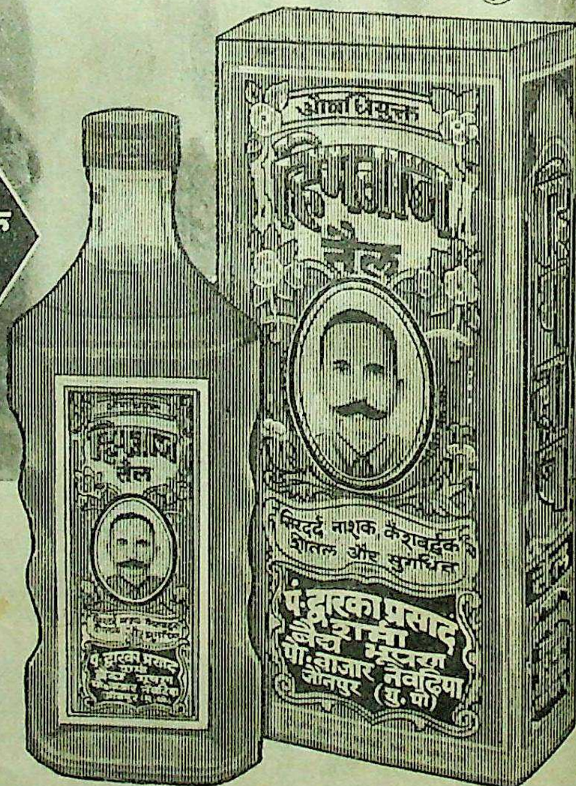
जन प्रियता का प्रतीक

हिमताज तैल

अनुभूत आयुर्वेदिक औषधियों के सम्मिश्रण से बनाया गया हिमताज तैल सिर दर्द को दूर कर, आंखों की रोशनी बढ़ाता है। हिमताज-तैल सिर पर लगाते ही मस्तिष्क कोमल तन्तुओं को शीतलता प्रदान करता है एवं मस्तिष्क को तनावमुक्त करके सदा प्रफुल्लित बनाये रखता है। यह तैल बालों की जड़ों को आवश्यक तत्व प्रदान कर उन्हें मजबूत एवं लम्बा, घना, काला बनाये रखने में सहायक है। जन-जन की पसन्द 'आयुर्वेदिक' **हिमताज तैल**

आपका पारिवारिक तैल

हिमताज एक लाभ अनेक





हिमताज उत्पादन

बजरंगबली चूर्ण

यह चूर्ण पतले बीर्य को निर्दोष बनाकर मेह, प्रमेह, स्वप्नदोष, नामर्दी को दूर कर शक्ति का भण्डार भरता है। कब्ज और आलस्य को हटाकर रग-रग में बलप्रदान कर, बिगड़े हुए स्वास्थ्य को चुस्त-दुरुस्त करके नवजीवन प्रदान करता है।

कब्ज संहार

मन्दाग्नि, अजीर्ण अरुचि, पेटदर्द, अम्लपित्त, कब्ज को दूर कर पेट में वायु (गैस) बनने की प्रतिक्रिया को समाप्त करके जठराग्नि को प्रबल बनाता है।

आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माता

पं० द्वारका प्रसाद शर्मा (वैद्य भूषण)

... गांधी रोड (बॉगड़ बिल्डिंग) कलकत्ता-७०००...

STANDARD/SB/88

संपादकीय

जीवन एक पर्वतारोहण के समान है और पर्वत के शिखर पर पहुंचकर आनंद की प्राप्ति होती है. किन्तु सर्वोच्च शिखर तक पहुंचने के लिए मनुष्य में सुदृढ़ मन, सत्य वचन व शारीरिक शक्ति का होना अति आवश्यक है और यह सब कुछ तभी संभव है, जब मनुष्य सत्कर्म करते हुए स्वस्थ व सुंदर जीवन जीता हो. इस संसार में मनुष्य वेदोक्त कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा पूरी कर सकता है.

प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसकी आंखों में दर्शनशक्ति हो, नाक में घ्राण शक्ति हो, श्रवण और वाचा शक्ति प्रबल हो, बाल काले हों, भुजाओं में बल और उरुओं में शक्ति हो, जांघों में वेग व पैरों में दृढ़ स्थिर शक्ति हो - अर्थात् शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग त्रुटिरहित, नीरोग, स्वस्थ और सबल हों. मनुष्य की यह इच्छा न तो ग़लत है न असंभव . हां, इसके लिए संयम-नियम की आवश्यकता है. वह संयम-नियम 'आरोग्य संजीवनी' के पिछले कई अंकों से हम आपको बताते आ रहे हैं.

यदि शरीर स्वस्थ है, इन्द्रियां नीरोग और शक्तिशाली हैं, तभी इस संसार रूपी सागर को पार किया जा सकता है. इसके लिए सभी उपाय हम 'आरोग्य संजीवनी' के माध्यम से सुझाते रहे हैं और आगे भी सुझाते रहेंगे, यही हमारा ध्येय है.

कौन नहीं चाहता कि मृत्यु उससे दूर भाग जाए और उसे दीर्घजीवन की प्राप्ति हो. खासकर जब मनुष्य रोग से पीड़ित होता है तब उसे मृत्यु का भय अधिक सताता है. किन्तु भय रोग को दूर नहीं करता बल्कि और बढ़ाता है. अतः भय को दूर भगा कर, सजग रहकर तथा नियमों का पालन करते हुए नीरोगी रह सकते हैं.

हमारी तो यह कामना और प्रयास है कि - 'मा पुरा जरसो मृथाः' कोई भी बुढ़ापे से पूर्व नहीं मरे जिस प्रकार असत्य भाषण व चोरी करना पाप है उसी प्रकार बुढ़ापे से पूर्व मरना भी पाप है.

'आरोग्य संजीवनी' के इस 'शीत ऋतु' अंक में हमने जहां 'शीत ऋतु' से संबंधित रोगों की विस्तृत जानकारी दी है वहीं नीरोगी रहने के लिए कुछ नियम-उपाय बताए हैं. रोग होना तो स्वाभाविक है. वस्तुतः ये हमें प्रकृति के नियमों का उल्लंघन और अनियमितता के प्रति सतर्क करते हैं. विशेषकर ऋतु परिवर्तन के समय इन नियमों का उल्लंघन होने पर रोगों की संभावना अधिक होती है. अतः हमारा सदैव यही प्रयास रहा है कि हर ऋतु से संबंधित रोगों के उपचार व बचाव के उपाय आपको बताते रहें, जिससे आप सदैव स्वस्थ व नीरोग रह सकें. इस अंक में भी हमने कुछ आम एवं शीत ऋतु संबंधी बीमारियों पर प्रकाश डाला है. जैसे - विचर्चिका (एग्ज़ीमा) रोग, एक्युप्रेशर द्वारा पोलियो की चिकित्सा, कर्णमूल ग्रन्थि रोग की चिकित्सा, भस्मक रोग आदि. साथ ही कुछ अन्य विषय जैसे रसायनों में लौहभस्म एवं रस धातु के गुण-अवगुण की जानकारी भी है. इसके अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्र से संबंधित लेख, पत्नी के कारक - शुक्र का परिचय व रोग निवारण आदि के संबंध में भी पर्याप्त जानकारी दी गयी है.

आपके स्वास्थ्य-समृद्धि के मार्गदर्शन में हम एक क़दम और आगे बढ़े हैं. आशा है, यह अंक भी आपको पहले की तरह पसंद आएगा व आपको स्वस्थ व नीरोग रखने में सहायक सिद्ध होगा.

वैद्य स्वाती गोविलकर

Ad. Representatives

BOMBAY
Sridhar Iyer & Anil Singh
C-11, Balgovindas Co-op Hsg Scty,
Taikal Wadi Road, Opp. Badal Cinema,
Mahim, Bombay-400 016.

CALCUTTA
Samar Gupta Associates
7/1C, Lindsay Street (1st floor)
Calcutta-700 087.
Phone No. 248574, 249363, 241221

DELHI
Paramjit S. Narang
Punjab Estate, (Nabha House),
College Road, New Delhi-110001.
Phone No. 3718163, 3715995

BANGALORE
Bhaskar Attavar
"Gagan Vihar", 19, Atmananda Colony,
4th Main Road, Sultanpalaya,
P.O.R.T. Nagar, Bangalore-560 032.
Phone No. 334 123

MADRAS
T. Balachandran
92, Brindavanam Nagar,
Valasaravakkam, Madras-600 087.
Phone No. 420 290

GUJARAT
Mahesh B. Sultania
103, Paraskunj Society No.1,
Ambavadi, Satelite Road,
Ahmedabad-380 015.

HYDERABAD
S. Shankarnarayana
Flat No. C2k, Damodar Kripa,
Bakaram, Hyderabad-500380.
Phone No. 65700

UTTARPRADESH
Amrish Tewari
222-C, Block Shayam Nagar,
Kanpur-208 013.

आरोग्य संजीवनी

प्रबंध निदेशक
वेद प्रकाश पाहवा

प्रबंध संपादक
राजीव वेद प्रकाश पाहवा

संपादक
वैद्य स्वाती गोविलकर

सहयोगी संपादक
सत्यवती मौर्य

चेतावनी

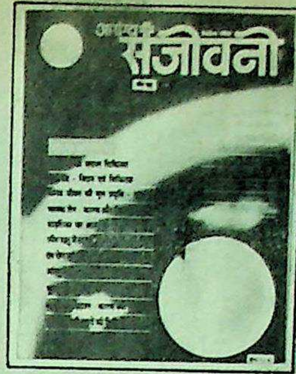
'आरोग्य संजीवनी' ने दवाइयों (औषधियों) एवं विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के बारे में तथ्यपूर्ण जानकारी देने की पूरी सावधानी बरती गयी है, फिर भी पाठकों को चेतावनी दी जाती है कि रोगी अपने क्षेत्र के किसी योग्य चिकित्सक से परामर्श लेने के बाद ही इन दवाइयों या पद्धतियों को प्रयोग में लाएं. संपादक एवं प्रकाशक किसी इलाज, पद्धति, लेख या प्रिंटिंग की भूल के लिए किसी भी तरह से ज़िम्मेदार एवं जवाबदार नहीं हैं.

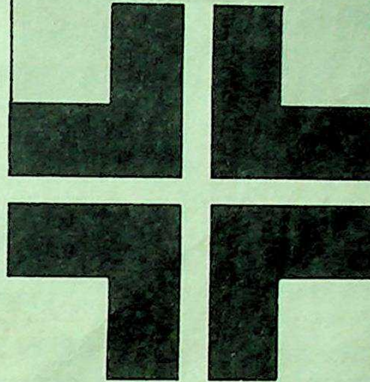
राजीव वेद प्रकाश पाहवा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित पायोनियर बुक. कं. प्रा. लि. के लिए, उषा ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि. १२५, गवर्नमेंट इंडस्ट्रियल इस्टेट, कांदीवली (प.) बंबई, द्वारा मुद्रित एवं राजीव वेद प्रकाश पाहवा द्वारा संपादित और पायोनियर बुक कं. प्रा. लि. १६० डी.एन. रोड, बंबई-४०० ००१ से प्रकाशित.

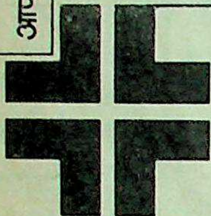
'आरोग्य संजीवनी' में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है. पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरूद्ध कार्यवाही केवल बंबई कोर्ट में ही होगी. पायोनियर बुक कं. प्रा. लि. १६० दादाभाई नौरोजी रोड बंबई-४०० ००१.
फोन- २०४ ६७५९, २०४ ३८८३.
संपादकीय कार्यालय-फोन-४३० ३७११, ४२२ २२१८.

आरोग्य संजीवनी

शीत ऋतु (अंक ६)
अक्टूबर, नवंबर, दिसंबर १९९१







ऐसी महत्त्वपूर्ण पत्रिका के प्रकाशन के लिए आप बधाई स्वीकारें.

– रूपनारायण वर्मा, (म. प्र.)

मंजिल मिल गई

मैं 'आरोग्य संजीवनी' की एक नियमित पाठिका हूं. 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' पाकर मुझे ऐसा लगा जैसे किसी भटके हुए मुसाफिर को मंजिल मिल गयी हो. आज नारी को 'नारी' का ज्ञान नहीं है. इस अंक में वे सभी जानकारियां मिलीं, जिसके लिए नारियों को आजीवन भटकना पड़ता है.

– चन्द्रलेखा वेदप्रकाश, हस्तिनापुर (उ. प्र.)

प्रामाणिक व ज्ञानवर्द्धक सामग्री

'आरोग्य संजीवनी' का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' पढ़ने को मिला. नारी के स्वास्थ्य और समस्याओं से सम्बंधित विविध विषयों पर प्रामाणिक व ज्ञानवर्द्धक सामग्री की प्रस्तुति निश्चय ही सराहनीय है. आज आधुनिक चिकित्सा ने मानव स्वास्थ्य को दुष्प्रभावित किया है जिससे निपटने के लिए एकमात्र सुरक्षित, सुनिश्चित और प्रभावी उपाय आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति है, जो हमें दीर्घ और सुसंस्कृत जीवन प्रदान करती है. यह पद्धति संजीवनी बन कर मानव का कल्याण करेगी जिससे संसार में फैले विषाक्त वातावरण का शमन हो सकेगा. पत्रिका का हर अंक संग्रहणीय और स्थायी महत्व का है तथा उसकी लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण भी है.

– अंजना त्रिपाठी, कोटा, रायपुर (म. प्र.)

भाषा का सफल प्रयोग

'आरोग्य संजीवनी' पत्रिका का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' पढ़ा. सबसे अच्छी बात रही – भाषा का प्रयोग. आपने फूहड़ व जटिल शब्दों का प्रयोग न करके गहरी-से-गहरी बात को भी इशारे से समझा दिया है. इसके लिए ढेर सारी बधाइयां स्वीकार करें. 'वैद्यजी सुनिए' द्वारा आप काफी कम पाठकों के जवाब दे पाते हैं, अतः अधिक पाठकों के जवाब देने हेतु पाठकों से जवाबी पोस्टकार्ड भेजने को कहें, जिससे पाठकों को अपनी समस्याओं का हल शीघ्र व घर बैठे प्राप्त हो सके.

– राजाबाबू पोखरना, महिदपुर (म. प्र.)

सरल व सम्यक् प्रस्तुति

'आरोग्य संजीवनी' वार्षिक अंक 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' में नारियों से सम्बन्धित समस्त जानकारियां बेहद उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक एवं लाभप्रद रही, विशेष कर गर्भवती महिलाओं से सम्बन्धित जानकारी सबसे अधिक उपयोगी रही. बधाई!

– प्रह्लाद जसवानी, मण्डला (म. प्र.)

मॉडलः नारी का एक और रूप

'आरोग्य संजीवनी' का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' पढ़ कर बहुत प्रसन्नता हुई. आवरण कथा 'नारी तेरे रूप अनेक' ख़ास रही, मगर ख़ेद है, आज बेटी, पत्नी और मां के विभिन्न रूपों को निभानेवाली 'नारी' दुनिया की नज़र में सिर्फ़ मॉडल बन कर रह गई है.

– मनोज कुमार तनेजा धुलिया (महाराष्ट्र)

आयुर्वेद प्रचारक

मुझे 'आरोग्य संजीवनी' का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' प्राप्त हुआ, जिसे पढ़ कर मैं काफी प्रभावित हुआ हूं. सचमुच ही अंक ज्ञानवर्द्धक है. मेरा अभिनन्दन स्वीकार हो. आप आयुर्वेद के प्राचीन आरोग्य विषयक विज्ञान का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं अतः धन्यवाद!

– वैद्य अशोक भाई तलाविया, सावरकुंडला (गुजरात).

नई रोशनी का चितेरा

आपके द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'आरोग्य संजीवनी' का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' प्राप्त हुआ. इस अंक ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया है. आज बाज़ार में नारी समस्याओं से सम्बन्धित जानकारियां प्रदान करने वाली उत्तम व स्वस्थ पत्रिकाओं का सर्वथा अभाव है. यह अंक तो आज की नारियों के लिए नई रोशनी है.

– कविता शर्मा, जमशेदपुर (बिहार).

कुशल पथ प्रदर्शक

'आरोग्य संजीवनी' का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' पढ़ कर मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे कोई स्वास्थ्य सलाहकार व पथप्रदर्शक मिल गया हो. सचमुच इसके लिए मैं जितनी भी बधाइयां प्रेषित करूंगी, कम होंगी.

– उर्मि नेगी, देहरादून (उ. प्र.)

उत्कृष्ट उपहार

'आरोग्य संजीवनी' का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' नारी वर्ग के लिए एक संग्रहणीय उत्कृष्ट उपहार है. अंक, नारी वर्ग के विभिन्न रोगों के सम्बन्ध में तथ्य परक लक्षण, कारण, एवं उपचार का प्रस्तुतीकरण कर चिन्ताग्रस्त नारी वर्ग में आशा और विश्वास की ज्योति जलाता है. इसके लिए 'आरोग्य संजीवनी' परिवार को हार्दिक धन्यवाद.

– कुमारी सुजाता यादव, वाराणसी (उ. प्र.)



सागर मन्थन

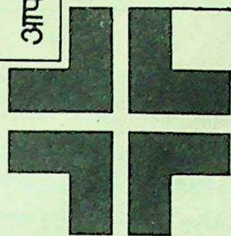
'आरोग्य संजीवनी' पत्रिका का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' आद्योपान्त पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो एक श्रेष्ठतम सामग्रियों से युक्त है. ऐसी उत्तमोत्तम पत्रिका के सम्पादक एवं प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने हमें सागर मन्थन कर अमृत प्रदान किया.

– श्रीमती राजेश्वरी, रायपुर (म. प्र.)

नारी जीवन पर प्रकाश

'आरोग्य संजीवनी' का 'नारी स्वास्थ्य विशेषांक' मई १९९१ का ख़रीदा और उसे मनोयोगपूर्ण ढंग से पूरा पढ़ा, इसमें सर्वांग सुन्दर नारी जीवन पर वृहद् प्रकाश डाला गया है.

आपके पत्र



मार्गदर्शक और सलाहकार

'आरोग्य संजीवनी' का 'वर्षा ऋतु अंक' मिला. मैं पत्रिका रुचिपूर्वक तथा मनोयोग से पढ़ती हूं. इसमें न केवल आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति विषयक उत्कृष्ट और खोजपूर्ण सामग्री का चयन किया जाता है, बल्कि होम्योपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों का भी यथोचित समावेश रहता है, जिसके कारण हर वर्ग के पाठक के लिए यह विशेष उपयोगी है.

यह पत्रिका ऋतु के अनुकूल सर्वसाधारण को अपनी दिनचर्या परिवर्तित, व्यवस्थित व संयमित करने में एक चिकित्सक के मानिंद हितैषी, मार्गदर्शक और सलाहकार का कार्य करती है जो सराहनीय है.

अर्चना मिश्रा
जगदलपुर (म.प्र.)

उपयोगी व अनूठा अंक

'आरोग्य संजीवनी' का अंक पांच पढ़ा. ऋतु के अनुसार रोग व उनका सही उपचार बता कर आपने पाठकों की समस्याएं हल कर दीं. इस अंक का विशेष आकर्षण रहा आवरण लेख 'तामसी भोजन का शरीर पर प्रभाव'. हमारे आहार से हममें कौन-सी प्रकृतियां उपजती हैं, इस पर लेख द्वारा आपने पूरा प्रकाश डाला है. कुल मिला कर पाठकों के लिए उपयोगी अंक है.

- डॉ. मनमोहन सहाय
सहारनपुर (उ.प्र.)

घर का डॉक्टर

मैं शुरू से ही पत्रिका का पाठक हूं. सफलता की बधाई स्वीकारें. साथ ही प्रार्थना है कि इलाज के लिए जो सावधानियां बरतनी चाहिए, उन पर भी लेख छापें. यह पत्रिका घर के डॉक्टर के रूप में विकसित हुई है. इसकी प्रगति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूं.

- डॉ. मनोहर मालवीय
पाली (राजस्थान)

हर पन्ना क़ीमती

'आरोग्य संजीवनी' का पांचवां अंक पढ़ने का सौभाग्य मिला. अंक बहुत ही उत्कृष्ट सामग्री से परिपूर्ण था. पत्रिका का हर पन्ना क़ीमती है. ख़ासतौर से युवावर्ग को 'मादक पदार्थ - एक नज़र में' नई दृष्टि देता है. शतशः धन्यवाद स्वीकारें. यूनानी चिकित्सा पर भी लेख दें.

विश्वेश विजय कुमार शेट्ये
बीड (महाराष्ट्र)

'रत्न चिकित्सा' सर्वोत्तम लेख

'आरोग्य संजीवनी' का अंक पांच पढ़ा. वस्तुतः सभी लेख विशेष थे, पर 'रत्नों का चिकित्सकीय उपयोग' सबसे बढ़ कर था. रत्नों के संबंध में इस लेख द्वारा अधिक जानकारी प्राप्त की.

श्रीमती जानकी विश्वनाथन
मदुरै (तमिलनाडु)

प्रासंगिक लेख

'आरोग्य संजीवनी' का पांचवां अंक पढ़ा. पूरी पत्रिका में 'गंजेपन की चिकित्सा' एक प्रासंगिक लेख लगा क्योंकि १० में से ८ व्यक्ति आज इस समस्या से ग्रस्त हैं. उनको अपनी व्याधि का समाधान इस लेख से अवश्य मिलेगा. भविष्य में भी ऐसे लेख दें, जो जनोपयोगी हों.

- कमलकांत मोहन्ती
भुवनेश्वर (उड़ीसा)

सबकी सहयोगी पत्रिका

'आरोग्य संजीवनी' अंक पांच में प्रकाशित 'योगासनों द्वारा क़द बढ़ाइए' पढ़ा. इस लेख के आसनों पर अमल भी शुरू कर दिया है. इसके अलावा 'अर्श के दर्द से छुटकारा पाइए', कहानी 'दीया और चांद', 'बरगद की औषधीय उपयोगिता', 'वृद्धावस्था - जीवन का एक पड़ाव', 'मन-एक विश्लेषण' आदि लेख भी पठनीय थे. मैंने तो प्रथम अंक से पांचवें अंक तक की सभी प्रतियां फाइल कर रखी हैं व समय पड़ने पर इससे काफ़ी सहयोग मिलता है.

श्रीमती रमीला अहलूवालिया
बोरीवली (बंबई)

पथ प्रदर्शक - जीवन रक्षक

'आरोग्य संजीवनी' का हर अंक पढ़ कर जीवन को राहत मिलती है. इसकी भाषा व विषय सामग्री बी.ए.एम.एस. परीक्षा की तैयारी में 'पथ प्रदर्शिका' व सेहत के लिए 'जीवन रक्षिका' सिद्ध होती है. इस आयुर्वेद के अनमोल रत्न को मेरी व कॉलेज के साथियों की ओर से भविष्य के लिए शुभकामनाएं.

कंवर सिंह पांचाल
(रोहतक)

बेहद क़ीमती

'आरोग्य संजीवनी' के अंक ५ में 'काली खांसी की चिकित्सा', 'मादक पदार्थ - एक नज़र में' एवं 'पेशाब की पथरी का आयुर्वेदिक उपचार' बेहद क़ीमती एवं लाभप्रद रही. समस्त जसवानी परिवार इसके लिए आभारी है.

प्रह्लाद जसवानी
मंडला (म.प्र.)

समस्या का हल

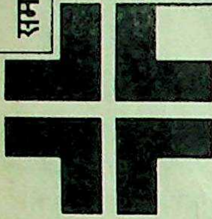
मैं 'आरोग्य संजीवनी' की एक नियमित पाठिका हूं और इस पत्रिका के अंक पांच को पढ़ा. मौसमी रोगों की जानकारी हमारे दैनिक जीवन में काम आ रही है. अलावा इसके 'नारी जगत' में 'लाजवाब परांठे' देकर आपने, टिफिन में (पति व बच्चों को) क्या दें? की मेरी समस्या हल कर दी है. इसके लिए आभारी हूं. आगे भी पौष्टिक व्यंजनों पर सामग्री देंगे, ऐसी आशा करती हूं.

रमा झा
नैनीताल (उ.प्र.)

संग्रहणीय पत्रिका

अब तक प्रकाशित 'आरोग्य संजीवनी' की सभी प्रतियां वास्तव में संग्रह करने योग्य हैं. इस तरह की पत्रिका सभी विद्यालयों की लाइब्रेरी में अनिवार्य रूप से रखी जानी चाहिए. पत्रिका सरल शब्दों में स्वास्थ्य-विषयक बातों को समझाने में सफल है. हम इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं.

वैद्य भंवरलाल जैन
(राजिम)



केकड़े करेंगे एड्स का उपचार

'एड्स' की चिकित्सा के लिए नित नयी औषधियां खोजी जा रही हैं. इस क्षेत्र में एक नयी खोज की गई है. उड़ीसा की पत्रिका 'वाइल्ड लाइफ टुडे' के अनुसार बंगाल की खाड़ी के चांदीपुर तट पर पाए जाने वाले 'समुद्रिका' नामक केकड़े की एक प्रजाति पर शोध करके एक ऐसा सीरम तैयार किया गया है. इस सीरम के प्रयोग से 'एड्स' को दूर भगाया जा सकता है.

सिरदर्द व चाइनीज भोजन

चाइनीज का बोलबाला है. आजकल बच्चा हो या बड़ा हर कोई चाइनीज के पीछे दिवाना है. पर क्या जानते हैं आप कि चाइनीज खाने के बाद सिर में दर्द, चक्कर आना, पेट दर्द आदि शुरू हो जाते हैं. चाइनीज के साथ खाया जाने वाला 'सोया सॉस' इन सब कारणों का जनक है. इसमें उपस्थित 'मोनोसोडियम ग्लूटामेट' हमारे मस्तिष्क पर प्रभाव डालता है, जिससे ये समस्याएं पैदा होती हैं जो या तो खुद ठीक हो जाता है या कोई दवा लेने पर ठीक होता है.

नए टेस्ट से कम होगा दवा का दुष्परिणाम

ब्रिटिश शोधकर्ताओं ने एक नया शोध किया है जो आनुवंशिकता से होने वाले औषधि के दुष्परिणाम को रोकने में कामयाब है. काफी लोग दवा के दुष्परिणाम से पीड़ित होते हैं, क्योंकि उनका शरीर दवा को ठीक से पचा नहीं पाता. जिसे अब आनुवंशिक गर्भपात विकार को वश में कर के ऐसे एन्जाइम तैयार करता है जिसे साइटोक्रोम पी ४५० कहते हैं, जो शरीर की रक्षा बाहरी रसायनों से करता है. दवा के दुष्परिणाम से कैंसर हो सकता है. दुष्परिणाम से व्यक्ति के शरीर में एन्जाइम बनने की प्रक्रिया कम होती जाती है व ऐसे लोगों में ही आगे भी औषधि के दुष्परिणाम होते हैं.

डॉ. रोनल्ड वुल्फ, इम्पीरियल कैंसर रिसर्च फण्ड के हेड ने बताया कि, हम यह जानने के लिए एक छोटा-सा टेस्ट करते हैं, जिससे यह पता चलता है कि उस व्यक्ति के शरीर में आनुवंशिक प्रभाव कितना है व औषधि का बुरा प्रभाव कितना हो सकता है. हम एक बूंद खून से या सिर्फ मुंह में डाले गए पानी (माउथवाश) से इसका पता करते हैं जिसके बाद डॉक्टर ऐसी औषधियां रोगी को नहीं देता, जो विपरीत प्रभाव पैदा करती हैं.

ब्रेस्ट कैंसर विरोधी लहसुन

पेनसवेनिया स्टेट यूनिवर्सिटी ने एक शोध में पाया कि अपने दैनिक आहार में लहसुन का समावेश करने पर करीब ७० प्रतिशत तक स्तन कैंसर होने की संभावना कम हो जाती है.

धूम्रपान से ६.३० लाख भारतीयों की मृत्यु

धूम्रपान आज एक ऐसा व्यसन हो गया है कि हर उम्र के लोग इसका सेवन करते हैं. एक बार लत लग जाने पर यह जल्दी नहीं छूटती. पर पिछले वर्ष ६.३० लाख भारतीयों की मृत्यु धूम्रपान के कारण ही हुई है. ऐसा मारक तम्बाकू का अध्ययन करने वाले अमेरीकी फर्म ने निष्कर्ष निकाला है.

यह भी पता चला कि भारत में सिगरेट छोड़ने वाले अमेरिका की अपेक्षा ज़्यादा लोग हैं. इन दोनों देशों के धूम्रपान करने वालों में एक फर्क यह भी है कि भारतीय दस से बीस सिगरेट एक दिन में पीते हैं, जब कि अमेरिकी बीस से भी अधिक पीते हैं. यह अध्ययन हम भारतीयों को सचेत करता है कि हम अब भी संभल सकते हैं.

सफ़ेद दाग़ से छुटकारा

अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सक संघ के सचिव डॉक्टर पी. सी. अग्रवाल ने अपने शोध से साबित किया है कि मिस्र में पाया जाने वाला 'अतरी लाल' नामक पौधा सफ़ेद दाग़ के लिए अचूक औषधि है. डॉक्टर अग्रवाल के अनुसार चार कारणों से सफ़ेद दाग़ होता है. यह सबसे बड़ी वजह थायमस ग्रन्थि का अनियनत्रित स्राव है. खट्टी व खमीर वाले पदार्थों का पथ्य करने से सफ़ेद दाग़ रुक जाता है. प्राकृतिक चिकित्सा में १७ डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर ठंडे पानी से दिन में दो बार तीस-तीस मिनट तक कटिस्नान व रीढ़ स्नान २८ डिग्री सेंटीग्रेड तापमान के सादे पानी से दिन में एक-दो बार केले के पत्ते या कमल के पते से पूरे शरीर को लपेट कर सूर्य की रोशनी में ३०-४५ मिनट तक दोपहर में लिटाने से लाभ होता है.

चिकित्सा और ज्योतिष

चिकित्सा की सभी पद्धतियों में अनुभव एवं त्रुटियों के आधार पर प्रवृत्ति और परिस्थिति को देखने के बाद चिकित्सा की जाती है, जिससे रोग के निवारण की संभावना उसकी प्रवृत्ति पर ही निर्भर होती है.

आयुर्वेद चिकित्सक वी. पी. परदेशी ने एक शोध के आधार पर ज्योतिष शास्त्र को रोग की चिकित्सा करने के लिए इस्तेमाल करने की बात कही है. उनके अनुसार ज्योतिषशास्त्र द्वारा रोग की पृष्ठभूमि को जानकर यदि उसकी चिकित्सा शुरू की जाए तो सफलता की संभावना बढ़ जाती है.

डॉ. परदेशी का कहना है कि ज्योतिषाचार्यों की भविष्यवाणी के आधार पर बीमारी पर ध्यान देकर चिकित्सा करें, तो रोगी को काफी राहत मिलेगी.

वस्तुतः चिकित्सा के क्षेत्र में यह प्रयास सराहनीय है, क्योंकि दो पुरानी पद्धतियां मिल कर एक नया खोज करेंगी. अब इसी विषय पर १२ वीं कक्षा के बाद छात्रों को आठ कोर्स आयुर्वेद के और एक-एक कोर्स ज्योतिष व योग के लिए होगा. और यह कोर्स तीन साल में मेडिकल एस्ट्रॉलॉजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट से किया जा सकेगा.

कोट्टक्कल आर्य वैद्यशाला





● बेहत्तर स्वास्थ्य, जनता के निमित्त
● होनहार भविष्य, आयुर्वेद के लिये

एक यशस्वी संस्था जो एक प्राचीन देशी चिकित्सा-शास्त्र प्रणाली को क्षमता और विशुध्दता पूर्वक देख भाल कर रहा है। आयुर्वेद बृहत विज्ञान को पुन-जीवित करने के लिये कोट्टक्कल आर्य वैद्यशाला ने प्रारंभ से ही, सफलता पूर्वक इसका मज़बूत सपुर्तगी बनाकर इसकी अमूल्य चिकित्सा और स्वास्थ्य गुण लोगों को प्रदान करता है।

महान आदर्शवादी वैद्यरत्नम पी. एस. वारियर, एक प्रगतीशील, कृपालु और सत्भावी मानव द्वारा संस्थापित यह संस्था को उन्होंने एक उद्योग के रूप में बना दिया। आयुर्वेद कालेज, नर्सिंग होम काम्प्लेक्स, चैरिटबल अस्पताल और 'पी. एस. वी. नाट्य संगम' (एक प्रमुख कथकली मंडली) उद्घोषित करते हैं कि इस प्रकार मानवता को बहुत बडा और बहूमूल्य सेवायें अर्पित किया गया।

आयुर्वेद— साधु महानों का विज्ञान जो आधुनिक युग के लिये भी उपयोग कर सके।



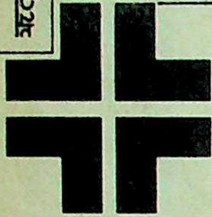
वैद्यरत्नम पी. एस. वारियर का
आर्य वैद्यशाला
कोट्टक्कल-676 503, केरल.

शाखाएँ और एजेंसियाँ:
कोषिकोडु, पालघाट, तिरूर, एरणाकुलम, तिरुवनन्तपुरम, आलवाई, ईरोड, मद्रास, कोयम्बतूर व नई दिल्ली और 400 से अधिक प्राधिकृत एजेंसियाँ सारा भारत और विदेश में फैला हुआ।

ARIES/AVS/404 91/HIND

शीतकालीन ऋतुचर्या

– वैद्य माणिकलाल मेहता



आयुर्वेद में मनुष्य की दिनचर्या, जीवन के आचार-विचार तथा ऋतुचर्या द्वारा उसकी प्रकृति के अनुरूप आहार-विहार तथा सरल एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए महत्वपूर्ण बातों का विवरण मिलता है. जैसे पित्तज, वातज, कफज प्रकृति दोषों को ध्यान में रख कर उनमें किन मिथ्या व अतियोग का आहार-विहार तथा औषधियों के प्रयोग से नियमन करना चाहिए. सर्दियों में पाक-पकवान, गर्मियों में श्रीखंड, शरबत तथा बारिश में व्रत, उपासना, उपवास द्वारा प्रकृति व ऋतु के अनुसार आहार-विहार का निर्देश भी दिया गया है.

शीत ऋतु में पाचन शक्ति

रोग विज्ञान में ऋतुजन्य परिवर्तन और उसमें विशेष प्रकार के आहार के सेवन का विशेष महत्व है. सर्दियों में पाचन तथा पोषण योग्य आहार लेना चाहिए. अतः अग्नि प्रदीप्त एवं पोषण के लिए स्निग्धता बढ़ाने वाले भोजन का संतुलन होना चाहिए, जबकि आजकल सर्दियों में भी आइस्क्रीम, श्रीखंड जैसे पदार्थों का प्रचुर प्रयोग किया जाता है. ये पदार्थ स्निग्ध तो हैं, परंतु मधुर रस प्रधान शीत गुण से वायु की वृद्धि कर अग्नि को मंद करते हैं. ऐसे मंदाग्नि भोजन का रस तत्व बाद में अग्नि के द्वारा पक्व होकर रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र या रस धातु का निर्माण न कर आमाशय या आंतों में यूं ही चिपका रहता है जिसके फलस्वरूप जुकाम, बलग़म, श्वास, प्लूरिसी तथा निमोनिया जैसी व्याधियां उत्पन्न कर देता है. अतः ऐसे शीतल पदार्थों की बजाए छुहारा, काजू, बादाम, अंजीर, पिस्ते जैसे मेवों व निर्मल जलपान का सेवन करना चाहिए. इससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा.

ऋतु परिवर्तन का प्रभाव

हेमंत, शिशिर ऋतु की शीतलता शरीर की उष्णता को कायम रखने के लिए पोषण का क्षय करती है तथा आंतरिक व बाह्य रूक्षता पैदा करती है. अतः शरीर में सर्वांग धातुओं का संकुचन होता है.यह संकुचन वात दोष की विकृति निर्माण करता है, अतः इस वातज रूक्षता को दूर करने के लिए हम स्निग्ध व उष्ण आहार लेते हैं. इसी तरह त्वचा रूखी होना, होंठ, हाथ-पैर के तलुए फटना, कमज़ोर स्वास्थ्य के व्यक्ति को वात व्याधि, संधिवात जैसे ठंड के प्रभाव से होने वाले दर्द होते हैं. ठंड से चमड़ी का संकुचन बढ़ता है, अतः त्वचा के जो क्षार पसीने के साथ बह जाते हैं वह भी रुक जाते हैं तथा वे चमड़ी के नीचे जमा होते रहते हैं और इन क्षारों के ज़हरीले प्रभाव से नाना प्रकार के त्वचा रोग होते हैं.इसलिए ऐसे मौसम में शरीर का रक्षण तथा पाचन शक्ति बढ़ानेवाले आहार-विहार का उपयोग करना चाहिए.

शीत ऋतु के अनुकूल आहार-विहार

सर्दियों में विविध प्रकार के पाक बनाना तथा उसे नियमित सेवन करना पसंद किया जाता है. घी, तेल के साथ-साथ मिर्च-मसालों को मधुर रस के साथ मिलाकर उसकी बनाई हुई मिठाइयां इत्यादि हमारे यहां बड़े चाव से खाई जाती हैं. क्योंकि आहार के तमाम घटकों में चर्बी सबसे अधिक गर्म तथा स्निग्ध होती है. प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट्स द्वारा १ ग्राम खुराक में ४ कैलोरी उष्णता मिलती है, जबकि उतनी ही मात्रा (१ ग्राम) चर्बी द्वारा हमें ९ कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है. इसीलिए सर्दी के मौसम में घी-तेल का प्रयोग प्राचीन काल से ही चला आ रहा है.

शीत ऋतु एक ऐसी ऋतु है, जो गरिष्ठ व पौष्टिक आहार को पचाने में सहायक होती है. स्वास्थ्य लाभ की प्राप्ति भी इस ऋतु में हो सकती है. वाष्पीकरण व रसायन के उपयोग के लिए यह ऋतु त्वचा रूखी होती है व फटने लगती है, जिसका उपाय हमें पहले से ही करना चाहिए.

शीतकाल में ही मकरसंक्रांति के पर्व पर तिल को गुड़ के साथ मिला कर उसके लड्डू बना कर खाने तथा बांटने का सामाजिक रिवाज है. तिल पित्तवर्द्धक, पाचनशक्ति बढ़ानेवाला एवं पौष्टिक व शक्तिदायक है. यह वायु को दूर कर कफ का शमन करता है व चमड़ी के वर्ण को भी

सुधारता है, अतः तिल को उसी के अनुकूल उष्ण तथा मधुर रसयुक्त गुड़ के साथ मिला कर सेवन करना चाहिए.

शीत ऋतु में सूर्य की कोमल किरणों का स्पर्श अत्यंत मनभावन लगता है, अतः खुली वायु एवं सूर्य स्नान स्वास्थ्य के लिए लाभदायक तथा आवश्यक होता है.

शरीर के लिए उपयोगी व्यायाम

सर्दियों में शरीर का तापमान बनाए रखने के लिए व्यायाम भी करना चाहिए. प्रातःकाल शौच शुद्धि कर खुली हवा में लंबी श्वास लेकर कसरत करनी चाहिए. शाम के समय घूमना चाहिए,जिससे मन प्रसन्न रहता है, फेफडों को शुद्ध वायु मिलती है तथा मांसपेशियों को संकुचन, प्रसारण का अधिक अवसर मिलता है. इसके अतिरिक्त मानसिक या शारीरिक कष्टों से भी काफी कुछ राहत मिलती है. सर्दियों के मौसम में दिन में सोना नहीं चाहिए,अन्यथा प्रतिश्याय व वातव्याधि होकर शरीर में जड़ता आ जाती है. प्रातः काल सहन करने योग्य गरम जल से स्नान करना चाहिए.

मालिश और सूर्य स्नान

इसी प्रकार शीतकाल में तेल की मालिश भी लाभकारी होती है. ठंडे मौसम में जब शरीर की प्रत्येक मांसपेशी का संकुचन होकर रक्त का परिभ्रमण कम हो जाता है,तब यदि रक्त का वहन सुचारु रूप से न हो तो शिराएं फटने लगती हैं व नासा से या हाथ पैरों की दरारों से रक्त बहने लगता है एवं त्वचा तथा मांसपेशियों पर झुरियां पड़ने लगती हैं. इसके फलस्वरूप अन्य रोगों की संभावना भी बढ़ जाती है. अतः इन सब स्थितियों से बचने के लिए तेल की मालिश अत्यंत महत्वपूर्ण है.

मालिश के लिए उपयुक्त तेल

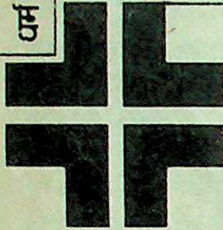
मालिश के लिए भी तिल का तेल हीं अधिक उपयुक्त होता है. यह उष्ण तीक्ष्ण होने के कारण रक्ताभिसरण बढ़ाने में सहयोगी होता है. तेल मालिश दो प्रकार से होती है – अनुलोम तथा प्रतिलोम, अर्थात ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर. इस प्रकार हल्के-हल्के मालिश करनी चाहिए,जिससे जितना संभव हो उतना अधिक तेल त्वचा के रोमकूपों द्वारा स्निग्धता को त्वचा की तह तक पहुंचा सके. मालिश के लिए कॉडलीवर ऑयल, ऑलिव ऑयल, सरसों का तेल तथा नारियल तेल का प्रयोग भी किया जा सकता है. मालिश प्रातः काल में खली हवा हो ऐसी जगह पर करनी चाहिए तथा १५-२० मिनट पश्चात् गरम पानी से स्नान करना चाहिए.

क्षीण हुई धातुओं को बढ़ाने के लिए शीतकाल सर्वश्रेष्ठ काल है, इस ऋतु में हम तीक्ष्ण औषधियां तथा आहार का सेवन कर सकते हैं. घी,दूध,मक्खन,मलाई इत्यादि स्नेह से भरे स्निग्ध पदार्थ एवं मधुर रस वाले पदार्थों के सेवन से हम अपना शुक्र, ओज जैसी बहुमूल्य धातुओं की वृद्धि कर सकते हैं. जिनके दोष धातु, मल क्षीण हुए हों उन्हें भी ऐसे पदार्थों के सेवन से लाभ होता है. शीतकाल में तिल, उड़द, उड़द की दाल के लड्डू, मैदे द्वारा बने खाद्य पदार्थ (यदि पाचन शक्ति ठीक हो तो) हड्डी का सूप, अम्ल पदार्थ, कांजी आदि का सेवन करना चाहिए. इसी प्रकार छाछ, नमकीन, चटपटे व्यंजन, तीखे अचार आदि उष्ण, तीक्ष्ण, विदाही द्रव्य, शहद, गुड़, गुड़ की चाशनी से बने हलुए, अनार का मुरब्बा, हरी सब्ज़ियां, पालक, मेथी, चौलाई आदि पानी वाली सब्ज़ियां, लौकी, नेनुआ, परवल, भिंडी, ककड़ी, तरोई, सूरन, कद्दू, शकरकंद, जमींकंद, पुराने चावल, पुराना शहद, पुराने आसव, अनार, लीची, चेरी, आड़ू जैसे फल इस ऋतु में काफी उपयोगी होते हैं. ●

धर्म पुराण

आत्मा ईश्वर का अंश है

- राधेश्याम पाण्डेय



भारतीय संस्कृति की मूल अवधारणा उसकी श्रद्धा, विश्वास,आस्था और मिथकों से है. ये जहां हमारी अस्मिता के प्रतीक हैं, वहीं मिथक हमारी परंपरा की विकास शृंखलाएं. मिथकों का अस्तित्व हमारी संस्कृति की पहचान और प्राण है. प्राण ही वायुतत्व है अर्थात् जीवनीशक्ति है, इसीलिए हमारे मनीषियों ने कहा है कि आत्मा ईश्वर का अंश है. 'ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुखरासी' यह मुक्ति भावना की अभिव्यक्ति है. जैसे पक्षियों के गीत सुनकर हम आनंदित होते हैं, परंतु कोई अर्थ पूछे तो नहीं बता सकते. जिसे आनंद मिलता है वह अर्थ की चिंता क्यों करे? गुनगुनाने में जो आनंद है,वही अर्थ है. क्योंकि आनंद आत्मा के आह्लाद का प्रतीक है और आत्म आनंद ही परमानंद है और यही ईश्वर है.

आत्मा अर्थातीत है

आत्मा ईश्वर का अंश होते हुए भी अर्थातीत है, वह पहुंच की परिधि तथा अनुभव से दूर है व सोच से परे है, परंतु अस्तित्व बोध के निकट है. उसका अस्तित्व बोध ही हमारी संस्कृति का मिथक है. मिथक पुराने होते हुए भी गतिशील हैं.

मिथकों के गतिशील होने का मतलब है प्रतिपल नया होना. मिथक हमें पुरातन से परिचित कराते हुए नवीन की अनुभूति कराते हैं. अनुभूति का अस्तित्व बोध ही अस्तित्व का बोध है. तात्पर्य यह है कि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं,अपितु सभी के भीतर बहती जीवन धारा है. वह तो सर्वत्र और असीम है, ईश्वर जीवन का विशाल सागर है. हम सब उसके रूप हैं, तरंगे हैं. पर यही नहीं,वह इससे भी अलग हो सकता है. उसकी संभावना अनंत है, हम ऐसी किसी स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते जहां परमात्मा पूरा प्रकट होता चला जाए, फिर भी अनंत रूप से प्रकट होने को शेष है.

उपनिषद कहते हैं, उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल दें, तो भी पूर्ण ही शेष रह जाता है. हमारे निकालने से वह कुछ छोटा नहीं हो जाता. पूर्ण का पूर्ण ही शेष रहता है. जिस दिन यह समझ में आ जाता है,उस दिन भक्त गिर जाता है और ज़िंदगी का वही लम्हा आत्मा के अंश ईश्वर का अस्तित्व बन जाता है. आप मिटे नहीं कि परमात्मा आया नहीं. अर्थात् मृत्यु पश्चात् ही आत्मा परमात्मा में समाहित हो जाती है.

आस्था-अनास्था की लड़ाई

जैसा कि कहा गया है कि भारतीय संस्कृति श्रद्धा और विश्वास की धरोहर है, लेकिन जहां संदेह और निंदा है, वहां श्रद्धा नहीं हो सकती.श्रद्धा व विश्वास तक पहुंचने के लिए इन दोनों (निंदा व संदेह) से ऊपर उठना होगा.निंदा गाली देने के समान है और संदेहशीलता आस्था-अनास्था की लड़ाई है. यही अनास्था आगे चल कर निंदा हो जाती है और आस्था श्रद्धा बनकर लौटती है.

जब सपनों तक पर श्रद्धा व विश्वास होता हो, तो सत्य की बात ही छोड़ो.सपनों पर भी जब आपको संदेह नहीं आया,तो जो है उस पर तुम कैसे संदेह करोगे? संदेहशील व्यक्ति कोई नहीं है, क्योंकि जो संदेहशील है, वह तो पहले सपनों को तोड़ेगा. सपनों के टूटने पर ही श्रद्धा का जन्म होता है.

निंदा व संदेह की तरह क्रोध भी हमारे मन में विकार उत्पन्न करता है. रात में संकल्प करते हैं कि क्रोध नहीं करेंगे, इसके बावजूद दिन में कितनी बार क्रोध किया है और कितनी बार तय किया है और कितनी बार पछताएं हैं, लेकिन जब क्रोध का धुआं घेर लेता है, तब सारे पछतावे, सारे पश्चाताप, सारे नियम, संकल्प व्यर्थ हो जाते हैं. क्रोध का ज़रा-सा धुआं हुआ कि पैर उखड़ जाते हैं, जड़ें टूट जाती हैं, फिर बेहोश हो जाते हैं, बेसुध हो जाते हैं. कहने का अर्थ यह है कि मन 'शायद' पर जीता है, आशा पर जीता है. सत्य को जानने के लिए कुछ भी नहीं करना है,सिर्फ़ असत्य से मुक्त होना है और जो नहीं है उसे देख लेना है कि है. किसी कवि ने आत्मा-परमात्मा के संबंधों का चित्रण बड़े ही तार्किक ढंग से किया है -

हंस मानसर भूला, सनी पंक में चंचु,
हो गए उजले पर मटमैले.
कंकर चुनने लगा वही जो
मुक्ता चुगता पहले क्षर में
क्यों ऐसा सम्मोहन
जो तू अक्षर भूला?
कमल नाल से बिछुड़, कास के सूखे तिनके जोरे.
अवगुंठित कलियों के धोखे, कुंठित शूल बटोरे.
पर में क्या ऐसा आकर्षण, जो परमेश्वर भूला?
नीर-क्षीर की दिव्य दृष्टि में, अंधवासना जागी.
गति का परम प्रतीक बन गया, जड़ता का अनुरागी.
क्षण को अर्पित हुआ, साधना का मन्वंतर भूला.
हंस मानसर भूला...

मन नास्तिक है

वर्तमान मन की मृत्यु है. भविष्य और अतीत मन का जीवन है. न तो अतीत है, न भविष्य है. मन का स्वभाव नकार है - अनस्तित्व, अभाव. मन नास्तिक है. इसलिए मन से कभी कोई आस्तिक बहुत दिखाई देंगे. मंदिरों, मस्जिदों, गिरजाघरों और गुरुद्वारों में बैठे पूजा-पाठ करते हैं, उनका मन कहीं और भी आगे गया है. कोई स्वर्ग मांगता होगा, कोई पुण्य के फल मांगता होगा. कोई परलोक के सुख मांगता होगा. लेकिन मन कहीं और जा चुका है. मन न हो तो पूजा मौन होगी. प्रार्थना होगी, ध्यान होगा, जहां मन नहीं वहीं मंदिर शुरू होता है - मन की मौत पर.

जीवात्मा सभी भेदों से रहित है

जीवात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष और न ही नपुंसक है. वह जब जिस चीज को ग्रहण करता है, उस समय उससे युक्त होकर वैसा ही बन जाता है, जो जीवात्मा आज स्त्री है.वही अगले जन्म में पुरुष हो सकता है, जो पुरुष है वह स्त्री-पुरुष, नपुंसक

आदि भेद शरीर को लेकर है. जीवात्मा इन भेदों से परे हैं. उसमें यह सब उपाधियां नहीं होती. श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा गया है कि -

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद् यच्छरीर मादत्ते तेन तेन स पूज्यते ॥

(५।१०)

जीवात्मा ज्ञान का अधिकरण है. वह परमात्मा का एक अंश है जैसे - महाकाश सर्वत्र व्याप्त है और जब वह किसी खाली घड़े में होता है, तो उसे 'घटाकाश' कहते हैं. उसी तरह जब अलग-अलग शरीर में आत्मा सन्निविष्ट होता है, तब उसे जीवात्मा कहते हैं.

परमात्मा एवं जीवात्मा

ये दोनों साथ-साथ रहने वाले दो पक्षियों की तरह हैं. ये दोनों इस शरीर रूपी वृक्ष पर एक साथ हृदय रूपी घोसले में निवास करते हैं. शरीर में रहते हुए प्रारब्ध के अनुसार जो सुख-दुख रूपी कर्मफल प्राप्त होते हैं, वे ही शरीर वृक्ष के फल हैं. इन फलों को 'जीवात्मा' रूपी एक पक्षी तो स्वादपूर्वक खा रहा है अर्थात् हर्ष-शोकादि का अनुभव करते हुए कर्मफल भोग रहा है. दूसरा परमात्मा रूपी पक्षी इन फलों को नहीं खाता है, वह मात्र देखता रहता है. अर्थात् शरीर में प्राप्त सुख-दुःखादि को देखता मात्र है, भोगता नहीं, केवल तटस्थ भाव से उसका साक्षी बना रहता है -

द्वा सुपर्णा सयुजा सुखाया।
समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥
तपोरन्यः पिप्पलों स्वादत्य।
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

यह जीवात्मा जब तक अपने साथ रहने वाले परम सुहृद परमात्मा की ओर नहीं देखता, तब इस शरीर में ही आसक्त होकर मोह में निमग्न रहता है. वह शरीर के प्रति ममत्व बुध्दि से उसके द्वारा उपभोगों का भोग करने में तल्लीन रहता है. जब जीव पर परमात्मा की अहैतुकी कृपा होती है, व तब वह अपने से भिन्न अपने ही साथ रहने वाले, परम भिन्न, परम प्रिय, परमात्मा को पहचान लेता है और उस परमेश्वर की जगत में विभिन्न रूपों में प्रकट आश्चर्यमयी महिमा को जान लेता है, उस स्थिति में उसकी समस्त चिंताएं और शोक नष्ट हो जाते हैं.

सारांश यह कि आत्मा ईश्वर का अंश है और ईश्वर का अंश होने से यह अजर-अमर है, चेतन है. यही चेतना हमारा मिथक है. इसीलिए कृष्ण ने गीता में कहा है कि 'मामेकं शरणं व्रज' सब त्याग कर मेरी ओर आ जाओ.

अर्थात् सब कुछ त्याग कर अपनी ही आत्मा में झांको और उसे समझो. आत्मा स्वच्छ और निर्मल है, वही ईश्वर है. ईश्वर का अस्तित्व ही हमारी आत्मा के बोध और अस्तित्व को स्वीकारती है. यही जीवन का चरम सुख है, आनंद है, अमृत तत्व है.

माले मुफ़्त दिले बेरहम

अक्सर लोग दूसरे की चीज़ को इतनी बेरहमी से इस्तेमाल करते हैं कि जब वह उसके मालिक को वापस की जाती है, तो उसकी हालत ख़स्ता हो गयी होती है. जबकि करना हमें यह चाहिए कि दूसरे की चीज अपनी जान से भी ज़्यादा संभाल कर रखें.

चिकित्सा व चिकित्सक पर अविश्वास कितना उचित?

- डॉ. अनामिका प्रकाश

शरीर पांच तत्वों से निर्मित है. यदि इसमें एक का भी सामंजस्य बिगड़ जाए, तो बीमारी होना निश्चित ही है. अब यह रोगी पर निर्भर करता है कि वह अपनी अस्वस्थता को कितनी गंभीरता से लेता है. चिकित्सा मनोविज्ञान का व्यक्ति के स्वास्थ्य पर गहरा असर पड़ता है. यदि छोटी-छोटी बीमारियों के लिए भी व्यक्ति उतना ही परेशान होगा, तनाव सहेगा तो बीमारी और बढ़ेगी. ऐसी व्यक्ति डॉक्टरों पर पूर्णतया निर्भर रहते हैं जबकि कुछ व्यक्ति चिकित्सा पर बिल्कुल विश्वास नहीं करते हैं व मौत की तरफ़ से पूर्णतया निश्चित रहते हैं. जबकि यह दोनों ही पहलू ग़लत हैं. रोग की गंभीरता देखते हुए चिकित्सा करवानी चाहिए व इसमें विश्वास भी रखना चाहिए.

शरीर है तो बीमारियां भी होंगी और उनका उपचार भी करना पड़ता है. मानव जीवन का यह एक ढर्रा है, जिसमें इच्छा-अनिच्छा से सभी को घूमना पड़ता है. पर कई व्यक्ति इस सम्बन्ध में अतिशय चिन्ता करते हैं, या सर्तकता बरतते हैं. सर्तकता बरतना बुरी बात नहीं है, पर उसी चिन्ता या परेशानी की स्थिति तक पहुंचा देना ग़लत है.

अधिक चिंतित होना

लोग अक्सर सोचते हैं कि बीमारी बढ़ने पर उनके साथ क्या-क्या उलझनें खड़ी हो सकती हैं? उसके क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं. मामूली इलाज काम न आया तो बढ़िया इलाज के लिए कहां जाना पड़ सकता है और कितना ख़र्च लगेगा. उतने साधन जुटाने पर भी कर्ज़ लेना या सामान बेचना पड़ सकता है. फिर भी रोग क़ाबू में न आया, तो मरने का अवसर भी आ सकता है. मरने के बाद हम कहां होंगे और अशांत कहां भटकेंगे? इस प्रकार की चिन्ताएं छोटी बीमारी को और ज़्यादा बढ़ा सकती हैं और मानसिक परेशानी के कारण हल्का-फुल्का रोग भी ख़तरनाक़ हो सकता है, उसकी चिकित्सा में जो लाभ हो सकता था, उस पर प्रश्न चिन्ह लग सकता है. चिन्ता जितना बिगाड़ देती है. उतना चिकित्सा लाभ नहीं पहुंचा पाती.

लापरवाही दर्शाना

लेकिन रचनात्मक चिन्तन वाला सोचता है कि कौन सर्वथा नीरोग है? हर किसी को कोई न कोई बीमारी लगी रहती है. इतने बड़े शरीर में राई-रत्ती बीमारी भी किसी कोने पर पड़ी रहे, तो उनसे क्या बनता बिगड़ता है? मौत का तो समय निश्चित है, उससे पहले कोई नहीं मर सकता. मौत भी नहीं उठा सकती. क्या चिकित्सकों का इतना अध्ययन हमारी कुछ सहायता नहीं कर सकता? क्या जड़ी-बूटियों से लेकर रसायनों और प्रतिरोधकों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह रोग की जड़ें काट सकें? निश्चय ही दुनिया में अन्धकार से अधिक प्रकाश है. रुग्णता की तुलना में स्वस्थता का समर्थन करने वाले तत्व अधिक हैं.

> **रोग तभी होते हैं, जब शरीर में कोई व्यतिक्रम उत्पन्न होता है. पर रोग ठीक भी होते हैं, जब हम चिकित्सा, चिकित्सक व कुछ और बातों पर विश्वास करे तथा हममें आत्मविश्वास हो.**

डर एवं अविश्वास

जांच-पड़ताल की बड़ी-बड़ी मशीनें देख कर कई रोगियों को बड़ा भय लगने लगता है. ऑपरेशन की छुरी-कैंची देखकर उन्हें पसीना छूटता है. समझते हैं यह सारा सरंजाम उन्हें मारने-काटने के लिए है. ये लोग मृत्यु के संदेश-वाहक हैं एवं डॉक्टर साक्षात् यमराज हैं. यह तो जान लेकर ही हटेंगे. ऐसे डरपोक और अविश्वासी रोगी अच्छे होने में बहुत समय लेते हैं. उनके डर और शंका की मनोदशा, उनके जीवनी शक्ति पर प्रहार करती है तथा उन्हें मन से दुर्बल बनाती है. इस कारण उपचार भी आंशिक प्रभाव ही दिखा पाता है.

ज़रूरत से ज्यादा विश्वास

कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें डॉक्टर परोपकार की प्रतिमा नज़र आते हैं एवं नर्सें स्नेह सौजन्य की प्रतिमाएं, उन्हें औषधियां संजीवनी बूटी जैसी लगती हैं और अस्पताल का उद्देश्य ही रोगियों की व्यथा हरना-अनुभव होता है. वे उस वातावरण में अपने लिए हर प्रकार की सुरक्षा देखते हैं. सोचते हैं यहां की विशिष्टता अपना कष्ट दूर करके ही छुट्टी प्रदान करेगी, चिकित्सक की हर क्रिया में उन्हें आशा की झलक दीखती है. फिर आत्मविश्वास का भी तो कुछ मूल्य है. इसकी तुलना में अपने आप को धैर्य बंधाना, प्रोत्साहित करना और उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देना अधिक सरल है.

यह नहीं कहा जा रहा कि रोग का इलाज ही न किया जाय और उसे उपेक्षा में पड़े रहने दिया जाय. इस सीमा तक निश्चिंत रहना भी अहितकर है. जिस प्रकार मैले कपड़े को साफ़ करने के लिए साबुन की, आंगन को बुहारने के लिए बुहारी की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार शरीर में कहीं कोई क्षति दीखने पर उसकी भी पूर्ति की जानी चाहिए.

संयमी व अनुशासित रहें

इतने पर भी बात को बढ़ा-चढ़ा कर सोचने की आवश्यकता नहीं है. बीमारी को हल्के मन से लेना, उसकी चिन्ता करने की अपेक्षा हल्का-फुल्का उपाय ढूंढ निकालना पर्याप्त है, कारण- प्रकृति हमारा सबसे बड़ा डॉक्टर है. शारीरिक संरचना में ऐसे तत्व प्रचुर परिणाम में विद्यमान हैं, जो अनवरत रूप से क्षतियों की पूर्ति करते और आवश्यकताओं के अनुरूप सरंजाम जुटाते रहते हैं. मौत की भयावहता में संदेह नहीं. बीमारी के साथ जुड़े हुए कष्टों से भी इन्कार नहीं किया जा सकता. किन्तु सर्वोपरि तथ्य यह है कि जीवन बहुत बलवान है. वह भरपूर आयुष्य तक जीने के लिए संकल्पपूर्वक कटिबद्ध है. उसे प्रोत्साहन और सहयोग भर देता रहा जाए, तो इतने भर से बहुत बड़ा काम चल सकता है. बीमारियां सावधान करने आती हैं कि असंयम का रास्ता छोड़ा जाए और प्रकृति अनुशासन में बंधा रहा जाए. जो इसे स्वीकार कर लेते हैं, बीमारियां उन्हें छोड़कर चली जाती हैं.

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो. रिचार्ड एस. लैजेरस ने अनेक रोगियों की मनोदशा और चिकित्सा के परिणामों का पर्यवेक्षण किया. उन्होंने पाया कि एक जैसा बीमार और एक जैसे इलाज के चलते

रहने से भी वही रोगी अधिक तेज़ी से रोगमुक्त हुए, जो निश्चिन्त रहते थे और विश्वास करते थे उन्हें अच्छे होकर ही लौटना है. जिन्हें रोग की भयंकरता और चिकित्सको की उपेक्षा दीखती थी वे दूने समय में एवं धीरे-धीरे अच्छे हुए. कुछ तो उनमें से भी मर गये.

पचास वर्ष से अधिक आयु वालों में रक्तचाप या हृदय रोग के लक्षण दृष्टिगोचर होने पर यह कहा जा सकता है कि उनकी शारीरिक मशीन घिस जाने पर भी काम का दबाव यथावत् बना रहने से ऐसा होता है, जिससे वे हृदय सम्बन्धी रोगों के शिकार हो गये. धड़कन बढ़ना, थकान, मधुमेह, अनिद्रा, दमा एवं अपच जैसे रोगों ने उनके अंदर घर बना लिया और उन सबका संयुक्त प्रभाव उनके शरीर रूपी यंत्र को अव्यवस्थित होने के रूप में सामने आया. ऐसे लोगों के आहार एवं दिनचर्या में सर्व साधारण की अपेक्षा इतना अन्तर नहीं होता, जिससे उनमें उस प्रकोप का कारण ढूंढा जाय.

मनोविकार बीमारियों की जड़

देखा यह गया है कि मनोविकार, मस्तिष्क से उपज कर अपना प्रभाव सारे शरीर पर डालते हैं और धीरे-धीरे खोखले बनते जाने वाले शरीर में क्रमशः हृदय रोग एवं अन्य जीर्ण रोग विकसित होने लगते हैं. इनमें किन्हीं को वह पैतृक विरासत में मिले हुए भी हो सकते हैं. किन्तु अधिकांश में दुर्व्यसन और अचिन्त्य इसका निमित्तकारण होते हैं. नशेबाजी की लत भी इसका बड़ा कारण है. इसके अतिरिक्त कामुक उत्तेजना का सिर पर सवार रहना ऐसा निमित्त कारण है, जिसके आधार पर समस्त स्नायु संस्थान आवेशग्रस्त होता है और उससे नाड़ियों का, मांसपेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन अस्त-व्यस्त होता है. स्थिति मानसिक तनाव बढ़ने से लेकर हृदय की धड़कन अव्यवस्थित हो जाने के रूप में सामने आती है. यह व्याधि ऐसी है कि सीमा से अधिक बढ़ जाने पर पक्षाघात, हृदयाघात जैसे संकट खड़े हो सकते हैं. जीवन से हाथ धोना पड़ सकता है.

औषधियां रोगों की रोकथाम करती हैं. उनसे उफान को ठण्डा किया जा सकता है, पर जब चूल्हे में आग भड़क रही हो तब ऊपर रखे दूध में दुबारा उफान न आयेगा, यह नहीं कहा जा सकता. मानसिक आवेश बढ़े रहने पर किसी भी संकट की स्थिति ऐसी बन जाती है, जिसे अपंगता कहा जा सके.

सस्ती व सुलभ चिकित्सा

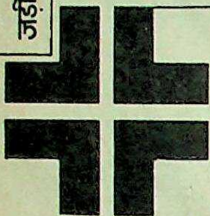
इन दिनों अच्छे आहार का सुयोग क्रमशः बढ़ता जाता है. चिकित्सा की सुविधाएं भी बढ़ रही हैं, पर साथ ही हृदयाघात जैसे आकस्मिक दौरों से होने वाली मृत्यु संख्या भी बढ़ रही है. जो मरते नहीं, वे इस स्थिति में पहुंच जाते हैं कि कोई महत्वपूर्ण पराक्रम कर सकने में असमर्थ बन कर रहें. यह सब आशंकाग्रस्त मनःस्थिति का दुष्परिणाम है. आधुनिकता के सभी अनुदार मुबारक, पर कीमत इतनी महंगी न हो कि जर्जर काया एवं टूटी मनःस्थिति ही हाथ लगे. ●

स्नान कब नहीं करें?

ज्वर, दस्त, हैजा आदि रोगों के रोगी को स्नान नहीं करना चाहिए. अधिक सर्दी पड़ने पर, हिमपात होने पर, जुकाम ज्यादा तेज़ होने पर, हठ करके, शरीर को तंग करके, बीमार शिशु को, सर्दियों की खुली हवा में स्नान नहीं करना चाहिए. इन स्थितियों के विपरीत यदि स्नान करेंगे, तो इसके दुष्परिणाम भोगने के लिए तैयार रहें.

जड़ी बूटियां

प्रकृति का अनमोल उपहार - अश्वगंधा



प्रकृति अपनी गोद में अनेक वनस्पतियों को संजोए हुए है, जो सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ही मानव को रोगमुक्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है. इन्हीं वनस्पतियों में एक अश्वगंधा है. यह प्रकृति का एक ऐसा उपहार है, जिसका प्रयोग कर हम एक तरफ़ रोगों से बचाव हेतु कर सकते हैं, वहीं दूसरी ओर शरीर का कायाकल्प भी कर सकते हैं, क्योंकि इसे रसायन गुण वाली औषधि माना जाता है.

अश्वगंधा को संस्कृत में वाराहकर्षी, बलदा, अश्वरोहक, वाषिगंधा, हिन्दी में असगंध, बंगला में अश्वगंधा, गुजराती में आसंध, मराठी में आसंध, तेलगु में पिनिरू, तामिल में आमुकलांग नाम दिया गया है. इसे अंग्रेजी में विंटरचेरी और लैटिन भाषा में विथैनियर सौम्रीफेरा कहते हैं.

गुण-धर्म

चिकित्सा में इसकी जड़ का ही अधिक उपयोग होता है. इसके कच्चे मूल से अश्व के सदृश गंध आती है, इसलिए इसे अश्वगंधा कहते हैं. अश्वगंधा का क्षुप बैंगन के क्षुप के समान सघन होता है. यह १ से ... फुट तक ऊंचा प्रायः शाखाबहुल होता है. इसके फल का आकार ... के सदृश होता है, जो अपक्व अवस्था में हरितवर्ण तथा पक्वावस्था में लालवर्ण का हो जाता है. इसकी जड़ ऊपर से धूसर तथा भीतर से श्वेतवर्ण की होती है. इसको सुखाकर कूटने से किंचित पीतवर्ण का चूर्ण बन जाता है. अश्वगंधा की कई जातियां मिलती हैं, लेकिन औषधि में अधिकांशतः नागौरी अश्वगंधा के प्रयोग का ही विधान है. यह लघु, स्निग्ध, तिक्त, कटु, मधुर व उष्ण गुण वाला है. यह उत्तम वाजीकर, दीपन, अनुलोमन, शूलप्रशमन व मूत्रल औषधि है. इसमें कुछ अंशों में राल, वसा एवं रंजक द्रव्य प्राप्त होते हैं.

चिकित्सा में उपयोग

● कमर के दर्द में अश्वगंधा चूर्ण तीन ग्राम की मात्रा में लेकर थोड़ा घी मिलाकर सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करने से लाभ मिलता है.

● महिलाओं में पाया जाने वाला एक अत्यन्त कष्टप्रद रोग श्वेतप्रदर है. इसमें अश्वगंधा चूर्ण २ ग्राम, शुद्ध वंशलोचन आधा ग्राम मिलाकर, प्रातः-सायं दुग्ध के साथ लगातार सेवन से लाभ मिलता है.

● वातरक्त, गंडमाला में अश्वगंधा के साथ-साथ चोपचीनी का भी महीन चूर्ण बनाइए. दोनों समभाग रखिए. इसको २-४ ग्राम की मात्रा में शहद से दिन में तीन बार सेवन करें और फिर इसका प्रभाव देखें.

● बहुमूत्रता में अश्वगंधा चूर्ण और गूलर के कच्चे फलों का चूर्ण दिन में तीन बार दूध के अनुपान से दिया जाना लाभकारी है.

● स्वप्रदोष, शीघ्रपतन में अश्वगंधा, शतावर, कमलगट्टे की गिरी समभाग चूर्ण बनाकर धारोष्ण दूध के साथ प्रयोग करने से इन रोगों से छुटकारा होकर नवयौवन की प्राप्ति होती है.

● छोटे बालकों में अश्वगंधा चूर्ण १/४ ग्राम और बादाम की एक गिरी पीसकर दूध के साथ लगातार देने से शरीर पुष्ट होता है.

● कम्पवात, अनिद्रा में अश्वगंधा चूर्ण २ ग्राम, हरीतकी चूर्ण १ ग्राम, बातगजाकुंश रस और संजीवनी वटी प्रत्येक चौथाई ग्राम मिलाकर प्रातः-सायं दूध से प्रयोग कराएं.



कायाकल्प के लिए अश्वगंधा की सार्थकता

देश के कई आयुर्वेद शोध संस्थानों में किए गए परीक्षणों से अश्वगंधा की कायाकल्प के सन्दर्भ में सार्थकता सिद्ध हुई है. राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर में इस पर किए गए एक शोध कार्य में इसे वृद्धावस्था दूर करने में लाभप्रद पाया गया है.

इस औषधि के सेवन से समय से पूर्व आए बुढ़ापा को निश्चित रूप से दूर किया जा सकता है. अगर सामान्य व्यक्ति नियमित रूप से इसका सेवन करे तो वृद्धावस्था को पीछे ढकेल सकता है. अभी तक जितने व्यक्तियों में इसका प्रयोग कराया गया है उनमें ८ ५% व्यक्तियों को लाभ पहुंचा है.

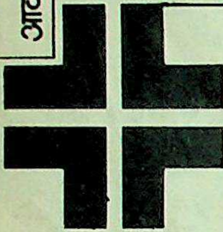
वृद्धावस्था को दूर कर नवयौवन प्राप्त करने के लिए इस औषधि का सेवन दूध में पकाकर दिन में एक बार दिया जाता है. इसके लिए ३० ग्राम अश्वगंधा चूर्ण को २५० मि.ली. दूध में डालकर तत्पश्चात् उसमें एक लीटर पानी मिलाकर आग में उबालते हैं. पानी जल जाने के बाद दूध को ठण्डा कर उसको छानकर प्रयोग किया जाता है.

इस प्रकार हम देखते हैं कि अगर मानव निरन्तर अश्वगंधा का सेवन करता रहे, तो बहुत कम खर्च में अपने शरीर को स्वस्थ रखते हुए बुढ़ापे के लक्षणों से अपने को बचा सकता है.

- डॉ. चंद्रशेखर अवस्थी

आवरण लेख

रोग, रंग एवं रोगोपचार (रंगों से जुड़े तथ्य)



– पन्नालाल व्यास



रंग प्रक्रिया और उनका विशद वर्णन पौराणिक युग से चला आ रहा है. हिंदू धर्म के पौराणिक शास्त्रों में देवी-देवताओं के ध्यान स्वरूपों के शरीर और उनके वस्त्रालंकरण के रंगों के चुनाव में गहरा सांकेतिक अर्थ भरा हुआ है. इतना ही नहीं, रंगों का व्यक्तियों की अंतर्मन की संवेदनाओं, मनोवृत्तियों, भावनाओं एवं मनोदशा से जुड़े क्रिया-कलापों से सीधा संपर्क है. रंग विधान मनोवैज्ञानिक शास्त्र से तो जुड़ा है ही, वह ज्योतिष शास्त्र, चिकित्सकीय ज्योतिषशास्त्र, रत्न शास्त्र और आरोग्य शास्त्र से भी संबंधित है. और अब तो मनुष्य जीवन पर और दैनिक चर्या पर पड़नेवाले उनके प्रभावों संबंधी ज्ञान-विज्ञान इतना विस्तृत हो चुका है कि उसका एक स्वतंत्र विज्ञान शास्त्र बन चुका है.

मानव जीवन रंगों की आभा से जुड़ा हुआ है. इंद्रधनुषी रंग तो सात ही हैं, पर आज इनकी संख्या बारह तक पहुंच गयी है. रंग अपने गाढ़ेपन और हल्केपन का प्रभाव मानव मन और स्वास्थ्य पर डालते हैं. कुछ रंग व्यक्तित्व के अनुकूल कार्य करते हैं तो कुछ प्रतिकूल. और इस प्रतिकूलता का असर होता है रोग आदि के रूप में. अर्थात् रंगहीन मानव-जीवन निरर्थक है.

वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि हमारे शरीर में भी एक सौर मंडल है, जिसमें सातों रंगों का समन्वय है. शरीरस्थ सात रंगों के समन्वय को BIGVYOR कहते हैं.

B = BLUE ब्ल्यू – आसमानी,
I = INDIGO इंडीगो – नीला,
G = GREEN ग्रीन – हरा,
V = VIOLET वॉयलेट – बैंगनी,
Y = YELLOW यलो – पीला,
O = ORANGE आरेंज – नारंगी, R = RED रेड – लाल.

शरीरस्थ सौर मंडल एवं आभामंडल (Body Solar) Spectrum की बात अब अनुमानों तक ही नहीं रही है. यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रत्येक जीवधारी के साथ जिनमें वनस्पति भी सम्मिलित है, उसका एक प्रभामंडल रहता है जिसे सामान्य दृष्टि से नहीं देखा जा सकता. हमारे देश में प्रभामंडल – सौरमंडल के संबंध में जानकारी प्राचीन काल से ही है. देवी-देवताओं के चित्रण में उनके मुखमंडल के चारों ओर प्रभामंडल को चित्रित किया जाता रहा है. राम, कृष्ण, बौद्ध, महावीर आदि की मूर्तियों में भी 'प्रभामंडल' उत्कीर्ण रहता है. अब वैज्ञानिक इस बात से सहमत हो गये हैं कि व्यक्ति विशेष के प्रभामंडल से उद्‌भासित विभिन्न प्रकार की किरणों तथा रंग-बिरंगी आभा का संबंध व्यक्ति की मनःस्थिति, शारीरिक स्थिति तथा उसके स्वास्थ्य एवं व्याधियों से है. अनेक वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्रों और कैमरे की सहायता से जीवों तथा वनस्पतियों से प्रसूत होने वाली विभिन्न रंगों की किरणों के चित्र भी लिए हैं.

मद्रास के एक अस्पताल में कार्यरत रेडियोलॉजिस्ट डॉ. के. नरेंद्र ने विभिन्न रोगियों की एक्स-रे फिल्मों का निरंतर अनेक वर्षों तक अध्ययन करने के बाद उन्होंने बताया कि एक्स-रे फिल्मों में विशेष अंग की छवि के साथ एक अलग से आभामंडल दिखायी पड़ता है, जो उस अंग से जुड़े व्यक्ति के व्यक्तित्व, चारित्रिक गुणावगुण को तो दर्शाता ही है, उस व्यक्ति की स्वास्थ्य संबंधी अनेक जानकारियां भी देता है.

कुछ दिनों पूर्व पांडिचेरी में इसी विषय पर एक गोष्ठी हुई थी, जिसमें अमेरिका के प्रो. डुगलस डीन ने यह घोषणा की, कि उन्होंने व्यक्ति विशेष आभामंडल की पहचान तथा 'फिरेलियन फोटोग्राफी' पर निरंतर बीस वर्षों तक अनुसंधान करने के बाद नोबल पुरस्कार प्राप्त किया है. उन्होंने 'बायोलक्टरोग्राफ' नामक ऐसा यंत्र विकसित किया है जिसके द्वारा उंगलियों, हथेलियों और शरीर के अन्य अंगों से उद्‌भासित किरणों का चित्र लिया जा सकता है. इसे देख कर एक स्वीकृत चार्ट के माध्यम से कोई भी जानकार एवं विशेषज्ञ-चिकित्सक कुछ ही देर में रोग की पहचान कर सकता है.

इंद्रधनुषी रंगों से जुड़ा व्यक्तित्व

रंग	रंगानुसार चारित्रिक विशेषताएं	रंगपति ग्रह	ग्रह के कोप से तथा रंग असंतुलन से उत्पन्न रोग	उपाय हेतु रत्न
लाल	आवेश, उत्तेजना, स्फूर्ति, आक्रोश, ओज, भोग, लालसा, वासना ऐश्वर्य, शक्ति-शौर्य, हिंसात्मक प्रवृत्ति.	मंगल	बुखार, खांसी, सर्दी, कब्ज़, पेट की गड़बड़ी, चेचक, खसरा, सिरदर्द क्षय, बवासीर, प्लेग, नपुंसकता, मलेरिया, सूजन, सूखा रोग, श्वास, दमा.	मूंगा
हरा	हास्यप्रिय, चंचलता, सक्रियता, कर्मशीलता, आत्मविश्वास के साथ संघर्ष करने की प्रवृत्ति, सजगता.	बुध	नाड़ी संस्थान संबंधी रोग, आंतें, लीवर, तिल्ली आदि में विकार, वाणी, जिह्वा संबंधी और अनेक मानसिक विकार, आमाशय में गड़बड़ी, यकृत विकार.	पन्ना
पीला	प्रफुल्लता, अल्हड़ता, बेफिक्र, नि:शंक.	गुरु	चोट, घाव, रक्तस्राव, सन्निपात, रक्तचाप, हृदयरोग, अतिसार, अजीर्ण, रक्तपित्त.	पुखराज और सुमेला
नीला	कला-संगीत और फैशन की ओर झुकाव, कामकला में प्रवीण, दूसरों को आकर्षित करनेवाला, जीवन की अभिजात्य शैली.	शुक्र	मधुमेह, शुक्राणु सबंधी विविध रोग, नपुंसकता, वीर्यनाश, प्रदर, गर्भ संबंधी विकार, दाह मंदाग्नि.	हीरा
बैंगनी	बौद्धिक, मधुरभाषी, धन अर्जित करने में तेजस्वी, उद्यमी.	बुध और शनि	श्वास, दमा, क्षय, मानसिक विकार, लकवा, नपुंसकता, हिस्टीरिया, मिर्गी, वमन, गठिया, बहरापन, दांतदर्द, बदहज़मी, पीलिया, गंजापन, सर्दी, खांसी.	पन्ना और नीलम
कत्थई	भोगी, कामुक, इंद्रिय पिपासु, असंयमित.	शुक्र	यौन विकार, रक्तचाप, हृदय रोग, अर्द्धविक्षिप्त अवस्था, मूर्छा, मिर्गी, नपुंसकता, प्रदर, मूत्र संबंधी विकार.	हीरा
भूरा	तटस्थ, अपने आप में खोया रहनेवाला, उदासीन.	गुरु	प्रजनन अंगों में विकार, लीवर, रक्त शिरा संबंधी रोग, रक्तचाप, चक्षुरोग, चर्बी का बढ़ना, मूर्छा.	पुखराज
सुनहरी	भाग्यशाली, राजसी ठाठबाट वाला, ज़मीन ज़ायदाद का सुखभोगी, वैभवशाली, समाज में प्रभुत्वशाली.	सूर्य	अनिद्रा, ज्वर, गठिया, पेट विकार, यौन विकार, मस्तिष्क विकार, रक्तचाप हृदयरोग, मधुमेह, दाह.	माणिक (पद्मराग मणि) और गारनेट.
नारंगी	धार्मिक, बौद्धिक, शोधकर्ता, तर्कशास्त्री, चिंतक, दार्शनिक, साधक.	गुरु	लीवर संबंधी विकार, रक्त शिराओं में गड़बड़ी, कर्ण रोग, चर्बी संवृद्धि, शोथ, प्रजनन अंगों में विकृति, वात, पेचिश, संग्रहणी, गैस्ट्रिक, अल्सर अनिद्रा, हृदय रोग, गठिया, संधिवात.	पुखराज
काला	आक्रोशी, विरोधी प्रवृत्तिवाला, खतरों को मोल लेकर धन संग्रह करनेवाला, अपराध प्रवृत्तियोंवाला, भोगी और क्रूर.	राहु, केतु और शनि	वायु, गैस, अपच, मस्तिष्क संबंधी विकार, हृदयरोग, रक्त संबंधी विकार, स्नायुरोग और काम रोग.	लहसुनिया और गोमेद
सफ़ेद	कल्पनाशील, शांत, प्रतिकूल परिस्थितियों में अशांत व संघर्षशील	गुरु और चंद्रमा	अनिद्रा, मूत्र संबंधी रोग, नेत्र रोग, हृदय रोग, क्षय, कब्ज़, प्लूरिसी, ज्वर.	मुक्ता और चंद्रकांत मणि
भूरा-हरा, नीला मिश्रित	विषम परिस्थितियों से संघर्ष करने वाला, कल्पनाशील, सनकी, भुलक्कड़, आवश्यकता से अधिक संवेदनशील और भावुक.	नेपच्यून	यौन विकार, स्नायु संबंधी रोग, पागलपन, हृदयरोग, रक्त विकार, सिरदर्द, नपुंसकता, सर्दी, जुकाम, ज्वर, बवासीर आदि.	नीलम
सुनहरा पीला	रहस्यमय, जुआ, सट्टा, लॉटरी, घुड़दौड़ और तस्करी से दौलत कमाने वाला, तरह-तरह के उद्योगों के प्रति अभिरुचि रखनेवाला.	राहु, केतु	वायुदोष, उदर विकार, सिरदर्द, अपच, गठिया, स्नायु रोग, लकवा, कैंसर आदि.	गोमेद और लहसुनिया

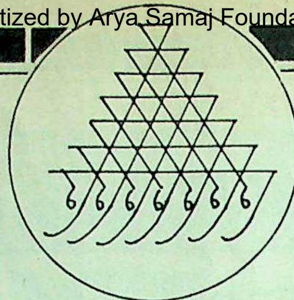
देवी-देवताओं के रंगों से जुड़ी जीवन की सार्थकता

पौराणिक शास्त्रों में देवी-देवताओं के स्वरूपों एवं उनके वस्त्रालंकारों के रंगों के विषय में बड़ा शास्त्रीय विवेचन किया गया है. रंगों की कलात्मक अभिव्यक्ति के विषय में उल्लेख किया गया है कि एक ओर जहां ये विभिन्न रंग उन्हें चित्ताकर्षक बनाते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रत्येक देवता में निहित गुणों और विशिष्ट कर्मों अथवा उच्च उद्देश्यों को भी अभिव्यक्त करते हैं. कुछ रंग स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन प्रदान करने के साथ-साथ स्फूर्ति, सौंदर्य और कल्याण का संदेश भी देते हैं. इस विषय में विद्वान श्री रामचरणजी महेंद्र ने व्यापक शोध की है. उनके मतानुसार लाल रंग बल, उत्साह, स्फूर्ति उत्पन्न करता है. यह मनुष्य के शरीर को स्वस्थ और मन को हर्षित करनेवाला है. इससे शरीर का स्वास्थ्य सुधरता है और मन प्रसन्न रहता है. वह पौरुष और आत्मगौरव

को प्रकट करता है. इसी कारण प्रायः सभी देवताओं की प्रतिमाओं में लाल रोली का टीका लगाया जाता है. धन की देवी लक्ष्मीजी को भी मंगलकारी लाल वस्त्र पहनाए जाते हैं. उन्हें लाल कमल पर प्रतिष्ठित किया गया है. उन्हें सूर्य स्वरूप, हिरण्यमयी, पद्महस्ता, पद्मासना और रक्तवर्णा कहा गया है. स्पष्ट है कि लाल रंग सौभाग्य, संपत्ति, ऐश्वर्य और समृद्धि का प्रतीक है. नारी की मांग में लाल सिंदूर जहां एक ओर उसका सौंदर्य बढ़ाता है, वहीं दूसरी ओर उसका अटल सौभाग्य तथा पतिप्रेम को भी उजागर करता है. लाल टीका शौर्य और विजय का प्रतीक है. हर्ष के अवसर, विवाह, जन्म तथा अन्य सांस्कृतिक उत्सवों पर आनंद की अभिव्यक्ति लाल रंग से ही प्रकट होती है. उन देवताओं को भी शौर्य-सूचक लाल रंग दिया गया है, जिन्होंने अपने विराट बाहुबल, अस्त्र-शस्त्र तथा शारीरिक शक्तियों से दुष्ट दैत्यों या आसुरी प्रवृत्तियों को परास्त किया है.

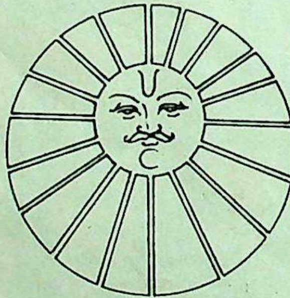
लाल रंग की तरह **भगवा रंग** को भी हमारे शास्त्रों में बड़ा महत्व दिया गया है. भगवा रंग को सभी प्रकार की मलिनता दूर करनेवाला, कल्मष, कालुष्य, आलस्य को नष्ट कर पवित्र भाव जगाने वाला एवं स्फूर्ति का संचार करनेवाला माना है. ये लोग विषय-वासना को त्याग कर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होते हैं. वस्तुतः भगवा रंग अग्नि की ज्वाला का रंग है. वह त्याग, समर्पण, तपस्या और वैराग्य का प्रतीक है.

लाल और भगवा रंग के साथ-साथ **हरे रंग** को भी प्रमुखता दी गयी है, जो सारी प्रकृति में फैला हुआ है. जो व्यक्ति हरे रंग की वस्तुओं को धारण करता है, वह प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर सुखी, निरोगी, आहलादित, प्रसन्न और शांत रहता है. वह प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर सुखी, नीरोगी,



आहलादित, प्रसन्न और शांत रहता है. लक्ष्मीजी तथा अन्य विशिष्ट देवी-देवताओं के नेत्रों को हरे रंग से विभूषित किया जाता रहा है.

पीला रंग ज्ञान-गरिमा का रंग है. वह विद्वता, योग्यता, कर्मनिष्ठा, आत्मविश्वास, एकाग्रता एवं बौद्धिकता की ओर उत्प्रेरित करता है. भगवान विष्णु, श्रीकृष्ण, गणेशजी को पीले रंग के वस्त्रों (पीतांबरों) से सुसज्जित किया जाता रहा है. कहा जाता है कि जो व्यक्ति



पीले रंग को अपना लेता है वह ज्ञान मार्ग की ओर प्रवृत्त होकर अनेक विघ्नों को पार कर मन में गहरी शांति प्राप्त करता है.

प्रकृति में जहां हरे रंग की सृष्टि व्यापक रूप से अवस्थित है, वहां अनंत **नीले रंग** का आकाश, समुद्र और घहराती हुई नदियों का रंग नीला है. नीला रंग न केवल गंभीरता का परिचायक है, वह बल, पौरुष, कर्मशीलता, धैर्य, साहस, शौर्य और अपनी आस्थाओं के लिए निरंतर संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाला और संकल्पशक्ति का परिचायक बताया गया है. मर्यादा पुरुषोत्तम राम और भगवान श्रीकृष्ण का वर्ण इसी कारण नीला बताया गया है. भगवान शिव को भी नीलकंठ कहा गया है. वस्तुतः नीला रंग उद्यमी पुरुषों का रंग है. इस रंग को धारण करने वाला इंद्रियों को वश में रख कर पुरुषार्थ में लीन रहता है.

सफेद रंग स्वच्छता, पवित्रता, ज्ञान और विवेक का प्रतीक है. विद्या की देवी सरस्वती को श्वेत रंग सबसे प्रिय है. उनके स्वरूप की वंदना में उल्लेख है - "जो कुंद के पुष्प, चंद्रमा, बर्फ और मुक्ताहार के समान श्वेत हैं, जो श्वेत कमलासन पर विराजमान हैं. - वे भगवती सरस्वती मुझ पर कृपा करें.

हमारे आध्यात्मिक संतों ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति के आभा मंडल में एक विशिष्ट रंग की आभा अधिक सघन होती है. उसे हम **आत्मा का कॉस्मिक कलर इंडेक्स** कह सकते हैं. इसी कॉस्मिक कलर इंडेक्स से व्यक्ति उत्प्रेरित होते हैं. और उसी रंग से उत्प्रेरित होकर उसी रंगानुसार अपने ईष्ट देवी-देवताओं का चुनाव करते हैं. ऐसा करने पर ही उनकी पूजा-साधना सफल होती है.

सूर्य रश्मियों से रोगोपचार

यह भी बताया गया है कि जब हमारे शरीरस्थ सौरमंडल में किसी बाह्य या आंतरिक कारण से संतुलन बिगड़ जाता है, तो शरीर में वात, पित्त या कफ में से किसी न किसी एक दोष का या फिर दो दोषों का अथवा तीनों दोषों का प्रकोप उत्पन्न हो जाता है. उसी से रोगों की उत्पत्ति होती है. उस स्थिति में प्राच्य विद्वानों और संतों ने रंगीन किरणों के अधिपति सूर्य की उपासना पर बल दिया है. पाश्चात्य देशों में तो केवल सूर्य-रश्मियों से विभिन्न रोगों के शमन हेतु 'हीलियो थैरेपी' नामक एक चिकित्सा-पद्धति का विकास किया गया है. वेदों में सूर्य की बड़ी महिमा गायी गयी है —

उद्यन्नादित्य : क्रिमीन्हन्तु
निम्रचन्हतु रश्मिभिः ।

— सूर्यदेव उदय होने से अस्त होने तक अपनी किरणों से रोगोत्पादक कृमियों का नाश करते हैं.

उत्पुरस्तात्सूर्य एति
विश्वदृष्टो अदृष्टा
दृष्टांश्चाघ्नन्नदृष्टांश्च
सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन् ।



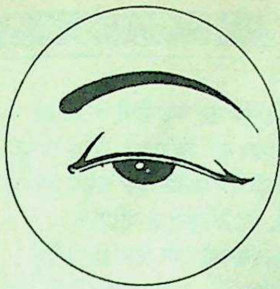
— अंधकारनाशक, विश्वप्रकाशक सूर्य सब दृष्ट और अदृष्ट कृमियों को नष्ट करता हुआ पूर्व दिशा से उदय होता है.

कहा जाता है कि उदयकाल के सूर्य के आभामंडल से नारंगी रंग की किरणें प्रवाहित होती हैं. इन रश्मियों से क्षय रोग के वे कीटाणु, जो उबलते जल से भी नष्ट नहीं होते, शीघ्र नष्ट हो जाते हैं.

सूर्य की हरी-नीली और लाल रश्मियों का हमारे जीवन पर, संवेदनाओं पर, भावनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है. शास्त्रों में उल्लेख है कि लाल रंग की गायों का दूध पीने से और सूर्य की किरणों के लाल रंग से व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट होकर दीर्घायु होता है. उसे बल मिलता है और शरीर की कांति खिल उठती है.

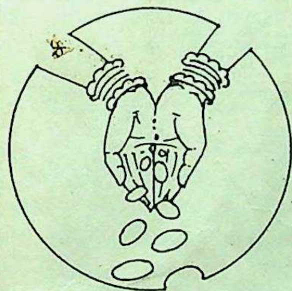


प्रश्नोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा है कि सूर्य सारे जगत का प्राण है. सूर्य सब प्रकार के वीर्यों से युक्त है. इसी प्रकार ऋग्वेद में सूर्य को स्थावर-जंगम की आत्मा बताया गया है.



आयुर्वेद और रंग-आभा का चमत्कार

आयुर्वेद में सूक्ष्म रूप से विभिन्न रोगों के शमन में विभिन्न रंग वाली जड़ी-बूटियां, वनस्पति आदि से औषधियों का निर्माण किए जाने का विशद वर्णन है. इतना ही नहीं, वे विशिष्ट ऋतु में, विशिष्ट समय में, विशिष्ट देवताओं का आह्वान करके जब विशिष्ट आभा का प्रभुत्व रहता



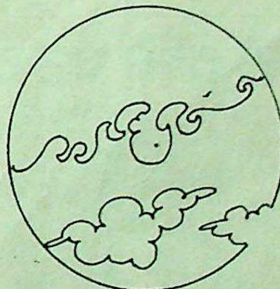
है, तब औषधियों का निर्माण करते हैं. यही नहीं, आयुर्वेद के साथ 'जैम थेरेपी' का भी गहरा संबंध है. विभिन्न रंग आभा वाले रत्नों के विभिन्न प्रयोगों द्वारा रोग निवारण की प्रणाली आयुर्वेद विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अध्याय है. क्षय, मधुमेह, भगंदर, जलोदर, उन्माद, बवासीर, हृदयरोग, गठिया आदि असाध्य से असाध्य रोग में विभिन्न रत्नों की भस्मों का प्रयोग बड़े-बड़े आयुर्वेदाचार्य करते रहे हैं. हीरा, प्रवाल, मोती, पन्ना, नीलम, पुखराज, अकीक, मूंगा आदि की भस्में भी आयुर्वेद औषध-शास्त्र की अत्यंत महत्वपूर्ण औषधियां हैं. और इन रत्नों का प्रभाव उनकी विशिष्ट रंग प्रधान आभा-किरणों के कारण है, जिसका विशद-विवेचन 'रत्न-शास्त्रों' में किया गया है. इतना ही नहीं, अनेक आयुर्वेद शास्त्री रोग निदान में ज्योतिष शास्त्र का भी सहारा लेते हैं.

आयुर्वेद में रोग निदान का शास्त्रीय और प्रसिद्ध सिद्धांत त्रिदोष सिद्धांत है. इस सिद्धांत के अनुसार **वात, पित्त** और **कफ** जो समस्त शरीर में व्याप्त है, जब आचार-विचार, आहार-विहार के कारण प्रकृति के प्रतिकूल होने पर बिगड़ जाते हैं, असंतुलित हो जाते हैं, तो उनके प्रधानत्व के रोग उत्पन्न होते हैं – यथा **वातज रोग, पित्तज रोग** और **कफ़ज रोग.**

शास्त्रज्ञ वैद्यगण त्रिदोषों, ग्रहों और रत्नों के रंगों की आभा-किरणों के साथ तालमेल बैठा कर ऐसी औषधि सेवन कराने का निर्णय लेते हैं, जो उन तीनों में समन्वय स्थापित कर सकें.

रत्नशास्त्रों की मान्यता है कि हमारे शरीर में रंगों का संतुलन बिगड़ने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है. शरीर में रंगों का संतुलन हमारी जन्मकुंडली में विभिन्न ग्रहों की स्थिति के अनुसार बनता और बिगड़ता है. इसलिए रत्नों के प्रयोग से शरीर के रंगों का संतुलन कायम रखा जा सकता है और रोगों से बचा जा सकता है. उधर आयुर्वेदशास्त्री मानते हैं कि त्रिदोषों के कुपित होने पर ही शरीर के रंगों का संतुलन बिगड़ता है यानी प्रकृति बिगड़ जाती है. इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करने में ग्रहों का भी योगदान रहता है. उसको संतुलित और स्वस्थ बनाने के लिए, सूर्य और चंद्र की आभा – किरणों को अधिक से अधिक ग्राह्य करनेवाली जड़ी-बूटियों का उपयोग किया जाता है. वैद्य जड़ी-बूटियों का उपयोग करते हैं, रत्नशास्त्री रत्नों का.

रत्नशास्त्रियों की मान्यता है कि हर रत्न का अपना एक विशिष्ट रंग होता है. उदाहरणार्थ – यदि किसी की जन्मकुंडली में मंगल प्रतिकूल है तो इसका यही अर्थ हुआ कि उसमें लाल किरणों की कमी है और उस कमी से लाल रंग की किरणों से उद्भासित शक्तिगुण न्यून हो गये हैं. उसी स्थिति के कारण वह ज्वर से पीड़ित है, वह फोड़े आदि रोग से ग्रस्त है. इसलिए ऐसे व्यक्तियों को सूर्य की लाल रश्मियों को अधिक तीव्रता से अपने में ग्राह्य करनेवाले मूंगा को पहनना चाहिए.



मूंगा को धारण करने से उससे उद्भासित लाल किरणें रोगी के शरीर में अधिक से अधिक तरंगित होंगी और वह शीघ्र ही रोगमुक्त हो जाएगा.

आधुनिक विज्ञान की मान्यता

आधुनिक भौतिकी अनुसार रंगों का आयोजन इलेक्ट्रॉन और विकिरणों की तरंगों की न्यूनाधिक लंबाई के कारण होता है. प्रत्येक परमाणु नाभिक (न्यूक्लियस) के बाहर चक्कर लगाते इलेक्ट्रॉन पराबैंगनी प्रकाश किरणों को अपने में लीन करते हुए उत्तेजित होकर इस अवस्था में एक निश्चित तरंग लंबाई के कीटोन उत्सर्जित करता है. इस उत्सर्जित विकिरण की तरंग लंबाई ही सात रंगों में से एक रंग का निर्धारण करती है. इन विभिन्न तरंगित लंबाइयों से उत्सर्जित कीटोन कणों से ही मुख्य सात रंगों की किरणों का सृजन होता है.

आधुनिक वैज्ञानिक और मनोशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि विभिन्न रोगों की किरणें व्यक्ति विशेष की अंतर्मन की दशा पर उसके व्यक्तित्व की अभिरुचि के अनुसार प्रभाव डालती हैं. किसी को लाल रंग पसंद आता है, तो किसी को लाल रंग से एलर्जी हो जाती है. मनोविश्लेषण चिकित्सक डॉक्टर मैक्समूलर ने विभिन्न प्रयोगों से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि व्यक्ति विशेष आठ रंगों - जामुनी, नीला, हरा, लाल, पीला, कत्थई, भूरा और काला में से कोई विशिष्ट रंग का चुनाव करते हैं. उनके इस चुनाव के आधार पर व्यक्ति विशेष के विशिष्ट गुणों, अभिरुचियों और चारित्रिक अभिव्यंजनाओं का ज्ञातव्य प्राप्त कर उसके मनोविकारों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जा सकता है. इससे रोगोपचार में सहायता मिलती है.

कहा जाता है कि यदि लाल रंग से उत्प्रेरित होने वाला व्यक्ति हर समय लाल रंग का रुमाल भी अपने साथ रखे तो उसे अवसाद नहीं होगा. यदि मंद विद्यार्थियों के लिए कक्षाओं की दीवारों को लाल रंग से पुतवा दिया जाए और वैसे ही पर्दे लगा दिए जाएं तो उनकी बुद्धि प्रखर हो जाएगी. इसी प्रकार नीले रंगों के उपयोग से व्यक्ति को तनाव से मुक्ति मिलती है.

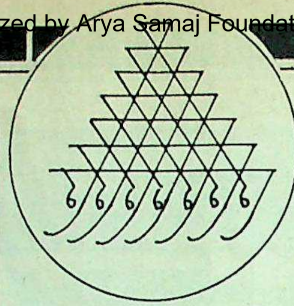
जर्मनी में विभिन्न रंगों वाली बोतलों में पानी भर कर कुछ दिनों तक धूप में रख कर उस पानी से विभिन्न रंगों के अभाव से ग्रस्त रोगियों की सफल चिकित्सा की जाती रही है.

चिकित्सक व्यक्ति विशेष को कोई रंग चुनने के लिए कहते हैं, तब उस व्यक्ति की विशिष्ट रंग के प्रति संवेदनशीलता का पता चलता है. जब वह अपना प्रिय रंग का निर्देश करता है, फिर रंगों के चार्ट से उस

को प्रकट करता है. इसी कारण प्रायः सभी देवताओं की प्रतिमाओं में लाल रोली का टीका लगाया जाता है. धन की देवी लक्ष्मीजी को भी मंगलकारी लाल वस्त्र पहनाए जाते हैं. उन्हें लाल कमल पर प्रतिष्ठित किया गया है. उन्हें सूर्य स्वरूप, हिरण्यमयी, पद्महस्ता, पद्मासना और रक्तवर्णा कहा गया है. स्पष्ट है कि लाल रंग सौभाग्य, संपत्ति, ऐश्वर्य और समृद्धि का प्रतीक है. नारी की मांग में लाल सिंदूर जहां एक ओर उसका सौंदर्य बढ़ाता है, वहीं दूसरी ओर उसका अटल सौभाग्य तथा पतिप्रेम को भी उजागर करता है. लाल टीका शौर्य और विजय का प्रतीक है. हर्ष के अवसर, विवाह, जन्म तथा अन्य सांस्कृतिक उत्सवों पर आनंद की अभिव्यक्ति लाल रंग से ही प्रकट होती है. उन देवताओं को भी शौर्य-सूचक लाल रंग दिया गया है, जिन्होंने अपने विराट बाहुबल, अस्त्र-शस्त्र तथा शारीरिक शक्तियों से दुष्ट दैत्यों या आसुरी प्रवृत्तियों को परास्त किया है.

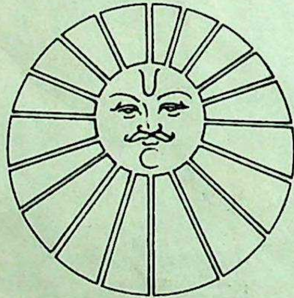
लाल रंग की तरह **भगवा रंग** को भी हमारे शास्त्रों में बड़ा महत्व दिया गया है. भगवा रंग को सभी प्रकार की मलिनता दूर करनेवाला, कल्मष, कालुष्य, आलस्य को नष्ट कर पवित्र भाव जगाने वाला एवं स्फूर्ति का संचार करनेवाला माना है. ये लोग विषय-वासना को त्याग कर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होते हैं. वस्तुतः भगवा रंग अग्नि की ज्वाला का रंग है. वह त्याग, समर्पण, तपस्या और वैराग्य का प्रतीक है.

लाल और भगवा रंग के साथ-साथ **हरे रंग** को भी प्रमुखता दी गयी है, जो सारी प्रकृति में फैला हुआ है. जो व्यक्ति हरे रंग की वस्तुओं को धारण करता है,वह प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर सुखी, निरोगी, आह्लादित,प्रसन्न और शांत रहता है, वह प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर सुखी, नीरोगी,



आहलादित,प्रसन्न और शांत रहता है. लक्ष्मीजी तथा अन्य विशिष्ट देवी-देवताओं के नेत्रों को हरे रंग से विभूषित किया जाता रहा है.

पीला रंग ज्ञान-गरिमा का रंग है. वह विद्वता, योग्यता, कर्मनिष्ठा, आत्मविश्वास, एकाग्रता एवं बौद्धिकता की ओर उत्प्रेरित करता है. भगवान विष्णु, श्रीकृष्ण, गणेशजी को पीले रंग के वस्त्रों (पीतांबरों) से सुसज्जित किया जाता रहा है. कहा जाता है कि जो व्यक्ति



पीले रंग को अपना लेता है वह ज्ञान मार्ग की ओर प्रवृत्त होकर अनेक विघ्नों को पार कर मन में गहरी शांति प्राप्त करता है.

प्रकृति में जहां हरे रंग की सृष्टि व्यापक रूप से अवस्थित है, वहां अनंत **नीले रंग** का आकाश, समुद्र और घहराती हुई नदियों का रंग नीला है. नीला रंग न केवल गंभीरता का परिचायक है, वह बल, पौरुष, कर्मशीलता, धैर्य, साहस, शौर्य और अपनी आस्थाओं के लिए निरंतर संघर्ष करने की प्रेरणा देने वाला और संकल्पशक्ति का परिचायक बताया गया है. मर्यादा पुरुषोत्तम राम और भगवान श्रीकृष्ण का वर्ण इसी कारण नीला बताया गया है. भगवान शिव को भी नीलकंठ कहा गया है. वस्तुतः नीला रंग उद्यमी पुरुषों का रंग है. इस रंग को धारण करने वाला इंद्रियों को वश में रख कर पुरुषार्थ में लीन रहता है.

सफेद रंग स्वच्छता, पवित्रता, ज्ञान और विवेक का प्रतीक है. विद्या की देवी सरस्वती को श्वेत रंग सबसे प्रिय है. उनके स्वरूप की वंदना में उल्लेख है – "जो कुंद के पुष्प, चंद्रमा, बर्फ और मुक्ताहार के समान श्वेत हैं, जो श्वेत कमलासन पर विराजमान हैं. – वे भगवती सरस्वती मुझ पर कृपा करें.

हमारे आध्यात्मिक संतों ने बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति के आभा मंडल में एक विशिष्ट रंग की आभा अधिक सघन होती है. उसे हम **आत्मा का कॉस्मिक कलर इंडेक्स** कह सकते हैं. इसी कॉस्मिक कलर इंडेक्स से व्यक्ति उत्प्रेरित होते हैं. और उसी रंग से उत्प्रेरित होकर उसी रंगानुसार अपने ईष्ट देवी-देवताओं का चुनाव करते हैं. ऐसा करने पर ही उनकी पूजा-साधना सफल होती है.

सूर्य रश्मियों से रोगोपचार

यह भी बताया गया है कि जब हमारे शरीरस्थ सौरमंडल में किसी बाह्य या आंतरिक कारण से संतुलन बिगड़ जाता है, तो शरीर में वात, पित्त या कफ में से किसी न किसी एक दोष का या फिर दो दोषों का अथवा तीनों दोषों का प्रकोप उत्पन्न हो जाता है. उसी से रोगों की उत्पत्ति होती है. उस स्थिति में प्राच्य विद्वानों और संतों ने रंगीन किरणों के अधिपति सूर्य की उपासना पर बल दिया है. पाश्चात्य देशों में तो केवल सूर्य-रश्मियों से विभिन्न रोगों के शमन हेतु 'हीलियो थेरेपी' नामक एक चिकित्सा-पद्धति का विकास किया गया है. वेदों में सूर्य की बड़ी महिमा गायी गयी है —

उद्यन्नादित्य : क्रिमीन्हन्तु
निम्रचन्हतु रश्मिभि : ।

— सूर्यदेव उदय होने से अस्त होने तक अपनी किरणों से रोगोत्पादक कृमियों का नाश करते हैं.

उत्पुरस्तात्सूर्य एति
विश्वदृष्टो अदृष्टा
दृष्टांश्चाघ्नन्नदृष्टांश्च
सर्वांश्च प्रमृणन् किमीन् ।



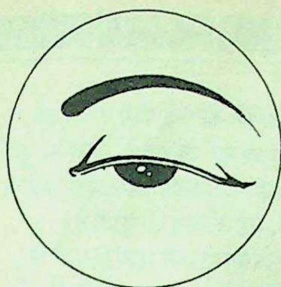
— अंधकारनाशक, विश्वप्रकाशक सूर्य सब दृष्ट और अदृष्ट कृमियों को नष्ट करता हुआ पूर्व दिशा से उदय होता है.

कहा जाता है कि उदयकाल के सूर्य के आभामंडल से नारंगी रंग की किरणें प्रवाहित होती हैं. इन रश्मियों से क्षय रोग के वे कीटाणु, जो उबलते जल से भी नष्ट नहीं होते, शीघ्र नष्ट हो जाते हैं.

सूर्य की हरी-नीली और लाल रश्मियों का हमारे जीवन पर, संवेदनाओं पर, भावनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है. शास्त्रों में उल्लेख है कि लाल रंग की गायों का दूध पीने से और सूर्य की किरणों के लाल रंग से व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट होकर दीर्घायु होता है. उसे बल मिलता है और शरीर की कांति खिल उठती है.

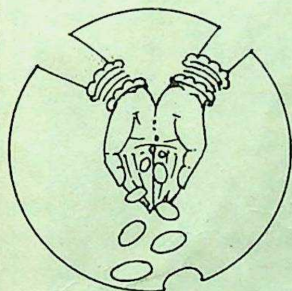


प्रश्नोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा है कि सूर्य सारे जगत का प्राण है. सूर्य सब प्रकार के वीर्यों से युक्त है. इसी प्रकार ऋग्वेद में सूर्य को स्थावर-जंगम की आत्मा बताया गया है.



आयुर्वेद और रंग-आभा का चमत्कार

आयुर्वेद में सूक्ष्म रूप से विभिन्न रोगों के शमन में विभिन्न रंग वाली जड़ी-बूटियां, वनस्पति आदि से औषधियों का निर्माण किए जाने का विशद वर्णन है. इतना ही नहीं, वे विशिष्ट ऋतु में, विशिष्ट समय में, विशिष्ट देवताओं का आह्वान करके जब विशिष्ट आभा का प्रभुत्व रहता



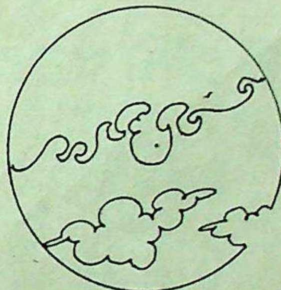
है, तब औषधियों का निर्माण करते हैं. यही नहीं, आयुर्वेद के साथ 'जैम थेरेपी' का भी गहरा संबंध है. विभिन्न रंग आभा वाले रत्नों के विभिन्न प्रयोगों द्वारा रोग निवारण की प्रणाली आयुर्वेद विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अध्याय है. क्षय, मधुमेह, भगंदर, जलोदर, उन्माद, बवासीर, हृदयरोग, गठिया आदि असाध्य से असाध्य रोग में विभिन्न रत्नों की भस्मों का प्रयोग बड़े-बड़े आयुर्वेदाचार्य करते रहे हैं. हीरा, प्रवाल, मोती, पन्ना, नीलम, पुखराज, अकीक, मूंगा आदि की भस्में भी आयुर्वेद औषध-शास्त्र की अत्यंत महत्वपूर्ण औषधियां हैं. और इन रत्नों का प्रभाव उनकी विशिष्ट रंग प्रधान आभा-किरणों के कारण है, जिसका विशद-विवेचन 'रत्न-शास्त्रों' में किया गया है. इतना ही नहीं, अनेक आयुर्वेद शास्त्री रोग निदान में ज्योतिष शास्त्र का भी सहारा लेते हैं.

आयुर्वेद में रोग निदान का शास्त्रीय और प्रसिद्ध सिद्धांत त्रिदोष सिद्धांत है. इस सिद्धांत के अनुसार **वात, पित्त और कफ** जो समस्त शरीर में व्याप्त है, जब आचार-विचार, आहार-विहार के कारण प्रकृति के प्रतिकूल होने पर बिगड़ जाते हैं, असंतुलित हो जाते हैं, तो उनके प्रधानत्व के रोग उत्पन्न होते हैं – यथा **वातज रोग, पित्तज रोग** और **कफ़ज रोग.**

शास्त्रज्ञ वैद्यगण त्रिदोषों, ग्रहों और रत्नों के रंगों की आभा-किरणों के साथ तालमेल बैठा कर ऐसी औषधि सेवन कराने का निर्णय लेते हैं, जो उन तीनों में समन्वय स्थापित कर सकें.

रत्नशास्त्रों की मान्यता है कि हमारे शरीर में रंगों का संतुलन बिगड़ने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है. शरीर में रंगों का संतुलन हमारी जन्मकुंडली में विभिन्न ग्रहों की स्थिति के अनुसार बनता और बिगड़ता है. इसलिए रत्नों के प्रयोग से शरीर के रंगों का संतुलन कायम रखा जा सकता है और रोगों से बचा जा सकता है. उधर आयुर्वेदशास्त्री मानते हैं कि त्रिदोषों के कुपित होने पर ही शरीर के रंगों का संतुलन बिगड़ता है यानी प्रकृति बिगड़ जाती है. इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न करने में ग्रहों का भी योगदान रहता है. उसको संतुलित और स्वस्थ बनाने के लिए, सूर्य और चंद्र की आभा – किरणों को अधिक से अधिक ग्राह्य करनेवाली जड़ी-बूटियों का उपयोग किया जाता है. वैद्य जड़ी-बूटियों का उपयोग करते हैं, रत्नशास्त्री रत्नों का.

रत्नशास्त्रियों की मान्यता है कि हर रत्न का अपना एक विशिष्ट रंग होता है. उदाहरणार्थ – यदि किसी की जन्मकुंडली में मंगल प्रतिकूल है तो इसका यही अर्थ हुआ कि उसमें लाल किरणों की कमी है और उस कमी से लाल रंग की किरणों से उद्भासित शक्तिगुण न्यून हो गये हैं. उसी स्थिति के कारण वह ज्वर से पीड़ित है, वह फोड़े आदि रोग से ग्रस्त है. इसलिए ऐसे व्यक्तियों को सूर्य की लाल रश्मियों को अधिक तीव्रता से अपने में ग्राह्य करनेवाले मूंगा को पहनना चाहिए.



मूंगा को धारण करने से उससे उद्भासित लाल किरणें रोगी के शरीर में अधिक से अधिक तरंगित होंगी और वह शीघ्र ही रोगमुक्त हो जाएगा.

आधुनिक विज्ञान की मान्यता

आधुनिक भौतिकीअनुसार रंगों का आयोजन इलेक्ट्रॉन और विकिरणों की तरंगों की न्यूनाधिक लंबाई के कारण होता है. प्रत्येक परमाणु नाभिक (न्यूक्लियस) के बाहर चक्कर लगाते इलेक्ट्रॉन परावैंगनी प्रकाश किरणों को अपने में लीन करते हुए उत्तेजित होकर इस अवस्था में एक निश्चित तरंग लंबाई के कीटोन उत्सर्जित करता है. इस उत्सर्जित विकिरण की तरंग लंबाई ही सात रंगों में से एक रंग का निर्धारण करती है. इन विभिन्न तरंगित लंबाइयों से उत्सर्जित कीटोन कणों से ही मुख्य सात रंगों की किरणों का सृजन होता है.

आधुनिक वैज्ञानिक और मनोशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि विभिन्न रंगों की किरणें व्यक्ति विशेष की अंतर्मन की दशा पर उसके व्यक्तित्व की अभिरुचि के अनुसार प्रभाव डालती हैं. किसी को लाल रंग पसंद आता है, तो किसी को लाल रंग से एलर्जी हो जाती है. मनोविश्लेषण चिकित्सक डॉक्टर मैक्समूलर ने विभिन्न प्रयोगों से यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि व्यक्ति विशेष आठ रंगों – जामुनी, नीला, हरा, लाल, पीला, कत्थई, भूरा और काला में से कोई विशिष्ट रंग का चुनाव करते हैं. उनके इस चुनाव के आधार पर व्यक्ति विशेष के विशिष्ट गुणों, अभिरुचियों और चारित्रिक अभिव्यंजनाओं का ज्ञातव्य प्राप्त कर उसके मनोविकारों का सूक्ष्म विश्लेषण किया जा सकता है. इससे रोगोपचार में सहायता मिलती है.

कहा जाता है कि यदि लाल रंग से उत्प्रेरित होने वाला व्यक्ति हर समय लाल रंग का रुमाल भी अपने साथ रखे तो उसे अवसाद नहीं होगा. यदि मंद विद्यार्थियों के लिए कक्षाओं की दीवारों को लाल रंग से पुतवा दिया जाए और वैसे ही पर्दे लगा दिए जाएं तो उनकी बुद्धि प्रखर हो जाएगी. इसी प्रकार नीले रंगों के उपयोग से व्यक्ति को तनाव से मुक्ति मिलती है.

जर्मनी में विभिन्न रंगों वाली बोतलों में पानी भर कर कुछ दिनों तक धूप में रख कर उस पानी से विभिन्न रंगों के अभाव से ग्रस्त रोगियों की सफल चिकित्सा की जाती रही है. चिकित्सक व्यक्ति विशेष को कोई रंग चुनने के लिए कहते हैं, तब उस व्यक्ति की विशिष्ट रंग के प्रति संवेदनशीलता का पता चलता है. जब वह अपना प्रिय रंग का निर्देश करता है, फिर रंगों के चार्ट से उस

विशिष्ट रंग के गुणों-अवगुणों का ज्ञातव्य मालूम किया जाता है. तत्पश्चात् उस विशिष्ट रंग की बोतल में पानी भर कर धूप में रखा जाता है. निरंतर सात दिनों तक धूप में रहते रहने पर उस विशिष्ट बोतल में उस विशिष्ट रंग की कॉस्मिक इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक -तरंगें प्रवाहित हो जाती हैं. उस जल का सेवन करने से उस व्यक्ति विशेष में उसकी अभिरुचि वाले रंग का असंतुलन समभाव में आ जाता है और सात दिनों के भीतर उस रोग का शमन हो जाता है.

व्यक्ति विशेष के विशिष्ट रंग की पहचान के लिए जर्मन चिकित्सक एक विशेष प्रयोग भी करते रहे हैं. वे रोगी को सुबह सूर्योदय की लाली में खड़ा करके – पारदर्शक कांच की एक पतली परत पर चाक मल कर उसके चेहरे को कुछ दूरी से गौर से देखते हैं, तो उस व्यक्ति के मुखमंडल पर उसके व्यक्तित्व से जुड़े रंग का एक विशिष्ट आभामंडल दिखायी पड़ता है. यदि वह आभामंडल लाल रंग की विशेषता लिये हुए है, तो उस व्यक्ति में रोग उत्पन्न होने का कारण यही है कि उसमें उस रंग का संतुलन बिगड़ गया है. तब वे उसी रंग की कांच की बोतल में पानी भर कर सात दिनों तक धूप में रखने के बाद उसको सात दिनों तक सेवन कराते हैं. इन चिकित्सकों की मान्यता है कि इस प्रक्रिया से रोगी सात दिनों के भीतर नीरोग हो जाते हैं. यही नहीं, वे चिकित्सक उस रोगी को उस रंग के प्रतिकूल रंगों से बचने की सलाह देते हैं, क्योंकि उनकी मान्यता है कि कुछ रंगों में साम्य होता है और कुछ रंग बेमेल और विपरीत होते हैं. उनके मतानुसार आजकल की तड़क-भड़क वाली बेमेल रंगों की वेशभूषा का नयी पीढ़ी पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ रहा है. आज की युवा पीढ़ी में आक्रोश और तनाव अधिक है, वह उत्तेजना से ग्रसित है, मनोविकारों और काम विकारों से पीड़ित है – उसका कारण यही है कि उस पीढ़ी की फैशन में अभिरुचि के अनुसार रंगों का तालमेल नहीं है और वह बेमेल रंगों का अधिकाधिक प्रयोग करता जा रहा है. ●

मधुमेह?



MADHUHARI

बहुप्रभावी उच्च रक्तशर्करा नियंत्रक
आयुर्वेदिक औषधियों का परिक्षित मिश्रण

घटक द्रव्य : गुड़मार, करेला बीज, जामुन गुठली, गुडवेल, बिल्व पत्र, शिलाजीत, त्रिवंग भस्म आदि ।

गुणधर्म : '**मधुहारी** आयुर्वेद की मधुमेह चिकित्सा में वर्णित उन बहुप्रभावी औषधियों का मिश्रण है, जिन का प्रयोग शताब्दियों से वैद्यगण सफलता पूर्वक करते आ रहे है । नवीन परिक्षण द्वारा रक्तशर्करा तथा मुत्रशर्करा को नियंत्रित करने में अति प्रभावी सिध्द हुई १० जडीबूटीयों, भस्मों का सन्तुलित, परीक्षित मिश्रण कर '**मधुहारी**' योग निर्मित किया गया है । उच्च रक्तशर्करा की प्रारंभिक अवस्था के रोगी तथा सभी परहेज (डाइटकन्टरोल) करने पर भी जिनकी रक्तशर्करा नियंत्रित नही रहती उन रोगियों के लिए **मधुहरी** बहुत ही उपयुक्त है । यह योग नियमित लेने से रक्तशर्करा की मात्रा नही बढ़ती, साथ ही मधुमेह के कारण उपद्रव स्वरुप होनेवाले किडनी और नाडियों के विकारों को भी यह योग नियंत्रित रखता है ।

गुडमार जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, गुड़मार यानी मिठास को मारने वाला । यह एक बेहतरीन संस्थानिक रक्तशर्करा रोधक (सिस्टमिक हायपोग्लॉसीमिक) द्रव्य है । करेला बीज : अपने रस के कारण ज्यादा शक्कर को नियंत्रित करता है । जामुन गुठली : उच्च शर्करा को नियंत्रित कर बार बार पेशाब जाने की प्रवृत्ति को रोकता है । गुड़वेल : रसायन है, नाडियों को सुरक्षित रखता है । शिलाजीत : ताकत के साथ रक्त वाहिनियों की सुरक्षा प्रदान करता है एवं मेद (फेट) को कम कर शक्कर को बढ़ने से रोकता है । त्रिवंग भस्म पेनिक्रयाज और किडनी के कोषो (सेल्स) को शक्ती और सुरक्षा दे कर शरीर की रोगप्रतिरोध क्षमता बढ़ाता है । इस प्रकार मधुमेह (डायबिटीज) की सभी विकृत्तियों को नियंत्रित करने में '**मधुहारी**' उपयोगी है । इस मिश्रण को अधिक दिनों तक लेना हानिरहित है ।

मात्रा : २ - ३ ग्राम (लगभग एक छोटा चम्मच) प्रत्येक भोजन के दस मिनीट पूर्व कुनकुने पानी से साथ सुबह-शाम ।

अपथ्य : (नही खाने योग्य) : सभी प्रकार के मीठे पदार्थ, मीठे फल, चावल, दही, आलू, मांस, मछली, मद्यपान सभी प्रकार के कंद इत्यादि । भोजन के बाद तुरंत सोना नही चाहिये । भोजन व सोने के बीच अंतर रहना आवश्यक है । **पथ्य : (खाने योग्य) :** करेला, चने फुटाने, जौ का आटा, नींबू, नरम मूली, विजयसार, बीजे का पानी, प्रात: भ्रमण, हलका व्यायाम योगासन आदि ।

उपलब्धि : १२० ग्राम प्लास्टिक डिब्बे में ।

विशेष नोट : बहुत दिनो से किसी तेज एन्टी डायबिटीक (मधुमेह नाशक) दवा या इन्स्युलीन पर अश्रित रोगियोंको इन औषधियोंका प्रयोग एकदम से बन्द नहीं करवाना है. अपितु '**मधुहारी**' उनके साथ कुछ दिन ले कर धीरे धीरे उन औषधियोंकी मात्रा कम करते करते बन्द करवाना चाहिये । '**मधुहारी**' रक्तशर्करा रोधक शक्ति को क्रमश: विकसित करता है ।

श्रेष्ठ आयुर्वेदिक उत्पादन

पूर्णतः सुरक्षित. हानिरहित

शिवायु उत्पादन निम्न लिखित शहरो मे उपलब्ध है ।

मध्यप्रदेश
इंदोर, भोपाल, जबलपुर, रायपुर, रतलाम, मंदसोर, इटारसी, बिलासपुर, बैतुल, छिंदवाडा, सिवनी, राजनांदगाव, बालाघाट, शहडोल, रीवा, सतना, खंडवा, रायगढ, जगदलपुर, ग्वालियर, कटनी, सागर, उजैन. आमला, भिलाई, दुर्ग, जावरा, जावद, अंबिकापुर दमोह नीमच,

महाराष्ट्र
नागपुर, बम्बई चंद्रपुर, यवतमाळ, गोंदिया, वर्धा, अमरावती, आकोला, रिसोड, मलकापुर, आकोट, भुसावळ, जलगांव, धुलिया, मालेगांव, नांदेड, परभणी, नासिक, सोलापुर, सटाना, कारंजालाड.

दिल्ली
राजस्थान : अजमेर, जोधपुर, जयपुर, कोटा.
उत्तर प्रदेश : लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद.
उडीसा : ब्रजराजनगर.
वेस्ट बंगाल : कलकत्ता.
आन्ध्र प्रदेश हैद्राबाद

विशेष नोट
जिन शहरो मे वितरक नही है वहा पर कंपनी द्वारा वी.पी.पी. द्वारा भेजने की व्यवस्था की गई है पत्र द्वारा संपर्क करें



शिव हर्बल रिसर्च लेबोरेटरी प्रा. ली. ... 440 018

शिवायु मधुहारी की विस्तृत जानकारी हेतु निरोगधाम अप्रेल 91 ग्रीष्म ऋतु अंक के पृष्ठ क्र. 61 पर प्रकाशित लेख अवश्य पढ़े

यम द्वितीया माहात्म्य

– रामकृष्ण शुक्ल

कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया को यह पर्व मनाया जाता है. इस दिन यमुना ने अपने भाई यमराज को अपने घर पर भोजन कराया और तिलक लगाकर सम्मान किया था, इसलिए इस त्योहार का नाम 'यम द्वितीया' पड़ा. यह भाई-बहन के प्रगाढ़ स्नेह का प्रतीक है, अतः इसे 'भैया दूज' भी कहते हैं.

इस दिन भाई, बहन के घर जाकर तिलक कराता है और उसी के हाथ बना हुआ भोजन करता है. इसमें यह आवश्यक नहीं कि भाई-बहन सगे ही हों. नाते-रिश्ते के भाई-बहन भी इस त्योहार को सगे के समान ही मनाते हैं. यहां तक कि भाई के मित्र या धर्म-भाई अथवा मुंहबोले भाई भी तिलक कराने के लिए जाते हैं.

पाप-कर्मों से मुक्ति दिलाने वाला पर्व

जो भाई-बहन परस्पर हाथ पकड़कर यम द्वितीया के दिन, मथुरा में विश्राम घाट अथवा अन्यत्र कहीं भी, यमुना में स्नान करते हैं, वे पाप-कर्मों से छुटकारा पा जाते हैं.जो कोई भी व्यक्ति एव वर्ष उपवास रहकर यम द्वितीया के दिन यमराज की पूजा करता है,वह सभी दुश्कर्मों से मुक्त हो जाता है और अंत में उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है. यम द्वितीया के विषय में जो कथा प्रचलित है, वह इस प्रकार है –

सूर्य की पत्नी संज्ञा की दो संतानें थीं – एक पुत्र, जिसका नाम यम था और दूसरी पुत्री-यमुना थी. अपने पति के तेज को न सह सकने के कारण संज्ञा ने छाया का वेश बनाया और वह उत्तरी ध्रुव में जाकर रहने लगी. उसने शनि नामक पुत्र और ताप्ती नामक पुत्री को जन्म दिया. इसके बाद संज्ञा से अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई. इस प्रकार संज्ञा और छाया दो रूप हो गए और वे दोनों अपने को पृथक-पृथक मानने लगीं.

संज्ञा का व्यवहार यमराज और यमुना के साथ अच्छा नहीं था. वह उनके प्रति सौत की संतान जैसा बर्ताव करने लगी. यह देखकर यमराज ने घर छोड़कर यमलोक का निर्माण किया और उसमें रहने लगे. उन्होंने नरक का अधिकार संभाल कर पापियों को दंड देने का कार्य अपने हाथ में ले लिया. यमुना भी पिता का घर छोड़ कर गोलोक में जा पहुंची और वहां से धरती पर आ गई. उसने अपनी गतिविधियों का प्रमुख केंद्र मथुरा के विश्राम घाट को बनाया.

वर्षों बीत जाने पर एक दिन यमराज को अपनी बहन यमुना का ध्यान आया. उन्होंने यमदूतों को यमुना की खोज-खबर लाने के लिए भेजा. यमदूतों ने संपूर्ण धरती पर खोजा, परंतु उन्हें यमुना नहीं मिली. अंत में यमराज स्वयं उसकी खोज करने निकल पड़े. उन्होंने गोलोक, स्वर्ग और फिर पृथ्वी पर यमुना को ढूंढ़ा, परंतु उसका कहीं भी पता न चला. तब वे निराश होकर जैसे ही लौटने वाले थे कि उनकी दृष्टि मथुरा स्थित विश्राम घाट पर गई जहां यमुना का प्रमुख निवास स्थान था.

उसी समय यमुना ने भी अपने भाई यमराज को देखा और तुरंत वह अपने भाई के स्वागत-सत्कार के लिए उठ खड़ी हुई. वह यमराज को अपने घर ले आई और तिलक लगाकर स्वागत-सत्कार किया तथा भोजन कराया.

इससे प्रसन्न होकर यमराज ने अपनी बहन यमुना से 'वर' मांगने को कहा. लेकिन यमुना ने कहा कि 'जब मुझे किसी वस्तु की इच्छा ही नहीं है, तो मांगकर क्या करूंगी?' यमराज ने कहा कि 'बहन यमुने! तुम्हें वर मांगना ही होगा क्योंकि मैं तुम्हें कुछ देना चाहता हूं.'

यमुना बोली – 'ठीक है, यदि तुम देना ही चाहते हो तो यह वरदान दो कि मेरे जल में स्नान करनेवाले व्यक्ति को नरक में न जाना पड़े.' यह सुनकर यमराज चिंता में पड़ गए और बोले कि बहन, तुमने यह क्या मांग लिया. यदि ऐसा हुआ तो नरक ही खाली हो जाएगा.'

यमुना को भी अपनी भूल का आभास हो गया. उसने अपना वर संशोधित करके कहा कि 'इतना करो कि जो भाई-बहन परस्पर हाथ पकड़कर विश्राम घाट पर यमुना में स्नान करें, उन्हें यमलोक में कभी न जाना पड़े.' यमराज ने इस बात को स्वीकार कर लिया.

उस दिन से यम द्वीतिया का इतना महत्व बढ़ा कि विश्राम घाट पर असंख्य नर-नारी भाई-बहन के रूप में स्नान करने लगे और भाई बहने से तिलक कराने तथा अलंकरण आदि दे कर प्रसन्न कर उसके घर जाकर भोजन करने लगे.

इस प्रकार जो भाई-बहन इस दिन विश्राम घाट पर यमुना के पवित्र जल में स्नान करते हैं वे पाप-कर्मों से मुक्त होकर आरोग्य और दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं. उन्हें नरक में जाने से छुटकारा मिल जाता है और अंतकाल आने पर दिव्य देह धारण कर स्वर्ग लोक की प्राप्ति करते हैं.

यम द्वितीया का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है –

यमद्वितीया
मध्याह्नव्यापिनी –
पूर्वविद्धा
चेति हेमाद्रिः।
उर्जशुक्लद्वितीयायाम
अपरह्रेऽर्च्यमम् ।।
सननं कृत्वा भानुजायां
यमलोकं न पश्यति।
प्रपिदिविधिरुक्तः
लभ्यते यदि प्रातः सायं
मंगलमालिका ।।

कार्तिक शुक्ल पक्ष की द्वितीया (चाहे वह मध्याह्न व्यापिनी हो अथवा प्रातः या सायं व्यापिनी हो, उस समय) को यमुना में स्नान करना चाहिए तथा यमराज को अर्ध्य देकर उनकी पूजा करनी चाहिए. ऐसा करने वाला व्यक्ति कभी यमलोक को नहीं जाता तथा आरोग्य, सुख-शांति एवं मांगलिक वस्तुओं को प्राप्त करता है.

अमृत वचन

मनुष्य का जीवन श्रद्धा और विवेक, इन दोनों से चलता है. सब लोग विवेकी बन जाएं, यह योजना बहुत अच्छी है, परंतु सारी जनता एक जैसी शिक्षित नहीं हो सकती.

विवेकी न हो परंतु श्रद्धा हो तो वह दूसरे के विवेक से लाभ उठा सकता है. दूसरे के विवेक से लाभ उठाने की योग्यता का नाम 'श्रद्धा' है.

(स्वामी) अखंडानंद सरस्वती

जीवन में निरंतर ताज़गी और अटूट दिलचस्पी तभी मिल सकती है, जब भीतरी विकास निरंतर होता रहता है.

(श्री) अरविंद

श्वास रोग और उपचार

वैद्य जी. एम. शर्मा

आज के समय में बेतहाशा भागदौड़ की ज़िंदगी और पर्यावरण दूषित होने के कारण लोगों में दमा की शिकायत आम बात होती जा रही है. दमा का प्रकोप अक्सर गर्मियों के दिनों में रोगी पर ज़्यादा असर करता है जबकि सर्दियों में इसका प्रभाव कम रहता है. फेफड़े के अंदर वायु पहुंचाने वाली नलियां छोटी-छोटी मांसपेशियों से ढकी रहती हैं और इन मांसपेशियों में आक्षेप होने के कारण जो सांस लेने में तकलीफ होती है और सांस लेने की गति बढ़ जाती है उसे श्वास या दमा रोग कहते हैं. श्वास फूलने लगता है, बेचैनी बढ़ जाती है और फिर रोगी इस अवस्था में एकदम असहाय हो जाता है. कुछ दमा के मरीज़ ऐसे भी होते हैं जो बारहो महीने इससे प्रभावित रहते हैं और उन्हें अधिक कष्ट होता है.



लक्षण

जब रोगी को दमा का दौरा पड़ता है तब रोगी को सांस लेने में तकलीफ़ होने लगती है, गला अवरुद्ध हो जाता है, छाती पर भारी दबाव-सा मालूम पड़ता है, पेट फूल जाता है, कब्ज़ हो जाती है. सिर भारी हो जाता है, उल्टी करने की इच्छा होती है. रोगी वायु पाने के लिए लम्बी सांस भरने की कोशिश करता है और निरंतर यही प्रक्रिया ज़रूरी रहती है. इसके साथ ही वह खांसने भी लगता है.

खांसी की चिकित्सा न करने पर जब वही खांसी पुरानी हो जाती है, तब वह दमा को उत्पन्न कर देती है. कई बार यह भी देखने में आया है कि दमा के मरीज के बच्चों को भी यह बीमारी लग जाती है और उन्हें जन्म से ही यह रोग जकड़ लेता है. शुरुआत में तो इस रोग का अनुभव कम होता है, लेकिन जैसे-जैसे यह पुराना होता जाता है इसका वेग बढ़ने लगता है और कुछ समय बाद ऐसी स्थिति हो जाती है कि यह दिन में एक बार तो अपना प्रभाव दिखा देता है. फिर दमा का दौरा पड़ना नियमित प्रक्रिया-सी बन जाती है.

श्वासरोग की चिकित्सा

दमा होने पर यकृत में वृद्धि हो जाती है तथा हृदय की दुर्बलता भी बढ़ जाती है. इसलिए इसकी चिकित्सा शीघ्र ही ज़रूरी है ताकि स्थायी लाभ हो सके. यदि दमा होने के शुरू में ही इसका इलाज किया जाए तो यह शीघ्र ठीक हो सकता है लेकिन पुराना होने पर दमा की बीमारी का जड़मूल से नष्ट होना मुश्किल होता है.

दमा के दौरे के समय ऐसी दवा देनी चाहिए, जिससे कफ़ पतला हो कर निकल जाए. जब कफ़ पतला हो कर निकल जाता है तो मरीज़ को आराम हो जाता है. जब दमा का दौरा आए तो रोगी को गर्म पानी में पैर रखवा कर कुछ समय तक बैठाए रखना चाहिए.इससे दमे का वेग कम हो जाता है. जवासे और धतूरे का पत्ता मिला कर अंगारों पर डालें और उस धुएं को फेफड़े में पहुंचाएं.इससे दौरा शांत हो जाता है. धतूरे के पत्तों की सिगरेट बना कर भी पीने से आराम मिलता है.

लेकिन इसके सेवन से पहले रोगी को धतूरे के पत्ते का जरा-सा धुंआ पी कर देख लेना चाहिए कि वह उसे बर्दाश्त कर सकेगा या नहीं, क्योंकि धतूरा स्वयं में एक प्रकार का जहर है. इसलिए बिना परीक्षण के धतूरे का उपयोग नहीं करना चाहिए.

गरमागरम दूध, चाय या गरम पानी भी दमा के दौरे के समय लाभदायक होते हैं. दमा के दौरे को बंद करने के लिए हिमालय पर्वत पर पैदा होने वाली 'सोम लता' नामक जड़ी तुरंत फ़ायदा पहुंचाती है. इस जड़ी का चूर्ण ३७५ मि. ग्रा. से १ ग्राम तक १२५ मि. ग्राम. रस सिन्दूर मिला कर जल या मधु के साथ तीन घंटे के अंतर से रोगी को खिलाना चाहिए. 'वैद्यनाथ श्वास कल्प' में 'सोम लता' का ही प्रयोग किया जाता है और इससे रोगी को तुरंत आराम होता है.

दमा मुख्य रूप से वायु का रोग है. वायु रोग होने के कारण ही इसमें गर्म आहार उपचार से लाभ पहुंचता है. ईंट को गर्म करके कपड़े में लपेट कर छाती सेंकने से भी आराम होता है. चन्दनादि तैल की मालिश कर हाथ को अग्नि पर सेंक कर छाती पर सेंकने से भी लाभ होता है. छाती पर पुराने घी को गर्म कर सेंकने से भी फ़ायदा होता है. यदि किसी रोगी को गर्म आहार उपचार अनुकूल न आता हो

दमा का स्थायी इलाज़

स्कॉटलैंड की एक जैव औद्योगिक कंपनी ने हाल ही में एक ऐसी भेड़ का विकास किया है जो ए.ए.टी. प्रोटीन युक्त दूध देगी. यह तथ्य तो समस्त चिकित्सकों ने सर्व-सम्मति से मान लिया है कि एल्फावान एंट्री ट्रिपासेन (ए.ए.टी.) नामक प्रोटीन की कमी से फेफड़ों का विकार बढ़ता है, सांस फूलने लगती है और ऐसा दमा हो जाता है जो दम तोड़ने के साथ ही ख़त्म होता है. इस दिशा में आनुवांशिकी विशेषज्ञों ने निरंतर कई वर्षों तक प्रयोग करने के बाद एक ऐसी भेड़ विकसित की है जिसके दूध के सेवन से दमा कुछ ही दिनों में अपना दम तोड़ कर भाग जाता है.

स्मरण रहे अनेक आयुर्वेदाचार्य इस प्रयोग के पूर्व ही दमा रोगियों को भेड़ बकरी के दूध के सेवन करने की सलाह देते रहे हैं. यह प्राचीन चिकित्सा पद्धति है.

तो कुछ अन्य औषधियां भी बतायी जा रही हैं, जिनसे शीघ्र लाभ होता है.

कफकर्त्तरी - जावित्री २४ ग्राम, इलायची २४ ग्राम, पुराना बांस ४८ ग्राम, कष्टकारि फल २४ ग्राम, गांजे की भस्म २४ ग्राम.

बनाने की विधि: लोहे की कड़ाही में ऊपर लिखी दवाइयां डाल कर ९६० ग्राम सूखा अपामार्ग (चिड़चिड़ी) डाल कर आग लगा दें. बांस के डंडे से आग को इधर उधर करके अच्छी तरह जला दें ताकि कोई कोयला न रह जाए. दवा को अच्छी तरह जला कर भस्म बना लें. सभी चीज़ों को महीन पीस कर एक शीशी में भर लें. एक या आधे पान के टुकड़े में इस दवा को एक चुटकी डाल कर रोगी को दें और वह इस पान को धीरे-धीरे चबा कर रस पेट में पहुचाए. दो या तीन खुराक में ही इसका असर मालूम हो जाएगा और दमा का दौरा शांत हो जाएगा. दौरा शांत होने पर रोगी को नियम से रोज़ चार खुराक देनी चाहिए. इससे कफ़ निकल जाता है और खांसने में भी कोई खास तकलीफ़ नहीं होती. कफ़ के निकलने से शरीर कमज़ोर तो अवश्य हो जाता है लेकिन श्वास का दौरा बन्द हो जाता है.

भार्गी गुड़: भारंगी की जड़ ६ कि., दशमूल ६ कि. और हरड़ एक सौ नग, इन सब चीज़ों को कलईदार बर्तन में डाल कर ४१ किलो ५२ ग्राम जल मिला कर औटाएं. १० कि. २६३ ग्राम पानी शेष रहने पर नीचे उतार कर छान लें. हरड़ रख लें और बाकी दवाओं को फेंक दें. इस काढ़े में पुन: हरड़ और ६ कि. गुड़ मिला कर पुन: औटाएं. गाढ़ा हो जाने पर सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, तेज़पात और इलायची ये दवाएं प्रत्येक ४८ ग्राम और जवाखार २४ ग्राम सभी को चूर्ण करके मिला दें. साथ ही २८० ग्राम शहद भी मिला दें. अब १ हरड़ और ६ ग्राम से २४ ग्राम तक चटनी बकरी के दूध के साथ खाएं. यह दमा की सबसे अच्छी औषधि है. इससे सभी तरह की खांसी भी दूर होती है.

कनकासव: धतूरे का फल, पत्ता, जड़ की छाल और शाखा ४६६.५ ग्राम, अडूसे की जड़ की छाल, मुलेठी, पीपल, कण्टकारि, नागकेशर, सौंठ, भारंगी, जौ और तालीसपत्र - इन सात दवाओं का प्रत्येक २३३ ग्राम, धाय के फूल १.८७ किलो, मुनक्का २ कि. ३३३ ग्राम, चीनी ११.६८५ कि. (दो तुला) शहद ५.८३ कि. (एक तुला) और जल ६० कि. ये सब द्रव्य एक पात्र में रख कर मुंह बंद करके एक महीना तक रखें. बाद में छान कर बोतल में भर लें. भोजन के बाद १७.५ से २८.५० ग्राम तक पीएं. इसके निरंतर सेवन से श्वास रोग में बहुत लाभ होता है.

द्राक्षासव: मुनक्का ४.६६५ किलो, शहद ४.६६७ किलो मिश्री या चीनी ४.६७७ किलो, धाय के फूल ९३३ ग्राम, शीतल मिर्च (कबाबचीनी) लौंग, जायफल, कालीमिर्च, दालचीनी, इलायची, तेज़पात, नागकेशर, पीपल, चित्रक, चव्य, पीपरामूल और रेणुका - प्रत्येक ४६.४ ग्राम. पहले मुनक्का को ६० किलो जल में पकाएं, जब १५ कि. जल शेष रह जाए, तब उसको उतार लें और शीतल होने पर मुनक्का को खूब मर्दन कर फिर जल में छान लें और एक घड़े में भर दें. शहद और चीनी भी उसमें डाल दें. बाकी दवाओं का मोटा चूर्ण बना कर इसी घड़े में भर दें और कपड़मिट्टी लगा कर मुंह बंद कर एक महीने तक रहने दें. एक महीना बाद छान कर बोतल में भर लें. इसकी मात्रा २३.२ ग्राम से ५८.३२ ग्राम तक है.

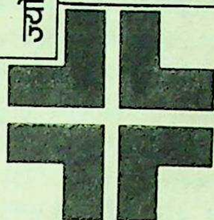
यह श्वास, कास और मन्दाग्नि में अच्छा फ़ायदा करता है. यह बलवर्द्धक है और कब्ज़ को दूर करता है.

च्यवनप्राश: यह फेफड़ों को मजबूत करता है और दिल को ताकत देता है. पुरानी खांसी और पुराने दमा में अत्यंत लाभदायक है. वैद्यनाथ, झन्डु आदि कम्पनियों का च्यवनप्राश प्रसिद्ध है. जो दमा में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है.

परहेज़

रोगी के पेट में कब्ज़ियत नहीं होनी चाहिए और अधिक देर से पचने वाला भोजन नहीं करना चाहिए. सायंकाल शीघ्र भोजन एवं गर्म पानी पीना चाहिए.

प्रेम, विवाह, पत्नी का कारक - शुक्र



शुक्र नक्षत्रमंडल का सर्वाधिक चमकीला ग्रह है और पृथ्वी का निकटतम 'पड़ोसी' भी. आकार-प्रकार में भी यह काफी हद तक पृथ्वी के समान है. इसका व्यास लगभग १२, १०४ कि. मी. और सूर्य से इसकी दूरी करीब १०८, २०८, ९०० कि.मी. है. सूर्य के चारों ओर एक बार परिक्रमा करने में इसे लगभग २२५ दिन लग जाते हैं. जबकि ३० नत अपने अक्ष पर इसको एक बार घूमने में औसतन २४३ दिन लग जाते हैं.

शुक्रग्रह, सूर्य से अधिक से अधिक ४७० दूर रह सकता है, यही वजह है कि यह ग्रह या तो सूर्यास्त के बाद ही दिखाई देता है या फिर सूर्योदय के पूर्व. इसीलिए यह 'सांझ का तारा' (ईवनिंग स्टार) या 'भोर का तारा' (मार्निंग स्टार) नाम से भी जाना जाता है.

ज्योतिषशास्त्र में शुक्र

अंग्रेजी में इस को 'वीनस्' कहते हैं, जो रोमवासियों की सुंदरता की देवी का नाम है और अद्भुत संयोग है कि भारतीय ज्योतिष ने भी इसे सुंदरता, कोमलता और भावनाओं का प्रतीक ग्रह माना है.

शुक्र का स्वरूप

प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रंथ 'लघुजातक' के अनुसार शुक्र का स्वरूप श्यामवर्ण, विरलशरीर, काले घुंघराले केशवाला, सुखी, दर्शनीय कफ-वायु प्रकृति तथा अधिक वीर्य वाला बतलाया गया है.

'सारावली' ने कुछ विशद् रूप से शुक्रप्रधान जातकों का स्वरूप इस तरह रेखांकित किया है -

चारूदीर्घभुजः पृथुरूवदन
शुक्राधिकः कान्तिमान्
कृष्णाकुञ्चित
सूक्ष्मलम्बिचिकुरो
दुर्वादलश्यामलः ।
कामी पातकफात्मकोऽति
सुभगश्चित्रमाबंरो राजसो
लीलावान्मतिमान्विशालनयनः
स्थूलांसदेशः सित्ः ।।

अर्थात् मनोहर स्वरूप, लंबे बाहु, विशाल सीना, अधिक वीर्य, कांतिमान्, काले लंबे घुंघराले बाल, कामी, वात-कफ प्रकृतिवाला, अत्यंत सौभाग्यशाली, रंगारंग वस्त्र प्रिय, रजोगुणी, कामप्रवीण, बुद्धिमान, सुंदर नेत्र और स्थूल कंधोंवाला शुक्र है.

ज्योतिष शास्त्र में वैसे तो सात ग्रह हैं, पर हर ग्रह हर किसी के लिए हितकारी नहीं होते. परंतु शुक्र ग्रह ऐसा ग्रह है, जो प्रेम, विवाह और पत्नी की खोज में पग-पग पर साथ देता है.

ग्रहों के मंत्रिपरिषद में इसे मंत्री का पद प्राप्त है. ज्योतिष के सर्वाधिक शुभ ग्रहों गुरू और बुध के साथ शुक्र भी शामिल है. शुक्र को जलीय और स्त्रीग्रह माना गया है. ब्राह्मणवर्ण का यह ग्रह आग्नेय कोण (दक्षिण-पूर्व दिशा) का स्वामी है और शुक्लपक्ष एवं अपराह्न में बली होता है.

ग्रहों के नैसर्गिक शत्रुता-मित्रता के आधार पर बुध और शनि इसके घनिष्ठ मित्र हैं, जबकि सूर्य और चंद्रमा इसके शत्रु और मंगल, बृहस्पति से यह समभाव रखता है.

शुक्र और राशियां

वृष और तुला - ये दो राशियां शुक्र की स्वराशि कहलाती हैं, जिनमें तुलाराशि इसकी मूलत्रिकोण राशि कहलाती है. मीन राशि जहां इसकी उच्च राशि है वहीं कन्या राशि में यह ग्रह 'नीच' का माना जाता है. यहां ध्यान देने की बात यह है कि जब कोई ग्रह अपनी उच्चराशि में होता है तो बली हो जाने के कारण अपने कारकत्व एवं शुभ गुणों की वृद्धि करता है, इसके विपरीत अपनी नीच राशि में कमजोर होने के कारण अपने से संबंधित कारकत्व का ह्रास करता है.

शरीर के सात धातुओं में से इसका अधिकार वीर्य या शुक्राणुओं पर है.

किन व्यक्तियों का कारण है शुक्र

जातक की जन्मकुंडली के सप्तम भाव पर शुक्र का नैसर्गिक अधिकार है. सप्तम भाव, प्रेम, विवाह, स्त्री संभोग का द्योतक भाव है. अतः शुक्र प्रेम, प्रेमिका, विवाह, पत्नी इत्यादि का कारक ग्रह है. यदि व्यक्ति का जन्म दिन में हुआ हो तो शुक्र माता का भी प्रतिनिधि ग्रह बन जाता है. (रात में जन्म लेने पर चंद्रमा, माता का प्रतिनिधित्व करता है)

साथ ही कवि, कलाकार, संगीतकार, नर्स इत्यादि शुक्र से प्रभावित व्यक्ति होते हैं.

शुक्र भोग-विलास, ऐश्वर्य, वाहन का भी कारक ग्रह है. अतः वे सारी वस्तुएं या क्रियाकलाप जो इनसे संबंधित हैं, शुक्र के कारकत्व के अंदर आते हैं. जैसे - अच्छे वस्त्र (खास कर रेशमी), रत्न-आभूषण, इत्र-खुशबू, श्रृंगार सामग्री, सौन्दर्य, वशीकरण, गीत-काव्य, नृत्य-संगीत, रति, स्त्री-सुख, शराब, आशिकी आदि.

शुक्रप्रधान जातकों के लिए लाभकारी पेशे व व्यवसाय

फिल्म व सिनेमा से सभी कार्य व व्यवसाय, नर्सिंग, पुरातत्वकार्य, वाहन का व्यापार या वाहनों का चलवाना, सौन्दर्य प्रसाधनों, डेयरी, शराब का व्यापार, रेस, सट्टा, लॉटरी, जुआ आदि का कार्य लाभप्रद रहता है.

शुक्र की अशुभ स्थिति से उत्पन्न तकलीफें

अनुभवों से सर्वप्रथम तो यह पाया गया है कि शुक्र यदि पापग्रहों खासकर मंगल, राहु, शनि के साथ कुंडली में बैठा हो, तो संबंधित जातक में चारित्रिक दोष ला देता है यानि ऐसे व्यक्ति पथभ्रष्ट हो सकते हैं. यदि बहुत ही संस्कारयुक्त परिवेश में पला-बढ़ा हो तो भी शुक्र की ऐसी स्थिति जातक को प्रबल कामी तो बना ही देती है. यह कोरी सैद्धांतिक बातें नहीं, बल्कि

अनुभवगम्य तथ्य है.

शुक्र का स्त्री और पुरुष के जननांगों पर अधिकार है. अतः शुक्र के अशुभ प्रभाव में रहने से यह उक्त अंगों से संबंधित रोग व तकलीफें पैदा करता है.

जैसे-वीर्यविकार, शुक्राणुओं की कमी या उसमें विकार, अंडरोग तथा स्त्रियों में गर्भाशय (ओवरी) मासिक-धर्म संबंधी तकलीफें देता हैं. इसके अतिरिक्त कामेच्छा में कमी, नपुंसकता आदि भी देता है.

शुक्रजन्य तकलीफें दूर कैसे करें?

ऐसे व्यक्ति को चाहिए कि वे सफेद अथवा नीले रंग के वस्त्रों और रंगों (वस्त्र, गिलाफ, कवर, दीवार के रंग आदि के रूप में भी कर सकते हैं) का अधिकाधिक प्रयोग करें. नाईटलैंप नीले रंग का जलायें तो और भी फायदेमंद रहेगा. (इससे बहुत अच्छा और शीघ्र लाभ मिलता है. यह अनुभूत प्रयोग द्वारा सिद्ध हुआ है).

संभव हो सके तो कम-से-कम एक रत्ती का बढ़िया हीरा शुक्रवार को शुक्र की 'होरा' में सोने या चांदी में जड़वा कर शुक्रवार को ही उस वक्त दाहिने हाथ की कनिष्ठा में धारण करें. जब शुक्र नक्षत्र मंडल में उदय व मार्गी हो. हीरे के अभाव में बढ़िया ओपल या स्फटिक की माला धारण कर सकते हैं. साथ ही यदि धार्मिक कृत्यों पर विश्वास हो तो तांत्रिक मंत्र'ॐ शुं शुक्राय नमः' का नित्य जाप करें. इन तमाम साधनों से शुक्रजन्य तकलीफें तो दूर होंगी ही, साथ ही वीर्य की पुष्टि व संभोग सामर्थ्य भी बढ़ेगा.

शुक्रास्त में विवाह नहीं होता

अज्ञानी व अविश्वासी जन हिन्दू ज्योतिष का भले ही मजाक उड़ायें किंतु हमारे श्रद्धेय और विद्वान महर्षि एवं आचार्यों ने हिन्दुओं के हर धार्मिक अनुष्ठानों, वर्जनाओं आदि का विवाह, विवाह सुख, पत्नी, दाम्पत्य जीवन आदि पर इतना प्रभाव देखा गया है कि महर्षियों ने शुक्रास्त की अवधि तक इस विवाह कार्य को बिल्कुल निषिद्ध कर रखा है. कारण? इसका कारण यह है कि शुक्र के अस्त रहने पर (जब शुक्र, सूर्य के निकट लगभग १०° तक आ जाता है तो वह अस्त माना जाता है.) वह जीन, अशक्त व रश्मिविहीन हो जाता है, फलतः पृथ्वी पर वह अपनी शुभरश्मियों का प्रसार नहीं कर पाता.

कम से कम विज्ञान की बात मानने से तो हमें कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि सौरमंडल के सूर्य, चंद्र से लेकर अन्य सभी ग्रह हमें अपने-अपने ढंग से प्रभावित करते हैं, और महर्षियों के समय से अब तक यह अनुभवों और प्रयोगों द्वारा सिद्ध है (ज्योतिष में) कि शुक्रग्रह का उपरोक्त सभी चीजों पर अधिकार है, अतः शुक्रास्त में हिन्दुओं में विवाह कार्य निषिद्ध है और जिसका पालन आज तक होता आ रहा है.

– डॉ. प्रकाश कुमार 'आलोक'

चमत्कारिक औषधि - सूर्यमुखी

– डॉ. एल.बी.शर्मा

देश विदेश में प्रचलित सूर्यमुखी को स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत उपयोगी और चमत्कारिक द्रव्य (औषधि) माना जाता है. आजकल इसके बीजों का तथा तैल का उपयोग बहुत हो रहा है.

सूर्यमुखी (Helianthus Annulis) के पौधे लगभग ८ फुट लम्बे होते हैं. इसके पीले रंग के गोलाकार बड़े-बड़े फूलों का आकार सूर्य की भांति होता है तथा इसके फूलों का मुख हमेशा सूर्य की तरफ़ रहता है. सूर्योदय होते ही इसके फूलों में जान-सी आती है तथा सूर्यास्त होते ही ये मुर्झा जाते हैं. इस प्रकार सूर्य की किरणों से इसमें प्रचुर मात्रा में बल आता है. इसके बीज काले रंग के होते हैं. इसकी गिरी खाने में स्वादिष्ट होती है. बीजों की गिरी व तैल प्रयोग औषधि के लिए किया जाता है.

गुण-धर्म

यह बल्य औषधि है. यह त्रिदोषशामक, जीवनीय, बाजीकर, संघटनकारक तथा शिरागत संकोच नाशक है. इसके बीजों की गिरी पर अमेरिका के वैज्ञानिकों ने कई वर्षों तक अनुसन्धान किया है जिससे यह एक रसायन औषधि सिद्ध हुआ है.

सुर्यमुखी के बीजों में २५% प्रोटीन, सभी प्रकार के विटामिन,खनिज पदार्थ अंश जैसे-मैग्नेशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम, आयोडिन, मैंगैनीज, पोटैशियम, तांबा आदि लगभग पच्चास भाति के खनिज लवण, जो कि शरीर को स्वस्थ बनाने, रोग दूर करने तथा लम्बी आयु के लिए आवश्यक पदार्थ हैं. प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं,

इसमें विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में होने से दृष्टि क्षीणता में उपयोगी है. पढ़ने-लिखने पर थक जाना, सिर दर्द होना, पढ़ा-लिखा याद नहीं रहना, दिमाग़ बहुत कमज़ोर होना, रात को नींद नहीं आना, ज़रा-ज़रा सी बात पर क्रोध, चिड़चिड़ापन, दूसरों से बिना कारण झगड़ना, बाल समय से पहले सफ़ेद होना आदि में सूर्यमुखी के बीजों की गिरी से बहुत लाभ मिलता है.

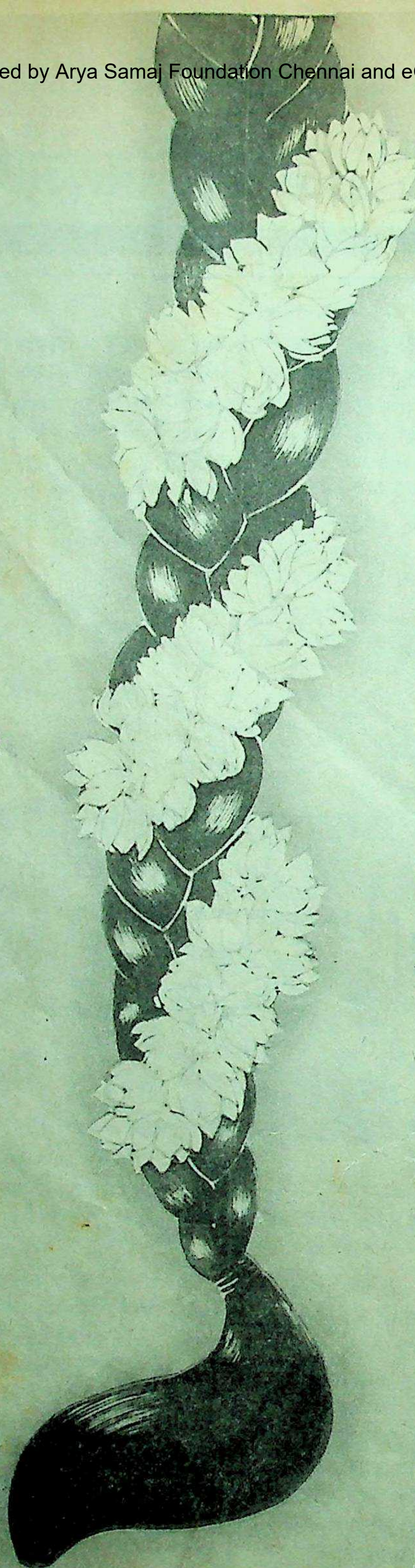
थोड़ा काम करने पर थकावट प्रतीत होना, जवानी में बुढ़ापा का एहसास होना, कमज़ोरी वज़न का लगातार गिरना,पिंडलियों में दर्द व ऐठन होना आदि में ३-४ मास तक इसके बीजों की गिरी का प्रयोग करने से मेवा, मांस, मछली, अण्डा आदि से अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है, जिससे ७०-८० वर्ष की आयु में भी दिन भर कठोर से कठोर परिश्रम करने पर भी थकान नहीं आती.

सम्भोग में आनन्द महसूस नहीं होना, वीर्य शीघ्र निकल जाना, संभोग करने के समय इंद्रिय में ताकत नहीं आना, संभोग के समय सांस फूलना, दिल धड़कना, घबराहट होना आदि में बीजों की गिरी खाने से मर्दाना शक्ति पैदा होने लग जाती है. कारण कि इसमें विटामिन 'बी' कम्पलेक्स 'ए', 'डी', 'ई', प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं.

इसके बीजों की गिरी में आधे के लगभग तेल होता है, जोकि देशी घी, मक्खन, वनस्पति तेल, मांस आदि से अधिक लाभकारी है. घी, मांस आदि के खाने से शरीर मांस तथा चर्बीयुक्त होता है तो शरीर की रक्तवाहिनियों के अंदर कोलेस्ट्रॉल जम जाने से रक्तवाहिनियां कठोर और तंग हो जाती हैं, जिससे हृदय रोग हो जाते हैं. रक्तचाप बढ़ने लगता है, हृदयापघात होने की संभावना हो जाती है. इसके तेल का प्रयोग करने से रक्तवाहिनियों की जमी हुई चर्बी कम हो जाती है

इसके तैल का प्रयोग करने से मनुष्य का चेहरा व त्वचा सुन्दर, लावण्यमय, चमकदार हो जाते हैं तथा चेहरे की झुर्रियां दूर हो जाती हैं. बाल रेशम की भांति मुलायम व काले रहते हैं.

सूर्यमुखा के बीज़ों की गिरी तथा इसके तैल का प्रयोग औषधि रूप में किया जाता है. बीजों को खरल में डालकर गोलाई में हल्के-हल्के रगड़ने से इनके छिलके आसानी से अलग हो जाते हैं. इन गिरियों को ६ माशा से २ तोला दिन में दो बार पीसकर (बारीक करके) मधु से ले सकते हैं. इसकी गिरी को मुख में चबा-चबाकर खाकर दूध पी लेना भी लाभदायक होता है. शरद ऋतु में इसका प्रयोग दो बार प्रातः सायं तीन माह तक करने पर मनुष्य हृष्टपुष्ट, जोश व उमंग के साथ रह सकता है.




Ramtirth
Ramtirth

भस्मक रोग – कारण और निवारण

– वैद्य सरोज शुक्ला (आयुर्वेद रत्न)



आरोग्य-रोग के मूल कारणों में जठराग्नि या पाचकाग्नि प्रमुख है. जब अग्नि तीक्ष्ण, मंद एवं विषम होती है, तब रोगों का कारण होती है और यही अग्नि जब सम होती है तब आरोग्य का हेतु है. अग्नि की तीक्ष्णता में अधिक से अधिक मात्रा में किया गया आहार भी सुखपूर्वक पच जाता है इसलिए कुछ आचार्य (सभी नहीं) इसे उत्तम मानते हैं. परंतु,अग्नि की तीक्ष्णता क्षुधा को अत्यधिकं तीव्र कर देती है, जिससे शरीर में अनेक विकार उत्पन्न होने लगते हैं. इन्हीं विकारों में एक है 'भस्मक', जिसे अत्यग्नि या तीक्ष्णतर अग्नि भी कहते हैं.

प्रश्न उठ सकता है कि जब सम अग्नि मधुर एवं स्निग्ध आदि भोजन करने पर भी 'सम' रहती है तो उसे उत्तम माना जाता है, परंतु तीक्ष्ण अग्नि को विकारों में क्यों गिनां जाता है? क्योंकि, सम अग्नि क्षुधा रोकने पर भी कोई हानि नहीं करती, किंतु तीक्ष्ण अग्नि थोड़े समय के लिए भी क्षुधा रोकने से शीघ्र ही पित्तज रोगों को उत्पन्न कर सकती है. कहा गया है कि तीक्ष्णाग्नि आहार को पचाती है और आहार न मिलने पर दोषों को पचाती है, दोष पचने पर धातुओं को पचाने लगती है और धातु पचने पर प्राणों को पचा डालती है. इसीलिए इस रोग का नाम 'भस्मक' रोग है.

भस्मक रोग के कारण

अगर पुरुष की प्रकृति पित्त प्रधान हो और वह अग्नि-अधिष्ठान को कुपित करनेवाले आहारों का सेवन करता हो तो इससे पित्त की वृद्धि हो जाती है. पित्त की इस वृद्धि के कारण व्यक्ति की पाचक अग्नि तीक्ष्णतर हो जाती है, जिससे उसकी पाक क्षमता अत्यधिक तेज़ हो जाती है. इसके कारण पित्त के आश्रित धात्वग्नियों का पचनात्मक काम भी तेज़ हो जाता है. इस प्रकार उत्पन्न हुई तीक्ष्णाग्नि किसी तरह का तीक्ष्ण, अधिक मात्रा तथा रूक्ष, हित या अहित आहार को पचा डालती है. फिर भी, अग्नि के बल में कोई अंतर नहीं आता. अधिक से अधिक आहार का सेवन करने पर भी वह उसे शीघ्र पचा डालती है. श्री भाव मिश्र के अनुसार

बह्वर्तिरूक्षान्नभुजां नराणां
क्षीणे कफे मारुतपित्त वृद्धौ ।
अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निर्भुक्तं
क्षणात् भस्म करोति यस्मात् । ।

अर्थात् तीक्ष्ण, अधिक तथा रूक्ष पदार्थ खानेवाले प्राणी का कफ क्षीण हो जाता है और वात एवं पित्त की वृद्धि हो जाती है. इसके कारण अग्नि अत्यन्त तीक्ष्ण हो कर और वायु के साथ मिलकर आहार को शीघ्र ही पचा डालती है और यदि उचित उपचार नहीं किया जाता, तो शरीर के धातुओं को पचा डालती है. इसी कारण इसे 'भस्मक' कहा जाता है.

भस्मक रोग के लक्षण

भस्मक रोग में प्रमुख लक्षण इतने ही हैं कि कफ का क्षय, वायु का प्रकोप तथा अग्नि की तीक्ष्णता जितनी बढ़ती जाती है, उतनी ही क्षुधा की वृद्धि होती है. तीक्ष्णतर अग्नि के कारण अधिक से अधिक आहार भी शीघ्र व आसानी से पच जाता है. इसलिए अत्यधिक व बार-बार भूख लगती है. थोड़े समय के लिए भी क्षुधा रोकने से शीघ्र ही पित्तज रोगों के होने की संभावना होती है साथ ही तृषा, स्वेद, दाह एवं मूर्च्छा आदि विकार उत्पन्न हो सकते हैं. इसके अतिरिक्त भोजन की इच्छा रोकने से शरीर में वेदना, अरुचि, थकावट, तंद्रा, दृष्टि की दुर्बलता, रस-रक्त आदि धातुओं का क्षय होने से बल का क्षय होने लगता है.

भस्मक रोग में अन्नपान जीर्ण होने पर अर्थात् भोजन करने के दो-ढाई घंटे बाद रोगी को पुनः क्षुधा की प्रतीति

होती है. उस समय आहार न मिलने पर उसे विलक्षण दुख का अनुभव होता है. इसकी शांति तभी होती है, जब रोगी कुछ भी खा लेता है.

भुक्तऽन्ने लभते शांति जीर्णमात्रे प्रताम्यति ।

कभी-कभी तो भोजन कर लेने के बाद भी रोगी को शांति का अनुभव नहीं होता, वह केवल तकलीफ़ का ही उल्लेख करता है. पूछने पर वह यही बताता है कि उसे भोजन करने की इच्छा हो रही है. कई बार तो रोगी को, इसके पूर्व हुई ऐसी अशांति या तकलीफ़ में, भोजन करने से रोगोपशांति हुई हो तो उसका भी ध्यान उसे हो जाता है. वह इस दुख की शांति के लिए भोजन की ही मांग करता है.

भस्मक रोग से उत्पन्न अन्य विकार

अगर भूख निरंतर बढ़ती जाए और रोगी अज्ञान, साधनाभाव आदि कारणों से गुरु, स्निग्ध, पिच्छिलादि गुणयुक्त आहारों का उचित सेवन न करे तो स्थिति भयंकर हो सकती है. दाह, मूर्च्छा आदि विकार तो उत्पन्न होते ही हैं, साथ ही पाचक अग्नि की प्रबलता के कारण शरीर की धातुएं भी पचने लगती हैं, अर्थात् भस्मक रोग (अत्यग्नि) अन्न को शीघ्र पचाकर धातुओं को नष्ट कर डालता है.

**तृट्स्वेददाहमूर्च्छादीन्
कृत्वैषोऽत्यग्निसंभवात्
पक्त्वान्नमाशु धात्वादीन्
स क्षिप्रं नाशयेद् ध्रुवम् ।।**

भस्मक रोग में अन्न को भस्मीभूत करने का इतना सामर्थ्य होता है कि कैसा भी और कितना भी आहार लिया जाए, उसे शीघ्रातिशीघ्र पचा डालता है –

**स मुहुर्मुहुः प्रभूतमप्युप –
युक्तमन्नमाशुतरं पचति ।**

अन्न पचने के बाद गला, तालु और होंठों में शुष्कता का आभास होता है, साथ ही दाह और संताप उत्पन्न होता है. विकृत धातु-पाक की क्रिया बढ़ती जाती है, जिससे धातुओं का पचन और उससे उत्पन्न क्षीणता में वृद्धि होती है, साथ ही उदकक्षय (डीहाइड्रेशन – निर्जलीकरण) के कारण तृषा, श्वास, दाह आदि विकार पैदा होने लगते हैं. धातुपाक के कारण हुए धातुक्षय से शरीर शुष्क और कृश हो जाता है और भार में भी सहसा गिरावट आ जाती है. यह सब भस्मक रोग की आरंभिक अवस्था में ही देखा जा सकता है. धातुक्षय के कारण शरीर में अत्यधिक दुर्बलता आ जाती है, जिसके कारण रोगी अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है.

भस्मक रोग का उपचार

कफ की क्षीणता, वायु का प्रकोप और पित्त की वृद्धि ही जठराग्नि या पाचनाग्नि को तीक्ष्णतर करने का प्रमुख कारण हैं, जिससे भस्मक रोग होता है. अतः सबसे पहले इन तीनों शारीरिक दोषों को सम और प्रकृतिस्थ लाने का उपाय करना चाहिए. रोगी को दोष, देश, प्रकृति आदि के दृष्टि से सम (युक्त) अन्नपान का सेवन करना चाहिए. गुरु, स्निग्ध, पिच्छिलादि गुणयुक्त आहार का समुचित मात्रा में सेवन करना भस्मक रोग में लाभदायक होता है. इस प्रकार के आहारों के सेवन करने से अग्नि भी सम रहती है और वह यथाकाल सेवन किए हुए आहार अच्छी तरह से पचन करती है. इसके अतिरिक्त भस्मक रोग में जो विकार पैदा होते हैं, उनमें से किसी विकार को उत्पन्न नहीं करती जिससे सभी दोष, धातु, उपधातु और मल समावस्था में रहते हैं. इसके परिणामस्वरूप भस्मक रोग में उत्पन्न क्षुधा की प्रबलता भी शांत होकर समावस्था में आ जाती है.

मदिरा, सोमल, गांजा, भांग तथा अन्य मादक पदार्थ भी अपने प्रकोपक कारणों से पित्त के तीक्ष्ण गुण की वृद्धि कर देते हैं जो भस्मक रोग के कारण हैं, अतः रोगी को इन मादक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए. भस्मक रोग का एक कारण यह भी है कि अपने विरोधी गुणों से पित्त को समावस्था में रखनेवाला कफ अपने क्षयकारक कारणों से क्षीण हो जाता है क्योंकि –

**नरे क्षीणकफे पित्तं
कुपितं मारुतानुगम् ।
स्वोष्माणा पावकस्थाने
बलमग्नेः प्रयच्छति ।।**

इसी कारण इसके उपाय भी ऐसे होने चाहिए, जो कफ की वृद्धि तथा पित्त का शमन करें. साथ ही वायु को भी समावस्था में लाएं. अत्यग्नि (भस्मक) की चिकित्सा के प्रकरण में चरकाचार्य ने लिखा है –

अमृत वचन

विश्व कल्याण की कामना

**स्वस्ति मात्र उत
पित्रे नो अस्तुस्वस्ति
गोभ्यो जगते
पुरुषेश्यः ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं
नो अस्तु ज्योगेव दृशेम
सूर्यम् ।।**

(अथर्वः १।३१।४)

हमारे परिवार व माता-पिता का कल्याण हो. क्योंकि विश्व कल्याण की भावना की शुरूआत घर से ही होती है. परंतु सिर्फ घर व परिवार के सदस्यों कि कल्याण की कामना करना कोई उच्चादर्श नहीं है. अर्थात् हर अच्छे काम की शुरूआत छोटे पैमाने पर होती है .धीरे-धीरे समय व्यतीत होने पर वह पूरे देश, पूरे विश्व में फैल जाती है.

कफे वृद्धे जिते पित्ते
मारुते चानलः समः ।
समधातोः पचत्यन्नं
पुष्ट्यायुर्बलवृद्धये ॥

वात, पित्त, कफ के समावस्था में रहने पर पाचनाग्नि भी सम रहती है, जिससे क्षुधा भी सम्यक् रहती है. साथ ही शरीर के आरोग्य, पुष्टि, बल और आयु की वृद्धि होती है. पुरुष अगर अहित आहार-विहार न करे तो इस अग्नि का समय स्थिर रहता है, जिससे 'भस्मक' की संभावना खत्म हो जाती है.

औषधीय चिकित्सा

भस्मक रोग में खोवा आदि गुरु-स्निग्ध, खीर आदि सांद्र (गाढ़े), मंदगुणयुक्त (तीक्ष्ण गुणरहित), शीतल तथा स्थिर गुणयुक्त आहार का सेवन तथा पित्तनाशक विरेचन योगों का प्रयोग करना चाहिए. इससे भस्मक रोग का शमन होता है –

तं भस्मकं गुरुस्निग्ध –
सांद्रमंद हिम स्थिरैः ।
अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं
पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ।

भैंस का दूध और उससे बने हुए अन्य पदार्थ का सेवन भस्मक रोग में अत्यंत हितकर होता है. भस्मक रोग के उपचार के लिए श्री भाव मिश्र ने लिखा है कि –

अत्युद्धताग्निशान्त्यै
माहिषदधिदुग्धसर्पीषि ।
संसेवेत यवागूंसम –
पिष्टे पयसि सर्पिषा सिद्धाम् ॥

अर्थात् अत्यंत बढ़ी हुई अग्नि की शांति के लिए भैंस का दूध, दही, घी और भैंस के दूध से बनी हुई घृतमिश्रित यवागू (दलिया या खीर) का सेवन करना चाहिए.

पित्त को बार-बार निकालने का उपाय करना चाहिए अर्थात् उसे समावस्था में लाना चाहिए. इसके लिए खीर आदि दूध में पकाए हुए भोजन का सेवन करना चाहिए. साथ ही काली निसोत के साथ परिपक्व दूध का विरेचन देना अति उत्तम होता है. इसके अतिरिक्त मधुर भोजन का प्रयोग भी लाभप्रद होता है –

यत्किंचिन्मधुरं मेध्यं
श्लेष्मलं गुरु भोजनम् ।
सर्वं तदत्यग्निहितं
भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥
सिततंडुल सितकमलं
छागक्षीरेण पायस सिद्धम् ।
भुक्त्वा च तेन पुरुषो दश –
दिवसात्तुच्छ भोजनोभवति ॥

अर्थात् जो भी भोजन मधुर, मेदोवर्द्धक, कफकारक तथा गुरु हो, उसका सेवन करना चाहिए और भोजन करके दिन में अधिक सोना भस्मक रोग में हित होता है.

बकरी के दूध में श्वेत चावल तथा श्वेत कमल अथवा कमल बीज की खीर सात दिन तक खाने से मानव स्वल्पाहारी (कम भोजन करनेवाला) हो जाता है अर्थात् उसका भस्मक रोग शांत हो जाता है. प्रसह प्राणियों के मांस का सेवन भी भस्मक रोग में लाभदायक सिद्ध होता है –

प्रसहाः खलु वीर्योष्णास्तन्मां
भक्षयन्ति ये ।
तेशोषभस्मकोन्माद शुक्र क्षीण
भवन्तिहि ॥

प्रसह प्राणियों (कौवा, गिद्ध, उल्लू, चील, बाज, नीलकंठ तथा कुदर) के मांस खाने से शोष रोग, भस्मक रोग, मूर्च्छा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं. ●

धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर विशेष

डॉ. चन्द्रशेखर अवस्थी

सृष्टि के आरम्भ से ही भारतवर्ष में ऐसे दिव्य पुरुषों की अटूट परम्परा मिलती है, जो लोकहित की भावना का सर्वोपरि रखने के कारण तत्कालीन समाज में अपनी विशिष्टता स्थापित रख सके. एक के बाद एक दिव्य पुरुष इस पुण्य भूमि पर अवतरित होते रहे और मानव समाज को लाभान्वित करते रहे. दिवोदास धन्वन्तरि भी ऐसे ही महापुरुष थे; जिनके लोकोपकारी कार्य आज भी वैद्य समाज के लिए दिशा निर्देशक हो रहे हैं.

धन्वन्तरि का सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त होता है, जहां इनकी उत्पत्ति समुद्रमन्थन से बतायी गयी है. विष्णु पुराण में बतलाया गया है कि समुद्रमन्थन के बाद भगवान धन्वन्तरि अमृत से भरा कमण्डल धारण किये हुए निकले. वायु पुराण में ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान विष्णु ने धन्वन्तरि से कहा कि दूसरे जन्म में तुम्हें सिद्धियां प्राप्त होंगी. द्विजातिगणं तुम्हारी पूजा करेंगे और उसी शरीर से तुम देवत्व भी प्राप्त करोगे. समुद्र-मन्थन से उत्पन्न धन्वन्तरि के अवतार के रूप में काशी के चन्द्रवंशी कुल में धन्व के पुत्र के रूप में धन्वन्तरि का जन्म हुआ. ये सभी रोगों के निवारण में कुशल थे. इन्हीं धन्व के पुत्र धन्वन्तरि के प्रपौत्र के रूप में दिवोदास धन्वन्तरि का उल्लेख मिलता है. वास्तव में वैद्यों का जिस धन्वन्तरि से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है और भविष्य में रहेगा; वे काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि ही हैं. आचार्य सुश्रुत उन्हीं के परम मेधावी शिष्यों में से एक थे. सुश्रुत संहिता में धन्वन्तरि रूप काशिराज दिवोदास द्वारा सुश्रुत को उपदेश देने का वर्णन मिलता हैं. महर्षि सुश्रुत ने कटी हुई नाक ठीक करने का जो विधान अपनाया उसे विदेशियों ने भी सराहा है.

भावप्रकाश में दिवोदास का उल्लेख साक्षात् धन्वन्तरि के रूप में मिलता है. यहां इन्हें आयुर्वेद के जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ साक्षात् भगवान धन्वन्तरि कहा गया है. वास्तव में देखा जाए तो अन्य धन्वन्तरियों की अपेक्षा आयुर्वेद से प्रत्यक्ष सम्बन्ध इन्हीं दिवोदास धन्वन्तरि का रहा है.

आयुर्वेद विद्यापीठ का संचालन

दिवोदास धन्वन्तरि भीमरथ के पुत्र थे. अष्टांग-आयुर्वेद के विद्वान्, महान् ओजस्वी, शास्त्रों के अर्थों के सन्देहों को दूर करने वाले तथा अगाध आगम के समुद्र रूप थे :-

अष्टांगवेद विद्वासं
दिवोदास महोजसम्।
छिन्न शास्त्रंर्थ सन्देहं
सूक्ष्मगाधागमोदधिम् ।।

सुश्रुत संहिता के अनुसार इनसे शिक्षा प्राप्त करने वालों में औषधनैव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुर रक्षित आदि प्रमुख थे. काशिराज की वंशपरम्परा में शुरू से ही विद्या और विज्ञान के आधार पर संसार की सेवा करने का अखंडव्रत रहा है. दिवोदास ने उसे एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया है. उन्होंने अनेक शिष्यों को शल्य प्रधान आयुर्वेद की शिक्षा प्रदान की. उनके यहां दूर-दूर से छात्र अध्ययन करने आते थे. आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ भाव प्रकाश में विश्वामित्र अपने पुत्र सुश्रुत से वाराणसी जाकर दिवोदास धन्वन्तरि से आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करने को कहते हैं. यहां यह भी उल्लेख है कि सुश्रुत के साथ अध्ययन हेतु अन्य मुनियों के १०० पुत्र भी काशी गए. ऐसा प्रतीत होता है कि दिवोदास धन्वन्तरि आयुर्वेद विद्यापीठ का संचालन करते थे. इन्होंने शल्य प्रधान आयुर्वेद परम्परा परचलित की, जिसे 'धन्वन्तरि सम्प्रदाय' कहते हैं.

वाराणसी नगर के संस्थापक

दिवोदास ने वाराणसी नगरी की स्थापना भी की थी ऐसा महाभारत में उल्लेख है:-

दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां यतात्मनाम्।
वाराणसी महातेजाः निर्ममे शक्रशासनात्।।

इन्होंने वाराणसी नगर इन्द्र की आज्ञा से बसाया था.

भगवान धन्वन्तरि और दिवोदास

सुश्रुत संहिता में दिवोदास धन्वन्तरि ने सुश्रुत आदि ऋषियों को उपदेश करते हुए बतलाया है कि मैं ही आदिदेव धन्वन्तरि हूं और पृथ्वी पर आयुर्वेद के उपदेश हेतु अवतरित हुआ हूं -

अहं हि धन्वन्तरिरादि देवो जगरूजामृत्युहरो मराणाम्।
शल्यांगमंगेपरेरूपेतं प्राप्तां स्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ।।

दिवोदास धन्वन्परि चाहे देवता रहे हों अथवा वैज्ञानिक या अलौकिक मानव. किन्तु इतना तो निश्चित है कि उन्होंने लोक कल्याण की भावना और जीवमात्र के लिये रोगमुक्ति का अभूतपूर्व साधन क्रमबद्ध करके एक आदर्श प्रस्तुत किया है.

वेद में एक अन्य दिवोदास का वर्णन

सबसे पहले दिवोदास नाम का उल्लेख ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में मिलता है. इसे सुदास का पिता और शम्बर का शत्रु कहा गया है, परन्तु इस दिवोदास का काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि से सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है, न वहां इनके चिकित्सक होने का उल्लेख है. आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने दिवोदास धन्वन्तरि का काल १०००-१५०० ई. पू. के बीच माना है. सम्भवतः दिवोदास का ऐतिहासिक व्यक्तित्व ब्राह्मण उपनिषद् काल में मूर्त अस्तित्व में रहा होगा और बाद में पुराणों में प्रशस्ति के रूप में इन्हें भगवान विष्णु का अंश मानकर देवत्व प्रदान किया गया है.

यज्ञ भाग प्रदान कर सम्मान

चरक संहिता में धन्वन्तरि के लिए आहुति देने का विधान है. इस सम्रन्ध में 'भारत के प्राणाचार्य' ग्रंथ में रत्नाकर शास्त्री लिखते हैं कि - 'प्राचीन काल में समाज के महान सेवकों को सम्मानित करने का एक प्रकार यह था कि इस व्यक्ति को यज्ञ भाग प्रदान किया जाए. यज्ञ-भाग प्रदान करने की विधि यह थी कि उस महापुरुष के नाम से यज्ञ में आहुति डाली जाती थी. धन्वन्तरि को भी यह महान गौरव प्राप्त हुआ था.' काश्यप संहिता के शिष्योपक्रमणीय अध्याय में भी आहुति देने के लिए 'धन्वन्तरये स्वाहा' कहा गया है. ●

साइटिका का आयुर्वेदिक इलाज

– वैद्य पुरुषोत्तम प्रसाद मिश्र



आजकल गृध्रसी (Sciatica) रोग बहुत हो रहा है. जिस तरह जंजीर में बंध जाने पर हाथी का हिलना-डुलना दुश्वार हो जाता है, उसी तरह गृध्रसी अर्थात् साइटिका रोग से ग्रस्त व्यक्ति भी कई तरह से लाचार हो जाता है. न केवल यह कि वह चल-फिर नहीं सकता, बल्कि उसका खड़े होना, खड़े होने के बाद बैठना, यहां तक कि लेटे-लेटे करवट बदलना या हिलना-डुलना भी मुश्किल हो जाता है. इतना ही नहीं, उसमें भयंकर तोद (सुई चुभने जैसा दर्द) तथा ज्वर भी हो जाता है.

कारण

गृध्रसी रोग एक वात-प्रधान रोग है जो दो प्रकार का होता है. एक तो विशुद्ध वातज कहलाता है और दूसरा वात-कफज के रूप में जाना जाता है.

शरीर के अधोभाग में नितंब से होती हुई एक नाड़ी जंघों और घुटनों के पीछे की ओर से सीधे एड़ी तक जाती है. यह शरीर की सबसे लंबी स्नायविक नाड़ी है और वात विकार से इसमें तनाव या कड़ापन आ जाता है, जो मनुष्य को अपंग जैसा बना देता है. क्योंकि उसकी प्रसारण व आकुंचन क्षमता क्षीण हो जाती है, जिससे पैर को मोड़ना, सीधा करना, उठाना, आगे-पीछे ले जाना आदि सब क्रियाएं कठिन हो जाती हैं और अंततः मनुष्य को शैय्याग्रस्त हो जाना पड़ता है. वैसे इस बीमारी को लंगड़ी का दर्द, गृध्रसी वात, कटिस्नायुशूल (कटिशूल भी), कमर का दर्द, डांड़ का दर्द या अर्कुलनसा नाम से भी जानते हैं.

गृध्रसी रोग के अनेक कारण हैं. आजकल रोजी-रोटी के लिए ऐसी नौकरियां पकड़नी पड़ती हैं, जिनमें अधिक देर तक खड़ा रहना पड़ता है जिससे पैरों पर ज्यादा भार व दबाव पड़ता है. अधिक देर तक खड़े रहने से गृध्रसी नाड़ी में वातविकार आ जाता

गृध्रसी, (साइटिका) बड़ा दर्दनाक होता है. असल में यह शरीर में फैले स्नायु में कड़ापन (तनाव) आने के कारण हो जाता है, अतः ऐसे कार्यों से बचना चाहिए, जो साइटिका पैदा करें.

है. खड़ा रहना ही नहीं, अधिक देर तक कुर्सी पर बैठे रहना भी इस बीमारी के कारणों में से एक है. बहुत अधिक चलना, सामर्थ्य से अधिक मेहनत और व्यायाम, ठंड लगना, गर्मी-सर्दी लगना, उपदंश (सिफलिस), गठिया रोग, वात-विकार, वातविकारजन्य आमविकार तथा बस्तिगह्वर की बीमारियां भी इसका कारण बनती हैं. वैसे सबसे बड़ा कारण कब्ज़ अर्थात् कोष्ठबद्धता है.

रोगोत्पत्ति के लक्षण

इस रोग के प्रारंभिक लक्षण प्रकट होते ही अगर चिकित्सा शुरू कर दी जाए, तो रोगी भावी कष्ट से बच सकता है. इसका लक्षण यह है कि जब गृध्रसी नाड़ी में वात प्रकुपित होती है, तो एक क्रम से इस स्नायु से संबंधित पेशियों व नाड़ियों में सुई चुभने जैसा दर्द, चुभन, अकड़ाहट, जकड़ाहट, वेदना व झुनझुनी होने लगती है. इसमें स्पंदन व बेचैनी सी होती है.

वातज और वातकफ़ज गृध्रसी (Sciatica) में फर्क समझा जाता है. कहा है किः–

वातजाता भवेत्तोदो, देहस्यापि प्रवक्रता।
जानु कट्युरू संधीनाम् स्फुरण स्तब्धता भृशमंता।

अर्थात् वातज गृध्रसी में तीव्र चुभन होती है और मनुष्य देह टेढ़ा करके चलता है. किसी-किसी की रीढ़ तो एकदम नागरी अंक (४) जैसी टेढ़ी हो जाती है. इसमें जानु, कटि,उरू प्रदेश तथा संधियों में स्तंभ, वेदना तथा बार-बार स्फुरण-स्पंदन होने लगता है.

वातज-कफ़ज में स्पंदन-स्फुरण नहीं होता, पर स्तभ, चुभन, वेदना, भारीपन, बार-बार तंद्रा व भोजनादि से अरुचि होने लगती है. इसके बारे में कहा गया है कि–

'वातश्लेष्मोद्भवायी तु निमित्त बन्हिमार्दवम्।
तंद्रा मुख प्रसेदश्च भक्तद्वेषस्तथैव च।।'

> **अमृत वचन**
>
> राजभवनों के मोह से मनुष्य आजीवन मानसिक कारावास भोगता है.
>
> अधिकार-सुख कितना मादक और सारहीन है.
>
> अधिक हर्ष और अधिक उन्नति के बाद ही अधिक दुःख और पतन की बारी आती है.
>
> **जयशंकर प्रसाद**

उत्तम औषधियां

हर रोग की चिकित्सा तो होती ही है, पर रोग न हो, इसका उपाय करना ज़्यादा बुद्धिमत्तापूर्ण तथा सुखकर होगा. अगर रोज १५ मिनट नियमित रूप से हल्के योग-व्यायामों के लिए दिया जाए तो स्त्री-पुरुष रोगों से बचे रह कर अधिक स्वस्थ और सुंदर हो सकते हैं.

असल में कोष्ठबद्धता न होने देना गृध्रसी रोग को दूर रखने का सबसे पहला उपाय है. रोग हो जाने पर भी पहले कब्ज़ को रोकने के ही उपाय करने चाहिए. इसीलिए गृध्रसी रोग का चिकित्सा सिद्धांत भी यही है कि पहले वमन व विरेचन (उल्टी व दस्त) कराकर रोगी के पेट से कफ व मल का निस्सरण किया जाए. योग की वमन धौति व बस्ति क्रियाएं तो अन्यतम हैं,पर सबके वश की नहीं. अतः आयुर्वेद में उसके उपाय भी दिए गए हैं. सुबह खाली पेट गरम जल के साथ १० ग्राम मैनफल खिला देने से थोड़ी देर में ही वमन हो जाता है. मैनफल न मिले तो एक लीटर गर्म जल में तीन-चार तोला नमक मिलाकर पिला देने से भी वमन हो जात है. वमन हो जाने से आमाशय में जमा कफ़ तो निकल ही जाता है साथ ही वायुप्रकोप कम होकर अंग-प्रत्यंग में आराम भी लगता है. इसी तरह आधा से पौन तोला तक निशोथ चूर्ण में पाव तोला सोंठ चूर्ण व मधु मिलाकर ठंडे जल के साथ देने से विरेचन भी हो जाता है. गर्म दूध में एरंडी का तेल मिलाकर पिलाने या केवल एरंडी तेल पिला कर गर्म जल पिलाने से भी दस्त हो जाते हैं. अस्पतालों या प्रायवेट डॉक्टरों के यहां एनिमा भी लिया जा सकता है. जुलाब देते समय एक सावधानी अवश्य रखनी चाहिए. यह यह कि कमज़ोर या वृद्ध रोगी को ज़्यादा दस्त न होने पाए.

वमन-विरेचन से कोष्ठशुद्धि कर देने के बाद चिकित्सा क्रम की बारी आती है. गृध्रसी की अनगिनत दवाएं हैं पर यहां कुछ अनुभूत दवाएं इस प्रकार हैं:–

- हरसिंगार का पत्ता व निर्गुण्डी (सेंहुड़) का पत्ता एक किलो को एक लीटर जल में मंद आंच पर पकाएं. एक तिहाई पानी जल जाने पर उतार लें और छान कर रख लें. यह काढ़ा १५-२५ ग्राम दिन में दो-तीन बार पीने से डेढ़-दो माह में गृध्रसी रोग नष्ट हो जाता है. केवल हरसिंगार का पत्ता या निर्गुण्डी का पत्ता भी यथेष्ट है.
- पांच एरण्ड के बीज की भीतरी गिरी को किंचित दूध में पीस कर फिर गर्म दूध में मिलाकर सुबह-शाम पीने से गृध्रसी रोग जल्द ही दूर हो जाता है.
- एरण्ड के बीज की गिरी (भीतर का गूदा जिसमें अंकुरण हो) प्रातः ठंडे पानी से खिलाते हैं. पहले दिन १ गिरी, दूसरे दिन २ गिरी, तीसरे दिन ३ गिरी, इस तरह रोज एक गिरी तब तक बढ़ाते जाना चाहिए जब तक रोगी को उबकाई न आने लगे. जब तक रोगी सहन कर सके तब तक बढ़ाना चाहिए. २-३ दिन के बाद से ही दर्द में कमी आने लगती है.
- अदरक का रस १ चम्मच और शुद्ध देशी घी १/२ चम्मच मिला कर सुबह-शाम पीने से शीघ्र लाभ होगा.
- एरण्ड तेल १२ ग्राम को गोमूत्र में एक कप में मिला कर पीने से भी बहुत लाभ होता है.
- समीर पंतग १/२ से २ गोली तक को खरल में पीस कर मधु में चटाने से लाभ होता है. एक बड़े वैद्य के अनुसार यह इंजेक्शन से भी जल्दी लाभ करता है. ५-६ दिन में पूरा आराम मिल जाता है.
- रास्नादिक्वाथ में १२ ग्राम एरण्ड तेल मिला कर देने से गृध्रसी का नाश होता है. एरण्ड का १२ ग्राम सफेद बीज (गिरी) को ६० ग्राम दूध में खीर बना कर सेवन करने से भी तुरंत लाभ होता है.
- त्रयोदशांग गुग्गुल, महायोग राज गुग्गल, रास्नागुग्गुल, सिंहनाद गुग्गुल, हर्बोलैक्स आदि भी गृध्रसी (अन्य वात रोगों पर भी) में बहुत प्रभावी है.

गरम-ठंडा सेंक से भी बहुत लाभ होता है. रक्त का स्वभाव उद्दीप्त स्थान की ओर दौड़ने का होता है. वहां पहुंच कर वह अपने साथ लाए गुणकारी तत्वों को छोड़ देता है और दूषित तत्वों को लेकर चला जाता है. इससे नाड़ी का दूषित वायु शांत हो जाता है और धीरे-धीरे गृध्रसी रोग या कटिशूल भी समाप्त हो जाता है, जिससे मनुष्य नए सिरे से सक्रिय जीवन व्यतीत करने लगता है. ●

> **अमृत वचन**
>
> हम शब्दों के द्वारा अपनी बाते कहें इससे कहीं अच्छा है कि हमारा आचरण हमारी बात कहे.
>
> एक बार एक आदमी ने मेरे पास बैठकर मेरी रोटी खाई और मेरी ही दी हुई शराब पी. इसके बाद वह मेरी खिल्ली उड़ाता चल दिया. वह फिर आया और उसने मुझसे फिर रोटी और शराब मांगी, तब मैं उसे खरी-खोटी सुनाने लगा. इस पर देवदूतों ने मेरी खिल्ली उड़ाई.
>
> **– ख़लील जिब्रान**

अच्छी नींद लाने के उपाय

हमारी ज़िंदगी का तिहाई हिस्सा नींद में व्यतीत हो जाता है अर्थात् हम प्रतिदिन ८ घंटे की नींद लेते हैं. नींद में परिवर्तन होने से मनुष्य की कार्यक्षमता पर प्रभाव पड़ता है. नियमित रूप से नींद आना ही स्वास्थ्य के लिए वरदान है, यदि प्रकृति प्रदत्त यह वरदान नहीं होता, तो मनुष्य कभी का पागल हो जाता. मनुष्य तो मनुष्य पशुओं के लिए भी नींद अति आवश्यक है, उन्हें भी कुछ दिनों तक यदि नींद से वंचित रखा जाए, तो उनकी मृत्यु तक हो सकती है.

नींद ख़रीदी नहीं जा सकती, जबकि दुनिया की अन्य वस्तुएं ख़रीदी जा सकती हैं, अतः नींद का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है. आज के युग में तनाव, व्यथा, परेशानी, चिंता, ईर्ष्या, आवेग, क्रोध जन-जीवन के आवश्यक अंग-से बन गये हैं, अतः नींद न आना आम बात हो गई है. आज डॉक्टरों के पास नियमित ऐसे रोगी आते हैं, जिनकी विशेष विशेष समस्या नींद न आने की होती है. स्वस्थ निद्रा के लिए ईर्ष्या, क्रोध, तनाव, आवेग, चिंता को त्यागना आवश्यक है एवं दिनचर्या को नियमित एवं सामान्य किया जाना भी आवश्यक है.

● अमरीकन डॉ. जस्टीस शिफर्स के अनुसार निद्रा का सबसे बड़ा शत्रु चिंता है, अतः व्यर्थ की चिंता न करें - यह विचार करें कि समय आने पर सब कुछ व हर समस्या का समाधान स्वतः ही हो जाएगा. चिंता करने से कुछ होने वाला नहीं है. कहा भी गया है कि चिंता चिता के समान है. अतः बिस्तर पर चिंता रहित रहें.

● क्रोध, ईर्ष्या, तनाव, प्रतिशोध, स्वार्थ की भावना से ऊपर उठकर प्रेम, शांति एवं तनाव रहित रहें. ज़रूरतमंदों की सहायता करें. इससे मानसिक राहत मिलती है.

● शयन कक्ष बहुत ही साफ़-सुथरा एवं हवादार होना चाहिए. बिस्तर साफ़-सुथरा हो, चादर का रंग बहुत ही हल्का होना चाहिए. रात्रि के समय कमरे में बहुत ही मद्धिम प्रकाश होना चाहिए.

● मक्खी, मच्छर, खटमल इत्यादि नींद के शत्रु हैं, अतः साफ़-सफाई का विशेष ध्यान रखें. मसहरी (मच्छरदानी) का उपयोग किया जाना चाहिए. यदा-कदा रात को सोते समय हाथ-पैरों व मुंह पर सरसों का तेल लगाएं, इससे मच्छर परेशान नहीं करते.

● अनिद्राग्रस्त व्यक्ति को किसी भी प्रकार के नशीले पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए. नींद की गोलियों का सेवन भी कदापि नहीं करना चाहिए. अन्यथा स्वाभाविक नींद भी समाप्त हो जाएगी.

● अनिद्राग्रस्त व्यक्ति को अपनी दिनचर्या सामान्य व नियमित करनी चाहिए. नियत समय पर सोना व उठना चाहिए. चाय, कॉफी इत्यादि का प्रयोग सीमित मात्रा में करें. इसके विपरीत दूध, दही, छाछ का सेवन किया जाना चाहिए.

● सोने से पूर्व हाथ, पैर, मुंह मौसम के अनुसार ठंडे या कुनकुने पानी से धोना चाहिए. गर्मी के मौसम में तो शाम के समय भी स्नान कर लेना चाहिए.

● सोने से पूर्व एक गिलास गर्म दूध पीना चाहिए या एक सेब का मुरब्बा खाकर गर्म दूध पीएं. इसके अलावा शीत जल में एक चम्मच शहद मिलाकर पीने से भी अच्छी नींद आती है.

● सोते समय पैरों के तलुवों में सरसों के तेल की मालिश करें. सिर पर चमेली के तेल की मालिश करें.

● सोते समय बहुत ही हल्के एवं सूती कपड़े पहन कर सोना चाहिए.

● सोवियत विशेषज्ञों का यह मत है कि ताज़ी हवा में सोना स्वास्थ्यवर्द्धक है. महानगरों में रहने वाले व्यक्तियों को जिनका कि संपूर्ण दिन कार्यालय में व्यतीत होता है उन्हें खुले कमरे में सोना चाहिए ताकि दिनभर की थकान से राहत मिल सके.

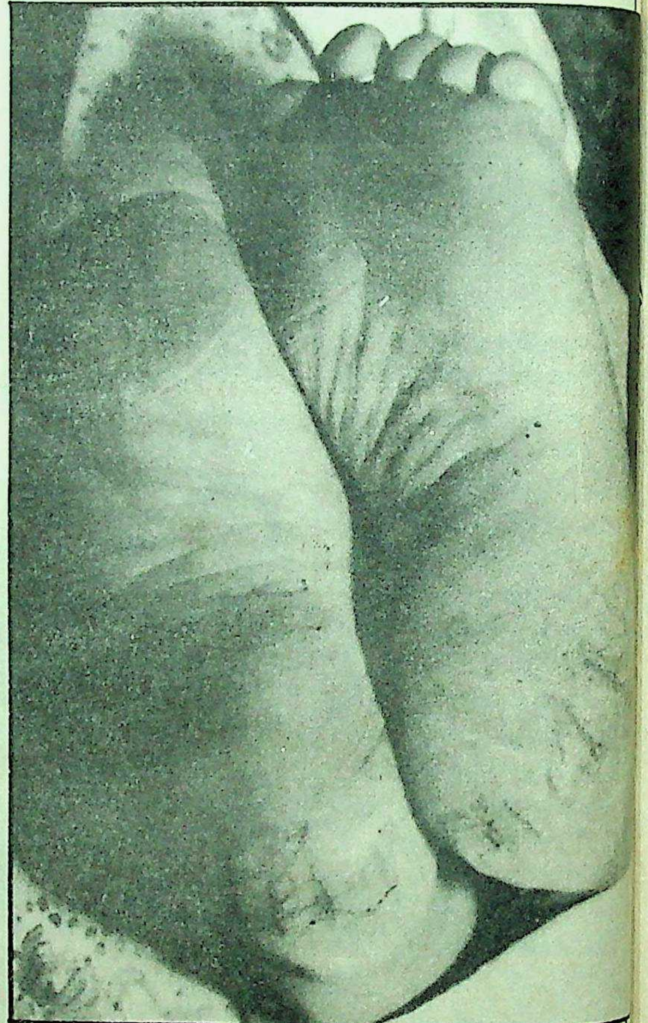
● सोने से पूर्व पर्याप्त मात्रा में पानी पीना चाहिए, ताकि पेट सही रहे. इसके अलावा मूत्र विसर्जन जैसी आवश्यकताओं से निपट कर सोना चाहिए ताकि बीच में उठने की आवश्यकता न रहे.

आशा है ये तौर-तरीक़े नींद लाने में सहायक होंगे.

– अभय राज

तलुवों में पड़ी दरारों (पाददारी) की चिकित्सा

- वैद्य स्वाती अभ्यंकर



रोज ही हम अपना चेहरा आईने में देखते हैं. चेहरे की प्रसन्नता और त्वचा की सुंदरता देखकर हम मन ही मन प्रसन्न होते हैं. अगर चेहरे पर दाग़ हों, मुंहासे हों या त्वचा का वर्ण एक जैसा प्रतीत न हो तो बेचैन हो उठते हैं और उचित सलाह लेने के लिए डॉक्टर के पास जाते हैं या अपने आप कुछ घरेलू उपचार करते हैं. इसी प्रकार पूरे बदन की त्वचा को साफ़सुथरा रखने के लिए प्रतिदिन स्नान करते हैं. लेकिन क्या हम पैरों के तलुवों की ओर कभी ध्यान देते हैं? शायद कम ही.

आमतौर पर पैर के तलुवों को हम देखते भी नहीं या उनकी स्वच्छता और सुंदरता का ख्वाब भी अपने मन में नहीं आता. जिस तरह संपूर्ण शरीर की त्वचा का हम ख्याल रखते हैं, उसी तरह पैर के तलुवों की ओर भी ध्यान देना बहुत ही ज़रूरी होता है. तलुवों की त्वचा की अस्वच्छता के कारण कुछ जीवाणु उसे अपना मार्ग बनाकर शरीर में प्रविष्ट होते हैं. तलुवों में दरारें पड़ने की शिकायत तो देखी ही जाती है.

भारत में अत्यधिक गर्मी के कारण और विशेषतः महिलाओं में यह तकलीफ़ अधिक देखी जाती है. भारतीय महिलाओं की घर में काम करने की पद्धति इस तकलीफ़ को बढ़ाने में काफी मददगार होती है.

पैर के तलुवों के चीरे या दरारों को आयुर्वेद में 'पाददारी' कहते हैं. 'पाद' याने पैर और 'दारी', दरण यानि फटना, चीरे पड़ना. आयुर्वेद के ग्रंथों में इस विकार का समावेश 'क्षुद्ररोग' में किया गया है. जिन विकारों के उत्पन्न होने में अधिक कारण न हो, लक्षणों की संख्या कम हो और जिनकी चिकित्सा सरल एवं चिकित्साकाल कम हो, उनकी गणना आयुर्वेद ने 'क्षुद्ररोग' में की है. यह क्षुद्ररोग होते हुए भी कई बार बहुत ही तकलीफ़देय भी हो सकता है. तब ज़मीन पर पैर रखना भी अत्यंत पीड़ादायी होता है, जिससे चलना-फिरना कठिन हो जाता है. जब तक यह स्थिति नहीं आती, व्यक्ति अपने पैरों की ओर ध्यान तक नहीं देता.

कारण

इन दरारों के कारणों पर ज़रा गौर करें, तो अपने देश में महिलाओं की आदत ज्यादातर यह रहती है कि पैर में कुछ पहने बिना ही काम करती हैं. जैसे, बर्तन मांजना, कपड़े धोना, पानी वाली ज़मीन पर अधिक देर तक काम करना आदि. काम करनेवाली स्त्रियों में भी यह तकलीफ़ ज़्यादा होती है. उसी तरह कुली, घर-घर जाकर सामान बेचनेवालों, पोस्टमैन जैसे पैदल चलनेवालों को भी पैर के चीरों की तकलीफ़ होती है. इसके साथ कुछ प्रकार के आहार-पदार्थ भी विकार को बढ़ाने में सहायक होते हैं, जैसे, अत्यधिक तीखा, चरपरा, मसालेदार खाना, ब्रेड जैसी रूखी-सूखी चीजें नित्य खाना, ठंडा पानी, ठंडा खाना, ठंडे पेय पदार्थों का अधिक उपयोग करना भी इसके कुछ कारण हैं. छोटी दरारें पड़ी हों, तब ऐसे दरारयुक्त पैर मिट्टी के संपर्क होने से त्वचा अधिक दूषित होती है और पीब हो जाता है. पानी के साथ

शीत ऋतु में वातावरण में रूक्षता बढ़ जाती है, जिसका दुष्प्रभाव मानव शरीर पर पड़ता है. परंतु लापरवाहीवश भी ऐसा होता है. यदि इसके प्रति पहले से सचेत रहें, तो रूक्षता का प्रभाव नहीं पड़ेगा.

शेषांश पृष्ठ ६० पर

चंद्रमा

मन का केन्द्र बिन्दु

मनुष्य का मन कभी सुदर्शन चक्र की तरह तेज़ गति से चलता है और कभी चंद्रमा की तरह धीरे-धीरे. गौतम स्मृति में लिखा है कि मन का स्वामी चंद्रमा है. जिस तरह चंद्रमा घटता-बढ़ता रहता है. उसी तरह मन भी चंचल है. इसीलिए कहा गया है – 'चंद्रमा मनसोजातः'. यह कहावत जग प्रसिद्ध है कि वही व्यक्ति श्रेष्ठ माना गया है जो ज़ुबान का सच्चा हो और लंगोट का सच्चा हो. जो व्यक्ति अपनी बात से बार-बार बदलते रहते है, वे अविश्वसनीय होते हैं. ऐसे व्यक्तियों का विश्वास नहीं करना चाहिए. स्व. श्री हरिदास जी वैद्य ने प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रंथ 'चिकित्सा चंद्रोदय' में लिखा है कि राजा, घोड़ा, सर्प, नीच पुरुष, तलवार और स्त्री का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए. क्योंकि ये कहकर पलट जाते है.

मेरी दृष्टि में मन हज़ारों 'अश्व' की शक्ति रखता है. तुरन्त व्यक्ति को अपने आकर्षण से खींच लेता है. भगवान श्री कृष्ण ने 'गीता' में कहा है कि मन वायु से ज़्यादा तेज़ होता है, यह बड़ों-बड़ों को अपने आसन से हिला देता है. इसको योगी सिद्ध महात्मा एवं संन्यासी आदि इसे शनैः शनैः अपने वश में करते हैं. 'सम्मोहन' क्रिया इसी मन के नियन्त्रण का फल है. त्राटक क्रिया द्वारा मन वशीभूत होता है. शुक्रदेव जैसे महान ज्ञानी तत्वदर्शी भी रंभा के विशेष आकर्षण से खिंच गये थे परन्तु उन्होंने अपने मन और आत्मा को कभी विचलित नहीं होने दिया. जिसका मन स्फटिक मणि जैसा सुंदर, पवित्र उज्वल होता है, वही व्यक्ति भगवान के निकट पहुंचता है. भागवतकार ने नवयोगीश्वर के सामने मन और आत्मा पर सूक्ष्म विचार दर्शन प्रस्तुत किया है. राजर्षि जनक और अष्टावक्र जी ने मन और आत्मा का सुंदर विश्लेषण अष्टवक्र गीता में किया है.

मन छः प्रकार का होता हैः-

(१) वायु की तरह चंचल (२) पर्वत सदृश्य दृढ़ (३) सागर की तरह विशाल, गंभीर (४) सरिता की तरह प्रवाहमय (५) सरोवर की तरह (६) दीपक या चंद्रमा की तरह.

मन एक ऐसा दर्पण है, जो हमारे रूप और गुण को प्रकट कर देता, जिसके आकर्षण से व्यक्ति का जीवन उज्वल, पवित्र होता है.

इसी से संतों ने लिखा हैः-

'मन चंगा,
तो कठौती में गंगा।'
'मन के हारे हार है
मन के जीते जीत।'
'प्रकट ब्रह्मा को पाइए
मन के ही प्रतीत।'

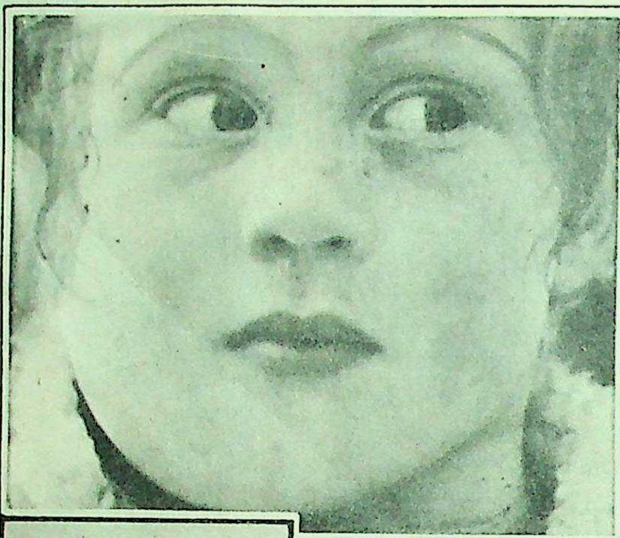
—कु. संतोष शर्मा

कर्णमूल ग्रन्थि रोग एवं इसकी चिकित्सा

यह रोग कानों के नीचे तथा जबड़ों की हड्डी के पीछे की कर्णमूल ग्रन्थि में होता है. कर्णमूल ग्रन्थि (Paratid gland) के सूज जाने (फूल जाने) तथा बुखार हो जाने पर इसे कर्णक ज्वर, कनपेड़ा, कर्णमूल ग्रन्थि ज्वर, कर्णमूल ग्रन्थि प्रदाह कहा जाता है. यह रोग बच्चों तथा जवानों में अधिकतर होता है. मुख्यतया ५-२० वर्ष तक की आयु में होता है. बूढ़ों तथा स्त्रियों को बहुत कम होता है. अगर इनको यह रोग हो जाए, तो कुछ न कुछ उपद्रव हो ही जाता है. आजकल इसे औपसर्गिक रोग मानते हैं.

दूषित आहार-विहार से कफ दूषित होकर विष का संक्रमण होने पर कर्णमूल ग्रन्थि में दोष प्रकुपित होकर दो-तीन सप्ताह बाद वहां पर सूजन (शोथ) हो जाता है. प्रायः पहले बांयी ओर की ग्रन्थि फूलने लगती है. लाल और कड़ी हो जाती है तथा उसमें दर्द होने लगता है. साथ-साथ तीव्र बुखार, सिरदर्द, बदन दर्द, चबाने तथा निगलने में दर्द होता है. लार का स्राव कम होने से मुख सूखता रहता है. दो-तीन दिन बाद दूसरी ओर की ग्रन्थि में भी सूजन हो जाती है, जिससे उनके ऊपर की त्वचा तन (खिंच) जाती है और लाल हो जाती है, जिससे कान कुछ ऊपर और बाहर की ओर उठ जाते हैं. रोगी की जीभ मैली दिखाई देती है. सात से दस दिन में ग्रन्थि का सूजन उतर जाता है. यह रोग एक बार हो जाने पर उस व्यक्ति को दुबारा नहीं होता है.

उपद्रवों में कभी-कभी विशेषतः



कनपेड़ा, यह एक ऐसा रोग है, जो बच्चों को ही शीघ्र ग्रसता है. इस संक्रामक रोग की चिकित्सा कुछ अन्य सावधानियों का पालन करके कर सकते हैं.

युवकों में ७-८ दिन बाद अण्डकोष ग्रन्थि में भी सूजन आ जाती है. कभी-कभी दो सप्ताह बाद अग्न्याशय में भी सूजन हो जाती है. कभी-कभी इसका बुरा प्रभाव स्त्रियों में बीज ग्रन्थि पर भी पड़ता है. कभी-कभी मनुष्यों में मस्तिष्क में शोथ, कर्णमूल स्थित लारग्रन्थि में सूजन होकर यह रोग होता है. कभी-कभी टायफाइड में भी उपद्रव स्वरूप कर्ण ग्रन्थि में सूजन आ जाती है. अतः इनमें फर्क (अन्तर) जरूर कर लेना चाहिए.

चिकित्सा एवं पथ्यापथ्यादि

रोगी को बुखार तथा सूजन के अच्छा होने तक बिस्तर पर लिटाए रखना चाहिए. ठण्डी तथा गीली हवा रोगी को नहीं लगनी चाहिए. रोगी के खांसने, छींकने तथा थूकने और नज़दीक बैठकर बातें करने पर यह दूसरे व्यक्ति को भी हो जाता है, अतः रोगी के पास किसी दूसरे को नहीं आना चाहिए. रोगी को चबाने, निगलने में तकलीफ़ होती है, अतः गेहूं, जौ, साबूदाना आदि के तरल (पतले) पदार्थ जैसे-यवपेया, लाजामण्ड, हलवा, दलिया आदि खिलाना चाहिए. दूध व मधुर फल रस पिलाने चाहिए. अधिक खट्टे तथा नमकीन (चरपरे) पदार्थ नहीं खाना चाहिए. रोग में सूजन वाले स्थान पर रुई या ऊनी कपड़ा बांधकर रखना चाहिए. सूजनवाले अंग पर गरम नमक, राख व बालू की पोटली से सेंक देना फ़ायदेमंद रहता है.

रोग वाले स्थान पर एरण्ड के पत्ते तेल लगाकर सेंक कर सुखोष्ण (सहन करने योग्य) बांधने से शोथ (सूजन) व दर्द अच्छा हो जाता है.

सूजन वाले स्थान पर गुड़ तथा चूने का लेप करने से भी आराम हो जाता है.

सोंठ ३ माशा, काले तिल २ माशा, बिनौला ४ माशा, लेकर सबको बारीक चूर्ण करके गाय के मूत्र में पकाकर सूजन पर गरम-गरम (सहन करने योग्य) लेप करना चाहिए. इसका दिन में २-३ बार लेप करने से ही सूजन उतर जाता है.

सन के बीज, मेथी, कालाजीरा, रास्ना, देवदारू, कूठ, सरसों, हल्दी, दारूहल्दी आदि के चूर्ण को समभाग लेकर कांजी या छाछ (तक्र) में पीसकर गरम कर सुखोष्ण लेप करना चाहिए.

सूजन वाले स्थान पर हरिद्रा, चित्रकमूल, कूठ, बच, सहिंजन, सरसों, आदि में से किसी दो द्रव्यों को लेकर धतूरे के रस में पीसकर लेप लगाकर ऊपर से रुई रख कर बांधना चाहिए. जिससे दर्द व शोथ अच्छे हो जाते हैं.

उपरोक्त लेपों में से रोगी को किसी एक लेप का ही प्रयोग करना चाहिए.

नित्यानन्द रस की गोलियां रोगी की उम्र के अनुसार १-२ गोली दो बार प्रातः सायं शहद से देनी चाहिए.

ज्वरारिअभ्र रस भी उम्र के अनुसार ज्वर रहने तक १-२ गोली दिन में ३ बार शहद से देनी चाहिए अथवा चण्डेश्वर रस १-२ गोली दिन में तीन बार शहद से देनी चाहिए.

मरिच्यादि क्वाथ ३-६ चाय के चम्मच(वयानुसार)लेकर सैंधव नमक (आधा चाय का चम्मच) डालकर पिलाने से रोगी के ज्वरादि लक्षण अच्छे हो जाते हैं.

उपसर्ग के समय ७ तुलसी के पत्ते, २ काली मिर्च प्रति दिन प्रातः खाने से रोग का प्रतिषेध हो जाता है.

-डॉ. एल.बी. शर्मा 'लोकेश'

रोवन यानि सरस फल

- जोगेन्द्र सिंह

जड़ी-बूटियों के विश्वकोष को पढ़ने से कुछ चमत्कारिक जड़ी-बूटियों का अनुभव होता है. रोवन यानि कि सरसफल एक ऐसा पौधा है, जो कि खाने में स्वादिष्ट होने के साथ अनेक प्रकार के रोगों को भी जड़ से समाप्त कर देता है. लोक चिकित्सा में इसे अंगू वृक्ष के नाम से जाना जाता है.

गुण और उपयोगिता

इस वृक्ष की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपने चारों तरफ़ की वायु को शुद्ध कर देता है. मई माह में मधुमक्खियां रोवन फल के चारों तरफ़ इकट्ठी हो जाती हैं और वहीं पर छत्ते का निर्माण करती हैं. प्राचीन काल में किसान लोग आलुओं के भण्डारण में बीच-बीच में रोवन-वृक्ष की पत्तियों को डाल देते थे, ताकि अगली फसल आने तक वे ख़राब न हो. पर्वतीय इलाकों में लगे रोवन वृक्ष की टहनी को यदि पानी में डाल दिया जाये, तो पानी कभी भी ख़राब नहीं होता.

लोक चिकित्सा के दृष्टिकोण से रोवन फल का पौधा बहुउपयोगी माना गया है. इसके फलों से जलोदर तथा गुर्दे संबंधी बीमारियों में जल की अतिरिक्त मात्रा निकल जाती है तथा ज़हर खाने संबंधी मामलों में रोवन का सेवन, ज़हर साफ़ करने वाला साबित हुआ है. रोवन फल का सेवन गर्भ-निरोधक होता है, अंतड़ियों को साफ़ करने में भी यह उपयोगी साबित हुआ है. इसके अलावा स्कर्वी, पेचिश, काली खांसी, मलेरिया तथा गठिया जैसे रोगों को भी यह फल जड़ से नष्ट करने की क्षमता रखता है.

रोवन फलों का रस शक्तिशाली एंटी-बायोटिक का काम करता है. इसके सेवन से खून साफ़ होता है, हड्डियां मज़बूत होती हैं तथा कमज़ोरी दूर हो जाती है. जिन व्यक्तियों को हाई ब्लडप्रेशर, विटामिन की कमी, रक्तवाहिनियों संबंधी शिकायत हो उन्हें रोवन फल की पत्तियों एवं फलों से बनी चाय पीनी चाहिए.

जिन व्यक्तियों को भूख नहीं लगने की शिकायत रहती है, उन्हें खाना खाने के समय से पूर्व ५-५ रोवन फल खा लेने चाहिए. इससे उन्हें खुलकर भूख लगेगी. रक्त की क्षीण स्पंदन-शीलता तथा आमाशय रस की अल्प अम्लता की शिकायत भी रोवन फल के सेवन मात्र से ही दूर हो जाती है. काले रोवन चोक फल को तो 'जवानी का अमृत' की संज्ञा दी जा चुकी है. पेशियों एवं हड्डियों के पुनः निर्माण, शारीरिक एवं मानसिक तनाव तथा गले संबंधी बीमारियों के लिए रोवन फलों का उपयोग नितांत ज़रूरी है.

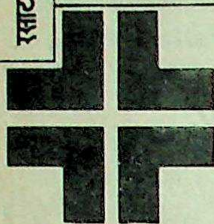
लेकिन जिन व्यक्तियों में रक्त स्पंदन या रक्त वाहिकाओं में अवरोध उत्पन्न होने की प्रवृत्ति हो, तो उसे रोवन का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिए. भण्डारण के लिए ऐसे फल तोड़ने चाहिए जो कि निचली और बीच की शाखाओं पर लगे हुए हों.

रोवन फलों का मुरब्बा, चटनी जैम स्वादिष्ट व्यंजनों को बनाने में भी इसका प्रयोग होता है. आयुर्वेदिक दवाइयों में भी रोवन फल के रस को मिलाकर उनका निर्माण किया जाता है और इसके प्रयोग से कई असाध्य रोग तक ठीक हो जाते हैं. ●

रसायन चिकित्सा

लौह भस्म : निर्माण प्रक्रिया और विविध प्रयोग

वैद्य सरोज शुक्ला



लोहा धातु को तो सभी जानते हैं परंतु इसका आयुर्वेद शास्त्र में लौहभस्म के रूप में (औषधि स्वरूप में) विशद विवेचन मिलता है, जो अलग-अलग विधियों से तैयार होता है व कई रोगों की चिकित्सा में इसका प्रभावकारी असर होता है.

लोहा सुप्रसिद्ध धातु है. यह कार्बन के साथ मिला हुआ अम्लजित के रूप में खानों से निकलता है. उस समय यह पत्थर के समान ढेले के रूप में होता है. खानों से प्राप्त होने वाले इन पत्थरों को तीव्र अग्नि में तपाया जाता है और लोहा पिघलकर अलग हो जाता है, परन्तु साधारण अग्नि से यह क्रिया सिद्ध नहीं होती. अतः इस कच्ची धातु को पिघलाने के लिए ६० से १०४ फीट ऊंची तीव्र अग्नि को सहन करनेवाली ईंटों की भट्टी बनाई जाती है. उसमें लोहे को पिघलाकर अलग किया जाता है. इस विधि से प्राप्त लोहे को **'मुण्डलौह'** कहते हैं. यह कठोर भूरा-सा और शरीर में शीघ्र फैलता है. इस प्रकार से प्राप्त लोहे को फिर भट्टी में रखते हैं, जिसमें धौंकनी द्वारा हवा पहुंचाई जाती है. इस क्रिया से लोहे में विद्यमान सारा कार्बन जल जाता है. इसी को **'मृदुलौह'** कहते हैं.

तीक्ष्ण लौहः यदि भट्टी में पिघले हुए पूर्वोक्त लोहे में ढलवे लोहे (मुण्डलौह) की उचित मात्रा मिला दी जाए, तो वह 'तीक्ष्ण लौह' बन जाता है. यह मुण्ड लौह की तरह कठोर एवं मृदुलौह की तरह मृदु होता है.

कान्त लौहः कान्तपाषाण को तपाने से प्राप्त होनेवाले लोहे को 'कान्त लौह' कहा जाता है. इसे उत्तम गुण वाला माना गया है. यह पीतवर्ण, कृष्णवर्ण तथा रक्तवर्ण वाला होता है. मुण्डलौह को भस्म बनाने के लिए नहीं प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि यह अनेक प्रकार के अशुद्धियों से युक्त होता है.

अशुद्ध लौह सेवन से विकारः

अशुद्ध लौह के सेवन से हृदयरोग, कुष्ठरोग, उदरशूल, नाड़ीशूल, दाह, नपुंसकता, कब्ज़ और पथरी रोग उत्पन्न होने का डर रहता है.

लौह शोधन विधिः

तीक्ष्ण लौह का अत्यंत बारीक किया हुआ चूर्ण लेकर उसे एक लोहे की करछी (चम्मच) में डालकर तीव्र अग्नि में तपाएं, जब अच्छी तरह गर्म हो जाए तो इसको एक पात्र में भरे हुए त्रिफलाकषाय में बुझा दें. इस विधि को सात बार दोहराने से लौहचूर्ण अच्छी तरह शुद्ध हो जाता है. शुद्ध करने के लौहचूर्ण की मात्रा कम से कम एक किलो और अधिक से अधिक तीन किलो होनी चाहिए.

त्रिफलाकषाय बनाने के लिए समभाग में हरड़, बहेड़ा और आंवले का मिश्रित जौकूट सोलह भाग लें. एक सौ भाग जल में पकाकर जब चौथाई शेष रह जाए, तो इसे उतार लें. इस बत्तीस भाग बचे हुए कषाय में बुझाने के लिए पांच भाग लौह चूर्ण लेना चाहिए.

लौहचूर्ण को शुद्ध करने पर पहले उसका भानुपाक करना चाहिए.

भानुपाक के बाद स्थालीपाक और इसके बाद लौह का पुटपाक करने से लौह उत्तम रूप से भस्म हो जाता है.

स्थालीपाकः लौहचूर्ण का भानुपाक करने पर उसे फिर त्रिफलाकषाय के साथ एक स्थाली पतीली (कढ़ाही) में तेज़ अग्नि पर पकाते हुए जल को सुखा लेने को स्थालीपाक कहते हैं. स्थालीपाक करने के लिए त्रिफला कषाय इस प्रकार बनाएं. लौहचूर्ण से तीन गुना त्रिफलाचूर्ण लेकर इसमें त्रिफलाचूर्ण से सोलह गुना जल डालकर पकाएं, जब आठवां भाग शेष रह जाए, तो उसे उतार कर छान लें. इस क्वाथ में लौहचूर्ण डालकर स्थाली पाक करना चाहिए.

त्रिफला कषाय के अतिरिक्त लौहचूर्ण को शतावर, भृंगराज, हस्तिकर्ण पलाश मूल के स्वरस लौह चूर्ण के बराबर भाग में लेकर इनके साथ भी स्थालीपाक किया जाता है. इसके अतिरिक्त जिस दोष (वात, पित्त, कफ़) को विशेष रूप से शांत करने के लिए लौहभस्म बनानी हो, उस दोष की शामक औषधि के स्वरस अथवा कषाय के साथ भी स्थालीपाक किया जाता है.

पुटपाक विधि

स्थालीपाक विधि से पकाए हुए लौहचूर्ण को पहले अच्छी तरह जल से धो लें. फिर इस चूर्ण को खरल में डालकर विभिन्न दोषहर औषधियों के स्वरस अथवा कषाय के साथ खूब घोंटकर टिकिया बना लें. इन टिकियों को धूप में सुखा कर एक हांडी में भर उसके मुख पर एक मिट्टी का ढक्कन रखकर उसके जोड़ों को बंद करके सुखा लें. इसके बाद गजपुट में जंगली अथवा हाथ के बनाए हुए सूखे उपले भरकर उसके बीच में उक्त लौह चूर्ण की हांडी रख दें, फिर अग्नि जलाकर पुटपाक करें.

गजपुट ठंडा हो जाए तो उसमें से लौह चूर्ण की हांडी को निकालकर उस चूर्ण को खरल में डालें और उस औषधि या कषाय का स्वरस मिलाकर पहले की भांति ही मर्दन कर टिकिया बना लें, फिर पहले वाली क्रिया को दोहराएं.

इस प्रकार भिन्न-भिन्न औषधियों के स्वरस अथवा कषाय के साथ पीसकर लौह को एक हज़ार बार या सौ बार अथवा साठ बार गजपुट में फूंकें. इस तरह अनेक पुट देने से लोह भस्म में अधिक गुण उत्पन्न होने लगता है. इस विधि से पुटपाक लौह अच्छी तरह भस्म हो जाती है.

लौह मारक गण

अडूसा, मूसली, नीलकमल, सुगन्धबाला, पुनर्नवा, विधारे का मूल, भांगरा, सोंठ, बायविडंग, करंज, सहजन, संभालू, तुलसी और एरंडमूल, हस्तिकर्णपलाश (बड़े चौड़े पत्तों वाला ढाक), चित्तपापड़ा, चंदन इन औषधियों के समूह को लौहमारक गण कहा जाता है. अर्थात् इन औषधियों के योग से लौहभस्म अपेक्षाकृत शीघ्र और अधिक गुणकारी होता है.

लौहभस्म को जिस-जिस रोग को नष्ट करने के लिए उपयुक्त भस्म बनाना हो, उस रोग को नष्ट करनेवाली औषधियां जहां तक मिल सकती हों, उनको लेकर उनके साथ लौहभस्म को घोंटकर पुटपाक करना चाहिए. यदि कहीं वे रोगनाशक औषधियां न मिल सकें तो केवल त्रिफलाकषाय में सौ अथवा हज़ार पुट दी हुई लौहभस्म ही सर्वत्र काम में ला सकते हैं.

लौह निरुत्थिकरण

किसी भी विधि द्वारा बनाई गई लौहभस्म में गोघृत और शुद्ध गंधक समान मात्रा में मिला कर कन्यास्वरस से अच्छी तरह घोंटकर सूखा चूर्ण बना लें. फिर इस चूर्ण को एक शराब सम्पुट में बंद करके गजपुट में फूंक दें. इस प्रकार एक ही गजपुट देने से लौहभस्म निरुत्थित हो जाती है.

निरुत्थीकृत भस्म का परीक्षण

(तीक्ष्ण भस्म या कान्तभस्म) को घृत, मधु, गुग्गुल, गुंजा (रत्ती) और टंकण चूर्ण में मिलाकर संपुट में बन्द कर पुट में फूंकें. यदि इस प्रकार मित्रपंचक के साथ पुट देने से वह ज्यों की त्यों भस्म रूप में ही बना रहे, तो समझना चाहिए कि यह लौह भस्म निरुथ (सभी विकारों से रहित, मृत, शुद्ध) है.

यदि पुट देने पर लौहभस्म का लौहखण्ड या पिण्ड-सा बन जाए, तो उसे अशुद्ध भस्म समझना चाहिए.

शुद्ध (मृत) लौह भस्म के गुण

लौह भस्म रूक्ष (मेद और कफ विकारों में चर्बी और कफ को खुश्क करने वाली), मधु विपाक, तिक्त, कषाय रस है. वीर्य में शीत, गुणों में गुरु और लेखन होती है. यह नेत्रज्योति के लिए उत्तम, शारीरिक तथा उत्पादक अंगों के लिए बलकारक, उदरनाशक, कफपित्तकोपनाशक, त्वचा रोगहर और बुद्धिवर्द्धक होती है. लौहभस्म अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करती है.

लौहभस्म विसर्परूपी हाथी के लिए सिंह के समान घातक, क्षयरोग को दूर करनेवाला, चिरकालीन सर्वांगीण शोथ को मिटानेवाला है. इसके सेवन से यकृत के रोग, गुदा के रोग (बवासीर) दूर होते हैं.

उत्तम लौहभस्म श्वासरोग को मिटाती है और उदरकृमियों को मारती है, शरीर में होनेवाली क्षीणता को दूर करती है. इसके सेवन से शरीर की स्थूलता तथा कफप्रकोपजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं. लौहभस्म पुराना अतिसार, स्त्रियों के मासिक अवरोध, विषमज्वर, योषापस्मार, श्वेतप्रदर, मधुमेह, सूतिका ज्वर आदि रोगों में अत्यंत लाभकारी है, लौहभस्म के सेवन से विभिन्न कारणों से उत्पन्न वातसंस्थान की दुर्बलता पित्त-विकार शीघ्र नष्ट हो जाते हैं.

लौहभस्म का प्रभाव

लौह या लौह के सभी समास (योग) आंतों में पहुंच कर 'लौहगन्धिद' के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं. इसलिए लौह सेवन करनेवाले मनुष्य का मल प्रायः काले रंग का हो जाता है. लौह और लौह के योग आंतों में पहुंचकर मलबंध भी करते हैं. यद्यपि लौह भस्म विशेष मलबंध नहीं करती है, क्योंकि इसके शोधन-मरण में पित्तविरेचक द्रव्य त्रिफला के द्वारा विशेष काम लिया जाता है और भस्म-सेवन काल में प्रायः पित्तविरेचक द्रव्यों के साथ लौह भस्मों का सेवन कराया जाता है, अतः लौहभस्म को रक्तपित्त, रक्तप्रदर, रक्तस्राव और श्लेष्मस्राव आदि में दिया जाता है. लौह आंतों की अन्तः कला द्वारा रक्त में प्रवेश करता है और वहां से यकृत में पहुंचता है. यकृत में इस लौह के कुछ ऐसे ऐन्द्रियिक समास बनते हैं, जो शरीर में लग सकते हैं, यह समास रक्त के रंजक द्रव्य (हेमोग्लोबिन) से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं और बहुत संभव है कि वह समास हेमोग्लोबिन में बदल जाते हैं, इसीलिए पाण्डुरोग में लौह देने से रक्त में रक्ताणु तथा रंजकद्रव दोनों ही बढ़ जाते हैं. रक्त में रक्ताणु तथा रंजकद्रव के बढ़ जाने से शरीर के सभी अवयवों में ओषजन अधिक मात्रा में पहुंचने लगती है, जिससे शारीरिक अवयवों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है, अतः लौह सभी प्रकार से बलकारक होता है.

मात्रा – लौहभस्म को चौथाई रत्ती से लेकर आवश्यकतानुसार दो रत्ती की मात्रा तक सेवन किया जा सकता है.

विविध रोगों में लौह भस्म

रक्तपित्तः लौह भस्म को उचित मात्रा में लेकर उसमें दालचीनी, इलायची, तेज़पात, नागकेशर चूर्ण और खांड मिलाकर वासास्वरस अनुपान से सेवन करने पर रक्तपित्त में आराम मिलता है.

खांसीः लौहभस्म वासा, द्राक्षा तथा पिप्पली चूर्ण मिलाकर सेवन करने से पांचों प्रकार की खांसी में लाभ होता है.

कफ़प्रकोपजन्य रोगः लौहभस्म को पारदगंधक की कज्जली तथा पिप्पलीचूर्ण मिलाकर शहद के साथ सेवन करने से कफ़प्रकोपजन्य रोगों में अत्यधिक लाभ होता है.

वायुपीड़ाः लौह भस्म को सोंठ के चूर्ण के साथ सेवन करने से वायुपीड़ा शांत होती है.

पित्तजरोगः पित्त प्रकोपजन्य रोगों को शांत करने के लिए लौहभस्म को रस सिन्दूर तथा खांड के साथ सेवन करना चाहिए.

कामोत्तेजनाः लौहभस्म को, रससिन्दूर के साथ मिलाकर पान में रखकर खाने से कामोत्तेजना होती है और रंग निखरता है.

परहेज

लौहभस्म खाते समय कोहड़ा (कूष्मांड), तिल-तेल के पदार्थ, उड़द के पदार्थ, राई, मद्य एवं अम्लरस का परित्याग करना चाहिए.

ब्रह्म क्या है?

ईश्वर क्या है?

(महात्मा श्रीतैलंग स्वामी)

क्या वेद, क्या शास्त्र, क्या शौच, क्या संध्या, क्या मंत्र, क्या जप, क्या ध्यान, क्या ध्येय, क्या होम, क्या यज्ञ हवन, इन सब कर्मों से जिसका कुछ भी नहीं, जो ऊर्ध्व नहीं, निम्न नहीं, शिव नहीं, शक्ति नहीं, पुरुष नहीं, नारी नहीं, ब्रह्म नहीं, विष्णु नहीं, ग्रह, तारा, मेघमाला इत्यादि कुछ नहीं, जो चंद्र नहीं, सूर्य नहीं, जिसका उदय और अस्त नहीं, जो स्वर्ग में, नगर में, क्षेत्र में अवस्थिति नहीं करता, जातिगत अथवा अजातिगत जिसकी कोई भिन्नता नहीं, जो एक मात्र निर्वाण रूपी पुण्यमय है, जो पाप पुण्यविहीन सर्वमय चैतन्यस्वरूप है, वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है.

त्वचा रोग विचर्चिका (एक्जिमा) की चिकित्सा

— वैद्य महेंद्र मेहता

यह एक त्वचा रोग है. त्वचा शरीर का सबसे बाहरी आवरण है. यह शरीर का महत्वपूर्ण अंग भी है, जो सौंदर्य के साथ-साथ शरीर के स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य का दर्पण भी है. मनुष्य की त्वचा को देखकर ही एनीमिया, पेट में कीड़ों की शिकायत, पाचन की गड़बड़ी आदि बीमारियों का सरलता से पता चल जाता है.

त्वचा शरीर का बाह्य आवरण है अर्थात् संपूर्ण शरीर का रक्षा कवच है, अतः इसकी उचित साफ़-सफ़ाई व देखभाल की आवश्यकता है. यदि इस पर ध्यान न दिया गया तो एक्ज़िमा जैसे गंभीर चर्मरोग भी हो सकते हैं.

यह एक नाजुक अवयव है, जिस पर कई रोगकारक कारणों का बुरा असर पड़ता है. इन कारणों से त्वचा विविध रोगों से युक्त हो जाती है, जिनका समावेश आयुर्वेद शास्त्र में त्वचा रोग अर्थात् कुष्ठ के अंतर्गत आता है. इन रोगों में एक है विचर्चिका जो आधुनिक युग में 'एक्जिमा' के नाम से जाना जाता है. एक्जिमा को जानने से पहले त्वचा के कुछ मुख्य कार्यों को जान लेना ज़रूरी है.

त्वचा के कार्य

यह शरीर का संरक्षक आवरण है, जिसके भीतर कई अवयव सुरक्षित रहते हैं और बाह्य जीवाणुओं के सीधे संपर्क से दूर रहते हैं. त्वचा से निकलनेवाले पसीने द्वारा शरीर का तापमान नियंत्रित रहता है. पसीने द्वारा त्वचा एवं रक्त की अशुद्धियां दूर होती हैं. लेपादि द्रव्यों के द्वारा औषधियां ग्रहण करने का यह एक उत्तम माध्यम है.

यदि इस त्वचा पर ध्यान न दिया जाए, तो विभिन्न चर्मरोग उत्पन्न हो जाते हैं. इन रोगों के दो भेद किए जाते हैं.



पहला, वे रोग जिनका कारण मालूम हो, जैसे सिफिलिस से उत्पन्न चकत्ते, लेप्रॉसी से उत्पन्न चकत्ते इत्यादि.

दूसरे, वे रोग हैं जिनका कारण अज्ञात होता है. त्वचा के रोगों का उपचार प्रायः लक्षणों पर निर्भर करता है, अतः रोगी व रोग तथा उनका इतिहास इन सभी बातों को ध्यानपूर्वक समझने, अच्छी तरह जानने के बाद ही उपचार करना चाहिए.

एक्जिमा के कारण

विचर्चिका को आयुर्वेदशास्त्र में क्षुद्रकुष्ठ में समाविष्ट किया है. यह अधिकतर रासायनिक पदार्थों का



संपर्क त्वचा के साथ आने से होता है. अर्थात् त्वचा पर रासायनिक पदार्थों के संपर्क से एलर्जिक प्रतिक्रिया के रूप में विचर्चिका उत्पन्न होता है. इस संपर्क के बाद ४ से १० दिनों में लक्षण प्रकट होते हैं. मरीज़ जब मानसिक रूप से अधिक भावुक हो जाता है या चिंताग्रस्त हो, तब रोग की वृद्धि होती है. एक्ज़िमा पैदा करनेवाले जीवाणुओं के संपर्क में आने से भी यह रोग होता है. शरीर की त्वचा पर कहीं घाव होने से इस घाव द्वारा ये जीवाणु शरीर में प्रवेश करते हैं या ऐसे रोगी के संपर्क से भी रोग का संक्रमण नीरोगी व्यक्ति में होता है.

एक्जिमा के विभिन्न रूप

धूपजन्य एक्जिमा: कुछ लोग सूर्य की किरणों को सहन नहीं कर पाते, अतः उनकी त्वचा भी वह ताप सहन नहीं कर सकती. इसलिए यह रोग प्रायः उन्हीं भागों पर होता है जो खुले होते हैं. जैसे - चेहरा, गर्दन, कपाल, हाथ-पैर, कान इत्यादि.

शैशवीय एक्जिमा: यह एक्ज़िमा शिशुओं में पाया जाता है इसलिए इसे शिशु का संक्रामक एक्ज़िमा कहते हैं. इस रोग की उत्पत्ति में निम्न कारण होते हैं.

जन्म से या कुलज़ स्वरूप में हो अर्थात् आनुवांशिक होता है.

मनोवैज्ञानिक कारण - माता एवं शिशु में प्रेमसंबंध की कमी, यह रोगवृद्धि का महत्वपूर्ण कारण है.

आहार द्रव्यों में कार्बोहाइड्रेट तथा चिकने पदार्थों का अतिसेवन.

शरीर के खुले घावों से एक्ज़िमा के कीटाणु शरीर में प्रवेश कर त्वचा पर एक्ज़िमा उत्पन्न करते हैं.

एलर्जी प्रोटीन की असहनशीलता एलर्जी का गौण कारण है. इस व्याधि में शिशुओं का वजन बढ़ता है. अर्थात् उसका प्राकृतिक वज़न अधिक होता है तथा त्वचा प्रायः रूखी होती है, आंखों में मोतियाबिंदु की शंका होती है.

हथेली और पैरों का एक्जिमा

प्रायः बड़ी आयु के लोगों की त्वचा में (हथेली व पैरों में) यह होता है. इनके हथेली का बाह्य शुष्क स्तर और अधिक शुष्क हो जाता है. हथेली की लकीरें अधिक स्पष्ट हो जाती हैं. स्वेद नहीं आता है. खुज़ली अधिक होती है. नखों के तलों में (matrix) रोग होने से कभी-कभी नखों में भी यह रोग हो जाता है, जिससे नख खुरदुरे, भंगुर तथा बदरंग हो जाते हैं.

पैर के एक्ज़िमा में सिराविकृति के कारण वहां का रक्तसंवहन ठीक नहीं होता, जिससे पैर में रक्त जमा होकर वहां तद् जन्य लक्षणों को पैदा करता है. जैसे सूज़न या उस हिस्से की त्वचा की प्राकृतिक शक्ति कम होना. पैर में खुजली होती है एवं वहां खुजलाने से घाव हो जाता है. इन घावों के जल्दी ठीक न होने से उनमें जीवाणुओं का संक्रमण होकर एक्ज़िमा की उत्पत्ति होती है.

इन घावों को अन्य घावों से अलग पहचानना ज़रूरी है, मधुमेह जन्य घाव जल्दी नहीं भरते. अतः मूत्र एवं रक्त स्थित शर्करा का मापन करना चाहिए.

स्पर्शज विचर्चिका: नाना रासायनिक द्रव्यों के संसर्ग से होनेवाले इस रोग को स्पर्शज विचर्चिका कहते हैं. सिर पर या कान के पीछे वाली छिल्कोंयुक्त पामा को ललाटपामा कहते हैं एवं व्रण के समीप होनेवाले पामा को 'एक्ज़िमैटॉइड डरमैटिस' कहते हैं.

एक्ज़िमा के कारणों के आधार पर उसके पुनः २ भेद हो सकते हैं. ऑटोलिटिक एक्ज़िमा, एण्डोजिनस एक्ज़िमा.

शरीर के बाह्य कारणों से उत्पन्न ऑटोलिटिक एक्ज़िमा

इसमें प्रायः त्वचा में विभिन्न कारणों से घाव होते हैं, जिससे घाव को खुजलाने से तथा खुला रखने से विभिन्न जीवाणुओं का संक्रमण होता है. विभिन्न रासायनिक पदार्थों का स्पर्श से शोषण होता है व एक्ज़िमा उत्पन्न होता है. इसमें पानीदार गांठें होती हैं.

शरीरान्तर्गत कारणों से उत्पन्न एण्डोजिनस एक्ज़िमा

इसमें कारणों का पता नहीं मालूम होता. इसमें रोगी की मानसिक स्थिति चंचल एवं अस्थिर होती है. इसके कारण प्रायः औषधिज़न्य होते हैं. इसमें भी पानीदार गांठें आती हैं.

पूर्व लक्षण

आयुर्वेदानुसार इसके लक्षण इस प्रकार होते हैं - 'सकण्डू' पिडका श्यावा बहुस्त्रावा विचर्चिका।'

(चरकसंहिता)

काले रंग के दाने त्वचा पर उठते हैं. उनमें अत्यंत खुजली होती है और उन दानों से स्राव भी निकलता है.

दूसरे मत में विचर्चिका शुष्क और आर्द्र दो प्रकार की होती है. शुष्क प्रकार में त्वचा खुरदुरी होती है और खुजलाने से त्वचा के छिल्के निकलते हैं. आर्द्र प्रकार में स्राव की अधिकता होती है. दाने गांठदार और पानी से भरे होते हैं.

सामान्य चिकित्सा

आभ्यन्तर: कोई बाह्य विक्षोभक या संघर्षक द्रव्य इसका कारण हो तो उसे दूर करना चाहिए. खुजली दूर करने के लिए सर्जिकाक्षारयुक्त जल (खाने का सोडा) लगाने से तुरन्त कण्डू में शांति होती है.

सामान्य रूप से इसकी चिकित्सा करने से पूर्व जिस कारण 'एक्ज़िमा' बढ़ता हो उस कारण को तुरन्त ही रोक देना चाहिए. विशेषकर भोजन में गेहूं, दूध, चॉकलेट, नमक, तला हुआ, खट्टा, चरपरा, मीठा अन्नपान त्याग देना चाहिए अथवा कम मात्रा में देना चाहिए. पेट साफ़ रखने के लिए अनुकूल विरेचन चूर्ण लेना चाहिए. शरीर स्वच्छ और साफ़-सुथरा रखना चाहिए. खुजली आने पर खुजलाने की बजाय सर्जिका क्षारयुक्त जल लगाना चाहिए. नाखून काट कर स्वच्छ रखने चाहिए.

सामान्य रूप से प्रस्तुत औषधियां 'एक्ज़िमा' में अत्यंत उपयोगी हैं -

आरोग्यवर्धिनी - २ गोली (दिन में ३ बार गरम पानी से)

गन्धक रसायन - २ गोली (दिन में ३ बार गरम पानी से)

हरड़ का चूर्ण - ६ ग्राम सुबह-शाम पानी के साथ लें.

मंजीठ, रजनी, दारुहल्दी, सारिवा चंदन, हरड़ - २-२ रत्ती दिन में ३ बार पानी के साथ अथवा महामंजिष्ठादि क्वाथ के साथ लेना चाहिए.

लेप

गन्धक मलहम - दिन में २ बार एक्ज़िमा पर लगाना चाहिए.

शतधौतघृत में शुद्ध गंधक और मंजिष्ठ का चूर्ण मिलाकर दिन में दो बार लगाना चाहिए.

अगर एक्ज़िमा से पानी निकलता हो, पक गया हो और खुजली आती हो, तो उस एक्ज़िमा को त्रिफलाक्वाथ या निम्बक्वाथ से धोना चाहिए. अगर अधिक पस हो गया हो तो उपरोक्त क्वाथ में तुत्थादिक मिलाकर घाव को धोना चाहिए और खाने की दवा में आधी रत्ती से १ रत्ती रसमाणिक्य और २-४ रत्ती तक शुद्ध बली मिलाकर सेवन करना चाहिए.

अगर एक्ज़िमा में दाह अधिक हो तो चूर्ण में २-४ रत्ती प्रवालपिष्टी और १ ग्राम गिलोय का चूर्ण अथवा २ रत्ती अमृतासत्व मिलाकर देना चाहिए. रोगी अगर उष्ण प्रकृति (पित्त प्रकृति) वाला हो तो संशमनीवटी - ४ गोली दिन में ३ बार दवा के साथ देने से तुरन्त फ़ायदा होता है.

विड़ग, सिवा, रजनी - १-१ ग्राम दिन में ३ बार पानी के साथ देने से और गन्धक मलहम लगाने से आराम मिलता है.

१०० ग्राम शुद्ध मक्खन, १० ग्राम शुद्ध नीला थोथा दोनों को तांबे के पात्र में सात दिन तक घोंट कर रखें. बाद में गरम करके ठंडा करें. इसका लेप लगाने से एक्ज़िमा में आराम मिलता है.

शतधौत घृत में शुद्ध मनःशील १ ग्राम, शुद्ध हरताल १ ग्राम, शुद्ध नीला थोथा १ ग्राम, शुद्ध गंधक १ ग्राम मिलाकर व घोंट कर प्रलेप रूप में लगाने से फ़ायदा होता है. पारदादि मलहम लगाने से अत्यंत उपशय मिलता है, यह अनुभूत है.

चण्डमारुत लेप मक्खन के साथ मिलाकर लगाने से उचित लाभ होता है.

हा हा हा!

डॉक्टर ने मरीज़ को देखा और कहा, 'उठो, और जाकर खिड़की के बाहर जीभ निकालो.' मरीज़ ने वैसा ही किया. पर उसे थोड़ा अज़ीब-सा लगा और डॉक्टर के पास जाकर उसने इसका कारण पूछा.

डॉक्टर ने जवाब दिया, 'मैं अपने हर मरीज़ को ऐसा करने के लिए कहता हूं'.

'पर इससे क्या फ़ायदा होता है?'

'कुछ नहीं'. डॉक्टर ने कहा, 'पर मेरे सामने जो पड़ोसी रहता है न वह मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता.'

- कु. रंजना,

मानव जीवन की मूल प्रवृत्ति - काम

- डॉ. अशोक पाण्डेय

मनुष्य में जीवन पर्यन्त कुछ सहज प्रवृतियां पाई जाती हैं. इनमें से एक है - 'काम' या यौन प्रवृति. जल, वायु, भोजन आदि के अतिरिक्त और आवश्यक मूल प्रवृति (Life Instinct) तथा जैविक आवश्यकता होती है - काम (SEX). यह काम सृष्टिचक्र का मूल है, सृष्टिचक्र का एक अति-आवश्यक हिस्सा तथा मानव को दी हुई दिव्यतम आनंदमयी प्रवृति है, जिसके द्वारा मानव रचनात्मक तथा उत्पादक (Reproduction) कार्य करता है. काम का जीवन में महत्व न जानने के कारण न जाने कितने घर उजड़े, कितने घर टूटे, कितने मन तनाव अथवा कुंठाग्रस्त हुए? कितने का व्यक्तित्व विघटित हुआ?

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रॉयड ने मानव मन के अध्ययन और व्यक्तित्व व्यवहारों के अध्ययन करने के बाद पाया कि प्रत्येक मनुष्य में एक जन्मजात प्रवृत्ति तथा प्राथमिकता की प्रेरणाएं होती हैं,

इन्हीं प्रेरणाओं के आधार पर ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा व्यक्तित्व का निर्धारण होता है.

फ्रॉयड के सिद्धांत के अनुसार प्राणिमात्र की मूल भावना यौन भावना अर्थात् काम है. काम शरीर की आवश्यकता है, जिसका (उद्देश्य) शारीरिक और मानसिक उत्तेजना को समाप्त करना है. इसी मूल प्रवृत्ति या यौन भावना का नामकरण फ्रॉयड ने 'लिबिडो' के रूप में किया है. लिबिडो की जीवन शक्ति के द्वारा, जो 'वास्तविकता के नियमों' (Reality Principle) से बंधी है, इसके आधार पर दो जीवों के बीच, दो विभिन्न व्यक्तियों के मध्य समीपता का बोध होता है. 'काम' की भावना में केवल शारीरिक संपर्क ही नहीं, बल्कि वह समस्त इच्छाएं शामिल हैं, जिनके द्वारा दो व्यक्ति परस्पर स्पर्शादि आदि शारीरिक क्रियाओं या मात्र मानसिक क्रियाओं अथवा दोनों ही भावना से प्रेरित सुख का अनुभव करते हैं. वस्तुतः काम, सुख के नियमों के तहत संचालित होकर व्यक्तित्व का निर्धारण करती है. यही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति और धर्म-पुराणों-वेदों-उपनिषदों ने भी 'धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष' को जीवन का चुतर्विध पुरुषार्थ माना है और इनकी प्राप्ति को ही जीवन का परम लक्ष्य माना है. स्वयंसिद्ध है कि प्राचीन काल के मनीषियों ने 'काम' को 'मोक्ष' से पहले स्थान दिया है.

काम प्रवृति की विविधताएं और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों की आवश्यकताएं कामुक इच्छाओं को उत्पन्न करती हैं. शरीर का कोई विशेष भाग ही कामेच्छा का स्रोत होता है. कामेच्छा के उत्पादक शरीर- स्रोतों (यथा-होठों, मुखगुहा, गुदीयक्षेत्र, कामांगों, स्तनादि) को फ्रॉयड ने मनोविश्लेषण के सिद्धांत प्रतिपादन में 'कामोत्तेजक केन्द्रों' के रूप में मान्यता दी है.

यौवन अभिव्यक्ति

मानव बचपन से ही अपनी यौन भावना की अभिव्यक्ति करने लगता है. यह अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती है, किसी भी शिशु का हाथ अपने कामांगों पर ही अधिकतर होता है. शायद ही किसी अन्य अंग को शिशु इतनी अधिक देर तक स्पर्श करता हो. अधिकतर शिशु अपनी यौन भावना को अपने या वातावरण में पड़े प्रभाव के अनुसार अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं. जैसे पशुओं के यौनाचरण, माता-पिता या पड़ोस का व्यवहार आदि.

शैशवावस्था से विकसित होते हुए क्रमिक रूप से काम-भावना यौवनावस्था में संयुक्त होकर सृष्टिचक्र तथा जीवोत्पत्ति के लक्ष्य में सहायक होता है. 'काम' के अंतगर्त केवल सहवासजन्य क्रीड़ाओं को ही नहीं, बल्कि उन समस्त इच्छाओं के व्यापक क्षेत्र को काम का क्षेत्र निरूपित करते हुए जीवन के लक्ष्य को मृत्यु के रूप में स्वीकार किया है. व्यक्तित्व के विकास में शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक लैंगिक आकर्षण तथा यौन का महत्वपूर्ण स्थान है.

मानव, जीवन के कई तथ्यों से जुड़ा हुआ है. 'काम' भी जीवन का ऐसा ही तत्व है, जो बचपन से पनपते हुए प्रौढ़ावस्था तक पहुंचता है. अतः 'काम ही जीवन की मूलप्रवृत्ति है' कहना अतिशयोक्ति न होगी.

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व कैसा है? और वह कैसा व्यवहार करता है? यह उस व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक विकास पर निर्भर करता है, जबकि दोषपूर्ण यौनिक विकास अथवा यौनिक विकास क्रम में अवरोध से असामान्यता तथा विकृत व्यक्तित्व का सृजन होता है.

यौनिक अवस्थाएं

जन्म से १८ माह तक शिशु मुख से यौनिक तृप्ति प्राप्त करता है. जन्म से आठ माह तक के वय में शिशु मुख, होंठ तथा जिह्वा को चूसकर यौन संतुष्टि का अनुभव तथा प्रदर्शन करता है. स्मरणीय है कि यौनिक क्रीड़ाओं में भी चुम्बन तथा चूषण से यौन संतुष्टि प्राप्त की जाती है. इस के बाद "काटने या चबाने" की क्रिया द्वारा शिशु अपनी काम भावना की संतुष्टि करता है. काटने की क्रिया प्रौढ़ वय में दंतक्षत, नखक्षत आदि यौन-प्राक्कीड़ाओं के समान है. प्रायः इस अवस्था में शिशु अपनी जननेन्द्रियों से खेलकर, किसी भी वस्तु को चूसकर अपनी काम भावना की अभिव्यक्ति का प्रयास करता है. दुग्ध-पान को मां द्वारा बंद करने, नये भाई-बहन का जन्म आदि स्थितियों से इस अवस्था में हीन भावना उत्पन्ना होती है, इस दशा में यौन तृप्ति की क्रियाओं का अवरोध या दमन, बाद में मुखकामिता (oral sex) जैसे चारित्रिक विसंगतियों का कारक होता है.

जन्म से ८ माह से ४ वर्ष तक का बालक या बालिका की यौन संतुष्टि का प्रमुख क्षेत्र गुदीय क्षेत्र होता है. कठोर शारीरिक स्वच्छता की शिक्षा

एवं मल-मूत्र त्याग में नियंत्रण इस अवस्था में विपरीत प्रभाव डालती है, इस स्थिति की हीनता व्यक्तिगत विकास में बाधक होती है; साथ ही साथ व्यक्तित्व की बाध्यता को जन्म दे सकती है. धृष्ट, मिथ्यानम्र, या स्वच्छता का अतिप्रेमी व्यक्तित्व बाल्यावस्था के गुदीय यौन तुष्टि की अनावश्यक बाधा का परिणाम होती है.

तीन वर्ष से सात वर्ष के वय का बालक अपनी जननेन्द्रियों के प्रति अत्यधिक रुचि लेता है. शिश्न की उपस्थिति से बच्चों के प्रति बच्चियों की डाह होती है. शरीर विज्ञान भी बच्चियों की इस लिंगी भिन्नता के डाह और हीनता की वास्तविकता स्पष्ट करता है.

जननेन्द्रियों से खेलने के लिए बालकों को अनावश्यक रूप से बलपूर्वक रोकना कालान्तर में अपराध बोध को जागृत कर देता है. हस्तमैथुन, कामुक साहित्यों तथा चित्रों की ओर झुकाव, काम के प्रति कठोर रुख या घृणा, इस उम्र में हुए मनोवैज्ञानिक बाधाओं के अथवा दमन के परिणाम होते हैं.

५ से १२ वर्ष तक बालकों का नैतिक बौद्धिक विकास होता है. डॉ. ग्रैसेल के अनुसार जन्म के तीसरे-चौथे वर्ष में बच्चे एक विशेष ललक के साथ-कीड़े मकोड़ों तथा मक्खियों के जोड़ों को निहारते हैं. कुत्तों, चौपायों को यदाकदा समागमरत देखकर उनके शरीर में सनसनी-सी फैल जाती है.

१२ वर्ष से २० वर्ष तक की अवस्था, बालक के यौनिक विकास की अवस्था होती है. द्वितीयक लैंगिक लक्षणों-यथा लड़कों में दाढ़ी-मूंछें, आवाज़ में भारीपन, पेशियों में बलिष्ठता आदि और लड़कियों में स्तन तथा नितम्बों में उभार, प्यूबिक हेयर, आवाज़ का पतलापन आदि परिवर्तन तथा ऋतु-स्राव प्रारंभ हो जाता है. शरीर में हार्मोनल परिवर्तन होने से ये लक्षण शारीरिक मानसिक परिवर्तन होते हैं. विपरीत लिंगी आकर्षण, समझ तथा अन्य सहज यौनिक प्रवृत्तियां और काम भावनाएं जाहिर होने लगती हैं.

अतृप्ति से उत्पन्न विकार

फ्रॉयड के समान युंग ने भी कामशक्ति को जीवन का केन्द्र माना है और स्पष्ट किया है कि दोषपूर्ण मनोयौनिक विकास ही कालान्तर में यौनिक असामान्यता आदि का कारक बनता है. शिशु को मातृत्व प्रेम का अभाव या दोषपूर्ण स्नेह व्यवहार से उसके व्यक्तित्व तथा भावी जीवन में असामान्यता, हीनता, तनाव तथा अपराध भावना से भर देता है. क्योंकि बच्चे के यौनिक विकास की बाधा, भावी जीवन में विभिन्न मानसिक रोगों से घनिष्ठता से सम्बद्ध होती है - जैसे काम की प्रेरणा, अपरिपक्व व्यक्तित्व में संवेगात्मक विकृति को जन्म देती है. पशुगमन से कामुकता की शांति, परपीड़न, आत्मरति, यौनांगों के दर्शन और स्पर्श से कामशांति, पत्नी को मारना, पीटना आदि लक्षण भी प्रेरणा जनित असामान्यता के उदाहरण हैं.

किशोरावस्था के साथ ही बच्चों की कामभावना क्रमशः जोर पकड़ने लगती है. वे अपने विपरीत लिंगियों में स्वाभाविक सहज आकर्षित हो, रुचि लेने लगते हैं. सहवास की सामाजिक बंदिशें तथा नैतिकता के मूल्य से घिरे परिवेश में कामोत्तेजना की शांति का उपाय दिखता नहीं, अस्तु प्रथमतः हस्तमैथुन को कामक्षुधा शांत करने के लिए अपनाया जाता है.

विशेष लेख

स्वेदन - आयुर्वेद चिकित्सा

- वैद्य तेजस क. माऊ



आयुर्वेद में विभिन्न रोगों के के लिए तथा विभिन्न व्यक्तियों पर कई प्रकार की चिकित्सा के उपायों का निर्देश किया गया है. और इन्हीं उपायों का एक साथ प्रयोग कर या इनका अलग-अलग प्रयोग कर रोग एवं रोगी अथवा दोनों की स्थिति पर गौर करके ही चिकित्सा करना उपयुक्त माना गया है: आयुर्वेद में चिकित्सा करने के दो मुख्य उपायों का मूलभूत रूप में वर्णन मिलता है. पहले उपाय का मुख्य उद्देश्य शरीर में मौजूद दोषों को शरीर में ही शांत कर देना है. इसमें पहले उपाय में विकृत दोषों के शरीर से बाहर निकल जाने के कारण उन दोषों से पुनः रोग की उत्पत्ति होने की संभावना नहीं रहती (जबकि दूसरे उपाय में वह स्थिति बन सकती है). इन दोनों उपायों को आयुर्वेद में 'शोधन' और 'शमन' के नाम से जाना जाता है.

शोधन उपाय में 'पंचकर्म' उपायों का निर्देश मिलता है और नाम के अनुसार यह पांच ऐसे कर्म उपाय हैं, जिससे शरीर में विद्यमान दोषों को बाहर निकाल सकते हैं.

इन उपायों से पहले कुछ ऐसे भी उपाय हैं, जिसे 'पूर्व कर्म' कहा जाता है. इसको करने पर थोड़ी मात्रा में दोषों का निर्हरण होता है और साथ-साथ पूरे शरीर के दोषों को चलायमान करके ऐसी जगह पर एकत्रित करते हैं जिससे पंचकर्म द्वारा एक साथ दोषों को शरीर से बाहर निकाला जा सके. इसी पूर्व कर्म के उपायों में मुख्य 'स्नेहन' और 'स्वेदन' को बताया गया है.

शरीरगत रोगों को ठीक करने के लिए स्वेदन - स्नेहन की प्रक्रिया बतायी गई है. स्नेहन में शरीर से पसीना बाहर आ जाता है और संबंधित अंग का रोग शांत हो जाता है. स्नेहन करने से पूर्व व पश्चात् कुछ सावधानियों पर ध्यान देना ज्यादा ज़रूरी है.

स्नेहन एवं स्वेदन

स्नेहन अर्थात् किसी भी चिकनाई से शरीर की चिकनाई को बढ़ाना. यह बाहर से त्वचा पर चिकनाई लगा कर या रगड़कर कर सकते हैं या चिकनाई का सेवन कर (पीना) आभ्यांतर (शरीर के भीतर) भी स्नेहन कर सकते हैं. इससे मुख्यतया चिपके हुए दोष नरम होकर चलायमान होने की स्थिति में आते हैं.

स्वेदन, यह स्नेहन द्वारा चलायमान हुए दोषों को अथवा वे दोष जो कहीं पर चिपके नहीं हैं, उनको चलायमान करता (जिससे पंचकर्म द्वारा उन दोषों को निकाला जा सके.) या सीधे ही शरीर से बाहर निकाली जाने वाली प्रक्रिया को 'स्वेदन' कहते हैं.

यहां स्वेदन का अर्थ है जिस प्रक्रिया में स्वेद (पसीना) बाहर निकले, उन सभी प्रक्रियाओं का समावेश स्नेहन के अंतर्गत आता है. स्वेद शरीर का अनुपयोगी मलांश है, इस कारण उचित स्वरूप से उसका शरीर से निकल जाना शरीर व स्वास्थ्य के

लिए अच्छा होता है. हमारे शरीर में सतत् स्वेद निकलने की प्रक्रिया चलती रहती है. लेकिन हवा और गर्मी से पसीना निकलते ही उड़ जाता है, जिसके कारण उसके निकलते रहने का पता नहीं चलता. हां, अधिक गर्मी में, ज्यादा शारीरिक श्रम करने पर, गर्म, तीखा, खान-पान कुछ अधिक कर लेने पर, गुस्सा होने पर, भयभीत होना इत्यादि अवस्था में पसीना ज़्यादा निकलता है, पर ये सब प्राकृत कारण हैं, पसीना निकलने के. पर यदि इनसे विशिष्ट किसी उद्देश्य से व्यक्ति के शरीर में से स्वेद की प्रवृत्ति कराते हैं, तो उसे ही 'स्वेदन कर्म' कहते हैं.

स्वेदन का उद्देश्य

इसका एक उद्देश्य तो हमने देख लिया कि वह पंचकर्म के पहले की जाने वाली प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त है. इसके अलावा स्वेदन कुछ रोगों को भी हरता है, अतः स्वेदन बिना किसी औषधि के सेवन के रूप में रोग निवारणार्थ उपयुक्त प्रक्रिया है.

स्वेदन से शरीर में हुआ स्तंभ (जकड़न), गौरव (भारीपन) व शैत्य (ठंडापन) दूर होते हैं. इससे शरीर में स्फूर्ति आती है और व्यक्ति ज़्यादा क्रियाशील बनता है.

सर्दी, खांसी, हिचकी, दमा, कान, नाक, गर्दन, सिर के दर्द व पक्षाघात, पीठ, कमर आदि की जकड़न आदि कई रोगों में स्वेदन से लाभ मिलता है. मुख्यतः वात दोष और कफ दोष से उत्पन्न रोगों में स्वेदन से लाभ होता है, परंतु किस रोग में किस प्रकार का स्वेदन देना है, यह कुशल वैद्य ही बता सकता है.

स्वेदन के प्रकार

स्वेदन करने के लिए उष्ण गुणात्मक द्रव्य का प्रयोग करना पड़ता है यह बात निश्चित है, किंतु उस द्रव्य की उष्णता में कमी या अधिकता, स्वेदन किस स्थान पर व कैसे-कैसे दिया जाता है, इन सभी बातों से स्वेदन करने के भिन्न-भिन्न प्रकार आयुर्वेद में वर्णित हैं. उनमें से कुछ मुख्य इस प्रकार हैं:

अनाग्नि - अग्नि : जिस स्वेदन प्रक्रिया में अग्नि का सीधा उपयोग नहीं होता वह अनाग्नि तथा जिसमें होता है वह अग्नि स्वेदन है. अनाग्नि स्वेदन के प्रकारों में व्यायाम (कसरत), आतप (सूर्य ताप को लेना), उपनाह (औषधियों से निर्मित लेप को लगाना) आदि का समावेश होता है, जबकि अग्नि स्वेदन में वाष्प, ताप आदि का समावेश होता है.

स्निग्ध - रूक्ष : जहां पर रूखे द्रव्यों को लेकर सेंक देना हो वह रूक्ष स्वेदन. उदाहरण के तौर पर बालू, पत्थर, धातु को गर्म करके उससे सेंक लेना और तेल, घी, तिल की कल्क (चटनी) आदि को गर्म करके उससे सेंक लेना, वह स्निग्ध स्वेदन कहलायेगा.

एकांग - सर्वांग : किसी विशिष्ट अंग पर ही सेंक करने को एकांग - एक अंग पर और संपूर्ण शरीर पर करने को सर्वांग स्वेदन कहते हैं.

मृदु - मध्यम - महान : ताप का प्रमाण तथा सेंक देने के समय के कम से लेकर आधिक्य तक की स्थितियों के अनुसार मृदु - मध्यम और महान स्वेदन कहे जाते हैं. इसमें बालक, कमज़ोर व्यक्ति तथा गर्मी की ऋतु में, रोग की प्रबलता में तथा हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को महान स्वेदन दे सकते हैं. काश्यप संहिता में नवजात बालकों को मृदु सेंक देने के लिए हथेलियों का उपयोग करना चाहिए ऐसा बताया गया है.

बाह्य - आभ्यांतर: साधारणतया तो सभी सेंक बाह्य त्वचा पर किए जाते हैं, किंतु कुछ ऐसी औषधियां हैं, जिनके स्वेदन से स्वेद की प्रवृत्ति

होती है तथा इस तरह से स्वेदन कराने को आभ्यांतर स्वेदन कहते हैं.

इसके साथ ही चरक ने स्वेदन करने के लिए तेरह तरीकों का निर्देश किया है. जैसे –

संकर स्वेदन : औषधि द्रव्यों की पोटली बना कर उनको गर्म दूध आदि में डुबोकर उस पोटली से सेंक देना संकर स्वेदन कहलाता है. इससे मांसधातु आदि क्षीण हो तो उसकी वृद्धि होती है. इसमें वर्णित 'षष्टिकशाली' नामक स्वेदन बच्चों को पोलियो (Polio) हो जाने पर उसमें अच्छा लाभ दिलाता है.

प्रस्तर स्वेदन : इसमें धान्य के दानों को शैय्या पर फैला कर, नीचे से ऊष्मा देते हुए, व्यक्ति को उस शैय्या पर सुलाकर सेंक देना होता है. पीठ, कमर आदि के दर्द में इससे लाभ मिलता है.

नाड़ी स्वेदन : विशिष्ट वनस्पतियों से युक्त जल के वाष्प को नाड़ी-नलिका द्वारा विशिष्ट स्थान पर सेंक देने की यह प्रक्रिया है. इसका आजकल अत्यधिक प्रयोग हो रहा है. यह विधि कम झंझट वाली होने से घर पर भी इसको कर सकते हैं. इसके लिए प्रेशर-कुकर में पानी भर कर उसमें पानी से १/८ वां भाग निर्गुण्डी के पत्ते या संभालू मेवडी पत्ते अथवा शोभांजक के पत्ते (पेड़ की छाल) या तो सहजन के पत्ते व काष्ठ को डाल, कुकर को आंच पर रखें. सीटी (Whistle) की जगह रबर की नली लगा दे, उस नली के दूसरे सिरे पर एक कपड़े के टुकड़े को रखें, जिससे भाप के साथ आनेवाले गरम छींटे व्यक्ति के शरीर को न लगने पाएं. व्यक्ति के शरीर के लगभग ६-८ इंच दूर इसको रख, इसमें से निकलने वाली भाप से शरीर पर सेंक करते हैं. सेंक करते समय भाप के कारण यह भाग कहीं जल न जाए, इस पर विशेष ध्यान देते हैं. इस तरीके से सेंक करने से पीड़ा, गौरव व बहुत से वात रोगों में राहत मिलती है. (किंतु यह तरीका अपनाने से पहले वैद्य से सलाह लेना ज़्यादा उचित होगा.)

परिषेक स्वेदन : गर्म द्रव्य की धारा गिराते हुए, किसी विशिष्ट स्थान पर सेंक करना इसको परिषेक कहते हैं.

अवगाहन स्वेदन : बड़े पात्र में गर्म द्रव्य भरकर, रोगी को पूर्ण रूप से अथवा उसके किसी भाग को उसमें डुबोकर सेंक देना यह 'अवगाहन' कहलाता है. अर्श (बवासीर) में, यदि वे खूनी हो तो, गरम पानी से भरे टब में बैठकर सेंक लेने से उसके दर्द में बहुत ही लाभ होता है.

जेंताक स्वेदन : एक कमरे के बीच में अग्नि जलाकर, कमरे को गर्म करके वहां सेंक लेना वह 'जेंताक स्वेदन' है. सर्वांग स्वेद देने का यह एक उत्तम तरीका है. आजकल जो सोना बाथ लेते हैं, वह प्रक्रिया कुछ इसी प्रकार की है, सिर्फ़ जेंताक स्वेदन में गर्मी रूखी रहती है जब कि सोना बाथ में आर्द्र रहती है.

कुटी स्वेद : यह भी जेंताक के जैसे ही एक कमरे में दिया जाने वाला सेंक है, सिर्फ़ इसमें गर्मी देने के स्थान में परिवर्तन है. यह जेंताक से ज़्यादा तीक्ष्ण सेंक है.

अश्मघन स्वेद, कर्षुस्वेद, भू-स्वेद, कुंभी स्वेद, कूप स्वेद, होलाक स्वेद ऐसे भी स्वेदों के प्रकारों का वर्णन उन तेरह प्रकारों में वर्णित है, किंतु उनका कम प्रचलन है.

स्वेदन-सम्यक हुआ है यह कैसे जानें?

यदि व्यक्ति को ठंड नहीं लगती, दर्द में शांति मिलती है, उसकी जकड़न दूर होती है, भारीपन कम होता है, शरीर में कोमलता आती है, स्वेद का प्रादुर्भाव होता है और रोग के लक्षण कुछ कम होकर शीत (ठंडक) सेवन की इच्छा हो तो स्वेदन ठीक से हुआ है यह जानें. इसके विपरीत यदि कोई लक्षण निर्माण हो या कुछ त्रस्त करने वाले लक्षण उत्पन्न हो जाएं तो स्वेदन ठीक से नहीं हुआ यह समझना चाहिए.

स्वेदन से पूर्व

सेंक लेने से पहले वैद्यकीय सलाह लेना आवश्यक है. किसी विशेष प्रकार के सेंक लेने की अवस्था में वैद्यक निरीक्षण होना आवश्यक हो जाता है.

सेंक लेते समय कभी भी गर्म द्रव्य (वाष्प को छोड़कर) का शरीर की त्वचा के साथ संपर्क नहीं होना चाहिए. त्वचा और सेंक देने वाले उपकरण के बीच वस्त्र का आवरण होना अत्यंत ज़रूरी है.

सेंक देते समय किसी व्यक्ति को वह ज़्यादा गर्म लगे या उसकी त्वचा लाल हो जाए, तो उस स्थान पर सेंक तुरंत बन्द कर दें तथा वहां शीत जल का सिंचन करें.

गले के ऊपरी भाग में सेंक लेना हो सके तो टालें- तथा लेना पड़े तो वह अत्यंत मृदु हो इस बात का ध्यान रखे.

पित्त प्रकृति वाले, पित्त के रोगों से ग्रस्त, जैसे – रक्तपित्त, कामला, कुष्ठ आदि रोगी, चक्कर, दुर्बलता आदि लक्षण युक्त व्यक्ति का स्वेदन न करें. यही उत्तम रहता है.

भूख लगी हो, व्यक्ति मानसिक तनाव में हो, शोकग्रस्त हो, क्रोधित हो, प्यास लगी हो, ऐसी अवस्था में सेंक न करें.

संज्ञानाश वाले व्यक्ति, विषपान जिनके द्वारा हुआ हो, मद्यपान जो किए हों तथा परिश्रम करके जो थके हुए हों, ऐसे व्यक्तियों को भी सेंक न करें.

गर्भावस्था तथा रजःस्वला स्त्रियों को सेंक नहीं कराना चाहिए.

जिनको उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) की शिकायत रहती हो, उनको विशेष वैद्य से सलाह तथा निरीक्षण होने पर ही सेंक करना चाहिए.

अमृत वचन

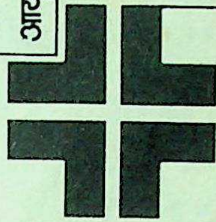
परमात्मा एक है.

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यतो ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥
स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्रावति यच्च न।
तमिदं निगतं सहःस एष एक एकवृदेक एव।
य एतं देवमेकतवृतं वेद ॥

(अथर्वः १३।४ (२) १६-२०)

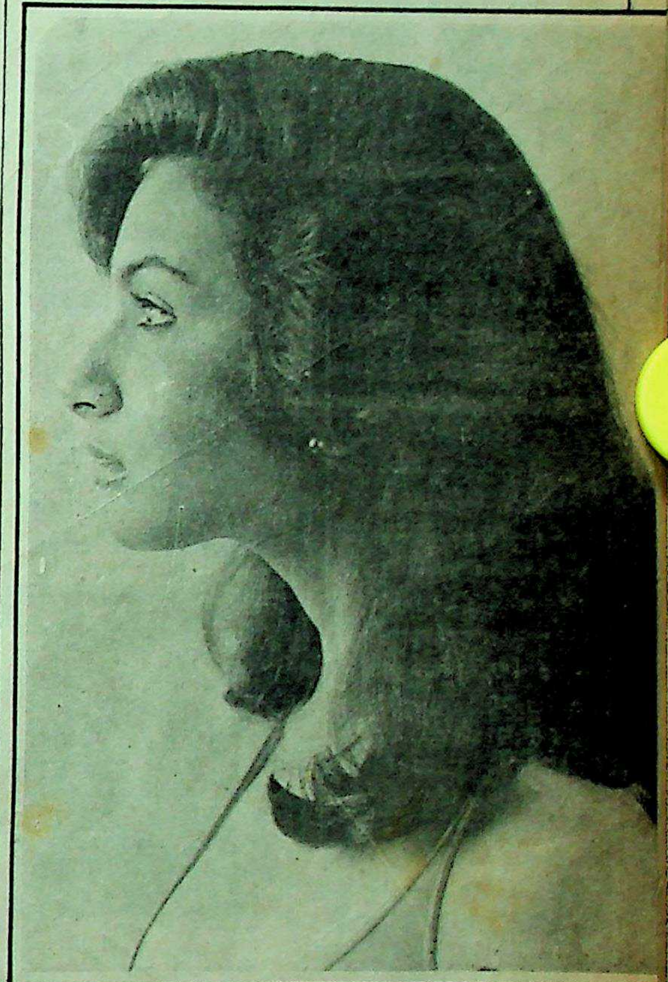
उपर्युक्त श्लोक में ईश्वार में दो से दस तक की संख्या को नकार दिया गया है. वह परमात्मा 'न द्वितीयः' पृथ्वी नहीं है, 'न तृतीयः' जल नहीं है, 'न चतुर्थः' अग्नि नहीं है, 'न पंचमः' वायु नहीं है, 'न षष्ठः' आकाश नहीं है, 'न सप्तमः' काल नहीं है, 'न अष्टमः' दिशा नहीं है. 'न नवमः' आत्मा नहीं है, 'न दशमः' मन नहीं है. तब अख़िर परमात्मा है क्या? विद्वान उसे अद्वितीय, एकरस और अखण्ड जानते हैं.

वह परमात्मा जड़ व चेतन सम्पूर्ण जगत को विशेष रूप से देखता है. वह सबका संचालक और प्रवर्तक है. 'एष एकः' वह एक ही है. वह परमात्मा एक रस, अखण्ड और चेतन है.



शीत ऋतु में त्वचा की देखभाल

- वैद्य शुभदा पटवर्धन - आयुर्वेदाचार्य



त्वचा मांस धातु की उपधातु है. मांसपोषक घटकों का वहन करनेवाले स्रोतों का मूल है. शुक्र व आर्तव के संयोग से गर्भ का निर्माण होते समय (दूध गरम होते समय ऊपर जैसे मलाई जमा होती है वैसे ही) रक्तपचन होते-होते उदकधरा, रक्तधरा, मांसधरा आदि हम प्रकार की त्वचा का निर्माण होता में ह

त्वचा की ...ना चाहिए. कारण ...ी स्निग्धता प्राप्त ... त्वच... ...वरण है. ...ातप्रकृति - व्यक्तियों ...यवों की रसयुक्त व तेलवाले पदा... सेवन करना चाहिए. अम्...शरीर के

लेखकों से निवेदन

● 'आरोग्य सं... प्रकाशन हेतु लेख... विचार इत्यादि ... इस बात का ... रखे कि रचना ... साफ़-सुथरी ... एक ओर ही ... हाशिया छोड़ना ...

● रचना के स... लगा हुआ लिफ़ा... पूरे पते व पिन को... अवश्य भेजें, ...

...रनेवाले ...र्गीकरण ... व कर्म. ...नुचित ... पड़ता है. ...यादि के भी ...हते हैं. इनको ...बोधित किया ...पतानुसार ...किए जाएं, तो ...आरोग्य की ...की मात्रा ...अनिष्ट ... ही होता

परिणाम तो मानव शरीर से (लगातार), अपनी इच्छा हो या न हो, होता ही रहता है.

व्यक्ति जब शीत वातावरण में रहता है, तब अंतर्बाह्य पूरे शरीर पर उसका परिणाम होता रहता है. यहां हम सिर्फ़ शीत ऋतु में शरीर की त्वचा पर होने वाले परिणामों का विचार करने जा रहे हैं. वातावरण के शीतादि गुणों का परिणाम सिर्फ़ मानव शरीर पर ही नहीं, अन्य प्राणी, वनस्पति आदि सजीव और निर्जीव पदार्थों पर भी होता है. मानव शरीर का बल दक्षिणायन में क्रमशः बढ़ते-बढ़ते हेमंत ऋतु में और ऋतुओं की अपेक्षा सर्वाधिक होता है. शीत वातावरण बल के अनुकूल रहता है. इसलिए इस काल में शरीर बलवान रहता है, और बलवान शरीर की अग्नि भी बलवान रहती है, पाचनशक्ति भी बलवान रहती है. शरीरशक्ति उत्तम रहने के कारण शीत वातावरण के समय अधिक श्रम भी सहने का शरीर का सामर्थ्य रहता है. क्रमानुसार, शक्तिनुसार व्यायाम करने से शक्ति भी बढ़ेगी और अग्नि भी बढ़ेगी. बलवान होने के लिए ही प्रकृति ने इस अनुकूल काल का निर्माण किया है. उसका हमें पूरा लाभ उठाना चाहिए.

हेमंत ऋतु में ठंड धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और इस क्रम से बढ़नेवाली ठंड को शरीर सहन कर सकता है. शिशिर की ठंड से, उसकी रूखी वायु से, त्वचा संपर्क में आ जाए, तो वह भी सूखी-रूखी होकर फट जाती है. लेकिन यह ठंड धीरे-धीरे बढ़ती है, इसलिए शीत हवा के स्पर्श से त्वचा, मांस इत्यादि के स्रोतस क्रम से संकुचित होते जाते हैं. इससे गर्मी अंदर ही रहती है. ठंड में पसीना भी नहीं आता. इसलिए बाहर जानेवाली गर्मी शरीर में ही रहती है. यह उष्णता त्वचागत भ्राजकाग्नि प्रदीप्त करती है. उसके ही अंश जठराग्नि में रहने के कारण वह भी प्रदीप्त हो जाता है. इसीलिए हेमंत ऋतु में सुबह उठते ही भूख महसूस होती है. क्योंकि इस ऋतु में रात भी बड़ी होती है. इस काल में हमेशा से दुगुना अन्न भी हज़म हो सकता है.

इसलिए अपनी प्रकृति के अनुसार कसदार, हितावह, मधुर-अम्ल-लवण रस युक्त, स्निग्ध अन्न लेना चाहिए. इस ऋतु में नया धान्य स्वभावतः ही भारी (गुरु) और स्निग्ध होता है. विपरीत द्रव्य के उपयोग के नियमानुसार नया धान्य खाना उचित नहीं होता. लेकिन इस ऋतु में नव धान्य का आहार योग्य माना गया है. उसका उपयोग ज़रूर

करना चाहिए. परंतु इस काल में मधुर रसयुक्त, स्निग्ध व गुरु अन्नपान अगर न दें तो, अग्नि को ईंधन न मिलने के कारण वह निर्बल हो सकता है या अत्यंत प्रदीप्त होकर शरीरस्थ धातुओं को ही हज़म कर सकता है. उससे धातुक्षय होगा. धातुक्षय होने से वात की वृद्धि होती है. वात स्वयं ही शीत गुणवाला होने के कारण, इस शीत काल में वह स्वाभाविक रूप से ही बढ़ जाता है. और इस बढ़े हुए वात के परिणाम शरीर पर दिखाई देते हैं. त्वचा रूक्ष, सूखी हो जाती है, पैर फट जाते हैं. इससे बचने के लिए. इस ऋतुकाल में मधुर-अम्ल-लवण रस का, स्निग्ध-गुरु पदार्थों का सेवन करना चाहिए. ये रस उष्ण, अग्निदीपक व वातधातु का शमन करने वाले हैं.

ऊपर निर्दिष्ट क्रिया-प्रक्रिया बलवान व्यक्ति के शरीर में ही होती है. शरीर अगर मूलतः दुर्बल हो तो ठंड से प्रतिकूल परिणाम दिखाई देता है. ठंड सही नहीं जाती. त्वचा, मांस व उनमें स्थित स्रोतस ठंड के कारण सिकुड़ने पर भी, उनमें होने वाली उष्णता ऊपर बताये अनुसार क्रियाशीलता घटाने में उपयुक्त नहीं साबित होती. इस ठंड से त्वचा के अंतर्गत व मांसांतर्गत गरमाहट कम होती है और ठंड बढ़ती है. सभी अवयव ठंडे पड़ने लगते हैं. बदन कांपने लगता है. अग्नि कम होती है और शरीरांतर्गत वात बढ़ जाता है. वातावरण के शीत स्पर्श से भी वातवृद्धि हो जाती है. इसका परिणाम त्वचा पर होने से वह रूखी-सूखी होकर फट जाती है.

चिकित्सा

इस स्थिति में शुरू से ही मधुर रस देने के अलावा, अम्ल व लवण रस देना चाहिए ये दोनों रस उष्ण अग्निदीपन करनेवाले हैं. वात धातु का शमन करनेवाले हैं. कुछ दिनों के लिए ये रसाहार देकर अग्नि ठीक से दीप्त होने के बाद ही धीरे-धीरे मधुर रस बढ़ाते जाना चाहिए. वह पुष्टिकारक हो इस अंदाज़ से उसका सेवन करना चाहिए. ये तीनों रस स्निग्ध होने के कारण वात धातु के शामक होते हैं. उदाहरणार्थ - अनार का रस थोड़ा-सा गरम करके उसमें थोड़ा-सा नमक व घी मिला कर दें. चावल की कांजी करके उसमें थोड़ा नमक, दो बूंद घी व एकाध कोकम डालकर दें.

आठ द्राक्ष व १ कप पानी उबाल कर १/२ कप होने पर थोड़ा-सा नमक-घी डालकर दिन में दो बार पिलाएं. गन्ने का रस पिलायें. मुख्यतः ये सभी चीजें गरम व ताज़ा हों इसका ध्यान रखें.

अभ्यंग

वातनाशक औषधियों से सिध्द किए तेल से जैसे, नारायण तेल, निर्गुड्यादि तेल से अभ्यंग करना चाहिए अर्थात् पूरे बदन पर तेल की मालिश करनी चाहिए. तेल बदन पर मलने से उसके अंश शरीर में सहजता से प्रविष्ट हो जाते हैं और भ्राजकाग्नि से उसका पचन होता है. तेल स्वयं उष्ण होने के कारण वह भी भ्राजकाग्नि का उद्दीपन करता है. मानव शरीर स्नेहमय होने के कारण स्नेह उसका मुख्य घटक है. स्नेह से प्रदीप्त अग्नि बहुत बलवान होती है. इसलिए पहले के जमाने में भोजन की शुरुआत दाल-चावल के साथ घी लेकर ही होती थी. इसका कारण यह है कि घी और नमक के संयोग से अग्नि प्रदीप्त होती है. भूख प्रदीप्त होने से खाया हुआ अन्न अच्छी तरह से हज़म भी होता है. लेकिन आजकल हम उसके बदले भोजन की शुरुआत रोटी से करने लगे हैं. इसीलिए, भूख न होना, हज़म न होना, पेट में गैस होना आदि लक्षण अधिक मात्रा में दिखाई देने लगे हैं. दुर्बल अग्नि बलवान बनाने के लिए स्नेह ही सबसे श्रेष्ठ द्रव्य माना गया है. इसलिए स्नेह से अभ्यंग करने पर त्वचास्थित अग्नि बलवान होती है और ऊपर बनाए अनुसार जठर में स्थित पाचकाग्नि भी बलवान होती है और अभ्यंग से त्वचा मुलायम, सतेज और ठंडी हवा का प्रतिकार करने योग्य बन जाती है. इसलिए जाड़ों के मौसम में अभ्यंग हितावह है. पैर के तलुवों में, नाक, कान आदि में भी स्नेह का यथायोग्य उपयोग करना चाहिए. साथ ही नहाने और हाथ-पैर आदि धोने के लिए कुनकुने पानी का उपयोग करना चाहिए. नहाने के पानी में ही तेल डाल कर स्नान करना चाहिए.

वातावरण की शीतलता से बचने के लिए शीत ऋतु से पूर्व व शीत ऋतु के दौरान कुछ छोटी-बड़ी पर महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना बहुत ही ज़रूरी है. इन प्रयासों से शीतऋतु के बुरे परिणाम त्वचा पर नहीं पड़ेंगे.

उबटन

त्वचा में स्नान के बाद भी उष्णता बनी रहे, इसके लिए वेखंड, अगरू, कचोरा जैसे उष्ण व तीक्ष्ण द्रव्यों के उबटन का उपयोग करना चाहिए. उससे वात का शमन होगा व त्वचा में गरमाहट बनी रहेगी व त्वचा ठंड का प्रतिकार भी कर सकेगी.

वस्त्र

रेशमी व ऊनी वस्त्र पहनने चाहिए. यानी जो कपडे त्वचा में होनेवाली गरमी का संरक्षण करें. ऐसे कपड़े पहनने चाहिए. उससे वातावरण के शीत स्पर्श से त्वचा रूखी होकर फटेगी भी नहीं. बिस्तरा चद्दर वगैरह भी ऐसे ही होने चाहिए. साथ ही पैर और हाथों के लिए मोज़े, मफलर, कानटोपी आदि का इस्तेमाल भी कर सकते हैं. घर भी गरम रखना चाहिए तभी ठंड व रूक्षता से संरक्षण होगा.

व्यायाम से र... प्राप्ति

इस ऋतु...
व्यायाम...
शरीरस्थ...
अग्नि द...
भी बढ़त...
(इसीलि...
भूख ल...
खाया हु...
हज़म हो...
भी होती है।
...व।
और एक ब...
चाहेंगे कि ह...
पहनते हैं. बं...
और ठंड से...
ये सब चीजें...
बाहर नहीं...
ठंड का र...
कार्य सिर्फ...
रहने तक...
गरम कप...
बाहर अ...

अमृत वचन

...(२) १६-२०)
...तक की संख्या
...यः' पृथ्वी नहीं है,
...हीं है, 'न पंचमः'
...सप्तमः' काल नहीं
... नहीं है, 'न दशमः'
...विद्वान उसे अद्वितीय,
... को विशेष रूप से
...है. 'एष एकः' वह
...और चेतन है.



लगेगी. यानी इन सब उपचारों से शरीर जो उष्णता प्राप्त करता है. वह अधिक देर तक नहीं टिकती. पर व्यायाम से शरीर में जो गर्मी पैदा होती है, वह अधिक देर टिकती है. व्यायाम व योग्य आहार-विहार ठंड का प्रतिकार करने की क्षमता बढ़ाते हैं, अतः इस ऋतु में व्यायाम हर व्यक्ति को करना चाहिए.

शीत ऋतु में आहार

जो भी आहार हम लें, उसमें यथोचित मात्रा में घी व तेल का उपयोग होना चाहिए. इस तरह भी शरीर को स्निग्धता प्राप्त होती है.

वातप्रकृति - व्यक्तियों को मधुर रसयुक्त व तेलवाले पदार्थों का सेवन करना चाहिए. अम्ल व लवणयुक्त पदार्थ कम मात्रा में लें.

पित्तप्रकृति - व्यक्तीयोंको मधुर पदार्थ व घी से बनाए हुए पदार्थों का सेवन करना चाहिए. खट्टे और नमकीन पदार्थ का सेवन भरसक टालना चाहिए.

कफप्रकृति - व्यक्ति को सादा, नमक व तेलयुक्त आहार सेवन करना चाहिए. खट्टे व मीठे पदार्थों का सेवन कम करना चाहिए.

अन्नपान हमेशा ताज़ा व गर्म करना चाहिए. पानी भी थोड़ा गरम, कुनकुना पीना चाहिए.

सामान्यतः गेंहू, उड़द, चावल, ज्वार इनका प्रचुरता से उपयोग करना चाहिए.

वैसे ही चौली, मूंग, मोठ, अरहर की दाल आदि का आहार में समावेश करना चाहिए.

पत्ता गोभी, गाजर, फूलगोभी, आलू, आदि सब्ज़ियां शीतवीर्य, बल्य व पौष्टिक होने से उनका सेवन करना चाहिए. बैंगन, मूली, लहसुन, ये उष्ण शाक भी लेने चाहिए.

फलों में अंगूर, नारियल, केले, खजूर, बेर, अनार, चीकू, आंवला, सेब, चिरौंजी, ये फल खाने योग्य हैं. ये मधुर-आम्ल रसयुक्त व स्निग्ध होते हैं. वैसे ही बादाम, अखरोट, काजू, पपीता, अनन्नास आदि उष्णवीर्य फलों का भी उपयोग करना चाहिए.

दूध और ईख व उनसे निर्माण होनेवाले दही, घी, मक्खन, चीनी, गुड़ आदि पदार्थ प्राधान्यतः खाने चाहिए.

मांसाहार - मांसाहारी लोगों को भेंड, बकरा, लावापक्षी, कबूतर, हिरन, सुवर, बगुला, चातक, इन प्राणियों का मांस खाना चाहिए. ये प्राणी स्निग्ध, शीत व गुरु होते हैं.

मछली, केकड़ा, मुर्गा इनका मांस भी खाना चाहिए. यह मांस उष्णता प्रदान करता है.

मद्यपान - मद्यपियों को गुड़ व धान्यादिसे तैयार किया हुआ मद्य, सुरामंड का सेवन करना चाहिए.

त्याज्य पदार्थ

मधुर, अम्ल व लवण इन तीन रसों के अलावा, कटु-तिक्त-कषाय इन रसों का सेवन नहीं करना चाहिए. उनके सेवन से वातवृध्दि होने से शरीर में रूक्षता (रूखापन) बढ़ेगा व उसका असर त्वचा पर होगा व त्वचा रुक्ष हो जाएगी.

चिकित्सक से पूछ कर ही मिर्ची के बदले अदरक, सोंठ, लौंग, दालचीनी इनका उपयोग करना चाहिए.

इस ऋतु में दोपहर में सोना नहीं चाहिए. दिन में सोने से कफ-धातु निर्माण होने के बजाय कफ-दोष उत्पन्न होता है. उससे व्याधि की भी संभावना रहती है. शरीर में बल व पुष्टि कफ धातु से निर्माण होते हैं. कफ-दोष से नहीं. इसलिए दिन में नहीं सोना चाहिए.

वैसे देखा जाए, तो बारह महीनों में से हेमंत व शिशिर ऋतुकाल के सिर्फ़ दो महीने ही, प्राधान्यतः शरीर में उत्तम बल का निर्माण करनेवाले होते हैं. यह अत्यंत आवश्यक है कि, इस काल का अधिकतर लाभ उठाते हुए, ऊपर निर्देशित सभी बातों का पालन करें. और ठंड का प्रतिकार करने के लिए सामर्थ्य व बल प्राप्त कर लें. इससे ठंड के कारण शरीर पर होने वाले दुष्प्रभाव को रोका जा सकता है. ●

लेखकों से निवेदन है

● 'आरोग्य संजीवनी' में प्रकाशन हेतु लेख, वैद्यकीय विचार इत्यादि भेजते समय इस बात का विशेष ध्यान रखे कि रचना की लिखावट साफ़-सुथरी व काग़ज़ के एक ओर ही हो, जिसमें हाशिया छोड़ना न भूलें.

● रचना के साथ टिकट लगा हुआ लिफ़ाफ़ा सही व पूरे पते व पिन कोड के साथ अवश्य भेजें, अन्यथा अस्वीकृति की स्थिति में रचना वापस न भेजकर नष्ट कर दी जायेगी.

● भेजी गयी रचना की मूल प्रति की फोटो स्टेट कॉपी अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें, क्योंकि कभी-कभी रचनाएं डाक में खो भी जाती हैं.

● रचना मौलिक व अप्रकाशित होनी ज़रूरी है. किसी भी पत्र-पत्रिका मे छपी हुई सामग्री को कॉपी करके न भेजें, यदि किसी अन्य की रचना कहीं से चुरा कर भेजी गयी साबित होगी तो संबंधित व्यक्ति पर कोर्ट में कार्यवाही की जायेगी.

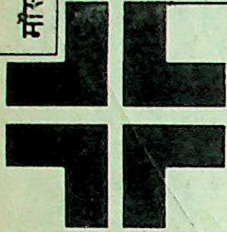
● मूल रचना पर 'मौलिक व अप्रकाशित है' लिखना ज़रूरी है. ऐसा जिस रचना पर नहींलिखा होगा, उस पर किसी भी स्थिति में ध्यान नहीं दिया जायेगा.

● रचनाओं पर निर्णय लेने में छः से आठ सप्ताह का समय लगता है, अतः इस विषय में निश्चित अवधि से पूर्व पत्र-व्यवहार न करें.

● किसी भी रचना के प्रकाशन की पूर्व सूचना तथा प्रकाशन से पूर्व पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा.

● हर रचना पर स्तंभ शीर्षक अवश्य लिखें.

पत्र-व्यवहार का पता
पायोनियर बुक कं. प्रा. लि.
१६०, डॉ. डी.एन. रोड,
बंबई-४०० ००१.



पौष्टिक हरी मटर

हर मौसम में कुछ साग-सब्ज़ियां ऐसी होती हैं, जो उसी मौसम की पैदावार होती हैं व आसानी से उपलब्ध होती हैं. शीत ऋतु में भी कुछ ऐसी सब्ज़ियां हैं, जो मौसम के अनुसार गुण-धर्म युक्त होती हैं. आइए इस मौसम की कुछ सब्ज़ियों के बारे में आपको जानकारी देते हैं.

सब्ज़ियों में मटर का महत्वपूर्ण स्थान है. मटर आपेक्षाकृत ठंडी ऋतु में सबसे अच्छी होती हैं. इसकी वर्ष में दो बार बोआई होती है.

इसके पौधे एकाध फुट के ही होते है और इसमें फलियां भी जल्दी लगती हैं, जबकि दूसरी किस्म के पौधे ऊंचे होते हैं व इनमें फलियां देर से लगती हैं. फलियों को तैयार होने पर पौधों से सावधानी पूर्वक तोड़ लिया जाता है.

मटर देशी व विदेशी दो किस्म की होती हैं. मटर कच्ची होने पर हरी व सूखने पर सफ़ेद होती है. पर विलायती मटर सूखने पर भी हरी होती है.

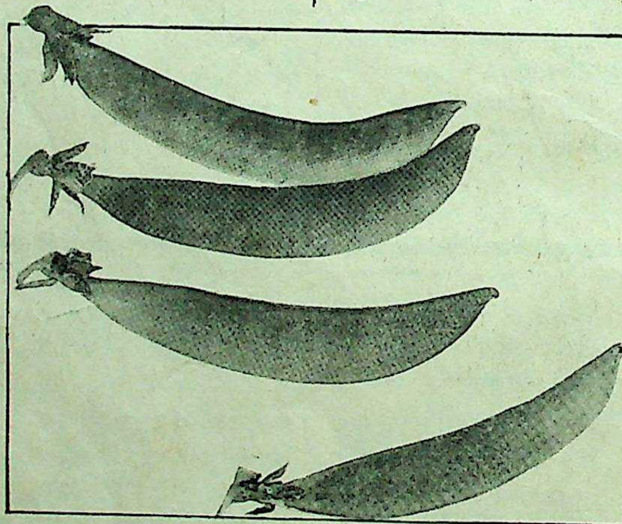
मटर मधुर (पाक में भी मधुर), रूक्ष और ठंडी होती है. यह मल को बांधने वाली कफ व पित्त शामक होती है. मटर के पत्तों की सब्ज़ी भेदक, पचने में हल्की तथा त्रिदोषघ्न है.

मटर को पुलाव-बिरयानी में डाला जाता है.

हरे मटर के दानों की खिचड़ी स्वादिष्ट व पौष्टिक होती है, जब कि सूखे मटर का दाल के रूप में प्रयोग किया जाता है.

हरी मटर को सूप में डाल कर भी पीते है.

वैज्ञानिक मतानुसार मटर में फॉस्फोरस, पोटैशियम, मैग्निशियम, कैल्शियम, गंधक, तांबा व लोहा पाया जाता है, साथ ही कार्बोहाइड्रेट व विटामिन 'ए' व 'सी' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है. मटर को डिब्बा बंद करके काफ़ी दिनों तक उसका इस्तेमाल कर सकते हैं.



सेम फली

सेम की बेल लंबी और चार-पांच वर्ष तक टिकती है. इसके तीन पत्ते एक साथ लगते हैं. इसको ज्येष्ठ या आषाढ़ में बोया जाता है. संकरी, चौड़ी, चार धारी वाली, सफ़ेद व काले रंग की किस्में होती हैं. बोने के चार-पांच महीने बाद सेम की फलियां लगती हैं.

किसी सेम में हरे रंग के व किसी सेम में काले रंग के बीज होते हैं. बोने के चार-पांच माह बाद फलियां लगती हैं.

सेम फली रस तथा पाक में मधुर, शीतल, भारी, बलप्रद, दाहक, कफ करने वाली एवं वायु तथा पित्त को जीतने वाली होती है. काली व चौड़ी सेम वायु को दूर करने वाली, गरिष्ठ, गर्म, कफ व पित्त करने वाली होती हैं. वीर्य व अग्नि को कम करने वाली, रुचि उत्पन करने वाली, मल को बांधने वाली और भारी होती है.

सेम की नरम फलियों व उसके बीजों का साग बनता है. इसका वात गुण कम करने के लिए लहसुन डालना चाहिए.

बड़ी सेम रुचिकर, वातल, अग्निदीपक है.

काली सेम फली, अग्निदीपक, कसैली, जबकि सफ़ेद सेम वात, कफ करने वाली व विष नाशक है. पीली सेम ज़्यादा गुण वाली होती है.

सात वर्ष पुरानी सेम के मूल की ज़मीन के भीतर की गांठ को गाय के दूध में घिस कर पिलाने से व फोड़े पर लेप करने से फोड़ा फूट जाता है. सेम के पत्तों का रस बिच्छू के काटे पर लगाने से विष कम होता है.

सेम के पत्तों का रस दाद पर लगाने से वहां की त्वचा सामान्य त्वचा की तरह हो जाती है.

—राजाराम माथुर

अमृत वचन

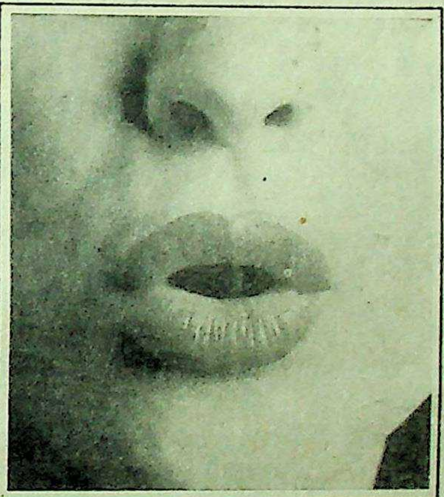
- सबसे पहले पूर्ण रूप से अपने को जानो और फिर अपने ऊपर पूर्ण संयम स्थापित करो. प्रत्येक क्षण अभीप्सा करते रहने से, तुम ऐसा करने में समर्थ हो सकते हो.
- जीवन में ऐसा कभी नहीं कहा जा सकता कि इसे करने का समय अभी नहीं आया है. यह भी नहीं कहा जा सकता है कि अब इसे करने का समय नहीं रहा.
- जब हम अधीर नहीं होते, तभी हम सत्कर्म कर सकते हैं. उन्हें उपयुक्त समय पर उपयुक्त ढंग से कर सकते हैं.

(श्री) मां

दंत रोग एवं उनका उपचार

- वैद्य मधुकर आ. लहानकर






राष्ट्रीय एवं विश्व स्वास्थ्य कार्यक्रम में 'स्वास्थ्य आपके द्वार पर ईस्वी सन् २००० तक' इस उद्देश्य के तहत 'मुख के स्वास्थ्य' को भी महत्वपूर्ण माना है. मुख रोग और स्वास्थ्य के बारे में हम सबको सचेत रहना चाहिए

सामान्यतः किसी न किसी मुख रोग से पीड़ित होने वालों की संख्या भारत में ८० प्रतिशत है.इससे कुछ कम प्रतिशत विदेशों में है. परंतु बड़े महानगरों में इसकी संख्या ८० प्रतिशत से भी अधिक है. मुख रोगों के होने का एक बड़ा कारण तो यह है कि हम लोग मुख स्वास्थ्य के संबंध में उदासीन हैं, हम इसे गंभीरता से नहीं लेते. यही वजह है कि दिन-ब-दिन मुख रोगों की और पाचन संस्थान की विकृतियां बढ़ती जा रही हैं.

शरीर स्वास्थ्य के साथ ही शरीर के छोटे-बड़े अंगों की सफ़ाई भी ज़रूरी होती है, अन्यथा संबंधित अंग रोगग्रस्त हो जाते हैं. मुखगत रोगों के भी असंख्य प्रकार आयुर्वेद में वर्णित हैं, जिनकी चिकित्सा के प्रयास सर्वथा आवश्यक हैं.

जिसके शरीर में तीनों दोष (वात-पित्त-कफ़), जठराग्नि, रसादि सप्त धातुओं की निर्माण क्रिया और मूत्रादि मलों का विसर्जन सम प्रमाण में रहता है तथा जिह्वादि ज्ञानेन्द्रियों का कार्य यथावत् चलता रहता हो और साथ ही साथ आत्मा व मन दोनों प्रसन्न हो, उसे ही 'स्वस्थ पुरुष' कहते हैं. जिन अवयव का स्वास्थ्य में महत्व है, उनमें मुखगत अवयव प्रधान हैं. यह

इसीलिए क्योंकि हम शरीर स्वास्थ्य की बात कर रहे हैं, वह शरीर मुख द्वारा ग्रहण किए गए आहार द्वारा ही सुगठित और जीवित रहता है. मुखगत अवयव जैसे-जिह्वा, दांत, मसूढ़े, लालास्राव यदि दूषित हों, तो खाया हुआ भोजन भी दूषित हो जाता है. और यह दूषित अन्न ही अम्लपित्त, अजीर्ण आदि पाचन संस्थान की बीमारियां उत्पन्न करता है.

मुख में होने वाले रोगों में से कुछ मुख्य निम्न है -

शीताद - यह कफ व रक्त जन्य व्याधि है. इसमें अचानक मसूढ़ों से खून निकलने लगता है. मसूढ़ों के सड़ने से दुर्गन्ध आना, मसूढ़ों के मांस का गिरना, मसूढ़े काले पड़ जाते हैं. एक दांत से दूसरे दांत भी सड़ने लगें तो उसे 'शीताद' मानते हैं.

दंतवेष्ट - मसूढ़े सड़ जाते हैं. मसूढ़ों को दबाने पर रक्त या मवाद बहता है. मुंह से दुर्गंध आती है. इन लक्षणों द्वारा जाना जा सकता है कि यह 'दंतवेष्ट' रोग है.

दंतनाड़ी - दांत एवं मसूढ़ों की बीमारियों की ओर उचित ध्यान न देने से जब बीमारियों की दुष्टि मसूढ़ों की जड़ तक पहुंच कर नासूर बन जाती है तो इसे ही 'दंतनाड़ी' कहते हैं.

दंतवेष्टक विद्रधि - मसूढ़ों पर बड़ा शोथ (सूजन) आना, मसूढ़ों में दाह युक्त दर्द होना, शोथ पकने पर मवाद निकलना, इन लक्षणों से युक्त रोग को 'दंतवेष्टक विद्रधि' कहते हैं.

कृमिदंत - दांतों में काले रंग का छेद हो जाता है. मसूढ़े सूज जाते हैं. अन्नादि के अटकने से तीव्र दर्द उत्पन्न होता है, इसे ही 'कृमिदंत' कहते हैं. इससे मसूढ़े व दांतों की जड़ कमज़ोर हो जाती है.

दंतशर्करा - दांतों पर जमा होने वाला पीला मल जब शुष्क और रूखा हो जाता है, तो दांतों पर चिपका रहता है, इसे ही 'दंतशर्करा' कहते हैं.

दंतकपालिका - दांतों पर चिपका हुआ शुष्क मल जब विदीर्ण होकर कपाल (चिप्पी) की तरह निकलने लगे और दांतों के ऊपर का सुरक्षा कवच नष्ट होने लगे तो उसे 'दंतकपालिका' कहते हैं.

मुखपाक - मुंह में छाले पड़ जाना, दाह, लालस्राव अधिक होना, मिर्च न खा पाना, इसे ही 'मुखपाक' कहते हैं, जिसे हम मुंह आना या मुंह पक जाना भी कहते हैं.

दंतरोग किस कारण होते हैं?

इस संबंध में आचार्य वाग्भट्ट का कहना है कि मछली, भैंस या असुर का मांस सेवन, आनूप प्रदेश में स्थित प्राणियों का मांस सेवन, कोहड़ा (कूष्माण्ड), मूलीक, उड़द की कांजी, दही, दूध, सूखें गन्ने का रस, फालसा इन पदार्थों का अत्यधिक एवं बारबार सेवन करना तथा पेट के बल सोना, मुंह ढक कर सोना, दांत और जिह्वा को साफ़ न करना, और मुख स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देना तथा बाबरबार मिठाई, मीठे पदार्थ सेवन करना जैसे पेपरमिंट, चॉकलेट, बिस्किट, चाय, लस्सी, आईस्क्रीम, कॉफी, बर्फी आदि और इनके सेवन करने के बाद मुख साफ़ न करना. इन सभी कारणों से दंतरोग होते हैं.

दंतरोगों को किस तरह टालें

ऊपर निर्दिष्ट पदार्थ आवश्यक मात्रा में और आवश्यक हों तभी सेवन करें. दांत, मसूढ़े, जिह्वा इनकी अच्छी सफ़ाई रखें, साफ़-सफ़ाई के लिए दंतधावक (दातुन व ब्रश करना) एवं जिह्वाधावन (जीभ साफ़ करना) विधिवत करना चाहिए.

दंतधावन - दंतधावन यानी दातौन करना, इसके लिए जो वनस्पति औषधि की टहनी उपयोग में लायी जाती है, वह १२ अंगुल (क़रीबन ६ से ८ इंच) लंबी, सीधी, ताज़ी, अपने हाथ की छोटी उंगली जैसी बारीक होनी चाहिए. इस काम के लिए बहुत सारी वनस्पतियों की टहनियां काम में लायी जाती है. जैसे - बबूल, नीम, खदिर, आम, अर्जुन आदि. इस टहनी को बारीक हिस्से की तरफ़ से चबाकर कूंचा (ब्रश) बनाना चाहिए और उससे एक-एक करके सभी दांत साफ़ करने चाहिए.

जिह्वाधावन - दांत और मसूढ़ों के साथ-साथ जिह्वा का भी स्वास्थ्य से बड़ा महत्व है. जिह्वा अगर स्वस्थ न हो तो हमें खाने में रुचि नहीं होगी. अर्थात इसका प्रभाव भूख और पाचन क्रिया पर होता है. जिह्वा साफ़ रखने के लिए दातून की वही टहनी उपयोग में लाई जाती है, उसे ही बीच से फाड़ कर जीभ साफ़ करनी चाहिए. आजकल तो अलग-अलग धातुओं की तैयार जीभ साफ़ करने की पट्टियां बाज़ार में उपलब्ध हैं.

दंतधावन एवं जिह्वा निर्लेखन के विषय में हम आप को पहले ही विस्तृत जानकारी दे चुके हैं. (पढ़ें - 'आरोग्य संजीवनी' वर्षाऋतु-प्रथम अंक १९९०)

दंतधावन कब करें?

दंतधावन दिन में दो बार करना चाहिए - प्रातः काल और सोने के पहले रात में. याद रहे कि अन्न पदार्थ सेवन के बाद एक-दो बार अच्छी तरह से पानी से कुल्ली करनी चाहिए. इससे दांतों में अटके हुए अन्नकण निकल जाते हैं.

हितकर आहार

गेहूं ज्वार, लाल चावल, मूंग, मसूर, चना, दूधी, मेथी, करेला, अंगूर, चीकू, सेब, मुनक्का, अनार, नारियल, आम, बकरा एवं मुर्गा का मांस, घी, मक्खन, पनीर, गाजर, अदरक, हल्दी, मधु, उबालकर ठंडा किया हुआ पानी, नीम स्वरस, खैरा, नागवेल पत्र, यष्टीमधु, लौंग, दालचीनी, कपूर, हींग, सैंधव नमक, तिल और पुदीना आदि पदार्थ और इनसे बने हुए अन्न मुखस्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभकारी हैं.

अहितकर आहार

मक्का, उड़द, सोयाबीन, मटकी, दही, छाछ, लस्सी, आईस्क्रीम, मिठाई, आलू, प्याज़, सूरन, रूक्षान्न, अतिठंडा पानी, अति गरम पानी, गरम मसाला, कड़वे पदार्थ, सभी प्रकार के अचार, तली हुई चीजें, शीतपेय आदि पदार्थ अतिमात्रा में, या मुख का कोई रोग हुआ हो ऐसी अवस्था में सेवन करना अहितकर है.

आयुर्वेदिक औषधि योग

खदिरादि वटी - खैर, खस, पतंग, गेरु, सफ़ेद चंदन, लाल चंदन, पठानी लोध, ईख की जड़, मुलेठी, लाख, कायफल, हल्दी-दारूहल्दी, हरड़ बहेड़ा, आंवला, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजबल, अगरु, नागरमोथा, जटामांसी, इनसे बनाई गई यह गोली दिन में ४-६ बार तक मुंह में रख कर चूसना चाहिए.

मुखरोगहर रस - पारा, गंधक, शिलाजीत, इनको मंदार के पत्तों की, चमेली के पत्तों की, नीम के पत्तों की भावना देने पर यह तैयार होता है. यह समस्त दंतरोगों में उपयुक्त है.

पटोलादि गंडूष - पटोल, शुंठी, त्रिफला, कुटकी, हरिद्रा, दारूहरिद्रा, गुडूची इका क्राथ (काढ़ा) कुल्ली के लिए उपयुक्त है.

इसके अलावा लक्षादि तैल, लौंगादिवटी, एलादि वटी, नागगुटी, हींग कर्पूरादि वटी और भोजनोपरांत तांबूल (पान) सेवन से दंतरोग से छुटकारा भी मिलता है.

अमृत वचन

शारीरिक स्वास्थ्य

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा।
विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ।।

(अथर्वः २ ।४ ।४)

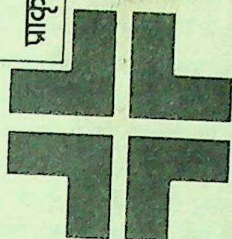
ऋषि-मुनियों द्वारा निर्दिष्ट कल्याणकारी ब्रह्मचर्य रूपी मणि तथा व्यायाम रस और रक्त को शोषण करने वाले सब रोगों, रोग के कीटाणुओं और कुविचार तथा कुभावनाओं को परे भगाते हैं.

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ब्रह्मचर्य और व्यायाम का काफी महत्व है.

प्राकृतिक चिकित्सा

आहार चिकित्सा

- रामनाथ मौर्य



मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए आहार की आवश्यकता होती है. जीवन का मूलाधार भी आहार ही है.

जिन तत्वों से शरीर का निर्माण होता है, उन्हीं तत्वों की कमी अथवा अधिकता से शरीर रोगग्रस्त होता है. द्रष्टव्य है -

क्षिति, जल,
पावक, गगन, समीरा ।
पंचरचित यह
अधम शरीरा ।।

उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है कि हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पंच महाभूतों से निर्मित है और इन पांचों के द्वारा ही दोषों की उत्पत्ति भी होती है. वायु और आकाश से वात, अग्नि से पित्त तथा पृथ्वी और जल के योग से कफ़ की उत्पत्ति होती है. इस प्रकार सूर्य और वायु अपने-अपने आदान, विसर्ग काल रूप में सृष्टि को धारण किए रहते हैं तथा वायु, पित्त और कफ़ भी शरीर को स्थिर रखते हैं. लेकिन इनके विकृत होने पर शरीर में अनेक प्रकार की व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं.

स्वस्थ रहने एवं जीवित रहने के लिए आहार को चिकित्सा के रूप में लेना चाहिए.

स्वास्थ्य ही मनुष्य का सबसे बड़ा धन है. स्वस्थ रहने पर ही मनुष्य जीवन का प्रत्येक कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है और अस्वस्थ रहने पर कोई भी कार्य करने में असमर्थ रहता है और उसका जीवन भी खुद के लिए व घर वालों के लिए दुखद बन जाता है.

आहार क्या है?

जो द्रव्य मुख-मार्ग द्वारा अन्ननलिका से होते हुए आमाशय में पहुंचता है, उसे 'आहार' कहते हैं. यह रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य आदि का निर्माण करके शरीर का पोषण करता है. शारीरिक दुर्बलता को ठीक करके उसे शक्ति प्रदान करके जीवित रहने में समर्थ बनाता है.

विभिन्न प्रकार के अन्न, फल, कन्दमूल, दूध, मांस, शाक आदि विविध पदार्थ आहार के ही स्वरूप हैं. आहार दो प्रकार के होते हैं– शाकाहार और मांसाहार.

मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपनी पसंद का आहार करता है. वैसे भारतीय संस्कृति में भोजन के तीन गुण बताये गये हैं. सात्विक, राजसिक और तामसिक. जिस प्रकार का आहार किया जाता है मनुष्य की वृत्तियां भी उसी प्रकार की हो जाती हैं. अतएव आहार भी एक प्रकार की चिकित्सा है.

आहार-चिकित्सा भी किसी अन्य प्रकार की चिकित्सा की तरह ही होती है. जैसे अन्य प्रकार की चिकित्सा प्रक्रिया में परहेज तथा सावधानी बरतनी पड़ती है, उसी प्रकार से आहार-चिकित्सा में भी बरतनी पड़ती है. सावधानी के अन्तर्गत समय पर, उचित परिमाण में, उचित ढंग से आहार करना आवश्यक है. परहेज में जिस प्रकार के भोजन से शरीर को कष्ट, पाचनशक्ति के प्रतिकूल हो उसे त्याज्य समझ लेना चाहिए.

आहार ग्रहण करने का उचित समय होता है. प्रायः देखा जाता है कि लोग समय का ध्यान किए बिना ही भोजन असमय कर लेते हैं, जो रोग के कारण बन जाते हैं. अतः आहार करने का प्रायः प्रातःकाल १० बजे से १२ बजे तक और सायंकाल ६ से ९ बजे का समय होता है. इन दोनों समयों के बीच ग्रहण किया गया आहार सुपाच्य होता है. यह नियमित समय पर होना चाहिए. एक बार आहार ग्रहण करने के बाद कम-से-कम तीन घण्टे का अन्तर अवश्य होना चाहिए क्योंकि इस अवधि में आहार की पाचन-प्रक्रिया होती रहती है. यदि इस बीच में दूसरा आहार ग्रहण किया जाए तो पहले किए आहार का कच्चा रस आहार के साथ मिल कर दोष उत्पन्न कर देता है, जिससे आहार पचने से रह जाता है और पाचन-क्रिया मन्द हो जाती है और कब्ज़ियत की शिकायत हो जाती है जिससे भूख नहीं लगती है. पेट साफ़ नहीं रहने के कारण ही ऐसा होता है.

सुचारु रूप से जीवन-चर्या निष्पादित करने के लिए नियमित समय निश्चित कर लेना चाहिए, उन्हीं समयों के अनुकूल कार्य करने से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है. समय पर सोना, समय से जागना, समय पर कार्य करना और समय पर आहार ग्रहण करना मनुष्य को स्वस्थ, शक्तिशाली व बुद्धिमान बनाता है.

पाचन क्रिया

आहार ग्रहण करने के पश्चात् ही पाचन-क्रिया शुरू हो जाती है. भोजन पाचन-यंत्रों में जाकर हज़म होता है और भोजन पदार्थ खून में परिवर्तित होकर शरीर में पहले से स्थित खून में जा मिलता है. जो आहार ग्रहण किया जाता है उसका कुछ भाग पचकर खून के रूप में परिवर्तित हो जाता है और शेष भाग (व्यर्थ पदार्थ के रूप में) मल के रूप में निकल जाता है.

पाचन के लक्षण

अगर आहार पच जाता है तो दस्त साफ़ होती है. भूख लगती है. शरीर हल्कापन महसूस करता है. शुद्ध डकार तथा शरीर का उत्साह आदि पाचन के लक्षण हैं.

संतुलित आहार

जो आहार संतुलित तथा उचित परिमाण में ग्रहण किया जाता है, वह शरीर को पौष्टिकता प्रदान करके आयु-वृद्धि करता है. आहार की मात्रा मनुष्य की पाचन शक्ति के अनुकूल और शारीरिक क्षमता के अनुरूप होनी चाहिए. हल्के और भारी भोज्य पदार्थों को उसी मात्रा में लेना चाहिए जो सुपाच्य एवं पाचन तंत्र के अनुकूल हों. इसका आंतों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका ध्यान रखना सदैव परमावश्यक है.

भोजन कैसा करना चाहिए

भोजन गरम और स्निग्ध होना चाहिए. बहुत जल्दी और बहुत देरी तक, ज़्यादा बोलते हुए तथा ज़्यादा हंसते हुए भोजन नहीं करना चाहिए.

मात्रापूर्वक और स्वभावानुसार आहार ग्रहण करना चाहिए. उष्ण आहार स्वादिष्ट तथा सुपाच्य होता है. जठराग्नि को तीव्र करके उसे

शेषांश पृष्ठ ८८ पर

पृष्ठ ४० का शेष

पैर का निरंतर संपर्क रहने से वहां की त्वचा सड़ जाती है और दरारें पड़ती हैं. ठंडी की ऋतुओं में हवा की रूक्षता के कारण भी यह तकलीफ़ कई लोगों में देखी जाती है. मधुमेह जैसे व्याधिग्रस्तों में भी व्याधि के कारण तलुवों में दरारें पड़ती हैं.

इसमें इन दरारों के साथ कुछ और लक्षण भी देखे जाते हैं. कभी-कभी दरारों से रक्तस्राव भी होता है. अत्यधिक पीड़ा होती है. कई बार पैरों में बहुत ही जलन होती है. जीवाणु संपर्क के कारण पीब का निर्माण भी होता है. पैर का तलुवा काला हो जाता है. त्वचा की सुकोमलता चली जाती है. दरारों के आसपास की त्वचा कड़ी हो जाती है. कई बार तो केवल स्पर्श से ही अत्यधिक दर्द होता है.

इस विकार के प्रति लापरवाही नहीं करनी चाहिए. विकार बढ़ने से पहले ही उपचार करें. आयुर्वेद की दृष्टि से इस विकार में मुख्यतः वायु और पित्तदोष कारणीभूत होते हैं. रूक्षता और वेदना वायु के कारण होती है तथा शरीर में गर्मी, तलुवों का गर्म रहना या जलन होना पित्त के कारण होता है, अतः चिकित्सा करते समय वैद्य को चाहिए कि इन दोनों दोषों को ध्यान में रखकर ही रोग की चिकित्सा करें.

चिकित्सा

तलुवों का उपचार शुरू करने से पूर्व अर्थात् लेप, मलहमादि कुछ भी लगाने से पहले तलुवों को और दरारों को साफ़ करें. इसके लिए कुनकुने पानी से तलुवों को धोना चाहिए, अगर साबुन का उपयोग न कर सकें, तो बेसन पानी में मिलाकर उसका उपयोग साबुन जैसे करें और उससे तलुवों को साफ़ करें. पैर को १०-१५ मिनट तक कुनकुने पानी में डुबोकर रखें, जिससे तलुवों की मैल फूल जाए और त्वचा कुछ मृदु हो जाए, इसके बाद नर्म ब्रश से तलुवों को हल्के हाथ घिसकर मैल दूर करें, ब्रश से घिसते समय साबुन के झाग का उपयोग भी कर सकते हैं. उंगलियों पर भी दरारें हों, तो नाखून ठीक तरह कटवाकर नाखून में दबी मैल को भी ब्रश से साफ़ करें. तलुवों की त्वचा और दरारें पूर्णतः साफ़ करने के बाद अन्य उपचार आरंभ करने चाहिए.

आयुर्वेदोक्त पंचकर्म का उपयोग इसकी चिकित्सा में किया जाता है. पंचकर्म से रोग समूल नष्ट हो जाता है. रक्तमोक्षण कर्म संचित दूषित रक्त को निकालने के लिए जलौका (Leech) लगायी जाती है. दूषित रक्त चूसने के बाद वह खुद ही गिर जाती है. चीरें के स्थान, दुष्टि और गहराई को ध्यान में रख कर जलौका कितनी बार लगाना चाहिए, यह निश्चित किया जाता है. लेकिन यह उपाय अनुभवी और जानकार वैद्य की निगरानी में ही होना चाहिए.

लेपन-इन दरारों की उत्तम चिकित्सा लेप या मलहम लगा कर ही की जाती है. ये लेप घर में बना सकते हैं या बाज़ार में बने हुए मिलते हैं.

- ठंड के कारण दरारें पड़ी हों, तो नारियल तेल थोड़ा गरम करके सुबह-शाम लगाकर १०-१५ मिनट तक पैर कुनकुने पानी में डाल कर रखें. बाद में पाददारी मलहम लगाएं.
- चीरों पर मधु, सैंधव नमक, घी, गुड़, गुग्गुल व सर्जरस मोम का लेप भी लगाते हैं.
- यष्टीमधु, वसा, मज्जा, और सर्जरस चूर्ण से सिद्ध घी में क्षार व गेरू मिला कर उसका लेप करें.
- मदनफल, योग्य और सामुद्र लवण का लेप मक्खन में मिला कर लगाना भी अच्छा उपचार है.
- बाज़ार में जो तैयार लेप मिलते हैं वे हैं - पाददारी मलहम, राल का मलहम, शतधौत घृत, गंधक मलहम आदि.

त्वचा स्वच्छ करके बाद में मलहम हल्के हाथों से घिसकर लगाने चाहिए. मलहम लगाने से पहले अपने हाथ और उंगलियां गर्म पानी से धोकर स्वच्छ कर लें. मेडिकेटेड रूई (कॉटन) से मलहम लगाएं.

आभ्यंतर औषधियां

साथ में दोषानुसार कुछ औषधियों का सेवन भी इसमें ज़रूरी होता है.

कामदुधा रस - १२५ मि.ग्रा. से २५० मि ग्रा की मात्रा में दिन में ४-५ बार दूध के साथ लें.

चन्द्रकला रस - २ से ४ गोली दिन में ३ बार लें.

शखभस्म - २५० मि.ग्रा. की मात्रा में दिन में २-३ बार लें.

सारिवाद्यासव - २ से ४ चम्मच पानी मिलाकर भोजन के बाद २ बार लें.

चंदनासव या उशीरासव भी इसी मात्रा में लें.

गंधकरसायन २५० मि.ग्रा. दिन में २-३ बार दूध से लें.

इस प्रकार उपचार करके आप इससे छुटकारा पा सकते हैं. और दुबारा न हो इसलिए विकार के कारणों से दूर रहें एवं नित्य नियम से स्नान समय तलुवों की सफाई करें. सप्ताह में एक बार कम से कम तेल से मालिश करें. घर में काम करते हुए भी स्लीपर पहनने से तलुवों में चीरें नहीं पड़ते.

अमृत वचन

चित्तं प्रसादयति लाघवमाददाति
प्रत्यङ्गमुज्ज्वलयति प्रतिभाविशेषम् ।
दोषानुदस्यति करोति च धातुसाम्य
मानन्दमर्पयति योगविशेषगम्यम् ।।

(चण्डकौशिक)

निद्रा हमारे मन में प्रसन्नता, शरीर में लाघव, अंग-प्रत्यंगों में उमंग, बुद्धि में विशेष प्रकार की प्रतिभा उत्पन्न करती है. दोषों का नाश करती है, आरोग्य प्रस्थापित करती है और योगविशेष से प्राप्त होनेवाला आनन्द भी प्रदान करती है.

विशेष : निद्रा मनुष्य को बहुत सुख प्रदान करती है. यह चित्त में प्रसन्नता लाकर शरीर के दोषों का नाश कर स्वास्थ्य प्रदान करती है. इसमें व्यक्ति को समाधि जैसा ही आनन्द प्राप्त होता है.

इक्षोरग्रात्क्रमशः पर्वणि पर्वणि यथा रसविशेषः ।
तद्वत्सज्जनमैत्री, विपरीतानां तु विपरीता ।।

(भोजप्रबन्ध)

जैसे गन्ने के अग्र से नीचे की ओर पोर-पोर (पर्व-पर्व) में रस की अधिकता व मिठास हुआ करती है, वैसे ही सज्जनों की मैत्री होती है और विपरीतों की मैत्री ठीक इससे विपरीत होती है.

विशेष : सज्जनों से जितनी प्रगाढ़ मैत्री होती है, उतना ही उसका हमें लाभ होता है, इसके विपरीत नीच व्यक्तियों से दोस्ती करने से सिर्फ़ हानि ही होती है. क्योंकि वे मुंह पर चाहे आपके जो कहें पर पीठ पीछे वे आपकी बुराई ही करेंगे, अतः ऐसी प्रवृत्ति वालों का परित्याग करना चाहिए.

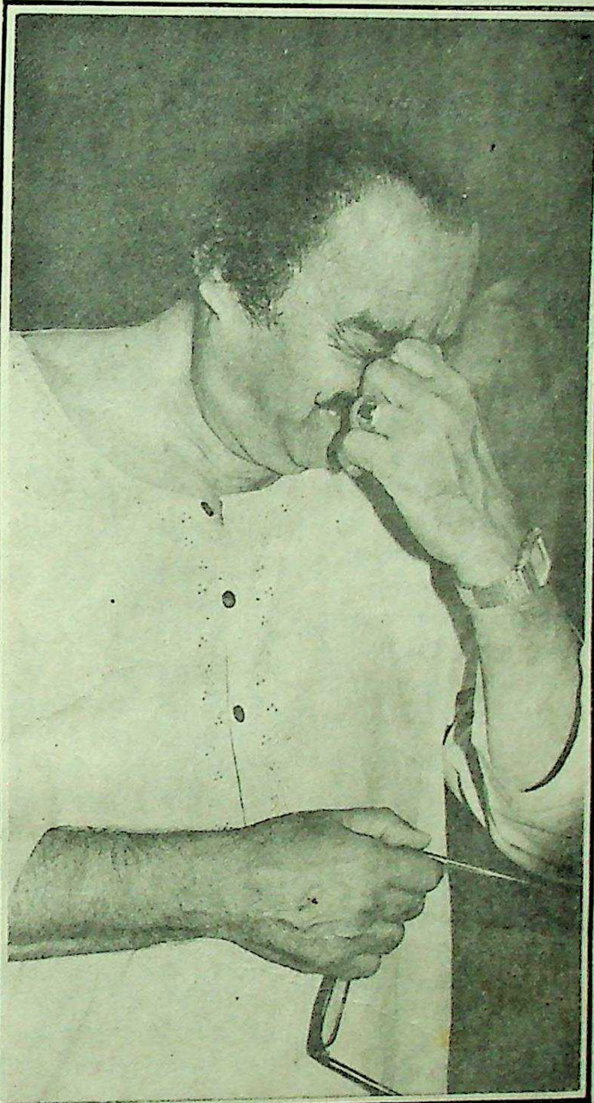
आंसू बहाइये और रोग भगाइये

पन्नालाल व्यास

कैसी अटपटी और विचित्र बात हम कह रहे हैं कि 'आंसू बहाइये और रोग भगाइये.'

वैद्य या डाक्टर किसी रोगी को दवा देने जाते हैं तो दवा देने के पहले वे रोगी को हास्य विनोद से हंसाने की चेष्टा करते हैं ताकि रोगी प्रसन्न भाव से औषध ग्रहण करे. प्रायः यह देखा जाता है कि रोगों में रोगी उदास हो जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है और औषध लेते समय

ना, वैसे है तो बड़ी बुरी चीज़ पर रोने के बाद मन हल्का हो जाता है. कई परीक्षणों से यह साबित भी हुआ है कि रोने से रोग भी दूर भागते हैं.



प्रतिरोध प्रगट करता है. हाथ-पैर पटकता है, चीखता-चिल्लाता है और कभी-कभी दवा की खुराक लेते समय या लेने के बाद वमन कर देता है. अनेक रोगों में रोगियों में 'रिजेक्ट' करने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है. उनका रुख 'नकारात्मक' हो जाता है. वे न तो चिकित्सक के साथ सहयोग करते है और न औषधियों से वे नॉन कॉ ऑपरेटिव हो जाते हैं.

ऐसी स्थिति में चिकित्सक औषधि देने के पूर्व रोगी को हंसाते हैं, चुटकुले सुना कर गुदगुदाते हैं. उसको आह्लादित करते हैं - तब कहीं जाकर वह चिकित्सक को अपना हितैषी और शुभ चिंतक समझता है. यह अलग बात है कि कुछ चिकित्सक रोगी को डांट डपट कर, उसके संबंधियों से हाथ पैर पकड़वा कर जोर जबरदस्ती के साथ, चम्मच से जीभ दबा कर दवा की खुराक मुंह में घुसेड़ देते हैं. यह सफल चिकित्सा का सही तरीका नहीं है. इस चिकित्सा में समय अधिक लगता है और ठीक हो जाने के बाद भी रोगी के मन में ऐसी मानसिक ग्रंथियों उलझी रह जाती हैं कि उसके व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में कुछ-न-कुछ त्रुटियां रह ही जाती हैं.

यहां तक तो बात समझ में आती है कि रोगोपचार में चिकित्सक को अपने रोगी का मनोविनोद करते रहना चाहिये, उसे चुटकले और छोटी-छोटी मनोरंजक कहानियां और घटनाएं सुना कर, उसे प्रसन्न भाव से औषध लेने को उत्प्रेरित करना चाहिये. यह सिद्धांत केवल बच्चों के लिए ही नहीं, सभी उम्र के लोगों के लिए लागू है - हां, उम्र के अनुसार मनोविनोद का स्वरूप बदला जा सकता है. पर अब हम यह कहें कि चिकित्सक को अपने रोगियों को रुलाना भी चाहिये - तो यह बात उलट गंगा की तरह लगती है.

एक तो रोगी को रोग की पीड़ा - और ऊपर से आंसू बहाये - यह कौन-सा तुक है?

रोने का आध्यात्मिक पक्ष

हमारे यहां न केवल वैष्णव संप्रदाय में बल्कि प्रायः समस्त उपासना पद्धतियों से जुड़े संप्रदायों में यह मुख्य तत्व दर्शाया गया है कि सत् और निर्विकार होने से ही ईष्टदेव से साक्षात्कार होता है. जब गोपियां कृष्ण के विरह में व्याकुल-आकुल होकर आंसुओं से प्लावित हो गयीं तो उनके मन का कायिक क्लेश दूर

हो गया और भगवान कृष्ण की साक्षात् छवि उनकी आंखों में सदा के लिए बस गयी और कानों में मुरली की ध्वनि सदा के लिए बजने लगी.

हमारे शारीरिक शास्त्री मानते हैं कि आचार-विचार एवं आहार-विहार की त्रुटियों से शरीर में दोषों का संचय होने लगता है. दोषों के संचय से शरीर में विजातीय के जमा होने पर शरीर की अनेक क्रियाएं मंद पड़ जाती हैं. उसी से रोग उत्पन्न होते हैं. अतः शरीर में कुपित हुए और संचित हुए दोषों का शमन करना आवश्यक है.

इसी तरह आध्यात्मिक चिंतकों की मान्यता है कि तमोगुण की प्रबलता से, चित्त की मलिनता से नाड़ियों में निरंतर जो प्राणवायु प्रवाहित हो रहा है उसमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है. उससे शरीरस्थ षट्चक्र का सेवन कार्य नहीं हो पाता. तब आत्मा भटक जाती है. सच्चिदानंद के साथ उसका साक्षात्कार नहीं हो पाता. उस स्थिति में जब तक मन शुद्ध न होगा, जब तक अंतर्मन निर्मल नहीं होगा तब तक हृदय के नीचे स्थित और पिंगला नाड़ी - चंद्र और सूर्य - गंगा और जमुना के संगम के प्रवाह में वह स्नान करने योग्य और अधिकारी नहीं होगा. उसे न तो आत्मज्ञान मिलेगा और न उसका विवेक जागृत होगा. इसके लिए सर्वथा सुगम पथ है आत्मसमर्पण का. यह आत्मसमर्पण आंसुओं से सहज हो जाता है. आंसुओं से मन की ग्लानि और कल्मष धुल जाता है. बिना किसी योग क्रिया के केवल आंसुओं से शरीरस्थ षट्चक्रों में उत्पन्न हुए अवरोध बर्फ की तरह पिघल जाते हैं और पूरे नाड़ी संस्थान में आत्मविश्वास के साथ ओज और तेजस्विता जाग पड़ती है.

विभिन्न प्रकार के आंसू और रासायनिक परिवर्तन

आंसू कई प्रकार के होते हैं. अपमान के आंसू, शोक के आंसू, ग्लानि और प्रायश्चित के आंसू, हर्षातिरेक के आंसू, प्रिय बिछोह और मिलन के आंसू, प्रेम और विरह के आंसू, शारीरिक ताप और वेदना के आंसू, ईष्टदेव से मिलने की उत्कंठा के आंसू. आंसू किसी भी प्रकार के हों उनसे शरीर में इलेक्ट्रॉनिक प्रवाह की तरंगे उमड़ती हैं जिनसे शरीर में एक विचित्र प्रकार का रासायनिक परिवर्तन होता है. उस रासायनिक परिवर्तन से आंसूगत कारणों से उत्पन्न सभी प्रकार के शारीरिक और मानसिक तनावों से व्यक्ति मुक्त हो जाता है और उसके मन में गहरी शांति उत्पन्न होती है.

आंसुओं के निकलने के साथ श्वास-प्रश्वास की क्रियाएं होती हैं. ये एक प्रकार से आंतरिक अन्तर्मन की यौगिक क्रियाएं हैं जिनसे शरीर में एक विचित्र प्रकार की शीतल ऊष्मता उत्पन्न होती है. कहा जाता है कि इस शीतल ऊष्मता से शरीर के अनेक विकार भस्मीभूत हो जाते हैं. जैसे यज्ञ क्रिया में सुगंधित-मंद यज्ञाहुतियों से दूषित वातावरण शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार आंसुओं से उनके माध्यम शरीर के अनेक प्रकार के विषाक्त द्रव्य बाहर निकल आते हैं. आंसुओं में उत्पन्न श्वास मंथन से रसवहा और रक्तवहा नाड़ियों में कुपित हुए दोषों से उत्पन्न रुकावट साफ़ हो जाती हैं. इस मल शुद्धि से शरीर हल्का, स्वच्छ और नीरोग हो जाता है.

आंसुओं में विचित्र एवं अलौकिक ऊर्जा है

सच तो यह है कि आंसुओं में विचित्र एवं अलौकिक ऊर्जा है. वह शरीर में रोग से उत्पन्न प्रदूषण को स्वच्छ करते हैं. कहा जाता है कि आंसुओं से शरीर के ताप में विलक्षण वृद्धि हो जाती है. यह ताप कौस्मिक एनर्जी है जिससे रोगाणुओं के शमन में सहायता मिलती है. इसीलिए कहा जाता है कि नीरोगावस्था में भी समय-समय पर एकांत में बैठ कर आंसू बहाइये. उससे मन में एक विचित्र एवं अलौकिक ऊर्जा उत्पन्न होगी जिससे भविष्य में भी आरोग्य सुरक्षित रहेगा. यह भी कहा जाता है कि आंसुओं के साथ अन्तर्मन की श्वास-प्रश्वास की क्रियाओं से शरीर से प्राणवायु का संचार होता है, उससे रक्त की शुद्धि होती है और संचित मल का निष्कासन होता है. आंसुओं से कब्ज की शिकायत कभी नहीं रहेगी और पाचन क्रिया हमेशा सुचारु रूप से चलती रहेगी. वैद्यक ग्रंथों में अनेक रोगों के शमन हेतु विशिष्ट प्रकार के अंजनों का विवरण है जिनको आंखों में लगाने से उस रोग के सूक्ष्मगत विकार आंसुओं के माध्यम से बाहर निकल आते हैं.

वैज्ञानिक पक्ष

वर्तमान मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि अनेक व्यक्ति व्यक्तिगत दुर्बलताओं के शिकार होकर मन की भावनाओं को दबा लेते हैं. इस भय से कि उनको अभिव्यक्त करने से मन-मुटाव हो सकता है, किसी से संपर्क टूट सकता है, ईर्ष्या उत्पन्न हो सकती है, झगड़ा टंटा हो सकता है. पर इस तरह की भावनाओं का दमन करने से तनाव उत्पन्न होता है जिससे अनेक मानसिक विकृतियों के होने की संभावना रहती है. इसलिए अच्छा यही है कि उन भावनाओं को दमित करने के बदले आप अपने किसी प्रिय के सन्मुख, किसी हितैषी के सन्मुख या अकेले में, एकांत में ही आंसू बहा कर मन को हल्का कर लें.

अमरीका के विख्यात चिकित्सक एवं बायोकेमिस्ट डॉक्टर फ्रेंक ने रुदन प्रक्रिया पर विशद अध्ययन एवं शोध करने के पश्चात् यह मत निर्धारित किया है कि वह एक उत्सर्जक क्रिया है जिसमें शरीर के अनेक हानिकारक पदार्थ बाहर निकल आते हैं. उनका कहना है कि नीरोग व्यक्ति ही शोकाकुल होकर आंसू बहाता है. यदि कोई व्यक्ति वेदना में, शोक में, दुर्घटना और विनाशकारी घटनाओं को देख सुन कर आंसू नहीं बहाता तो निश्चय ही वह स्वस्थ इंसान नहीं है. सच तो यह है कि उसका भी इलाज़ होना चाहिए.

●

अमृत वचन

- जब तक लोग स्वयं को सुधारने का प्रयत्न नहीं करेंगे, तब तक उनका सुधार होना असंभव है.

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

- दुःख के बाद जो सुख आता है वह ज्यादा आनंदमय होता है, जैसे धूप से जले हुए को वृक्ष की छाया अधिक शांति देती है.

बुराई नौका में छिद्र के समान है, वह छोटा हो या बड़ा, नौका को डुबो देता है.

कालिदास

- सांप के लिए दूध, बंदर के लिए छुरी और बालक के लिए आग की जो खतरनाक उपयोगिता है, वही भयंकर स्थिति विद्या के प्रसंग में मूर्ख की है.
- पानी में यह विशेषता है कि वह जिस छिद्र में प्रवेश करना चाहे, कर सकता है, अंतर्यामी बनकर धरती और हवा में निवास कर सकता है, यह इसलिए कि नम्रता उसका स्वभाव है. नम्रता के पास स्वर्ग में प्रवेश की कुंजी है.
- बिना मनन के ज्ञान बेकार है, बिना ज्ञान के मनन खतरनाक है.
- जिनका अपने मन पर नियंत्रण है वे बहुत कम गलती करते हैं.

कुंग-फूज़ी (कनफ्युशियस)

रस - सभी धातुओं का मूल

- वैद्य बद्रीनाथ उपाध्याय (आयुर्वेदरत्न)

जो जल तत्व है वही 'रस' है. जल से ही रस की उत्पत्ति होती है. रसधातु शरीर में दिन-रात घूमता रहता है, इसीलिए इसे रस कहा जाता है.

भलीभांति पचे हुए आहार का जो सार भाग मल से अलग हो जाता है, उसका नाम 'रस' है. यह द्रव (तरल) सफ़ेद, शीत, स्वाद तथा चल (गतिशील) होता है.

रस का निर्माण

सभी तरह के आहार मुख में डालन पर प्राणवायु द्वारा प्रेरित हो, पहले आमाशय में जाता है.

वह आहार वहां क्लेदन कफ़ के संयोग से मधुर तथा आमाशय के आलोडन के कारण फ़ेन जैसा हो जाता है. आचार्य सुश्रुत के अनुसार - क्लेदन नामक कफ़ आहार को आर्द्र करता है तथा घोलता है. चूंकि कफ़ मधुर होता है, अतः उसके मिश्रण से षट्रस आहार भी मधुर हो जाता है. फिर पाचकपित्त की क्रिया आरंभ होती है.

आमाशय तथा पक्वाशय का मध्यवर्ती भाग 'नाभि' नामक मर्म है. वहां समान वायु का प्रभाव है, जिससे उनमें गति होती है. उसके अन्तःस्तर पर जो कला है उसका नाम 'ग्रहणी' है. उसी कला में वे अवयव हैं, जहां से रसवाही सिराएं प्रारंभ होती हैं, जो पच्यमान आहार के रस को चूसते हैं. इस प्रकार से परिपक्व आहार का सारभाग 'रस' (रसधातु) कहलाता है और बचा हुआ शेष भाग 'मलद्रव'.

रस का स्थान

रस यद्यपि समस्त शरीर में सदैव घूमता रहता है तथापि उसका स्थान 'हृदय' है, क्योंकि सर्वप्रथम समान वायु द्वारा वह हृदय में पहुंचाया जाता है और वहां से रक्त के साथ मिल जाता है. वह रस हृदय से धमनियों द्वारा प्रवाहित होकर रक्त आदि समस्त धातुओं में पहुंचकर उनका पोषण करता है और अपने शीत-स्निग्ध गुणों से शरीर में व्याप्त हो जाता है. समस्त शरीर का पोषण करने पर बचा हुआ रस पुनः शरीर में आ जाता है और वहां से नए रस से मिलकर पुनः शरीर पोषण के लिए चल पड़ता है.

रस पोषित अवयव

रस 'ग्रहणीगत' समान वायु द्वारा प्रेरित होकर ग्रहणी से संबद्ध सिरामार्ग द्वारा हृदय में जाकर शरीरारंभक रस के साथ मिल जाता है, फिर वहां से व्यान वायु द्वारा बल पूर्वक प्रेरित होकर शरीर की सभी धातुओं को पुष्ट करता है. जैसे, कूल (कूल का जल) खेत में विभिन्न प्रकार की औषधियों का पोषण करता है, वैसे ही रस शरीर में सभी धातुओं का पोषण करता है और एक मास नौ घड़ी के बाद शुक्र व आर्तव के रूप में परिवर्तित हो जाता है. रक्त उत्पत्ति के बाद मांस, रस से ही बनता है. इसी प्रकार मांस की उत्पत्ति के बाद मेदस् रस से ही बनता है, रस से ही अस्थि, रस से मज्जा और रस से ही शुक्र बनता है, अर्थात् रस ही रक्तादि सभी धातुओं की पूर्तिकर्ता है. रस क्रमशः सभी धातुओं में जाकर तीन भागों में विभक्त हो जाता है. यथा स्थूल, सूक्ष्म व मलभाग. इनमें स्थूल भाग स्व रूप में स्थित रहता है, सूक्ष्म भाग धातु का पोषण करता है और मलभाग स्वधातु के मल का पोषण करता है.

शरीरगत सात धातुओं में से प्रथम धातु 'रस' है, जिसमें से रक्त, मांस और मेद धातु के संबंध में आप पढ़ ही चुके हैं. किसी कारणवश 'रस', जो कि प्रथम धातु है, पर पहले लेख नहीं दिया जा सका. अतः इस अंक में प्रस्तुत है रस धातु से संबंधित विशेष जानकारियां.

रस से कफ़ का संबंध

पकते हुए आहार रस से मल निकलता है, जो 'कफ' कहलाता है. सुश्रुत ने कहा है कि कफ, पित्त, कान आदि छिद्रों का मल तथा स्वेद, नख एवं रोम, नेत्र का मल और त्वचा की चिकनाई ये सात पदार्थ रसादि सात धातुओं के 'मल' हैं. यह कफ़ धमनी द्वारा प्रेरित होकर शरीरारंभक क्लेदन नामक कफ़ को पुष्ट करता है.

शरीर में रस-संचार

रस शरीर में तीन प्रकार से संचार करता है, रस धातु शरीर में यद्यपि सदैव संचार करता रहता है, परन्तु शब्द, प्रकाश किरण (अर्चि) तथा जल की गति से संचार करता है. तात्पर्य यह है कि प्राणी तीन प्रकार के होते हैं - तीक्ष्णाग्नि, मध्यमाग्नि और मन्दाग्नि वाले. इनमें तीक्ष्णाग्नि व्यक्तियों का रस शब्द के समान आर्त, शीघ्र गति से, मध्यमाग्नि का रस प्रकाश किरण के समान मध्यम गति से और मंदाग्नि व्यक्तियों का रस जल की तरह मन्द गति से संचार करता है.

मंदाग्नि होने पर यदि वह रस विदग्ध या अपरिपक्व रह जाता है, तब वह कटु एवं अम्ल हो जाता है. तब वह आमातिसार, आमवात आदि रोगों को उत्पन्न करता है अथवा विसूची आदि विषादजनक रोगों को उत्पन्न करता है. विदग्ध रस से ही कालरा या हैज़ा जैसे रोगों की उत्पत्ति होती है. यही नहीं, इसे ही सभी रोगों का कारण माना जाता है.

रस की वृद्धि - क्षय के लक्षण

रसधातु की वृद्धि होने पर कफ़ की वृद्धि के समान लक्षण होते हैं, जैसे अग्निमांद्य, जी मिचलाना, लालास्राव (थूक) और वमन. लेकिन रस धातु का क्षय होने पर इसका परिणाम संपूर्ण शरीर पर पड़ता है. रस धातु की क्षीणता का पहला असर हृदय पर पड़ता है, क्योंकि रस व्यान वायु की क्रिया से पहले हृदय में ही पहुंचता है, परन्तु रसक्षय के कारण पर्याप्त मात्रा में रस हृदय को प्राप्त नहीं होता. जिससे हृदय का 'घट्टन' होता है अर्थात् ऐसा मालूम होता है जैसे कोई हृदय को पकड़कर हिलाता हो. हृदय की गति अत्यधिक बढ़ जाती है. हृदय में शूल, आमाशय और मन की शून्यता, शरीर का शोष आदि विकारों के साथ संपूर्ण शरीर में भी रसक्षय के लक्षण दिखाई पड़ते हैं. जैसे -शरीर में त्वचा, नख, आंख,

शेषांश पृष्ठ ९० पर

बीमारों का आहार - दूध

हमारे आयुर्वेदिक विज्ञान में रोगों की चिकित्सा के साथ-साथ रोगियों के लिए उपयुक्त पथ्य आहार का समुचित विधान है. आयुर्वेद शास्त्रों में रोगोपचार के साथ-साथ पथ्य आहार पर भी विपुल सामग्री संग्रहित है. आयुर्वेद का मत है कि रोगों के शमन में जितना प्रभाव औषधियों का होता है,उतना ही प्रभाव पथ्य आहार का होता है. पथ्य आहार से रोग शमन में सहायता मिलती है और रोगों के कारण उत्पन्न हुई शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता दूर होती है. इसके अतिरिक्त पथ्य आहार से शरीर में रोगाणुओं से संघर्ष करने की अद्भुत क्षमता उत्पन्न होती है. शारीरिक सुरक्षा-कवच को शक्तिशाली और प्रभावशाली बनाने में पथ्य आहार का बड़ा गहरा योगदान रहता है. केवल स्वास्थ्य सुधारने में ही नहीं, किंतु स्वास्थ्य को सुस्थिर रखने में भी पथ्य के अनुकूल चलना सबसे सरल, सस्ता और स्वाधीन उपाय है.

पथ्य निर्धारण

बीमार के लिए पथ्य निर्णय करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि वह पथ्य शक्तिदायक हो, शीघ्र पचनेवाला हो, रोग निवारण में सहायक हो, स्वादिष्ट हो और रोगी की प्रकृति के अनुकूल भी हो. कुछ पथ्य ऐसे हैं जिनका प्रायः सभी रोगों में रोगियों की इच्छा एवं प्रकृति के अनुसार उन्हें विविध रूपों से स्वादिष्ट बना कर दिये जा सकते हैं. इनमें उल्लेखनीय हैं, दूध, खिचड़ी, जौ का पानी, मांड, साबूदाना, अरारोट, कॉर्न फ्लोर, दलिया, (प्रमथ्या, पटोलिया, लपटा) पेया, यवागू दाल, भुने हुए अन्न, भात-चावल, आहारसत्व, रोटी, डबलरोटी, बिस्कुट, रसा-शोरबा (झोल), छाछ, दही, फल, हरी सब्ज़ी, पेय हाज़मा पानी आदि. इनमें दूध सर्वश्रेष्ठ पथ्य है, जिसको विविध रूपों में रूपांतरित करके प्रायः सभी प्रकार के सामान्य एवं असाध्य से असाध्य रोगों में दिया जा सकता है.

दूध - सात्विक आहार

दूध सात्विक पथ्य आहार है. सात्विक आहार के विषय में आयुर्वेदाचार्यों का कथन है कि "सात्विक आहार आयु, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला, रसीला, चिकना, पुष्ट और हृदय को आनंद देनेवाला होता है."

दूध सात्विक आहार होने से अस्सी प्रतिशत से अधिक रोगों के लिए श्रेष्ठतम पथ्य है. उसके संबंध में की गयी खोजों से इस बात की पुष्टि हुई है कि वह इतना प्रभावशाली, सात्विक एवं पोषक पथ्य आहार है कि उसके सेवन से कैंसर जैसे असाध्य रोग का भी इलाज़ किया जा सकता है. जापान के राष्ट्रीय कैंसर केंद्र के एक विशेषज्ञ डॉक्टर हिरायामा ने अनेक तथ्यों से यह प्रमाणित किया है कि अधिक मात्रा में दूध का सेवन करने से कैंसर के उत्पन्न होने की संभावना नहीं रहती और यदि कैंसर प्रारंभिक अवस्था में है तो नियमित सुबह-शाम दो गिलास दूध पीने से उसका शमन हो सकता है.

आवश्यक तत्वों से भरपूर

दूध के विषय में कहा जाता है कि वह दीर्घायु के लिए अमृत तुल्य है. यह सबसे अधिक पौष्टिक, शक्ति संवर्धक, प्राण संचेतक एवं कोशिकाओं के लिए प्राणदायक है. उसमें आवश्यक प्रोटीन, खनिज लवण और विटामिन तत्व हैं जो रोगाणुओं के प्रतिरोधक हैं. दूध में केसीन (Casin) की मात्रा अधिक होने से वह बच्चों के लिए सुपाच्य नहीं होता और कभी-कभी विशेष रोगों में भी वह रोगियों के पेट में भारीपन और आफरा उत्पन्न कर देता है. उस अवस्था में उसमें पानी मिला कर, उसे एक गिलास से दूसरी गिलास में ऊंचाई से तेज़ धार के साथ डाल कर झाग उत्पन्न करके तथा उसका कुछ रूप बदल कर उसे आसानी से बच्चों और रोगियों के लिए सुपाच्य बनाया जा सकता है. यहां दूधपथ्य संबंधी आवश्यक जानकारी प्रस्तुत की जा रही है -

दूध अपने पौष्टिक गुण के कारण पेय पदार्थों में सर्वोत्तम है. बालकों व वृद्धों के लिए आवश्यक तो है ही, रोगियों के लिए भी ज़रूरी है. परंतु रोगियों को दूध देते समय कुछ सावधानी भी रखनी चाहिए. आइए जानें कुछ ऐसी ही बातें -

दूध-चूने का पानी

उबाले हुए मीठे दूध में उससे आधी मात्रा में अथवा चौथाई मात्रा में चूने का पानी मिला कर उसका सुपाच्य पथ्य तैयार किया जा सकता है. यह शिशुओं के लिए और उन व्यक्तियों एवं रोगियों के लिए जिन्हें सामान्य दूध सहज नहीं पचता, बड़ा लाभदायक और सुपाच्य है. यह पथ्य वमन, ज्वर, अम्लपित्त, अतिसार, संग्रहणी, मंदाग्नि, आंत्र ज्वर, उदर शूल सूखे का रोग, चर्म रोग और दंत क्षय के रोगों में विशेष हितकारी होता है. दूध में चूने का पानी मिला देने से खट्टापन उत्पन्न नहीं करता और पित्त को नहीं बढ़ाता. रोगों से उत्पन्न निर्बलाता को दूर करने में दूध-चूने का पानी बड़ा गुणकारी एवं प्रभावशाली उपाय माना गया है.

चूने का पानी बनाने की विधि

मिट्टी के एक बर्तन में दस गिलास पानी भर कर उसमें दो ढाई मुट्ठी उम्दा किस्म का बुझाया ताज़ा चूना मिला कर घोल दें और रात भर उसे भिगोए रखें. सुबह उसमें से पानी निथार कर एक शीशी में भर कर रख दें. इसी पानी को चूने का पानी कहते हैं,जिसका उपयोग पंद्रह-बीस दिनों तक किया जा सकता है.

दूध-सोडा

दूध को अधिक से अधिक सुपाच्य बनाने के लिए उसमें सोडा बाई कार्ब मिलाया जा सकता है. उबाले हुए मीठे पाव भर दूध में एक चुटकी सोडा बाई कार्ब मिला दें - बस दूध-सोडा का लाभकारी पथ्य आहार तैयार हो गया. इस पथ्य आहार का उपयोग उदर शूल, गैस, अजीर्ण, मंदाग्नि आदि रोगों में किया जा सकता है.

दूध-सोडा वाटर

ज़्वर, वमन, अजीर्ण, उदर शूल, बेचैनी, थकावट, चक्कर, आंखों के सामने अंधकार आना - आदि रोगावस्था में दूध-सोडावाटर पथ्य बड़ा उपयोगी पाया गया है.

अनेक आयुर्वेदाचार्य बीमार को और किसी भी बीमारी से उत्पन्न क्षीणता में दूध-सोडावाटर देने का सुझाव देते हैं. इसे तैयार करने की विधि यही है कि उबले हुए मीठे दूध को ठंडा करके छान कर उसमें लगभग उतना ही सोडावाटर मिला लें.

दूध-साबूदाना

एक डेढ़ मुट्ठी भर साबूदाना को १४ गुना पानी में मिला कर धीमी आंच पर निरंतर कलछी से हिलाते हुए पकायें, जब साबूदाना अच्छी तरह पक जाये तो उसमें आवश्यकतानुसार गरम दूध और मिश्री मिला कर दूध-साबूदाना का सुपाच्य पथ्य तैयार कर लें. उसमें रुचि या स्वाद के अनुसार इलायची, गुलाब जल या केवड़े का जल मिलाया जा सकता है. दूध-साबूदाना पथ्य को और भी अधिक सुपाच्य और स्वादिष्ट बनाने के लिए उसमें मुनक्का को पानी में पीस कर मिलाया जा सकता है. यह पथ्य संग्रहणी, आमातिसार और मुंह में छालों के उभरने पर दिया जा सकता है. क्षय के रोगियों को इस पथ्य में केसर मिला कर दिया जा सकता है.

● ज्वर रोगियों की दुर्बलता दूर करने के लिए साबूदाना की खीर भी लाभप्रद है.

दूध-जौ का पानी

दो-तीन मुट्ठी छिले हुए जौ को पहले ठंडे जल से धोकर आठ गुना स्वच्छ पानी में करीब आधा घंटे तक उबाल कर छान लें. जब पानी का रंग सफ़ेद हो जाय, तो उसे बोतल में भर लें. इसी पानी को दूध के साथ मिला कर पीयें तो वह सुपाच्य पोषक आहार बन जाता है

दूध और फलों के रस का मिश्रण

एक गिलास दूध को उबाल कर कुछ देर के लिए ठंडा (कुनकुना) होने दें. इस दूध में पौन कप या पूरा कप केला, पपीता, मौसमी, अनार, सेब, अंगूर, संतरा आदि फलों में से किसी एक का अलग रस निकाल कर मिलाते हुए धीरे-धीरे चम्मच से हिलाते रहिए.

दूध-मुनक्का (द्राक्ष) का जल

रात को मिट्टी के बर्तन में १५ से २० मुनक्का (द्राक्ष) जल या ठंडे दूध में भिगो कर रख दें. सुबह मुनक्का को ताज़े दूध के साथ पीस कर कुनकुने दूध भरे गिलास में मिला कर सेवन करने से सामान्य शारीरिक क्षीणता दूर हो जाती है. यह पीलिया, आंत्रज्वर, कब्ज़, मधुमेह आदि रोगों के उपचार के लिए रामवाण है.

दूध पथ्य - आवश्यक निर्देश

दूध को कपड़े से छान कर आग पर चढ़ा कर हिलाते रहना चाहिए. जब एक उबाल आ जाय, तब आंच से उतार कर ठंडा करके बीमार को पिलाना चाहिए. ध्यान रहे उबाल पूरा आना चाहिए - इतना कि दूध उबलता हुआ बर्तन के किनारों पर आने लगे.

● एक चौड़े बर्तन में पानी भर कर आग पर चढ़ायें. उसमें दूध वाला बर्तन रखें - पानी को उबलने दें जिसके साथ दूध भी धीरे-धीरे उबलने लगेगा. इस विधि से तैयार किया हुआ दूध अच्छा रहता है.

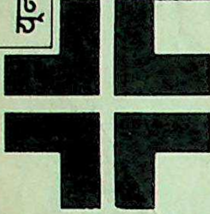
● रोगी को हमेशा गरम किया हुआ ताज़ा दूध पिलाना चाहिए.

● बीमारी की हालत में जब रोज़-रोज दूध लेने से रोगी उकताने लगे या उसमें उसके प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाय तो दूध में केसर, छोटी या बड़ी इलायची, काली मिर्च, सोंठ, अदरक, तुलसी, अजवाइन, चाय, गुलाब जल या केवड़ाजल जैसी वस्तुएं मिला कर उसका स्वाद और रूप बदल कर उसे पिलाना चाहिए.

- पन्नालाल व्यास

यूनानी औषधियों के नियम व सिद्धांत

- डॉ. मिर्ज़ा ज़ाहिद बेग



यूनानी उपचार (तिब्बी यूनानी) या औषधियों का, जो प्राचीन ग्रीक औषधियों और आधुनिक औषधियों के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करती रही हैं, अब तक के मेडिकल इतिहास में काफी विकास हुआ है. यह पद्धति, जो वास्तव में हिप्पोक्रेट और गेलन के शोधों पर आधारित है, सीरिया, फारस, मिस्र, भारत, चीन, मध्य एशिया के मध्य और सुदूर पूर्व के देशों की परम्परागत औषधियों के सामंजस्य से काफी समृद्ध हुई है. यूनानी औषधि पर आधारित अनेक ग्रंथ और पुस्तकें अरबी व फारसी में प्रकाशित की गयी हैं, जिनमें प्रमुख 'अविशिना के कार्य (यूनानी औषधियों के सामान्य नियम), 'राज़ीज', (अंतस्तवक इंद्रिय निग्रह), 'हाली अब्बासी मजूसी', और 'इब्न बयतार' हैं और जो लगभग ८०० वर्षों तक यूरोपीय विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम के रूप में प्रचलित थीं. यह पद्धति भारतीय परिवेश में भी काफी फली-फूली और अब भी भारतीय औषधि इतिहास में सराही जाती हैं या प्रायोगिक हैं.

स्वास्थ्य व रोगोपचार का आधार: यूनानी पद्धति का आरोग्य और उपचार का पूरा सिद्धांत 'अरकान' या मूल तत्व के बुनियादी आधार पर टिका है. सृष्टि की हर वस्तु की तरह मानव शरीर भी जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी जैसे तत्वों से बना है, यही तत्व रक्त, श्लेष्मा, पित्त, वायु और कफ का निर्माण भी करते हैं. एक मनुष्य की प्रकृति की अभिव्यक्ति इन्हीं तत्वों की प्रबलता से होती है. इन तत्वों में कोई भी असामान्य परिवर्तन व्यक्ति को अस्वस्थ या रोगग्रस्त कर देता है. ये तत्व पचे हुए अन्नरस से बनते हैं, इसलिए आरोग्य और रोग के उपचार में आहार और पाचन तंत्र को बड़ा महत्व दिया जाता है.

अरवाह (जीवन आत्मा): अरवाह, यह रक्तस्रावों का वायुशील, व्यापक एवं हलका रूप है.

कूब (शारीरिक ऊर्जा): कूब वह ऊर्जा है, जो हमारे शरीर को कार्यक्षम बनाती है. यह एक भौतिक, शारीरिक क्रिया है, जिसे तिब्बती भाषा में 'हवानियाः', ताबिहा कहते हैं. इसका दूसरा नाम नफ़सानिया और तदबीर भी है.

अफ़आल (क्रिया): अफ़आल, शरीर व उसके अवयवों की क्रिया का नाम है.

तबीयत: तबीयत, वह शक्ति है, जो स्वास्थ्य की व्यवस्था को संचालित करती है. यूनानी में इसे 'मिज़ाज़े मौतादिली' (सामान्य रस व कणों का मिश्रण) कहते हैं. इसे नफ़ीस के नाम से भी परिभाषित किया गया है. यह शरीर की कार्यक्षमता और विश्रामावस्था को सम्पादित, संचालित करती है. तबीयत ही वह अनुभूति व शक्ति है, जो भौतिक स्थितियों अथवा शरीर क्रिया विज्ञान (सोज़ेमिज़ाज़) से कार्यान्वित होती है. यही रोगों से लड़ने की भी शक्ति प्रदान करती है.

रोगों का निदान: यूनानी पद्धति में रोगों का पता नब्ज़ (नाड़ी) देख कर लगाया जाता है. 'एवीसिना' ग्रंथ के अनुसार नब्ज़ में दस प्रधान लक्षण होते हैं, जो शरीर की अवस्था की जानकारी देते हैं. इसके अलावा मल-मूत्र और रक्त के थक्कों की चार विभिन्न परतों को जांच कर भी रोगों का पता लगाया जाता है.

दवाखानों में मरीज़ की देह प्रकृति, जैसे उसकी चमड़ी, वर्ण, मांसपेशियां, चर्बी, स्पर्श, काया, आदत, आहार, सहनशीलता आदि अनेक अवस्थाओं और स्थितियों से रोगों की पहचान की जाती है.

रोग प्रतिशोध के तथ्य: यूनानी औषधियां, स्वास्थ्य पर परिस्थितिजन्य और वातावरणीय प्रभाव के अनुसार उपचार में सहायक होती है. इसमें छह प्रकार से उपचार होता है. यूनानी में 'असबाबे सीथा जारू रिथा' (हवा, आहार और तरल पेय), शारीरिक हलचल, भौतिक हलचल, नींद, जागरण, प्रतिरक्षण तथा मलोत्सर्ग द्वारा उपचार होता है.

उपचार: यूनानी उपचार में सबसे पहले शारीरिक अव्यवस्थाओं का आकलन किया जाता है. जैसे, व्यक्ति के रहन-सहन की प्रकृति (तदबीर) का प्रभाव, फिर खुराक या आहार (दवा बिल गिजा) का परहेज़ आदि कराया जाता है. इन सबके बाद यूनानी दवाओं का नम्बर आता हैं. औषधि सेवन कराते समय एक ही सत्व वाली दवाइयां (मुफ़रादत) दी जाती हैं. प्रशमन (कम्पाऊंड) की गई दवाएं बहुत ही जटिल और मिले-जुले रोगों में दी जाती हैं.

दवाओं की प्रकृति की जांच: यूनानी पद्धति में दवाओं की प्रकृति की संकल्पना अति महत्त्व रखती है. किसी भी रोगी को दवा देने से पहले जांच की जाती है कि दी जाने वाली दवाई दस्तावर, नशीली और साइड इफेक्ट वाली न हो.

अतः बिना यूनानी चिकित्सक की सलाह के इनका उपयोग नहीं करना चाहिए.

अमृत वचन

जिन पर धर्मग्रंथ लादा गया, उन्हों[ने] उसे पढ़ा नहीं, वे उस गधे के सम[ान] हैं जो पीठ पर क़िताबें लादे हुए हैं.

हे श्रद्धावानो! ऐसी बात क्यों क[हते] हो, जो करते नहीं.

जिसने धन इकट्ठा किया और उ[से] गिनता रहा, वह इस भ्रम में है कि धन उसे जीवित रखेगा.

जिसने प्राणहानि के बदले या यु[द्ध] छेड़ने के बदले या अन्य कि[सी] कारण से हत्या की, उसने मानो [संपूर्ण] मानव जाति की हत्या कर दी और जिसने किसी प्राणी को बचाया उ[सने] मानो संपूर्ण मानव जाति को जी[वन] प्रदान किया.

- कुर[ान]

संपूर्ण भारत की सर्वप्रिय महिला मासिक पत्रिका







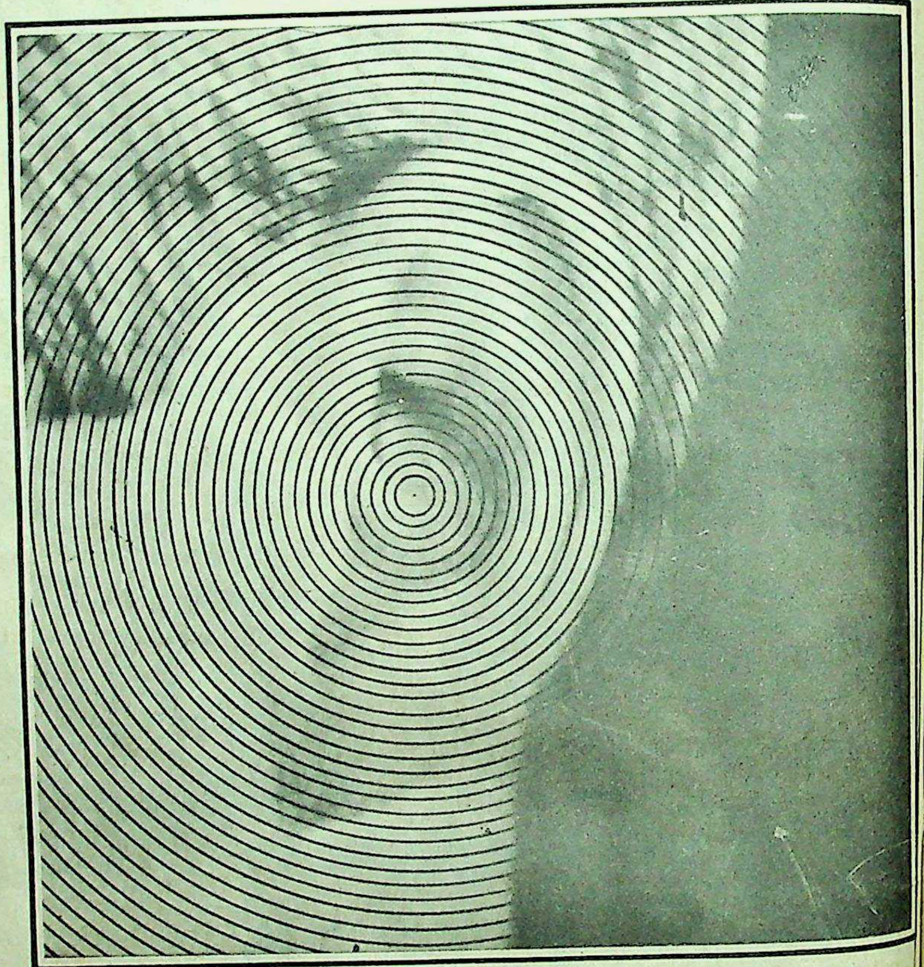
मेरी सहेली

संपादक - हेमा मालिनी

पायोनियर बुक कं. प्रा. लि.
१६० डी.एन.रोड, फोर्ट, बम्बई-४०० ००१.

कर्णनाद- निदान एवं चिकित्सा

– वैद्य मधुकर आ. लहानकर



जब वायु कर्णवाहिनी सिराओं में स्थित होता है, तब उस वायु के आघात से रोगी के कान में अकस्मात अनेक प्रकार के स्वर या शब्द सुनाई देते हैं, इस अवस्था को आयुर्वेद में 'कर्णनाद' कहते हैं.

आचार्य सुश्रुत एवं विदेह के विचार से जब कान की फांक में स्थित वायु प्रतिलोम गति से अर्थात् विमार्गगामी होकर चलता है तब

हमारे शरीर की इन्द्रियों में आंख की तरह ही कान का भी महत्व है. परंतु कई बार कुछ कारणों से हमें कान से अजीब-अजीब से स्वर सुनाई देते हैं, जिससे व्यक्ति परेशान हो जाता है. आयुर्वेद में कान की इस स्थिति को 'कर्णनाद' नाम दिया गया है. इसकी चिकित्सा यदि समय पर की जाए तो यह शीघ्र ठीक भी हो जाता है.

इस प्रतिलोम गति के कारण कर्ण में अनेक प्रकार के स्वर सुनाई देते हैं. ऐसा मालूम पड़ता है कि मानो कान में ढोलक बज रहा हो अथवा शंख बजने जैसी आवाज़ हो रही हो. यही नहीं, भौरों के गुंजार के समान, पक्षी की करकराहट के समान, कौवे की कांव-कांव के समान, सितार के समान, गाने के समान, पढ़ने के समान भी शब्द सुनाई देते हैं. कभी-कभी तो पानी में गिरने के समान, गाड़ियों के चलने के समान अथवा भाप की फुफकार के समान भी स्वर सुनाई पड़ते हैं.

कर्णक्ष्वेडः यह कर्णनाद का ही एक भेद है, किन्तु इन दोनों में अंतर यह है कि कर्णनाद में केवल वायु की विकृति होती है और इसमें सुनाई देने वाले शब्द अनेक प्रकार के होते हैं, अतः कर्णक्ष्वेड में वायु के साथ-साथ पित्त-कफ़-रक्त इनकी भिनिकृति होती है और शब्द बांसुरी के समान होते हैं. इस प्रकार के कर्णनाद में शब्द कभी केवल रोगी को ही सुनने में आते हैं और कई-कई बार यह शब्दनाद औरों को भी सुनाई देता है. ऐसी अलग-अलग स्वरों की अवस्था को आधुनिक शालाक्यविद 'नॉईजेल इन दी ईयर' या टिनिटस (Tinnitus) कहते हैं. जब तक कर्णनाद का अस्मर कर्णयंत्र तक ही सीमित रहता है, तब तक यह नाद सीटी बजने के समान या सिसकारी भरने के समान मालूम पड़ता है.

सिर में होनेवाला नाद मस्तिष्क विकृति का सूचक है. यह मस्तिष्क विकृति कर्ण रोग के कारण भी हो सकती है या अन्य मस्तिष्क गत विकारों के कारण भी हो सकती है. पहले पहल तो यह शब्द उतना स्पष्ट नहीं होता क्योंकि विकृति प्रारंभिक अवस्था में होती है, किन्तु इस ओर ध्यान न देने के कारण यह विकृति फैलती चली जाती है. इसलिए कर्णनाद का विचार करते समय यह जान लेना आवश्यक है कि व्याधि स्थानिक ही है या मस्तिष्क तक फैल गई है. अगर विकृति का असर मस्तिष्क तक पहुंचा हो तो केवल कान की देखभाल से ही काम नहीं चलेगा, बल्कि मस्तिष्कगत विकृति की चिकित्सा का अलग से विचार करना परम आवश्यक है.

कर्णनाद के निदान

आयुर्वेद विधान से यह नाद वायु की विकृति से ही होता है, पर कभी-कभी यह अलग-अलग अवस्थाओं में पाया जाता है. जो कर्णनाद, कर्णशोथ या पाक के बिना होता है उसे आधुनिक शास्त्र में नॉन सुप्युरेटिव (Non Suppurative) कहते हैं और नाद के साथ शोथ या पाक भी हो तो उसे सुप्युरेटिव (Suppurative) कहते हैं. जब कभी रक्त की विकृति होती है तो इस अवस्था में नाद हृदय के स्पंदन के साथ ही मालूम पड़ता है. वात के साथ पित्त भी हो तो वह अस्थियों में प्रवेश कर जाता है. जब नाद कान के भीतरी भाग की विकृति के कारण होता है, तब यह सीटी बजने के समान, सिसकारी भरने के समान या पानी उबलते समय होने वाली आवाज़ के समान होता है. प्रारंभ में रोगी इस नाद के कारण कुछ बेचैन-सा रहता है. उसे नींद तक नहीं आती. किन्तु कुछ ही दिनों में वह इस अवस्था का अभ्यस्त हो जाता है. जब यही नाद मस्तिष्क के कारण या 'नाडी मंडल' में असर पहुंचने के कारण होता हो तो ऐसी अवस्था में रोगी की परेशानी बहुत बढ़ जाती है. वह इस नाद के कारण व्याकुल होने लगता है. ऐसी तीव्र अवस्था में आधुनिक शास्त्र में रोगी के रक्तभार (B.P.) और मूत्र की परीक्षा की जाती है.

जो कर्णनाद दूसरों को सुनाई देता हो उसमें कर्ण की पेशियों का संकोच ही कारण होता है. प्रायः यह संकोच टेन्सर टिम्पैनी (Tensor tympani) और टेन्सर पैलेट (Tensor Palati) नामक पेशियों में होता है. कभी-कभी यह व्याधि कुछ तीव्र औषधि द्रव्यों के उपयोग के उपद्रव स्वरूप भी देखने को मिलती है.

आयुर्वेद के अनुसार

श्रमात् क्षयाद्रूक्षकषायभोजनात्
समिरणः शब्द पथे प्रतिष्ठितः ।
विरिक्तशीर्षस्य च शीतसेविनः
करोति हि क्ष्वेडमतीव कर्णयोः ।

अर्थात् यह व्याधि अतिश्रम, धातुक्षय, रूक्ष तथा कषाय आहार का ज़्यादा और बार-बार सेवन, पानी में तैरना, बहुत बड़ी आवाज़ सुनना, आघात, शल्य, कृमि, कर्णगुथ, जीर्ण प्रतिश्याय आदि ऊर्ध्वजंत्रुगत विकारों के कारण होता है.

कर्णनाद की चिकित्सा

आयुर्वेद में इस व्याधि की प्रधान चिकित्सा उपक्रम है 'कर्णपूरण'. औषधि द्रव्यों से सिद्ध तेल बूंद-बूंद कान में छोड़ना ही कर्णपूरण है. इसके लिए बहुत-सी तेल दवाइयां उपयोग में लाई जाती हैं, जैसे -

अपामार्गक्षार तैल - इसके लिए अपामार्ग के पंचांग को जलाकर राख कर लें, फिर उसमें चौगुना पानी डाल कर उसे ठंडा होने दें. और बाद में तिल के तेल के साथ पका लें. इस तेल का उपयोग रात में सोते समय करना चाहिए.

मधुशुक्तयोग - मिट्टी के बर्तन में १६ तोला मधु, ६४ तोला जाम्बीरी नीबू के फलों का रस और ४ तोला पिपलामूल मिलाकर उसे जमीन के नीचे ३० दिन तक रखने के बाद निकालने पर 'मधुशुक्तयोग' तैयार होता है. इसे सरसों के तेल में पका कर कान में डालना चाहिए.

हिंग्वादि तैल - तिल तेल में हींग, नागरमोथा, देवदारू, सौंफ, सूखी मूली के पत्ते जलाकर उसकी राख, भोजपत्र की राख, सेंधा नमक, बीड नमक, रसवत, नीम्बू का रस, केले की कंद का रस और मधुशुक्त डालकर इस तेल को पका लें (सिद्ध कर लें). इसके उपयोग से कर्णनाद के साथ ही अन्य कर्ण रोग भी ठीक होते हैं. कर्णपूरण के साथ-साथ ही आयुर्वेद में कर्णनाद के लिए 'नस्य' का भी बड़ा महत्व है. इसमें अधिकतर 'बृहण नस्य' लाभकारी होता है. बृहण नस्य के लिए अणुतेल, नारायण तेल, माष तेल, या निर्गुंडी, हींग, देवदारू, भृंगराज, कूष्मांड इन द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घी भी 'नस्य' के लिए उपयोग में लाया जा सकता है. इस चिकित्सा से कर्णनाद में शीघ्र ही लाभ होता है. ●

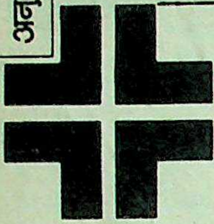
वनस्पतियों से मधुमेह का इलाज

दुनिया में जितने रोगी हैं, उनमें सर्वाधिक रोगी मधुमेह के शिकार हैं. आयुर्वेद में वनस्पतियों के माध्यम से मधुमेह के उपचार का जिक्र हैं. आज आयुर्वेद के सिद्धांतों पर चलते हुए वनस्पतियों से मधुमेह का उपचार करने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है.

खाद्य एवं पोषण विभाग के शोध के अनुसार तुलसी की पत्तियों से मधुमेह पर नियंत्रण पाया सकता है. तुलसी एक बहु आयामी पोधा है तथा अनेक रोगों की चिकित्सा में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है.

मेथीदाना और प्याज मधुमेह को नियंत्रण में रखने के लिए प्रभावशाली है. आठ सप्ताह तक मेथीदाना का सेवन करने से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा काफी कम हो जाती है. इससे रक्त में कोलोस्ट्रोल, ट्रिगनलायसेरा उच्च घनत्व वाले लियोप्रोटीन की मात्रा भी कम होती है. डॉक्टरों ने प्रतिदिन दोपहर व रात्रि के भोजन के पंद्रह मिनट पूर्व १२ से १४ घंटे तक पानी में भिगोए हुए मेथीदाना के सेवन की सिफारिश की हैं. उनका कहना है कि मेथीदाने में ६ प्रतिशत तेल तथा ५० प्रतिशत रेशा होता है. इसका प्रयोग बंबई के नायर अस्पताल में मधुमेह के रोगियों पर किया गया.

औरंगाबाद के डॉक्टर द्वय पी. जी. मोघे और ए. एन. उत्पल ने अपने शोध पत्र में बताया है कि सूखे हुए प्याज़ के चूर्ण का सेवन करने से रक्तशर्करा ८० प्रतिशत कम हो जाती है. उन्होंने दावा किया कि उन्होंने मधुमेह रोगियों पर सात दिन तक परीक्षण करने के बाद ये परिणाम पाए हैं. ●



दर्द, चोट और सूजननाशक औषधि

सलई (शल्लकी) की गोंद ५० ग्राम, मेदासक (मैदा लकड़ी), काली मूसली, अम्बा हल्दी, लाख का बारीक पिसा चूर्ण, एलुआ, भैंसा गुगुल ये छहों द्रव्य घोटें कि लेप जैसा बन जाए. इसे अंदाज़ से दर्द, चोट और सूजन पर लेप कर के बढ़िया रूई चिपका दें. रूई उस पर ऐसी चिपकेगी कि दर्द मिटने पर ही उतरेगी. शर्त यह है कि रूई पर पानी न लगे, अन्यथा लाभ न होगा. यह आयुर्वेदिक प्लास्टर हर प्रकार के दर्द, चोट, सूजन पर अकसीर सिद्ध हुआ है.

जांघ की गांठ के लिए

यह गांठ दायीं या बायीं जांघ के जोड़ पर उठती और बहुत दुःख देती है. रोगी चल-फिर नहीं सकता. तुरन्त उठी हुई जांघ की गांठ पर साइकिल के पंक्चर जोड़ने की डनलप ट्यूब का सोल्यूशन पतंग के बारीक काग़ज़ पर चुपड़ कर चिपका दें. एक ही दिन में गांठ बैठ जाती है.

दाद-खाज व एक्ज़िमा पर आजमाइए

दाद, खाज और बेंवची (एक्ज़िमा) जाय।
अमरबेल और अमरजटा
गांव का ठाकुर, गाय का मट्ठा।
इन चारों को लेप मिलाय
दाद,खाज और छाजन जाय।।

अर्थात् - पीली अमरबेल, बरगद की लाल-लाल कोमल जटा, पंवाड़ के पत्ते और बीज़, गाय के दूध से बनाया हुआ गाढ़ा मट्ठा, चारों को समभाग लें और सिल पर भांग की तरह खूब बारीक पीस लें. इसमें थोड़ा मट्ठा और डाल कर पतला लेप बनाएं. इसे रोज़ दो बार, दाद, खाज और एक्ज़िमा पर लगाते रहें. छाजन को साबुन से न धोएं - पन्द्रह-बीस दिन में शरीर रोगरहित होगा.

खाने की दवा - महामंजिष्ठादि काढ़ा - ३ चम्मच, बैद्यनाथ सुरक्ता ३ चम्मच में पानी ६ चम्मच मिलाकर ऐसी एक-एक मात्रा रोज़ दोनों समय भोजन के बाद पीएं, उक्त रोग नष्ट हो जाएगा.

एक विशेष फोड़ा नाशक योग

यह फोड़ा पीठ के नीचे, जहां रीढ़ की हड्डी (बैक-बोन) समाप्त होती है, और गुदा उनके बीच में होता है, जो बड़ा दुःखदायी होता है. वह बाहर से बड़ा सुर्ख और कड़ा होता है. दर्द, जलन के कारण उठना-बैठना, चलना-फिरना, पाखाना-पेशाब जाना बहुत कठिन हो जाता है. डॉक्टरों के लिए ऑपरेशन के सिवा और कोई विकल्प नहीं है, किन्तु ऑपरेशन के बाद भी पूर्ण सफलता की गारन्टी नहीं होती.

यहां ऐसी औषधि बता रहे हैं जिसे आप आज़मा कर अवश्य देखें. आठ दिन में ही ऐसा फोड़ा अवश्य नष्ट होगा. **प्रयोग**-मरुआ दौन के पत्ते ग्यारह नग, तुलसी के पत्ते सात नग और काली मिर्च पांच दाने, इन सबको पीस कर चार गोली बनाइए. हर तीन घंटे पर एक-एक गोली पानी से निगलते रहें. तीन दिन में ही फोड़े की जगह पिलपिली और मुलायम हो जाएगी और चौथे-पांचवें दिन टट्टी जाते समय लगभग छटाँक भर पीब (पस) मल के साथ निकल जाएगा. आठवें दिन तक फोड़े का अस्तित्व ही मिट जाएगा.

- वैद्य ठाकुर बनवीर सिंह 'चातक'

आधा सीसी का दर्द

प्रायः यह दर्द सिर के आधे भाग में होता है. इसमें पहले सिर घूमता है, आंखों के सामने चिंगारियां-सी उड़ती हैं व मरीज़ का सिर दर्द से फटने लगता है.

नसवार : यह नसवार सिरदर्द, सर्दी-जुकाम, आधा सीसी के दर्द आदि के लिए बहुत लाभकारी है.

बनाने की विधि : १ तोला बालछड़, १ तोला छल-छड़ीला, ६ माशा कश कचरी, ४ नग रीठा इन सबको अलग-अलग पीसकर कपड़े से छान लें और फिर जायफल १ नग और दस नग बादाम गिरी को मिलाकर खूब बारीक पीसकर किसी डिब्बे में सुरक्षित रख लें. सुबह-शाम सेवन करने से आधा सीसी में लाभ होगा.

दिमाग़ की कमज़ोरी

ज्यादा दिमाग़ी काम, खून की कमी, दिल की कमज़ोरी आदि से दिमाग़ कमज़ोर हो जाता है. अतः पहले उचित कारण दूर करें, फिर शक्ति भरे संतुलित आहार खाएं. प्रस्तुत है कुछ नुस्खे जो दिमाग़ को चुस्त बनाते हैं -

स्वादिष्ट चटनी : इसके लगातार इक्कीस दिन के इस्तेमाल से सिरदर्द, दिमाग़ी कमज़ोरी, दिल की कमज़ोरी आदि बीमारियां दूर हो जाती हैं.

सामग्री : बादाम की गिरी ७ नग, इलायची छोटी ४ नग, छुहारा १ नग, बढ़िया मिश्री ५ तोला, गाय का मक्खन ५ तोला.

बनाने की विधि : मगज बादाम और छुहारा को मिट्टी की कोरी मटकी में भिगो दें. सुबह बादामों को छील लें, छुहारे की गुठली को भी अलग कर लें. इलायची के दाने, बादाम, छुहारा तथा मिश्री को बारीक पीस लें और गाय का मक्खन मिला कर रोज़ सुबह चाटें.

– दिलीप कृष्ण

अमृत वचन

- असाधारण एक ऐसा शब्द है जि... तुम किसी भी ऐसी चीज पर चिपक... सकते हो जो घटिया और मामूली... हो. इस तरह प्रतिभा असाधारण है... आध्यात्मिकता और उच्चादर्शों के अनुसार जीवन बिताने का प्रयास भी असाधारण है. स्त्रियों में भौतिक... शुचिता की प्रवृत्ति असाधारण नहीं है, यह काफी सामान्य है और इसे... एक बहुत ऊंचा नारी प्रारूप आ ज... है.

- मन विचार और बोध का आधार है. हृदय प्रेम का आधार है और प्राण कामना का - लेकिन यह बात मानसिक प्रेम के अस्तित्व को कैसे झुठला सकती है? जैसे मन पर भावनाओं अथवा प्राण के संवेदन... का आक्रमण हो सकता है, उसी तरह हृदय पर भी मन का अधिकार हो सकता है. यह भी मानसिक... शक्तियों द्वारा परिचालित हो सकता है.

· श्री अरवि...

विशेष रोग

आमवात की सफल चिकित्सा

- वैद्य अशोक भाई तलाविया भारद्वाज (आयुर्वेदाचार्य)

शीतऋतु में ख़ासतौर से वायु के अनेक रोग पैदा होते हैं. उसमें आमवात का वातव्याधि से कोई संबंध नहीं है. स्पष्टता ज़रूरी है कि संहिता ग्रंथों में वात रोग वर्णन में आमवात का वर्णन नहीं मिलता . कुल मिला कर ८० प्रकार की जा वातव्याधियां हैं, उसमें आमवात का समावेश नहीं है. आमवात एक स्वतंत्र व्याधि है. आमवात में अपक्व आहार रस (आम) का महत्व होता है. इस अपक्व आहार रस को वायु चलायमान करता है, तब आमजन्य शूल पैदा होता है, जिसे आमवात कहते हैं.

आमवात के कारण व निदान

विरुद्ध आहार लेने से जैसे - दूध-दही, दूध-फल एक साथ लेना विरोधी हैं. मंदाग्नि में, भोजन करने से, व्यायाम न करने से, ठंडे पेय पीने से, अत्यधिक दही खाने से, खटाई खाने से, बर्फ की बनी चीजें जैसे आइस्क्रीम व पेय लेने से, ठंडा व बासी आहार लेने से शीतऋतु में, वर्षाऋतु से, रात्रि जागरण से और दिवास्वप्न से, अधिक मात्रा में मिष्ठान्न लेने आदि अनेक कारणों से आमवात उत्पन्न हो जाता है. पर आमवात में अपक्व आहार रस का ही संबंध होता है.

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसंधि प्रवेशकौ ।
स्तब्धश्च कुरुते गात्रमामवात:स उच्यते ।।
अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वर: ।
अपाक: शूनताङ्गानागागवायस्ज लक्षणम् ।।

अर्थात् एक साथ अपक्व आहार रस (आम) और वायु दोष कुपित होकर कटि संधि में प्रवेश कर वेदना करता है तथा शरीर को स्तब्ध कर देता है. अंगमर्द, अरुचि, तृष्णाधिक्य, आलस्य, गौरव, ज्वर, अपाक (अपचन) एवं अंगों में शून्यता आदि लक्षण होते हैं.

आमवात, यह शीतऋतु में होता है. आमवात होने का मुख्य कारण है अपक्व रस (आम), जिसके कारण शरीर की संधि में वेदना उत्पन्न होती है. इस रोग की चिकित्सा से संबंधित कारण, लक्षण व उपचार प्रस्तुत है.

दोष भेद के अनुसार रोग लक्षण

वाताधिक आमवात. १) बड़े जोड़ में होता है. २) पीड़ा भ्रमणशील रहती है. ३) बाल्यावस्था में प्रारंभ होता है. ४) सैलीसिलेट या गुग्गुल से विशेष लाभ होता है.

जब आमवात होता है, तब हाथ, पैर, सिर, एड़ी की गांठ, कमर, जांघ और सीना की संधि स्थानों में वेदना युक्त शोथ होता है. शरीर के जिस प्रदेश में दुष्ट आम लग जाता है, वहां सूई चुभने जैसी वेदना होती है. जठराग्नि मंद होती है. मुख में से लारस्राव होता है. अरुचि एवं शरीर गौरव होता है. उत्साह-हीनता, वैरस्य, दाह तथा बहुमूत्रता लक्षण मिलते हैं. पेट कठोर हो जाता है. शूल होता है तथा निद्राल्पता होती है. तृषाधिक्य, छर्दि, भ्रम, मूर्च्छा, हृदय में वेदना, विबंध, शरीर में जड़ता व आनाह जैसे विशेष लक्षण दिखाई देते हैं.

आमवात में पित्त की अधिकता हो तो दाह होती है और त्वचा रक्तवर्ण की हो जाती है. वाताधिक्य में शूल होता है तथा कफाधिक्य में खुजली तथा गौरवता होती है.

विशेष विश्लेषण

शुरू में जो कारण दर्शाए गए हैं, उन्हीं कारणों से जठराग्नि मंद होकर अपक्व आहार रस (आम रस) पैदा होकर वायु उसको कफ स्थान में ले जाता है. अतः अपक्व आहार (आम) धमनी में प्रवेश करता है, इस तरह वात, पित्त व कफ़ तीनों दोषों से दूषित होकर स्रोतस में स्थान ले लेता है और रसवह एवं रक्तवह स्रोतस में जाकर यही आम शिराओं में स्रोतावरोध कर देता है. वातादि दोषों से अनेक वर्ण वाला चिकना और पिच्छायुक्त आम अग्नि को मंद कर हृदय में पहुंचकर उनको गौरवता प्रदान करता है. इसे दारुण आमवात कहते हैं. जहां भी आमरस स्थान संश्रय करता है, वहां वायुदोष भी साथ में होता है और दोनों मिलकर कष्टमय शूल पैदा करते हैं.

ऐसा भी देख गया है कि जब बालक को कफ ज्वर हो जाता है, तब बालक में प्रकृति के कारण, जठराग्नि मंद होती है. तब संधि स्थानों व हृदय में वेदना होती है, फिर भी संधि स्थानगत आम पड़ा रहता है, उसे

आमवातिक ज्वर कहते हैं और अंग्रेजी में 'ह्यूमेटिक फीवर' कहा जाता है. उस अवस्था में हृदय के वाल्व में शोथ उत्पन्न होता है, अतः

हृदय में शूल होता है. बड़ी उम्र वालों में ऐसे लक्षण मिलते हैं. आम जहां भी जाएगा वहां शोथ के साथ सूई चुभने जैसी वेदना होती है. ठीक उसी तरह हाथ-पैर के जोड़ों में पहले सूजन व वेदना शुरू होती है बाद में शरीर के अन्य जोड़ों में आम जाता है तो वहां भी यही लक्षण उत्पन्न होते हैं.

साध्यासाध्यता

एक दोषज आमवात साध्य, द्विदोषज कष्टसाध्य और त्रिदोषज (सन्निपातज) शोथयुक्त आमवात घोर कष्टसाध्य होते हैं.

चिकित्सा परामर्श

लंघनम् स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहनश्च बस्तश्चायमारूते ।।

लंघन - आम पाचन हेतु सर्व प्रथम लंघन (उपवास) कराना ज़रूरी है. लंघन में सिर्फ़ सोंठयुक्त उष्ण जलपान हितकारी है.

स्वेदनम - रूक्ष स्वेद का तात्पर्य है, उसमें बालुका स्वेद सर्वोत्तम है.

दीपन तथा तिक्त पदार्थों का सेवन हितकारी माना गया है तथा **विरेचन** तथा **बस्ति** कर्म करना चाहिए.

◦ आमवात रोगी को अधिक प्यास लगने पर पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चित्रक व सोंठ डालकर उबाला व छाना हुआ जल देवें.

◦ सुआ, वच, सोंठ, गोखरू, वरुण त्वक्, पुनर्नवा, देवदारू, कचूरा और गोरखमुंडी समभाग लेकर चूर्ण बना कर १-१ माशा तीन बार उष्ण जल से लें.

◦ चित्रक, कटुकी, पाग, इन्द्रयव समभाग में, अतिविषा दो भाग, गुडूची, देवदारु, वच, मुस्ता व हरड़ समभाग में लेकर चूर्ण बनाकर देने से दारुण आमवात का नाश होता है.

◦ सोंठ, हरड़ और गिलोय के क्वाथ में गुगुल मिला कर देने से कष्टसाध्य आमवात साध्य होता है.

इसके अलावा बाज़ार में उपलब्ध महारास्नादि क्वाथ, पिप्पल्यादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ, सिंहनाद गुग्गुल, महावात विध्वंस रस, वृहत् वात चिंतामणि रस, शृंगभस्म, बंग भस्म आदि आमवात में लाभ पहुंचाते हैं. इनका सेवन कुशल वैद्य की सलाह से करें.

अमृत वचन

भूख

भूख की ज्वाला उच्च से उच्च और कोमल से कोमल हृदय के व्यक्तियों को भी नीच से नीच और कठोर से कठोर कार्य करने के लिए विवश कर देती है.

भविष्य - फल

प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह कितना ही सुख-सुविधा सम्पन्न हो, अपना भविष्य फल जानने की उत्कट इच्छा रहती है, क्योंकि मानव मन सदैव अप्राप्य और अगोचर के लिए उत्कण्ठित रहता है.

- डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली

यश

धन तो काल पाकर क्षय हो जाता है, पर यशरूपी धन अक्षय है. इसको काल भी नष्ट नहीं कर सकता.

मृत्यु

मृत्यु एक सरिता है जिसमें श्रम से कातर जीव नहाकर। फिर नूतन धारण करता है कायारूपी वस्त्र बहाकर ।।

मूर्ख

मूर्ख छः बातों से जाना जा सकता है - अकारण क्रोध, बिना लाभ के वार्तालाप, बिना विकास के बदलना, बिना आधार पूछताछ, अपरिचित व्यक्ति का विश्वास करना और शत्रु को मित्र समझना.

लघुकथा

वज्र-सा कठोर, फूल-सा कोमल

चाणक्य अपने समय का लौहपुरुष था. राजद्रोहियों का दमन करने में उसे दया नहीं आती थी. शासन में वह वज्र की तरह कठोर और हृदयहीन होकर भी अपने व्यक्तिगत जीवन में फूल की तरह कोमल, सरस एवं सुहृदय था.

हां, तो चाणक्य दिमाग़ का ही नहीं दिल का भी बड़ा था. इस संबंध में उसके जीवन की एक घटना उल्लेखनीय है. चाणक्य जब बड़ा हुआ तो एक दिन उसकी मां उसका मुंह देखकर रोने लगी. बेटे ने इसका कारण पूछा तो वह बोली - 'बेटा, तुम्हारे भाग्य में राज्यछत्र धारण करना लिखा है; तुम थोड़ा ही प्रयत्न करके किसी बड़े राज्य के स्वामी बन जाओगे, इसी को सोच कर मैं रो रही हूं.'

चाणक्य ने हंसते हुए पूछा - 'मां, इसमें रोने की कौन-सी बात है? तुम्हारे लिए वह बड़े हर्ष की बात होनी चाहिए. सच-सच बताओ, तुम क्यों रोती हो?' मां ने कहा - 'बेटा, मैं अपने दुर्भाग्य पर रो रही हूं. अधिकार पाकर लोग अपने सगे-संबंधियों तक की उपेक्षा करने लगते हैं, तुम भी राजा होते ही भूल जाओगे, 'राजा, जोगी काके मीत!' उस समय तुम मेरे प्रेम को ठुकरा दोगे, मुझे पूछोगे भी नहीं, मेरा लाल मेरे हाथों से निकल जायेगा. यही सोचकर रोती हूं.'

चाणक्य ने फिर पूछा - 'मां, तुमने कैसे जाना कि मेरे भाग्य में राजा होना लिखा है?'

माता ने कहा - 'बेटा, तुम्हारे सामने के दांतों से पता चलता है कि तुम राज-वैभव का भोग करोगे. सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऐसे दांतों वाला मनुष्य राजा होता है.'

चाणक्य ने उसी समय एक पत्थर से अपने दोनों दांतों को तोड़ डाला और उन्हें फेंककर मां से कहा - 'मां, अब तुम निश्चिंत हो जाओ अब मैं राजा नहीं बन सकता; इसलिए सदा तुम्हारे पास ही रहूंगा.'

बेटे का यह अद्भुत कर्म देखकर मां चकित हो गई. वह आंचल से उसका रक्त पोंछती हुई बोली - 'चाणक्य, यह तूने क्या किया?'

चाणक्य ने सहज भाव से कहा - 'मां, तुम्हारी ममता के आगे मैं संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु को भी तुच्छ मानता हूं. मेरी नज़र में यह दांतों से व राज्य से अधिक अमूल्य है.'

माता ने भाव-विह्वल हो पुत्र को गले लगा लिया.

इस कथा से यह सीख मिलती है कि अपने से बड़ों का प्यार-दुलार पाने का हक छोटों को होता है, पर अपनी उद्दंडता से उस प्यार-दुलार को गंवाया भी जा सकता है.

योग चिकित्सा

शीतऋतु में लाभदायी व्यायाम

- डॉ. श्यामसुंदर पोदार

सुखसञ्ज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च ।

आयुर्वेद के अनुसार आरोग्य ही सुख है और विकार या व्याधि ही दुःख का पर्याय है. स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिए शीतकाल सर्वाधिक उपयुक्त समय है. सामान्यतया हेमंत और शिशिर ऋतु को मिला कर यह काल बनता है.

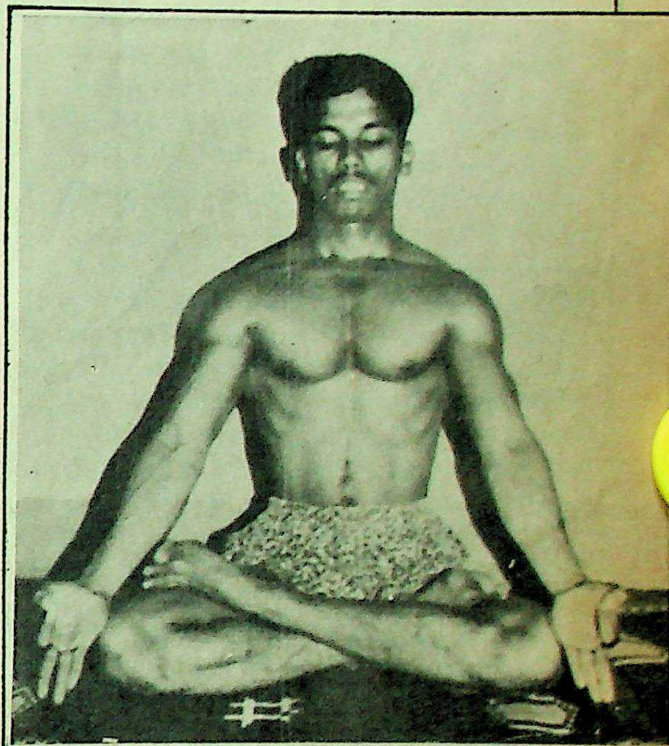
इस काल में प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य रक्षण के लिए प्रयास करना चाहिए. विशेष रूप से इस काल में स्वास्थ्यरक्षणार्थ व्यायाम का अत्यधिक महत्त्व है.

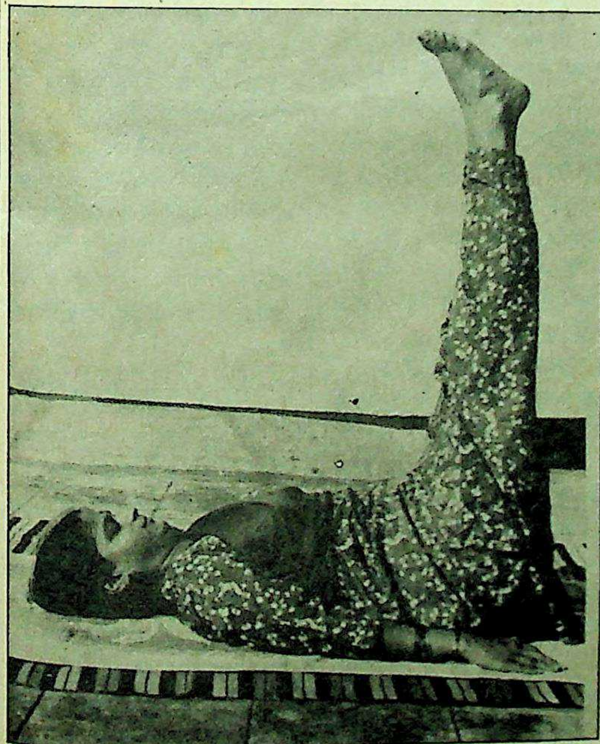
शरीरायासजनकं कर्म व्यायामसंज्ञितम् ।

जिस कार्य से शरीर में थकान का अनुभव हो उसे 'व्यायाम' कहते हैं. 'दिनचर्या' अध्याय में प्रतिदिन करने योग्य कर्मों में व्यायाम का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है.

व्यायाम से लाभ

लाघवं कर्मसामर्थ्यं
दीप्तोदग्निर्मेदसः क्षयः ।
विभक्तघनगात्रत्वं
व्यायामादुपजायते ।।





व्यायाम करने से शरीर मे हल्कापन, कार्यक्षमता में वृद्धि, पाचनक्रिया में सुधार और स्थूलता (मोटापे) का नाश होता है. व्यायाम से त्वचा की कांति बढ़ती है. शरीर के विभिन्न अंग अलग-अलग संयत तथा सुविकसित दृष्टिगोचर होते हैं. व्यायाम करने से आलस्य तो दूर होता ही है, शरीर का स्वास्थ्य भी बना रहता है. व्यायाम अभ्यंग (तेल मालिश) के पश्चात् करना चाहिए. ऐसा करने से शरीर में तेल अच्छी तरह प्रविष्ट हो जाता है. व्यायाम से शरीर के विविध अंग-प्रत्यंग सक्रिय रहते हैं और शरीर में बल की वृद्धि होती है. व्यायाम से श्वसन-क्रिया में भी सुधार होता है, जिसके कारण रक्त को अधिक मात्रा में प्राणवायु की प्राप्ति होती है. पाचन शक्ति में सुधार से मलावरोध दूर हो जाता है और भूख अच्छी लगती है. संक्षेप में शरीर के प्रत्येक अंग में व्यायाम से नवजीवन का संचार हो कर शरीर में नयी स्फूर्ति का निर्माण होता है.

व्यायाम के प्रकार

व्यायाम कई प्रकार के होते हैं. शीतऋतु में शीर्षासन, प्राणायाम, सर्वांगासन, धनुरासन, मत्स्यासन, सुप्त वज्रासन, पश्चिमोत्तानासन आदि आसन तो कर ही सकते हैं, साथ ही कुछ खेल भी हैं जो शरीर में स्फूर्ति व चेतना पैदा करते हैं. वे खेल हैं - फुटबॉल, वॉलीबाल, टेनिस, कबड्डी, तैरना, नाव खेना, साइकिल चलाना आदि.

शेषांश पृष्ठ ८८ पर

कमज़ोर याददाश्त - कारण क्या है?

- डॉ. अनामिका प्रकाश

स्मरण शक्ति की कमी की शिकायत वृद्ध ही नहीं युवा भी करते पाए जाते हैं. इस कमी से वे परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने से लेकर व्यावसायिक तथा दैनिक कामकाज़ों में बड़ी अड़चन अनुभव करते हैं. बहुधा इसे कोई रोग मान लिया जाता है और उसके निवारण के लिए तरह-तरह की औषधियों, उपचारों का सिलसिला चलता है.

उपचार करने से पूर्व विस्मृति का कारण जानने की आवश्यकता है, साथ ही यह समझना भी उपयोगी है कि मस्तिष्क में स्मृति को संग्रह करने वाली, सुरक्षित रखने वाली संरचना कैसी हैं. मोटर की मशीन और उसके चलाने की विधि ठीक तरह समझ ली जाए तो उसके संचालन में जो व्यवधान आते हैं, उनमें से अधिकांश का निवारण सहज ही हो जाता है.

स्मरण शक्ति प्रायः अपने स्थान पर यथावत् रहती है. बचपन के प्रारम्भिक और वृद्धावस्था के अन्तिम दिनों को छोड़कर शेष प्रौढ़ परिपक्वावस्था में स्मृति का स्तर प्रायः समान ही रहता है. हमें स्मरण रखने की प्रक्रिया में अन्तर पड़ जाने से उसकी मात्रा घट-बढ़ जाने का भ्रम होने लगता है. यदि स्मरण रखने की पद्धति का ज्ञान हो और स्मरण तन्त्र की संरचना को ध्यान में रखते हुए तदनुरूप घटनाओं को स्मरण रखने की विधि व्यवस्था बना ली जाए, तो फिर स्मृति की उतनी शिकायत न रहे जैसी आमतौर से रहती है. यों हर मनुष्य में दूसरों की अपेक्षा कुछ न कुछ तो न्यूनाधिकता हर बात में रहती है.

मस्तिष्क पर उम्र का प्रभाव

समझा जाता है कि बचपन में स्मरण शक्ति तीव्र होती है और पीछे आयु बढ़ने के साथ-साथ मन्द होती जाती है, पर वस्तुतः बात ऐसी है नहीं. छोटी आयु में मस्तिष्क के ऊपर बोझ कम रहता है, विस्मरणीय प्रश्न कम रहते हैं, फलतः बोझ कम रहता है और जो याद रखना है वह आसानी से निपट जाता है. किन्तु बड़े होने के साथ-साथ कार्य क्षेत्र बढ़ता जाता है, साथ ही स्मरण रखने, निष्कर्ष निकालने एवं निर्णय करने का भार भी, ऐसी दशा में बहुत काम करते रहने पर भी कुछ में अधूरापन रह जाना अप्रत्याशित नहीं. जो कुछ सही रीति से पूरा हो गया उसकी ओर तो ध्यान दिया नहीं गया, पर जो कमी रह गई उसी को मस्तिष्क की कमज़ोरी या स्मरण शक्ति की कमी मान लिया गया. ऐसे ही प्रसंगों को लेकर दिमाग़ी शक्ति घट जाने की बात सोच ली जाती है और चिन्ता होने लगती है, जबकि वस्तुतः वैसा कुछ होता नहीं.

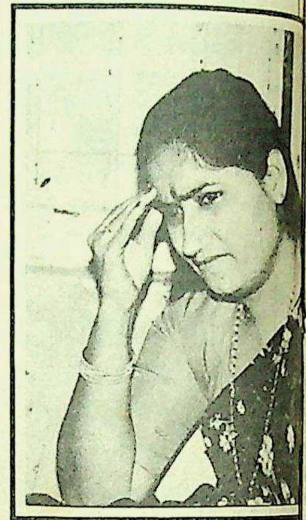
विस्मृति का कारण - उपेक्षा

विस्मृति का बहुत बड़ा कारण है - उपेक्षा. जिस वस्तु, बात या सन्दर्भ में अन्यमनस्कता होती है, वहां कम ध्यान दिया जाता है और स्मृति की परतों पर अंकन बहुत ही हलका-धुंधला हो पाता है. उसके मिटने में भी देर नहीं लगती. इसके विपरीत जिन प्रसंगों में अपनी दिलचस्पी होती है, उन्हें ध्यानपूर्वक सुना, देखा और समझा जाता है. फलतः उनके मानस चित्र अधिक स्पष्ट बनते हैं और स्मृति पटल पर उनका अंकन इतना गहरा हो जाता है कि आवश्यकतानुसार उसे फिर पूर्ववत् देखा जा सके. यों समय बीतने के साथ-साथ सभी स्मृतियां धुंधली पड़ती जाती हैं, फिर भी जिन्हें मनोयोगपूर्वक अपनाया गया है उनकी रेखाएं अमिट न सही चिरस्थायी तो बनी ही रहती हैं.

स्कूली छात्रों को पाठ याद न होने की शिकायत रहती है, पर वे ही किसी देखी हुई फिल्म का पूरा कथानक भली प्रकार सुना देते हैं साथ ही उसके गीत भी याद रखते हैं. दादी अपनी पोती का नाम बार-बार भूल जाती है पर अपने पति या ससुर की श्राद्ध तिथि नहीं भूलती. व्रत-उपवास की तिथियां भी विस्मरण नहीं होतीं. युवक अपने पिता को पत्र लिखने की बात भूल जाते हैं, पर प्रेमिका को नियमित रूप से लिखते रहते हैं. सामान्य प्रसंगों में तारीख़ें याद नहीं रहतीं, पर वेतन पाने की तारीख़ें भूलने में कदाचित ही किसी से कभी भूल होती होगी.

भुलक्कड़पन वस्तुतः कोई रोग नहीं वरन् आदत है, जो दिलचस्पी की कमी वाले क्षेत्रों को ही प्रभावित करती है.

भगवान ने स्मृति की तरह विस्मृति को भी एक वरदान की तरह सृजन किया है. उपयोगी बातें याद रखें और आवश्यकता के समय सहायक बनें यह उत्तम है. इस प्रकार यह भी ठीक है कि द्वेष और शोक-संताप की कटु स्मृतियां धुंधली होते-होते विस्मरण स्तर तक जा पहुंचें. क्रोध,



हानि, वियोग आदि की स्थिति में मन जितना उद्विग्न होता है, यदि उतना ही संताप बना रहे तो जीवन कठिन हो जाए. एक बार जिनके साथ झगड़ा हो जाए तो फिर कभी सद्भाव बन ही न सके. मस्तिष्क में दो करोड़ ग्रन्थों के समा सकने जितना स्मृति-क्षेत्र है पर क्षण-क्षण में जो विविध जानकारियां मस्तिष्क को मिलती रहती हैं उनका विस्तार तो स्मृति-क्षेत्र की तुलना में बहुत अधिक है. ऐसी दशा में पुरानी को हटाकर ही नए के लिए जगह मिल सकती है.

मानसिक व शारीरिक स्थितियां

उनींदे-झपकी लेते हुए मनुष्य किसी सम्भाषण को कानों से सुनते हुए भी उसका बहुत थोड़ा अंश समझ पाते हैं. दत्तचित्त होकर सावधानी एवं दिलचस्पी के साथ कोई बात सुनी जाए, तो वह न केवल भली प्रकार समझ में ही आ पाएगी, वरन् चिरकाल तक स्मरण भी रहेगी और छाप भी छोड़ेगी. समझाने के ढंग या स्तर की जितनी महत्ता है,

उससे भी अधिक सुनने वालों की दिलचस्पी और सावधानी पर ज्ञानवर्धन की सफलता बहुत कुछ निर्भर रहती है.

शरीर किस स्थिति में है इसका भी मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है. आराम कुर्सी पर शिथिल शरीरावस्था में पड़े-पड़े अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह सोचा जा सकता है. कल्पना की उड़ान उस स्थिति में अधिक दूर तक और सही दिशा में चलती है. पढ़ने के लिए मुस्तैदी से बैठना उत्तम है. चलते-चलते जो कुछ सोचा-पढ़ा जायेगा वह सब आधा-अधूरा ही रहेगा.

स्मृति और मस्तिष्क का तारतम्य समझने के लिए हमें यह भी जानना चाहिए कि ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से मस्तिष्क को अनेक प्रकार की जानकारियां हर घड़ी प्राप्त होती रहती हैं. इसमें अधिकांश वे होती हैं,जो स्थिति का परिचय देकर अपना काम समाप्त कर देती हैं. उस जानकारी का यदि कुछ सीधा प्रभाव अपने ऊपर नहीं पड़ता है और उसकी कुछ प्रतिक्रिया नहीं होती है तो वह विस्मृति में जा पड़ती है और सदा के लिए समाप्त हो जाती है. कुछ जानकारियां ऐसी हैं, जिनसे निपटना है तो शरीर के अन्य कल-पुर्जों को वैसा आदेश मिलता है और तदनुसार हलचल होती है. जैसे पैर में मच्छर काटे तो मस्तिष्क उसके निवारण के लिए हाथ को आज्ञा देता है.

टेप रिकॉर्डर पर आवाज़ें अंकित कर ली जाती हैं. इसके बाद वे चुप हो जाती हैं. आवश्यकतानुसार उसे उत्तेजित करके फिर से सुना जा सकता है. मस्तिष्क एक प्रकार का टेप रिकॉर्डर है. उसमें असंख्य टेप की हुई घटनाएं स्मृतियों के रूप में अंकित हो जाती हैं. इसके बाद वे विस्मृत हो जाती हैं किन्तु फिर जब कभी आवश्यकता पड़े, उन्हें फिर से उभारा जा सकता है. यह स्मृतियां ध्वनि और चित्र एवं सम्वेदनाओं के त्रिविध सम्मिश्रणों के रूप में होती हैं.

बच्चे, जवान, बूढ़े सभी को भूलने की शिकायत होती है. अक्सर लोग इसका कारण बढ़ती उम्र ही मानते हैं परंतु इसके अनेक कारण हैं. आइए देखें लोगों की याददाश्त कम क्यों हो जाती है?

यहां एक बात और भी जानने योग्य है कि स्मृति अंकन के समय मस्तिष्क की क्या स्थिति थी इस बात पर भी यह निर्भर करता है कि कितनी गहराई तक स्मरण को नोट किया गया है. उथले अंकन गहरे अंकनों की तुलना में जल्दी ही मिट जाते हैं. कुछ मस्तिष्कों की जन्मजात बनावट ही बहुत भोंडी होती है. वे कामचलाऊ स्मृतियां ही नोट कर सकते हैं. कई बार ऐसा भी होता है कि किसी शारीरिक कष्ट या मानसिक उद्वेग में मानसिक चेतना बुरी तरह उलझी रहती है या उपेक्षा-उदासीनता का दौर होता है. ऐसी दशा में जो जानकारियां मिल रही हैं वे या तो नोट हो ही नहीं पातीं या फिर वे इतनी उथली होती हैं कि दुबारा फिर उन्हें आसानी से उभार सकना सम्भव नहीं रहता.

मस्तिष्क यों शारीरिक अवयव माना जाता है जीव चेतना का केन्द्र संस्थान वही है. जड़ और चेतन का संगम इसी को माना जाता है. शरीर न रहने पर भी मस्तिष्क का सार-तत्व जीव चेतना के साथ लिपटा रहता है.

मस्तिष्क का पोषक-ऑक्सीजन

मस्तिष्कीय कोशिकाओं को भी अपना काम सही रीति से करते रहने के लिए ऑक्सीजन का ईंधन चाहिए. बचपन में नई मशीन यह ईंधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध और वितरण करती है, तब मस्तिष्क को भी यह खुराक पर्याप्त मात्रा में मिलती है और बच्चों की स्मरण-शक्ति तीव्र रहती है. वे अपने पाठ आसानी से याद कर लेते हैं.

जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, फलतः ऑक्सीजन का उत्पादन - वितरण घटता जाता है. अवयवों में जो कोमलता बचपन अथवा किशोरावस्था में होती है, वह आयु बढ़ने के साथ घटती जाती है. ऑक्सीजन प्रवाह के मस्तिष्कीय कोशिकाओ तक पूरी तरह पहुंचने में भी व्यवधान उत्पन्न होता है. फलतः आयु के साथ-साथ स्मरण-शक्ति घटती है, बुद्धिमत्ता समस्त स्मृतियों के मन्थन का निष्कर्ष है.

इतने पर भी देखा गया है कि बूढ़ों को भी अपने बचपन या युवावस्था की वे स्मृतियां बिलकुल तरोताज़ा रहती हैं, जिन्हें वे महत्वपूर्ण समझते रहते हैं. देखा गया है कि वे अपनी उन स्मृतियों को आये दिन किसी न किसी को सुनाते रहते हैं. उन्हें वह सब कुछ इस प्रकार याद रहता है, मानो अभी कल-परसों की बात हो. ऐसा इसलिए भी होता है कि नई स्मृतियां समुचित ऑक्सीजन के अभाव में न तो मस्तिष्कीय कोशिकाओं पर पूरी तरह अंकित हो पाती हैं और न उनमें स्थायित्व होता है. ऐसी दशा में नये स्मरणों की भीड़-भाड़ रहती नहीं और वे पुरानी अनुभूतियां निर्द्वन्द होकर पूरे मस्तिष्क पर छाई रहती हैं.

मस्तिष्क एक भले ही हो, वस्तुत. वह असंख्य घटकों में विभाजित है. वे पृथक-पृथक होते हुए भी परस्पर एक-दूसरे के साथ अति घनिष्टता पूर्वक बंधे हुए हैं और भरपूर सहयोग देते हैं. यह सहयोग जिस मस्तिष्क में जितना प्रखर होगा, उसमें स्मरण शक्ति उतनी ही तीव्र पाई जायगी. जहां इस सहयोग में जितना अनुत्साह होगा वहां मन्दबुद्धि एवं विस्मृति की शिकायत उसी अनुपात से बनी रहेगी.

मस्तिष्क और ध्यान

ध्यान धारणा में यह विशेषता है कि मस्तिष्कीय विद्युत का बिखराव रुकता है और उस तन्त्र में ऐसी उत्तेजना उत्पन्न होती है,जिसमें तन्त्रिकाओं का मध्यवर्ती सहयोग प्रखर हो उठे और स्मरण शक्ति का अभाव अनुभव न हो. इसके लिए ध्यान अभ्यासों में से जो भी अपने लिए उपयुक्त हो उसे चुन लेना चाहिए. एकाग्रता बढ़ाने वाले सभी अभ्यास मनोबल बढ़ाते हैं और स्मरण रखने की क्षमता को सतेज़ कर देते हैं.

कुछ उपाय स्मृति तेज़ करने के

स्मृति-विस्मृति की चर्चा करने की अपेक्षा जागृति और सुषुप्ति के आधार पर विवेचन करना अधिक युक्तियुक्त है. असावधानी, उपेक्षा और अनुत्साह की मनःस्थिति रहेगी तो विस्मृति की शिकायत बनी ही रहेगी. जहां ऐसी कठिनाई अनुभव होती हो, वहां मानसिक पोषण देने वाले आहार का परामर्श देना कोई विसंगति नहीं है, पर अधिक उपयुक्त यह है कि चिन्तन तन्त्र पर छाई हुई शिथिलता को दूर किया जाए.

हा, हा, हा

अपने मानसिक इलाज के दौरान रोगी ने डॉक्टर से कहा, "आजकल मैं अपना सबसे बढ़िया नाटक, 'हेमलेट' लिख रहा हूं. आप सुनना चाहेंगे?"

"हैमलेट तो शैक्सपियर का लिखा नाटक है," डॉक्टर ने कहा.

"अच्छा! कैसी अज़ीब बात है! यही बात मुझे उस समय भी कही गई थी. जब मै 'ओथैलो' नाम का नाटक लिख रहा था."

पोलियो और एक्युप्रेशर थेरेपी

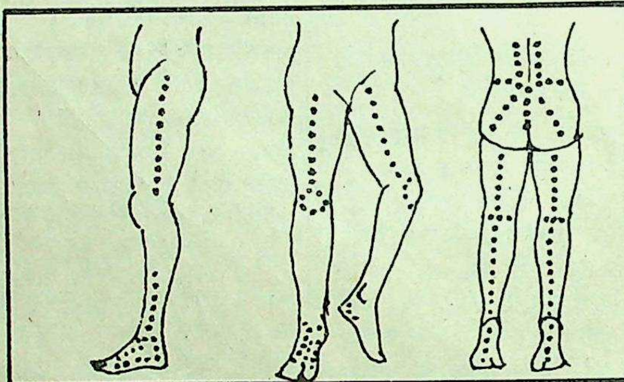
आधुनिक विज्ञान के अनुसार, पोलियो की बीमारी "वायरस" (जीवाणु) के कारण होती है. शरीर की क्रियाएं मस्तिष्क में स्थित विशिष्ट प्रकार के ज्ञानतंतु (Motor Nerves) के जरिए होती है. वायरस के कारण उसको नुकसान पहुंचने से, कमर के हिस्से में ज्ञानतंतु का केंद्र भी प्रभावित होता है और परिणाम स्वरूप पैरों को हिलाने की अपनी शक्ति खो बैठता है. तब रोगी अपना पैर उठा या हिला नहीं पाता.

सरकारी टीके जो पोलियो से बच्चों की रक्षा करते हैं, आज भी कुछ लोगों तक नहीं पहुंच पाए हैं. अतः ऐसे बच्चे पोलियो के जीवाणु के संसर्ग में हाथ या पैर चला सकने में असमर्थ हो जाते हैं. पर एक्युप्रेशर थेरेपी द्वारा इन बच्चों को नई ज़िंदगी दी जा सकती है.

सामान्यतः बच्चा दो, तीन साल की उम्र में ही इस बीमारी का शिकार हो जाता है, लेकिन कभी-कभी बड़ी उम्र में भी यह बीमारी हो सकती है.

एलोपैथी में इस बीमारी से बचने के लिए दवा ढूंढ निकाली गई है, जो जन्म के बाद बच्चे को जल्दी ही, समय-समय पर दी जाती है. इससे बच्चा पोलियो से बच सकता है. किंतु ऐसा भी देखा गया है कि दवा लेने के बावजूद भी पोलियो की बीमारी हो जाती है, लेकिन इस तरह के अपवाद हज़ारों में एक या दो ही पाये जाते हैं.

किंतु, दुर्भाग्यवश पोलियो की बीमारी हो ही गयी हो तो क्या किया जाये? एलोपैथी में दवा के अलावा फ़िजियोथेरेपी से और कभी-कभी छोटी-बड़ी शल्य क्रिया से भी रोगी को ठीक करने की कोशिश की जाती है. परंतु इसमें सफलता की मात्रा कम पाई गई है. कुछ समय के बाद पैर के स्नायु दुर्बल और पतले होते जाते हैं.



पोलियो और एक्यूप्रेशर थेरेपी

ऐसी परिस्थिति में, एक्युप्रेशर पद्धति काफ़ी हद तक कामयाब साबित हुई है — खासकर, कम उम्र के बच्चों के लिए.

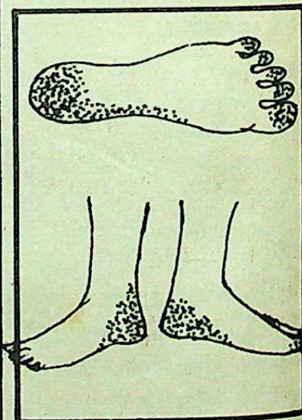
एक्युप्रेशर थेरेपी में शरीर पर निश्चित किए हुए बिंदुओं पर, मध्यम मात्रा में, अपने हाथ के अंगूठे से या अंगुलियों द्वारा, पांच या सात सेकेंड तक, प्रत्येक बिंदु पर दबाव डाला जाता है. इस प्रक्रिया को निश्चित बिंदुओं पर एक बार के इलाज में, तीन या चार बार दोहराना चाहिए.

साथ में दिए गये चार्ट का अध्ययन कीजिए. चार्ट नं. १ में, छोटे-छोटे बिंदुओं से निर्देशित, पेट के हिस्सों पर एक्युप्रेशर की ट्रीटमेंट दीजिए. इससे मस्तिष्क और कमर में स्थित ज्ञानतंतु के केंद्रों को ताक़त मिलेगी.

चार्ट नं. २ में दर्शाये गये पैर के और कमर के विभिन्न क्षेत्रों के बिंदुओं पर दबाव दीजिए. इससे पैर के स्नायुओं की ताक़त बढ़ेगी. इस प्रकार के इलाज दोनों पैरों पर प्रतिदिन एक या दो बार करने से, कुछ हफ़्तों के बाद फ़ायदा महसूस होगा. इसमें विश्वास और धैर्य की आवश्यकता होती है, पर नुकसान कुछ नहीं होता.

पोलियो पर कुछ और उपाय

पतले हो गए पैर के स्नायुओं को पुष्ट करने के लिए गोमूत्र का भी एक प्रयोग है. सबेरे एक बर्तन में ताज़ा गोमूत्र और थोड़ा गोबर एकत्र कीजिए. दोनों को अच्छी तरह मिला लीजिए. इसके बाद इसको छान लिया जाये, जिससे तरल पदार्थ अलग हो जायेगा और जो गाढ़ा हिस्सा है वह इकट्ठा हो जायेगा. अब तरल पदार्थ को, रोग से प्रभावित शरीर के हिस्से पर हल्के हाथ से मलिए और सुबह सूर्य की हल्की धूप में दस मिनट सेंक लें. इसके बाद बचे हुए गाढ़े पदार्थ का लेप करके, दस मिनट तक और धूप सेंकें. इसके बाद स्वच्छ जल से उस हिस्से को भली-भांति धो डालिए और तिल या नारियल के तेल से



मालिश करें, ताकि त्वचा में जलन न हो. चार या पांच हफ़्ते तक इस प्रयोग को करने के बाद पैर को पुष्ट होते देखा गया है. धूप सुबह की हल्की ही होनी चाहिए और उसके लिए समय की मर्यादा रोगी को ज़्यादा असुविधा महसूस न हो इतना निश्चित करना आवश्यक है.

- डॉ. कांतिभाई सी. श्रॉफ

मानव जीवन पर राशियों का प्रभाव

(१ अक्तूबर से ३१ दिसंबर १९९१ तक)

– वी.एल. खांडेकर (ज्योतिषाचार्य)

मानव शरीर ब्रह्मांड का सूक्ष्म स्वरूप है. जैसे नर्वस् सिस्टम (Nervous System) से शारीरिक क्रियायें प्रतिपादित होती हैं, वैसे ही नक्षत्र एवं ग्रहों की किरणें ब्रह्मांड को संचालित करती हैं. जिस प्रकार आज की कर्मशक्ति शारीरिक क्रियाओं द्वारा भाग्य को प्रभावित करती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मांड में विचरण करने वाले ग्रह-नक्षत्र राशियों को प्रभावित करते हैं और राशि का संबंध मनुष्य के मन, बुद्धि और कर्म से जुड़ा हुआ है. अतः राशियों का प्रभाव मानव जीवन पर पड़ना स्वाभाविक है.

ज्योतिष शास्त्र में पूरे ब्रह्मांड को १२ भागों में बांटा गया है और ३० बिंदुओं की एक राशि मान ली गई. इस प्रकार बारह राशियों में पूरा आकाश मंडल समाहित है. अगर ध्यानपूर्वक देखें तो आकाश मंडल में छोटी-छोटी असंख्य निहारिकाएं दृष्टिगोचर होंगी और ये निहारिकाओं के पुंज एक विशिष्ट आकृति लिए हुए हैं. उन आकृतियों के आधार पर ही उनका नाम मेषादि राशि रखा गया है.

राशियां दो प्रकार की जानी जाती हैं. प्रथम जन्मराशि. जन्म के समय चंद्र जिस राशि में हो उसे जन्मराशि कहते हैं. द्वितीय नाम राशि. प्रसिद्ध नाम से जो व्यक्ति जिस प्रथम अक्षर से पुकारा जाता है, उससे उसकी नाम राशि जानी जाती है. इसी आधार पर आप अपनी राशि निर्धारित कर उसका प्रभाव और फल जान सकते हैं. प्रस्तुत अंक में १ अक्तूबर १९९१ से ३१ दिसंबर १९९१ तक व्यक्ति विशेष पर राशियों का क्या प्रभाव पड़ेगा, उसका विवरण नीचे दिया जा रहा है.

मेष (चू चे चो ला ली लू ले लो अ)

अश्विनी, भरणी और कृतिका नक्षत्र के प्रथम चरण में जन्म लेने वाले व्यक्तियों की राशि मेष होती है. अश्विनी नक्षत्र के पूर्वार्द्ध में जन्में जातक आलासी एवं उत्तरार्द्ध में जन्म लेने वाले भाग्यशाली और दीर्घायु होते हैं. भरणी नक्षत्र के बालक चरण के अनुसार क्रमशः त्यागी, धनी, कुकर्मी, दरिद्र और कृतिका के प्रथम चरण वाले तेजस्वी होते हैं. मेष राशि का स्वामी मंगल ग्रह है.

मेष राशि के रजतपाद का पंचम गुरु समस्याओं को दूर करता है तथा भौतिक सुख, नौकरी, विद्या, बुद्धि-विकास आदि में सहायक है. स्वर्णपाद में शनि जीवन में सफलता लाने वाला और ताम्रपाद का राहु-केतु शुभ फल देने वाला है. लेकिन नवम् राहु कर्ज की चिंता एवं बीच-बीच में कार्य में रोड़े अटकाता है.

मेष राशि वालों के लिए पहली अक्तूबर से ३१ दिसंबर ९१ का समय मिला-जुला फल देने वाला है. अक्तूबर महीना व्यापार की दृष्टि से उत्तम, योजनाएं फलीभूत होंगी. बीच में विरोधी तत्व परेशान कर सकते हैं. मानसिक क्लेश व अशांति से स्वास्थ्य मंद होगा. सिरदर्द, मूर्च्छा, आधासीसी आदि विकार हो सकते हैं. १५ अक्तूबर के बाद सप्तम सूर्य विपरीत फल देगा.

नवंबर मास में अष्टम सूर्य का प्रभाव आपके स्वास्थ्य और जमा पूंजी को प्रभावित करेगा. ज्वर, अपघात, जख़्म या अग्नि से कष्ट हो सकता है. दिसंबर का उत्तरार्द्ध बहुत अनुकूल है. स्वास्थ्य में सुधार होगा. कुछ तनावों के बावजूद दिसंबर मास अच्छा रहेगा.

संक्षेप में अक्तूबर महीने की १, २, ४, १०, १४, २०, २३ व २८ तारीखें, नवंबर में १, ६, १०, १६, २०, २५, २८, २९ व ३० तारीखें तथा दिसंबर की १, २, ३, ७, ११, १७, २२, २५ से ३१ तारीखें किसी भी कार्य के लिए उत्तम हैं. शेष नेष्ट हैं.

वृष (ई ऊ ए ओ वा वी वू वे वो)

कृतिका के अंतिम तीन चरण, रोहिणी और मृगशिरा के प्रथम दो चरण वृष राशि होती है. कृतिका नक्षत्र में जन्मे बालक शास्त्रज्ञ, ऐश्वर्यवान, पुत्रवान एवं दीर्घायु होते हैं. रोहिणी के प्रथम चरण के बालक सौभाग्यशाली, द्वितीय चरण के पीड़ायुक्त, तृतीय चरण के भयभीत और चतुर्थ चरण के सत्यवादी होते हैं. मृगशिरा के प्रथम चरण में जन्मे जातक राजा के समान सर्वगुण संपन्न होते हैं परंतु द्वितीय चरण के पीड़ायुक्त होते हैं. बृहस्पति कष्टप्रद है. इससे पारिवारिक समस्याएं एवं शत्रु बाधा उत्पन्न होती है. परंतु रजतपाद का नवम् शनि अशुभ फलों को नियंत्रित करेगा. संपत्ति की प्राप्ति एवं बौद्धिक विकास होगा. अष्टम राहु दुर्घटना, अपव्यय एवं अस्वस्थता लाता है. परंतु रजतपाद में होने से इसके कष्ट कुछ कम होते हैं. वृष का स्वामी शुक्र है.

अक्तूबर मास पर्याप्त सुधारों की अपेक्षा रखता है. संतान के लिए कष्ट, ऊपर के अंगों में विकार – जैसे सिरदर्द, दांतों में मवाद आना, गला, जिह्वा आदि में तकलीफ़. नवंबर माह विशेष खुशियों से युक्त होगा. स्वास्थ्य की दृष्टि से श्वास रोग होने की संभावना है. दिसंबर में स्वास्थ्य में सुधार के साथ-साथ कारोबार अच्छा चलेगा.

वृष राशि वालों के लिए अक्तूबर माह की १, ३, ७, १२, १६, २२, २६, ३० तारीखें, नवंबर माह की ३, ९, १२, १८, २२, २७, ३० तारीखें और दिसंबर माह की ६, १०, १६, १९, २४, २८, ३० तारीखें हर तरह से उत्तम हैं.

मिथुन (का की कू घ ङ छ के को हा)

मृगशिरा नक्षत्र का अंतिम दो चरण, आर्द्रा तथा पुनर्वसु के प्रथम तीन चरण में पैदा होने वाले जातकों की मिथुन राशि होती है. मृगशिरा के तृतीय चरण के बालक ऐश्वर्य भोगी एवं चतुर्थ चरण के धन-संपदा से

संपन्न होते हैं. आर्द्रा नक्षत्र में जन्म लेने वाले क्रमशः खर्चीले, दरिद्र, अल्पायु तथा क्लेशयुक्त होते हैं. पुनर्वसु के बालक प्रथम चरण के सुखी, द्वितीय के विद्वान एवं तृतीय चरण में पैदा होने वाले रोगयुक्त होते हैं. मिथुन का स्वामी बुध है.

इस समय इस राशि पर शनि की अढ़ैया चल रही है, परंतु शनि के लौहपाद में होने के कारण अधिक कष्टप्रद नहीं है. इसके फलस्वरूप शारीरिक कष्ट, धनोपार्जन में बाधा एवं मानसिक व्यग्रता होती है. लौहपाद में होने से सिर, कमर, पैर में पीड़ा, आघात, व्रण, चर्मरोग की संभावना रहती है. केतु ग्रह भी कष्टदायक है.

अक्तूबर मास पारिवारिक सुख एवं अज्ञात स्रोतों से धन लाभ का सूचक है. सुकार्यों का फल भी तत्काल मिलेगा. स्वास्थ्य की दृष्टि से कफ़ विकार होने की संभावना है.

नवंबर मास संतान पक्ष से चिंता अथवा जीवन साथी को कष्ट दे सकता है. आजीविकाहीन लोगों को इस मास नई आजीविका मिल सकती है. श्वास रोग होने की संभावना है.

दिसंबर मास में शुरुआत कुछ अप्रिय रहेगी परंतु उत्तरार्द्ध में युवाओं को पदोन्नति के अवसर प्राप्त होंगे. शारीरिक क्लेश भी हो सकता है.

अक्तूबर में १ से ५, ९, १५, १९, २४, २८ तारीखें, नवंबर में २, ५, ११, १५, २१, २४, २९ तारीखें तथा दिसंबर में २, ८, १२, १८, २१, २६, ३० व ३१ तारीखें शुभ हैं. बाकी तारीखें नेष्ट हैं.

कर्क (ही हू हे हो डा डी डू डे डो)

पुनर्वसु का अंतिम चरण, पुष्य एवं आश्लेषा नक्षत्र में जन्म लेने वाले बालकों की राशि कर्क होती है. पुनर्वसु के चौथे चरण के बालक मृदुभाषी, पुष्य नक्षत्र में जन्म लेने वाले क्रमशः दीर्घायु, क्लेशवाले, भोगी व बुद्धिमान होते हैं और आश्लेषा के जातक प्रथम चरण वाले संतानहीन, द्वितीय चरण वाले नौकरीपेशा वाले, तृतीय चरण के रोग से कष्ट पाने वाले और चतुर्थ चरण वाले सौभाग्यशाली होते हैं. आश्लेषा के गण्डान्तों में पैदा होने वाले अल्पायु होते हैं. कर्क का स्वामी चंद्र ग्रह है.

बृहस्पति स्वर्णपाद में होने से कभी अचानक सफलता तो कभी धनलाभ संभव है. शनि सप्तम ताम्रपाद में है, अतः मान-सम्मान में वृद्धि, पारिवारिक कलह, रोग बाधा एवं धन की कमी संभव है. परंतु ताम्रपाद में होने से नौकरी-व्यापार में लाभ एवं पदोन्नति हो सकती है.

अक्तूबर का पूर्वार्द्ध कार्यसिद्धि में सहयोग करने वाला होगा. पारिवारिक सुख बढ़ेगा. कफ से कष्ट, अपचन, पीलिया, अग्निमांद्य आदि विकारों से शरीर को कष्ट हो सकता है.

नवंबर मास का संपूर्ण समय उदासीनता से व्यतीत होगा, परंतु शिक्षा के क्षेत्र में सफलता मिलेगी. यकृत विकार, कमज़ोरी, फोड़ा-फुंसी आदि का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ सकता है.

दिसंबर मास का पूर्वार्द्ध सामान्य गुजरेगा. स्वास्थ्य चिंता, मानसिक असंतुलन तथा प्रियजनों में कलह का वातावरण खिन्नता पैदा करेगा.

अक्तूबर मास की २, ८, ११, १७, २१, २६, ३० तारीखें, नवंबर की ४, ७, १४, १७, २३, २६ तारीखें तथा दिसंबर महीने के १, ५, ११, १५, २०, २४ व २८ तारीखें शुभ हैं.

सिंह (मा मी मू मे मो टा टी टू टे)

मघा, पूर्वा फाल्गुनी तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र का प्रथम चरण सिंह राशि होती है. मघा नक्षत्र के प्रथम चरण के बाल संतानहीन, द्वितीय के पुत्रवान, तृतीय के भयंकर रोग से ग्रसित व चतुर्थ चरण वाले विद्वान होते हैं. पूर्वा फाल्गुनी के प्रथम चरण में जन्म लेने वाले सभी तरह से सामर्थ्यवान, द्वितीय वाले धर्मपरायण, तृतीय चरण वाले राजा के समान सर्वप्रभुतासंपन्न, चतुर्थ वाले क्रूर एवं अल्पायु होते हैं और उ. फाल्गुनी के प्रथम चरण वाले विद्वान होते हैं.

सिंह राशि का स्वामी सूर्य है और इसके स्वर्णपाद में स्थित बृहस्पति संपत्तिदायक है. गुरु सिंह राशि में ११ अगस्त से आ गया है. इसके कारण विद्या की प्राप्ति श्रम से होगी और स्वास्थ्य में बाधा आएगी. स्वर्णपाद का पंचम राहु एवं ११वां केतु भूमि, भवन, वाहन से अच्छे व्यवसाय का विस्तार एवं राजकीय सुविधा देता है. परंतु विद्या और संतान के क्षेत्र में बाधा उत्पन्न होती है.

अक्तूबर मास का पूर्वार्द्ध कुछ अप्रिय और अशांति कारक होगा. धनहानि भी संभव है. परंतु उत्तरार्ध में रचनात्मक कार्यों से लाभ के अवसर प्रबल होंगे.

नवंबर में सुख-सौभाग्य की सफलता तथा अच्छे कार्यों का सुपरिणाम स्पष्ट होगा. किसी नए क्षेत्र में मान-सम्मान और प्रतिष्ठा मिलेगी. हृदय विकार या पीठ दर्द से व्यथित हो सकते हैं.

दिसंबर मास शारीरिक, मानसिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से अनुकूल है. समय पर विचारे हुए कार्यों के सिद्ध हो जाने पर हर्ष होगा. मुख्यतः यह समय सिंह राशि की महिलाओं के लिए उपलब्धि का सूचक है. मंगल एवं गुरु के अशुभ गोचर को दूर करने के लिए 'सूर्य यंत्र' अथवा 'कुबेर यंत्र' की पूजा करें अथवा पुखराज धारण करें.

अक्तूबर महीने की ४, १०, १४, २०, २३, २८ तारीखें, नवंबर की १, ६, १०, १६, २० से २५ व २८ से ३० तारीखें तथा दिसंबर की १ से ४, ७ से १३, १७ से २२ व २५ से ३१ तारीखें उत्तम फलदायक हैं.

कन्या (टो पा पी पू ष ण ठ पे पो)

कन्या राशि के उत्तरा फाल्गुनी के द्वितीय चरण वाले जातक राजा सदृश पद वाले तृतीय चरण वाले हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करनेवाले अंतिम चरण के पुण्यात्मा व धर्मात्मा होते हैं. हस्त नक्षत्र के बालक बहादुर, विवादी, धनधान्य से संपन्न और श्रीयुक्त होते हैं. चित्रा के प्रथम चरण वाले व्यक्ति पीड़ायुक्त एवं द्वितीय के चित्रकार होते हैं.

कन्या राशि के व्यक्तियों को बृहस्पति ११ अगस्त के बाद से ही कष्टप्रद स्थिति में है, जिसके कारण मतभेद उत्पन्न होते हैं. उद्योग-व्यवसाय में हानि एवं पारिवारिक क्लेश होते हैं. स्वर्णपाद का पंचम शनि वायु-पित्त संबंधी रोग पैदा करता है तथा विघ्न-बाधाओं से होकर गुजरना पड़ता है. ताम्रपाद का चतुर्थ राहु धन-यश की हानि करता है, स्वजन वियोग, विवाद में वृद्धि होती है परंतु ताम्रपाद में होने से कष्ट कुछ कम होते हैं.

अक्तूबर मास प्रतिकूल और अनुकूल ग्रहों का मिश्रित फल देगा. आंव, विषमज्वर व पेट-दर्द की संभावना है. खर्च भी अधिक होगा.

नवंबर मास दुश्चिंताओं को दूर करेगा. परंतु इस दौरान बारहवां गुरु कुछ खर्च बढ़ा सकता है. गैस, कालरा, डायरिया आदि रोग विकार होने की संभावना है.

दिसंबर शुभ संदेश का परिचायक है. उत्तरार्द्ध में घर-मकान-आवास में परिवर्तन संभव है. डिसेंट्री व अल्सर रोग हो सकता है.

अक्तूबर की १, ७, १६ से २२, २५ व ३० तारीखें, नवंबर की ३ से ८, १२, १८, २२ से २७ तथा ३० तारीखें और दिसंबर की ६, १० से १६, १९, २४ तथा २८ से ३१ तारीखें किसी कार्य के आरंभ करने के लिए उत्तम हैं.

तुला (रा री रू रे रो ता ती तू ते)

चित्रा के अंतिम दो चरण, स्वाती

तथा विशाखा नक्षत्र के प्रथम तीन चरण तुला राशि होती है. तुला राशि वाले जातक नक्षत्र चरण के अनुसार क्रमशः परस्त्रीगामी, विद्वान, समाज विरोधी, अल्पायु, धर्मात्मा, उच्चपद वाले, कूटनीतिज्ञ, शास्त्रज्ञ और विवादी होते हैं. तुला राशि का स्वामी शुक्र है.

तुला राशि में शनि की अढ़ैया चल रही है. लौहपाद का चतुर्थ शनि स्थानांतरण कराता है तथा संघर्षमय समय होता है. पत्नी से मतभेद, कमर-दर्द, दुर्घटना की संभावना बनती है. लौहपाद का दशम गुरु स्त्री व संतान की दृष्टि से कष्टप्रद है. परंतु अक्तूबर के उत्तरार्द्ध में बृहस्पति स्वर्णपाद का है जो सभी दृष्टियों से शुभ है. रजतपाद में तीसरा राहु साहस और शक्ति प्रदान करता है परंतु नौवां केतु कष्ट, परीक्षा में विफलता और न्यायालय की परेशानी पैदा करता है.

अक्तूबर माह में आमदनी और खर्च बराबर रहेगा. यह माह कुछ विशेष अवस्थाओं में ही अच्छा साबित होगा. कमर-दर्द, मूत्राशय विकार एवं चर्मरोग की संभावना है.

नवंबर में मात्र बृहस्पति का गोचर फलदायी होगा. धन प्राप्ति की संभावना है. शारीरिक कष्ट एवं कफ दोष रहेगा.

दिसंबर का पूर्वार्द्ध ही कुछ असुविधाजनक रहेगा. कामकाज की अधिकता से शारीरिक कष्ट हो सकता है.

शुभ तारीखें निम्न प्रकार हैं – अक्तूबर में १ से ५, ९ से १५, १९ से २४ व २८ से ३१, नवंबर में ५ से ११, १५ से २१, २४ से २९ तथा दिसंबर में २ से ८, १२ से १८, २१ से २६ व २९ से ३१ तारीखें उत्तम फल देने वाली हैं.

वृश्चिक (तो ना नी नू ने नो या यी यू)

विशाखा का अंतिम चरण, अनुराधा व ज्येष्ठा नक्षत्र वृश्चिक राशि होती है. इन नक्षत्रों में जन्म लेने वाले बालक दीर्घायु, तेजस्वी, धर्मात्मा, व्यभिचारी, क्रूर, भोगी, विद्वान अथवा संपत्तिवान होते हैं.

ताम्रपाद में बृहस्पति होने से अधिकारियों से मतभेद होता है. स्त्री व संतान से कष्ट, वाहन सुख प्राप्त होता है. स्वर्णपाद के तृतीय शनि से वायु-पित्त विकार, भाई-बांधवों से कलह, शारीरिक-मानसिक कष्ट, नौकरी-व्यवसाय में मध्यम सफलता होती है. लौहपाद का दूसरा राहु एवं अष्टम् केतु कष्टप्रद है.

अक्तूबर मास पर्याप्त सुधारों की अपेक्षा रखता है. आर्थिक लाभ तथा विरोधी परिस्थितियां समाप्त होंगी. उदर विकार व बवासीर की संभावना है.

नवंबर विशेष खुशियों से युक्त होगा. वातरोग, जननेंद्रिय विकार तथा दिसंबर का पूर्वार्द्ध अकर्मण्यता की स्थिति लायेगा. नवंबर में हुई व्याधियों से इस माह भी परेशानी रहेगी.

अक्तूबर माह की २ से ८, ११ से १७, २१ से २६ तारीखें, नवंबर की १ से ४, ७ से १४, १७ से २३, २६ से ३० तारीखें तथा दिसंबर महीने की ५ से २०, २३ से २८ तारीखें शुभ हैं.

धनु (ये यो भा भी भू धा फा ढा भे)

मूल, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा का प्रथम चरण धनु राशि है. मूल नक्षत्र के प्रथम चरण में पैदा होने वाले जातक भोग-विलास वाले, द्वितीय चरण के त्यागी, तृतीय के मित्रता करने वाले एवं चतुर्थ चरण वाले उच्च अधिकारी होते हैं. पूर्वाषाढ़ा के प्रथम चरण वाले यशस्वी, द्वितीय चरण के अपने अधिकारियों के प्रिय, तृतीय के विवादी व चतुर्थ के उच्च राजनायिक तथा उत्तराषाढ़ा के प्रशासक होते हैं. धनु राशि का स्वामी गुरु है.

नवम बृहस्पति उत्तम है. कार्य में सफलता मिलती है. शनि की साढ़ेसाती चल रही है लेकिन ताम्रपाद में होने से नौकरी-व्यापार में सफलता, स्थानांतरण, अनावश्यक खर्च संभव है. राहु धनु राशि पर है. ताम्रपाद में होने से कुप्रभाव कम है. शारीरिक कष्ट, संतान पक्ष से चिंता, मतिभ्रम एवं सहयोग का अभाव हो सकता है.

अक्तूबर मास विशेष प्रकार की परिस्थितियों से ओतप्रोत है. मकान, जायदाद व सामाजिक सुयश में वृद्धि होगी. कफ विकार से शारीरिक अस्वस्थता रहेगी.

नवंबर में धन,रत्न, वस्त्राभूषण अथवा बहुमूल्य वस्तुओं का लाभ होगा. स्वास्थ्य की दृष्टि से पैर के तलुओं का विकार हो सकता है.

दिसंबर महीने का पूर्वार्द्ध अपव्यय और अपमान की स्थिति में रखेगा. साढ़ेसाती की विकटता को खत्म करने के लिए लोहे का छल्ला धारण करना, काले वस्त्रों का दान अथवा 'शनि यंत्र', 'महामृत्युंजय मंत्र' का जप-पूजन हितकर होगा.

अक्तूबर में ५ से १०, १३ से २०, २३ से २८ तारीखें, नवंबर में १ से ६, १० से १६, २० से २५, २८ से ३० तारीखें तथा दिसंबर माह की १ से ३, ७ से १३, १७ से २२ व २५ से ३१ तारीखें शुभ हैं.

मकर (भो जा जी खी खू खे खो गा गी)

उत्तराषाढ़ा के अंतिम तीन चरण, श्रवण तथा धनिष्ठा के प्रथम दो चरण मकर राशि होती है. उत्तराषाढ़ा में पैदा होने वाले बच्चे विरोधी, स्वाभिमानी व धर्मात्मा होते हैं. श्रवण के जातक यशस्वी, गुणी, विद्वान तथा धर्मपरायण व धनिष्ठा नक्षत्र के दीर्घायु होते हैं. अष्टम बृहस्पति लौहपाद में होने से अच्छा फल नहीं मिलता है. इससे रोग, पारिवारिक कलह, आर्थिक हानि संभव है. शनि की साढ़ेसाती चल रही है. रजत पाद में होने से स्त्री व संतान को क्लेश, संक्रामक रोगों का भय, मानसिक परेशानी एवं विफलता का सामना करना पड़ सकता है. स्वर्णपाद के राहु से मध्यम फल मिलता है. उदर रोग, सिर-पैर व हृदय विकार, ऋणग्रस्तता संभव है. छठा केतु परेशानियों को दूर करने में सहायक होगा.

मकर राशि वालों के लिए अक्तूबर मास श्रेष्ठ कहा जा सकता है. मास के उत्तरार्द्ध में राज्य स्थान का सूर्य सामाजिक क्षेत्र में ख्याति बढ़ायेगा एवं सभी मनोरथ पूर्ण होंगे.

नवंबर में मंगल कार्य का योग है. वायु विकार की संभावना है.

दिसंबर पूर्वार्द्ध तक गोचर बलशाली है. धन व यश की प्राप्ति एवं संतान कष्ट होंगे.

अक्तूबर माह की १, ३, ७ से १२, १६, २२, २५ से ३० तारीखें, नवंबर की ३, ९, १२ से १८, २२, २७, ३० तथा दिसंबर की १ से ६, १० से १६, १९ से २४ व २७ से ३१ तारीखें उत्तम हैं.

कुंभ (गु गे गो सा सी सू से सो दा)

धनिष्ठा के अंतिम दो चरण, पूर्वाभाद्रपद तथा शतभिषा के प्रथम तीन चरण कुंभ राशि होती है. धनिष्ठा के तृतीय चरण के बालक डरपोक, तथा चतुर्थ चरण के सुंदर पत्नी वाले होते हैं. शतभिषा में जन्म लेने वाले बालक मधुरभाषी, धनवान, सुखी पारिवारिक जीवन वाले होते हैं. पूर्वाभाद्रपद में पैदा होने वाले बलवान, समाज विरोधी और विद्वान होते हैं. कुम्भ का स्वामी शनि है.

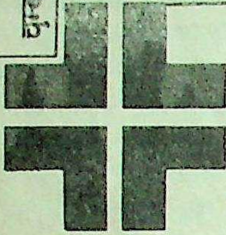
कुम्भ राशि में शनि की साढ़ेसाती चल रही है. धन का अपव्यय, स्वजन सुख, अनावश्यक भ्रमण, मानसिक कष्ट, व्यापार में सफलता प्राप्त होती है. सप्तम बृहस्पति मध्यमकारक है. रजत पाद का ११ वां राहु उन्नति और सफलतादायक है. परंतु पंचम केतु यदाकदा अशुभ फल दिखाता है. पारिवारिक कष्ट और मानसिक पीड़ा संभव है.

अक्तूबर का पूर्वार्द्ध कुछ चिंताएं बढ़ा सकता है. द्रव्यनाश, गुप्तरोग, पीड़ा, शोथ विकार, वात एवं नेत्ररोग संभव है. उत्तरार्द्ध में सुकार्यों से धनवृद्धि होगी.

शेषांश पृष्ठ ८८ पर

चुंबक चिकित्सा

श्वास नली शोथ की चिकित्सा



श्वास नली शोथ, श्वास नली में संक्रमण के कारण होता है. तीव्र श्वास नली शोथ ठंडी हवा, रसायन पदार्थ, धूल या अन्य उत्तेजक पदार्थों के कारण होता है. श्वास नली शोथ शीत ज्वर, खसरा, काली खांसी, तपेदिक, निमोनिया आदि के कारण भी हो सकता है.

श्वास नली शोथ के कारण

तीव्र श्वास नली शोथ में ज्वर भी तेज़ हो सकता है. शुरू में खांसने पर कफ बहुत कम व परेशानी से निकलता है. कुछ समय बाद रोगी के खांसने पर कफ आसानी से निकलने लगता है. रोगी यह शिकायत भी करता है कि सीने में सांस लेते समय घरघराहट की आवाज़ होती है, ऐसा कफ के कारण ही होता है. श्वास नली में कफ़ का जमाव होने के कारण फेफड़ों को पर्याप्त वायु की पूर्ति नहीं होती. कभी-कभी लगातार खांसी आने से रोगी का चेहरा नीला पड़ जाता है, इसी कारण श्वास नली शोथ के रोगी दुबले और कमज़ोर होते हैं. श्वास नली में ज़्यादा सूजन होने से तेज़ बुखार, श्वास लेने में कष्ट और भूख कम लगती है. इससे तपेदिक होने की संभावना भी रहती है.

यह लक्षण तीन सप्ताह के बाद भी दिखाई दे (बुखार एक सप्ताह में सामान्य हो जाए) तो इन लक्षणों को देखते ही चिकित्सा तुरंत शुरू करें. ऐसा न करने पर रोग पुराना हो कर अस्थमा में परिवर्तित हो सकता है.

बार-बार ब्रॉन्काइटिस का दौरा पड़ने पर स्थिति बिगड़ सकती है और श्वास लेने में पहले से अधिक कष्ट हो सकता है, अंतः इसकी चिकित्सा शुरू में ही करनी चाहिए.

चुंबकीय चिकित्सा

श्वास नली शोथ की चिकित्सा के लिए ३ बात का ध्यान रखते हैं.

(क) चुंबकीय ध्रुव को शरीर से छुवाना.

(ख) चुंबकीय जल का सेवन.

(ग) ऐसी होमियोपैथिक औषधियां, जो चुंबकीय प्रभाव से युक्त हों (जैसे गोलियां, दूध-शक्कर में चुंबक का प्रभाव हो) का सेवन.

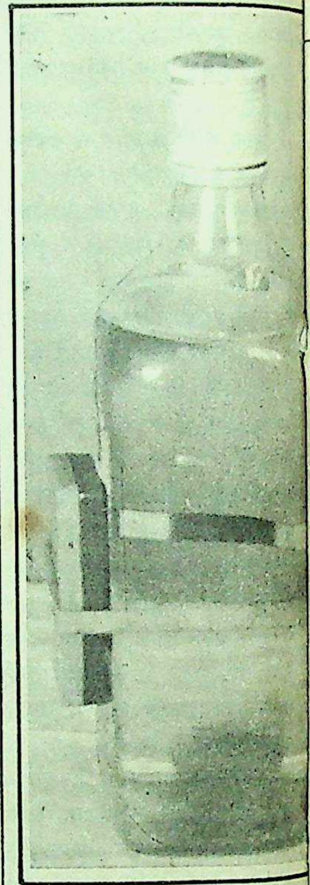
चुंबकीय पोल से संबंधित निर्देश

कुछ चिकित्सकीय प्रयोग के चुंबकों में पोल का चिह्न ग़लत होता है, जिसका ध्यान चुंबक चिकित्सक को रखना चाहिए. विश्वव्यापी पद्धति से जहां चुंबक में नॉर्थ पोल (N) पृथ्वी की स्थिति को दर्शाता है वहीं साउथ पोल (S) दक्षिणी स्थिति को दर्शाता है, अतः ज़्यादा शक्तिशाली चुंबक का सावधानी से इस्तेमाल करना चाहिए. वस्तुतः चुंबक चिकित्सा किसी कुशल डॉक्टर की देखरेख में ही करनी चाहिए, जिससे लाभ और रोग की स्थिति का अंदाज़ा समय-समय पर होता रहेगा. श्वास नली शोथ में चुंबक के दक्षिणी ध्रुव का इस्तेमाल करना चाहिए.

चुंबकीय जल - रोगी को दक्षिणी व उत्तरी दोनों चुंबकीय पोल से निर्मित पानी पीना चाहिए या फिर दक्षिणी ध्रुव से निर्मित पानी भी पी सकते हैं. परंतु यह सलाह चिकित्सक रोगी को देखने के बाद ही निर्धारित करके दे सकता है.

होमियोपैथिक औषधियों में अमोनियम कार्ब, अर्सेनिका, एल्बम, बसीलिनम, एंटीमोनियम टार्ट, हेपर सल्फ, इपेकाक और काली बाइक्रोमियम में से एक को सुबह-शाम एक या दो गोली लें. रोगी को ठंडे वातावरण और ठंडे खाद्य-पदार्थों से बचाना चाहिए. धूम्रपान छोड़ देना चाहिए. रोगी को कंबल ओढ़ा कर उसके शरीर को गर्म रखना चाहिए.

श्वास नली में कभी-कभी सूजन उत्पन्न हो जाती है, जिससे रोगी जीवन-मरण के बीच झूलने लगता है. ऐसे में चुंबकीय चिकित्सा द्वारा इस रोग की चिकित्सा लक्षणों के आधार पर शुरू में ही की जाए, तो लाभ शतप्रतिशत होता है.



अगर तीव्र श्वास नली शोथ में रोगी को ऑक्सीजन का अभाव महसूस हो, तो होमियोपैथिक, बायोकेमिक व ज़रूरत हो तो एलोपैथिक दवा दी जा सकती है. इससे तुरंत राहत महसूस होगी, परंतु बाद में चुंबकीय चिकित्सा को ही चिकित्सक के कहने तक ज़ारी रखना चाहिए.

– डॉ. नेविले एस. बेंगाली

होमियोपैथिक चिकित्सा

होमियोपैथी किट

डॉ. अरुणा रेखी

होमियोपैथी की औषधि जन्तुओं, शाक-सब्ज़ियों तथा खनिज स्रोतों से तैयार की जाती है. अपरिपक्वता की स्थिति में इन स्रोतों में से कुछ तो अत्यधिक नशीले होते हैं. बेलाडोना एक ऐसे पौधे से तैयार किया जाता है जो बहुत ही घातक होता है, इसके लाल फल ज़हरीले होते हैं.

आर्सेनिकम-एलबम विषाक्त खनिज धातु आर्सेनिक से बनाए जाते हैं. यह अत्यन्त अजीब प्रतीत होता है कि सर्वाधिक विषाक्त पदार्थों से होमियोपैथी की प्रबल औषधियों का निर्माण किया जाता है.

होमियोपैथी की औषध निर्माण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप निर्मित औषधियों में मूल तत्व का अत्यल्पांश ही निहित रहता है. चिकित्सकों के अनुसार ये औषधियां बलवर्द्धक व हानिरहित होती हैं.

औषधियों का निर्माण उपचार के लिए होता है. सफल उपचार के लिए इस बात की जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है कि रोग के लक्षण क्या हैं? अर्थात रोग की प्रारंभिक स्थिति में कौन-कौन से लक्षण दिखाई दे रहे हैं. लक्षणों के पता लगने पर ही हम उचित औषधि का प्रयोग कर सकते हैं.

आइए, अब हम इस बात की जानकारी प्राप्त करते हैं कि किन-किन लक्षणों में कौन-सी औषधियों का इस्तेमाल करना चाहिए ताकि घरेलू उपचार सम्भव हो सके.

घरेलू उपचार के निमित्त निम्नवर्णित औषधियों का प्रयोग उल्लेखनीय है:-

एकोनाइट नेपेलस: एकोनाइट प्रदाह (जलन) की प्रारंभिक अवस्था में या ज्वर के लिए लाभदायक है. बीमारी की हालत में रोगी अत्यन्त भयाक्रान्त तथा बेचैन रहता है. रोगी प्यास लगने पर ठण्डे पेय की आवश्यकता महसूस करता है.

एलियम सेप : इस औषधि की सहायता से उन मरीज़ों का उपचार किया जाता है, जो शीत से आक्रांत हों. लगातार छींकें आती हैं, आंखों से तथा नाक से पानी बहता है, रोगी को बेचैनी रहती है. कण्ठशोथ होने से श्वास ग्रहण करने में कठिनाई होती है.

एन्टीमोनियम टार्ट: यह औषधि उन मरीज़ों के लिए लाभप्रद सिद्ध होती है, जो गलशोथ (श्वासनली में पीड़ा) तथा खांसी से पीड़ित हों; छाती में जमे बलग़म की वजह से घरघराहट की आवाज़ें आती हों. मरीज़ पीला पड़ जाता है और बेहद कमज़ोर प्रतीत होता है.

एपीस: किसी कीड़े के काटने या मधुमक्खी के डंक से पीड़ित रोगी का उपचार इस औषधि की सहायता से किया जाता है.

आर्निका: गिरने या किसी कठोर वस्तु से चोट लगने से हुए ज़ख्म से राहत पाने के लिए इस औषधि का इस्तेमाल किया जाता है.

आर्सेनिक: विषाक्त भोज्य पदार्थ के सेवन के फलस्वरूप उत्पन्न पेट की गड़बड़ी, कै अथवा अतिसार से आक्रांत रोगियों का उपचार इस औषधि से किया जाता है.

बेलाडोना: ऐसे रोगियों के लिए यह औषधि विशेष लाभदायक है, जो ज्वराक्रांत हों, साथ ही खांसी, गलशोथ, सरदर्द, कानदर्द आदि से पीड़ित हों.

ब्रायोनिया: इस औषधि की सहायता से उपचार किये जाने वाले रोगी ज्वर, सरदर्द, गलादर्द, पेट की गड़बड़ी आदि से पीड़ित रहते हैं. रोगी सदा बेचैन रहता है. वह अकेला रहना पसन्द करता है. उसे काफी प्यास लगती है.

कल्केरिया फॉस: यह औषधि हड्डियों को भरने में सहायक होती है, यही कारण है कि चिकित्सक अस्थिभंग या दन्तपीड़ा से पीड़ित मरीज़ों को इसके सेवन की सलाह देते हैं. यह उपजिह्वा व गर्दन ग्रंथि की पीड़ा से छुटकारा पाने की अचूक औषधि है. स्कूली बच्चों के सिरदर्द को दूर करने में भी यह सहयोगी है.

कैन्थेरिस: यह औषधि मूत्राशय की थैली की सूजन से उत्पन्न पीड़ा से रोगी को मुक्ति दिलाती है. शरीर के जले हुए हिस्से के दर्द को कम करने में भी इसकी विशेष भूमिका होती है.

कार्बो वेजीटेबीलिस: बीमारी की वजह से यदि रोगी की जीवन शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी हो, तो ऐसी स्थिति में यह औषधि रामबाण सिद्ध होती है. इसे महान 'जीवन रक्षक' औषधि की संज्ञा दी गयी है.

केमोमिला: बच्चों के दांत आते वक़्त असह्य यंत्रणा से राहत पहुंचाती है केमोमिला यह उन सभी संवदेनशील मरीज़ों को आराम पहुंचाती है, जो दांत की पीड़ा से परेशान हैं.

फेरम फॉस: शीत ज्वर, गलशोथ, खांसी, कानदर्द, फेफड़े की झिल्ली की सूजन तथा वातरोग से आक्रान्त मरीज़ों का उपचार इस औषधि की सहायता से किया जाता है.

गेलसेमियम: उन तमाम मरीज़ों का उपचार इस औषधि के ज़रिए किया जाता है, जो सर्दी-जुकाम व दर्द से परेशान रहते हैं. ऐसे रोगी सुस्ती का अनुभव करते हैं तथा अकेला रहना ज्यादा पसन्द करते हैं. इसका उपयोग प्रायः फ्लू, शीत व तनाव, सरदर्द की स्थिति में किया जाता है.

हेयर सल्फ: यह औषधि ठण्ड से पीड़ित मरीज़ों को राहत पहुंचाती है. गले की पीड़ा, कण्ठशोथ आदि को दूर करने में भी यह विशेष-रूप से सहयोगी होती है. बच्चों की श्वासनली की सूजन से उत्पन्न यंत्रणा को यह निर्मूल कर देती है.

हायपेरिकम: यह औषधि ग्रन्थियों के अन्दर पहुंचकर घावों को भर देती है. रीढ़ की हड्डी के जख़्मों को दूर करने में भी यह पूर्ण सहायक होती है.

इग्नेटिया: इस औषधि की सहायता से उन रोगियों का उपचार किया जाता है, जो मानसिक रूप से व्यथित हैं. निराशा और आक्रोश से उद्वेलित हैं.

इंपेकॉक: ऐसे मरीज़ों का सफल उपचार इस औषधि से किया जाता है जिन्हें वमन की इच्छा होती हो या वमन आती हो. नाक बहने या शरीर के किसी भी हिस्से से खून बहने को रोकने में इसकी ज़रूरत पड़ती है.

लीडम: कांटे चुभने, डंक मारने व जानवरों के काटने के अलावा

आंख की बीमारी तथा

टखने में आयी मोच से भी राहत दिलाने में यह औषधि अत्यन्त उपकारी सिद्ध होती है.

मैग्नेशिया फॉसः यह औषधि आकस्मिक यंत्रणा को दूर करता है, जैसे-पैरों में आयी मोच के कारण उत्पन्न पीड़ा, मासिक धर्म से सम्बन्धित कष्ट या पेट की पीड़ा.

मर्क्यूरियसः यदि किसी मरीज़ के कान बहते हों, शरीर के किसी भाग में फफोले पड़ गए हों तथा मसूढ़े के दर्द से परेशान हो तो ऐसी स्थिति में उसका सफल उपचार मर्क्यूरियस वायवस नामक औषधि से किया जाता है.

नक्स वोमिकाः इस औषधि का उपयोग उन रोगियों के लिए किया जाता है, जो भोजन या अल्कोहल में अत्यधिक आसक्त हैं. उनकी आसक्ति को तोड़ने में यह औषधि मदद करती है.

फॉस्फोरसः कण्ठशोथ, शीत, रक्तस्राव आदि से आक्रान्त रोगियों के उपचार के लिए यह औषधि अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है. यह इतनी प्रभावी औषधि होती है कि एक बार के सेवन के पश्चात् रोग के पुनर्आगमन की संभावना नहीं रह जाती है.

पल्सेटिलाः यह औषधि उन लोगों के लिए विशेष रूप से उपयोगी होती है जो अत्यधिक तामसिक आहार ग्रहण करने के परिणाम स्वरूप उदरशूल से आक्रांत हैं. ऐसे रोगियों को प्यास नहीं लगती. ये उन्मुक्त वायु को पसन्द करते हैं तथा उष्णता से दूर भागते हैं.

रूटाः पिंडली की हड्डी का दर्द, टखने आदि के दर्द से यह औषधि छुटकारा दिलाती है. गिरने से आयी चोट या मोच से उत्पन्न दर्द का निवारण करने में यदि 'अर्निका' असफल हो जाती है, तो 'रूटा' कामयाब हो जाती है.

स्पोन्जियाः कण्ठशोथ तथा घरघराहट युक्त खांसी की स्थिति में चिकित्सक रोगियों को इस औषधि के सेवन की सलाह देते हैं. बच्चों की कन्ठशोथ की पीड़ा को दूर करने में इस औषधि की विशेष भूमिका होती है.

सल्फरः सल्फर का इस्तेमाल साधारणतः दाद, खाज, खुजली आदि चर्मरोगों से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है. दीर्घस्थायी बीमारियों के निवारण में यह औषधि विशेष रूप से सहयोगी होती है.

वेराट्रम एलबमः जब रोगी अतिसार तथा वमन से एक साथ आक्रांत होता है, तो ऐसी स्थिति से निज़ात दिलाती है यह औषधि.

साधारणतः घरेलू उपचार के लिए मरीज़ों को ६X क्षमता वाली औषधि सेवन की सलाह दी जाती है, इससे मरीज़ जल्द रोमुक्त हो जाता है. क्योंकि ६X क्षमता वाली. औषधि होमियोपैथी की एक विशेष मिलावट प्रक्रिया से तैयार की जाती है.

यह सही है कि घरेलू उपचार से रोग पर काबू पाया जा सकता है, परन्तु गंभीर मामलों में चिकित्सक (होमियोपैथ) से अवश्य परामर्श लेना चाहिए. घरेलू उपचार तो सिर्फ़ ऐसी स्थिति में किए जाते हैं, जब कोई चिकित्सक उपलब्ध न हो या रोग गंभीर न हो. रोगों के उपचार में हमें क़तई असावधानी नहीं बरतनी चाहिए. हमारे द्वारा की गई छोटी-सी भूल हमारी ज़िंदगी के लिए अभिशाप सिद्ध हो सकती है.

सिरके के उपयोग

- **एक गिलास पानी में सिरका डालकर रोज़ सुबह पीने से शरीर मोटा नहीं होता.**
- **सिरके में अजवाइन उबालकर पीने से जोड़ों के दर्द के लिए लाभदायक दवा तैयार होता है.**
- **गले में दर्द होने पर एक गिलास कुनकुने पानी में सिरका डाल कर गरारा करने से लाभ होता है.**
- **सिरका पानी में डालकर बाल धोने से बालों की रूसी मिट जाती है. बाल लंबे और काले होते हैं.**
- **मूंग, उड़द, चना आदि की दालें खाने के बाद सिरका सेवन करने से वे सुपाच्य हो जाती हैं.**
- **सिरके को अचार (आम आदि) में डालने से वह ख़राब नहीं होता और स्वादिष्ट तथा स्वास्थ्यवर्धक हो जाता है.**

कृष्णा त्रिवेदी

अमृत वचन

बाह्य व आभ्यंतर तप

उपवास, अल्प भोजन, आजीविका का नियम, रस-त्याग, सर्दी-गर्मी को समभाव से सहन करना और स्थिर आसन से रहना यह छः प्रकार के बाह्य तप हैं और प्रायश्चित, ध्यान, सेवा, विनय, शरीरोत्सर्ग और स्वाध्याय, ये छः प्रकार के आभ्यंतर तप हैं.

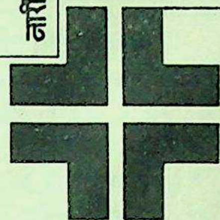
- महावीर तीर्थंकर

मन के कार्य

वस्तुतः मन अचेतन है, अतः उसमें क्रिया संभावित नहीं है, पर आत्मा के संपर्क में होने मन मे क्रिया का अभ्यास माना गया है. मन को चंचल व गतिशील भी कहा गया है. मन से ही इंद्रियों व शरीर पर नियंत्रण किया जा सकता है. पहले मन अपना कार्य पूरा करता है, फिर बुद्धि प्रवृत्त करती है और उसके बाद शरीर क्रियाशील होता है. सात्विक पुरुषों के कार्य प्राकृत मन के कार्य हैं और विकृत मन के काम, क्रोध, अहंकार, ईर्ष्या, लोभ, मद, मोह, भय, चिन्ता आदि विकार हैं और मानस रोग होने के मुख्य कारण भी ये ही हैं.

ी जाती

उपचार सकता कित्सक परामर्श ी सिर्फ़ हैं, जब हो या उपचार बरतनी ोटी-सी लिए है.



पौष्टिक एवं स्वादिष्ट व्यंजन



अदरक का हलवा

सामग्री: १०० ग्रा. सोंठ, २०० ग्रा. गुड़ की तैयार चाशनी, ५० ग्रा. घी, थोड़ी-सी अजवाइन.

विधि: सोंठ को कूट-पीस कर घी में हल्का लाल होने तक भून लें. फिर इसमें गुड़ की चाशनी और अजवाइन डाल कर मिला लें. यह हलवा पौष्टिक व स्वादिष्ट होता है व वायु विकार का नाश करता है. यदि आप चाहें तो इसमें शुद्ध केसर अजवाइन के स्थान पर डाल सकते हैं.

अमावट (आम पापड़)

आम पापड़ के लिए रसीले पके व मीठे आम लीजिए. आम को हाथ से दबा कर या मिक्सर में उसका गूदा डाल कर रस अलग कर लें. यदि मीठा कम हो तो थोड़ी शक्कर मिला लें.

एक थाली में घी चुपड़ कर थाली में थोड़ा रस गिरा कर फैलाएं और तेज़ धूप में सुखाएं.जब यह पर्त सूख जाए, तो दूसरे दिन फिर आम के रस की एक पर्त और फैला दें और सुखाएं. जब रस सूख कर कड़ा हो जाएगा, तो अपने आप थाली छोड़ देगा. इसे गोलाई में लपेट कर या बर्फी के आकार में काट कर हवाबंद डिब्बे में रखें और बिना मौसम के आम का स्वाद लीजिए. यह जी मिचलाने पर, उल्टी होने पर, अरुचि, खट्टी डकारें आ रही हों, तो आम पापड़ एक असरकारक औषधि का काम करती है.

किशमिश का मुरब्बा

सामग्री: १०० ग्रा. किशमिश, २५० ग्रा. शक्कर, २-३ पिसी इलायची, ५-६ बूंद गुलाबजल अंदाज़ से पानी.

विधि: किशमिश को अच्छी तरह साफ़ कर लीजिए. पानी को हल्का गर्म करके उसमें साफ़ की हुई किशमिश डाल दें. थोड़ी देर में ही किशमिश फूल जाएगी. अब शक्कर व पानी डाल कर तीन तार की चाशनी बनाएं, इसमें किशमिश डाल कर थोड़ी देर पकाएं. एक-दो उबाल आने पर आग से उतार लें. गुलाबजल व इलायची डाल कर अच्छी तरह मिला दें. ठंडा करके मर्तबान में भर दें. लीजिए तैयार है शक्तिवर्द्धक स्वादिष्ट मुरब्बा.

अदरक,हरी मिर्च और नींबू का अचार

सामग्री: ५० नींबू, २५० ग्रा. हरी मिर्च २०० ग्रा. अदरक, स्वाद के अनुसार व नमक पिसी लालमिर्च.

विधि: नींबू को धोकर थोड़ी देर धूप में रखें. अब नींबुओं के चार-चार टुकड़े कर लें. हरी मिर्च को धोकर कपड़े से पानी पोंछ कर बीच में से चीरा लगा दें. अदरक को धोकर छीलें और लंबे-लंबे टुकड़े काट लें.

एक कलईदार बर्तन लेकर उसमें नमक, मिर्च, कटे नींबू, अदरक व हरीमिर्च डाल कर अच्छी तरह मिला लें. चार-छह दिन धूप में रखें.आपका अचार तैयार हो जाएगा.

आम का मीठा छूंदा

सामग्री: १ किलो गुठली निकाला हुआ आम, २ किलो चीनी, नमक, पिसी लाल मिर्च स्वाद के अनुसार. थोड़ी-सी हींग.

विधि: गुठली निकाले गये आम को कद्दूकस कर लें. इसको थोड़ी देर भाप में पका लें. और आम की मात्रा से दुगुनी चीनी इसमें मिला कर धीमी आंच पर पकाएं. अब नमक, मिर्च व हींग को अच्छी तरह मिला दें. चाशनी थोड़ी गाढ़ी हो जाए, तो आंच से उतारें और ठंडा करके मर्तबान में भर दें.

हरड़ का अचार

सामग्री: ५०० ग्राम छोटी हरड़, २५ ग्राम मिर्च, ५ ग्राम पीपल, ३५ ग्राम जवाखार, ६० ग्राम नमक, ५ ग्राम सुहागा, २५ ग्राम भुना काला जीरा, ५ ग्राम सौंफ, ५०० मि.लि. नींबू का रस, ३ ग्राम हींग, २५ ग्राम गुलाबी सूजी, १० ग्राम दालचीनी, २५ ग्राम भुना सफ़ेद जीरा, ५ ग्राम लौंग.

विधि: छोटी हरड़ों को तीन दिन के लिए पानी में भीगने दीजिए. चौथे दिन इन्हें सुखाकर मिर्च, पीपल, जवाखार, नमक, सुहागा, भुनाकाला व सफ़ेद जीरा, सौंफ, लौंग, दालचीनी, हींग, गुलाबी सूजी आदि को पीसकर नींबू के रस में मिला लीजिए. फिर हरड़ को भी उसी मिश्रण में मिलाकर ३-४ दिन तक धूप में रखें.

चन

-गर्मी ह छः वनय, र्थंकर

, पर या है. इंद्रियों कार्य शरीर कार्य हैं मोह, कारण

एक्युपंक्चर चिकित्सा

हाथ कंपकंपाने की चिकित्सा

– डॉ. सीमा खांडवाला

अक्सर कई लोगों की शिकायत होती है. कि डॉक्टर साहब पता नहीं क्यों जब भी लिखने या टाइपिंग करते हैं, हाथ कांपने लगता है. कभी कुछ लोग कहते हैं कि क़लम पर पकड़ मज़बूत नहीं होती या क़लम चला नहीं पाते और क़लम नीचे गिर जाती है.'

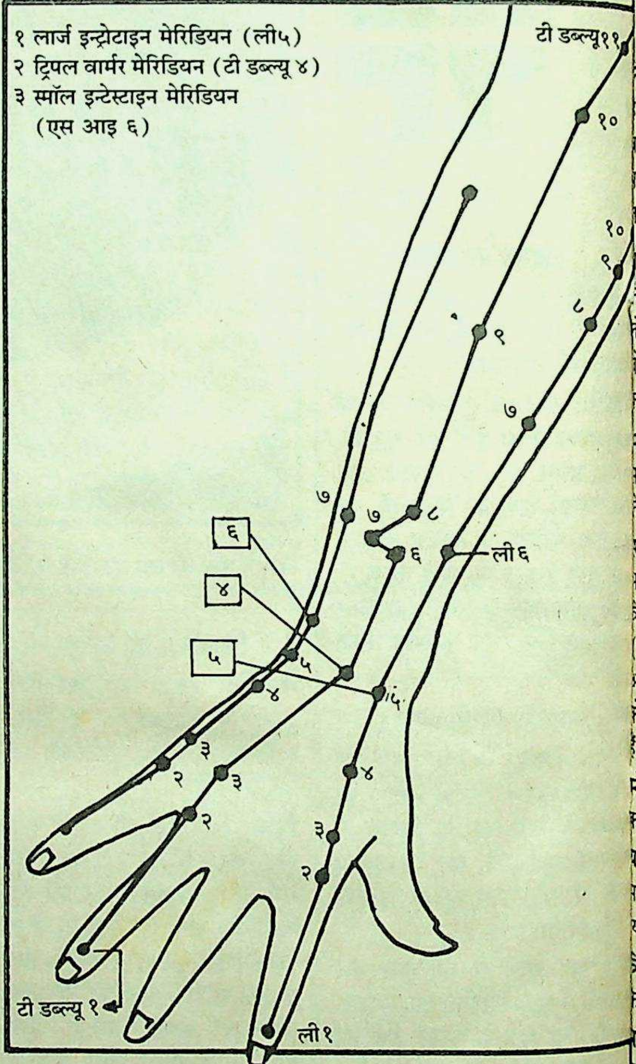
मांएं अक्सर अपने छोटे बच्चे का हाथ पकड़ कर रोज़ व बार-बार साफ़ व सही लिखने की आदत डालती है. कभी-कभी तो हाथ कांपने की बीमारी काफी उम्र होने पर होती है, तो कभी-कभी चिंता या अवसाद के कारण होती है. हाथ कांपने की यह बीमारी (Writers Cramps) लेखक, टाइपिस्ट, स्टेनो, आदि व्यक्तियों को होती है. क्योंकि ये सभी अपनी उंगलियों से ज़्यादा काम देर तक करते हैं. अतः काम के दौरान यदि उंगलियों की हलचल ठीक से न हो तो उनको कार्य करने में परेशानी महसूस होती है. ये लोग एक सीधी लाइन में नहीं लिख पाते. अक्षर छोटे-बड़े या टेढ़े हो जाते हैं. यहां तक कि हस्ताक्षर भी ठीक से नहीं कर पाते.

हाथ कांपने के कारण

सुंदर व सही अक्षर का आधार उंगलियों की हलचल पर निर्भर करता है. ये सेरिवल ओरिजन की परेशानी से होता है. यह हमारे दिमाग़ का एक भाग है. इस हाथ के कंपन की पहचान अलग है. यह कंपन सिर्फ़ लिखते या टाइपिंग आदि करते समय होता है. पर दूसरी क्रियाएं जैसे दाढ़ी बनाना, कपड़े पहनना, खाना बनाना आदि काम में उंगलियां कार्य सुचारू रूप से करती हैं. पर जब लिखने की बात आती है, तो हाथ कांपने लगते हैं. यही इस रोग का मुख्य लक्षण है.

लेखक, स्टेनो, एकाऊन्ट आदि हाथ के इन्ट्रिन्सिक स्नायु की मदद से लिखते व टाइप आदि करते हैं, जिसमें कलाई, कुहनी, कंधों के जोड़ों का उपयोग ज़्यादा नहीं होता. इसी कारण पेन, पेन्सिल को ज़्यादा ज़ोर लगा कर पकड़ना पड़ता है,

लेखक, स्टेनो टाइपिस्ट, एकान्टेंट आदि जो क़लम चलाने का काम करते हैं. यही उनकी रोज़ी-रोटी भी होती है. पर यदि वे हाथ कांपने की बीमारी से ग्रस्त हों तो उनके लिए बड़ी समस्या पैदा होगी. एक्युपंक्चर में इसकी चिकित्सा १५-२० दिन में ही हो जाती है.



जिससे स्नयुओं में संचालन न होने के कारण कंपन व दर्द होता है. पेन ग़लत पेन क़ाग़ज़ पर आगे या पीछे खिसक जाती है. उंगलियों की पेन पर पकड़ कम हो जाती है. स्थिति ऐसी हो जाती है कि व्यक्ति सीधी-सरल रेखा भी नहीं खींच पाता. अक्षर टेढे-मेंढ़े हो जाते हैं.

पार्किन्सन और गर्दन की रीढ़ की हड्डी की बीमारी में भी लिखते समय कंपन होता है, पर इसके साथ इसमें शरीरी की सारी क्रियाएं करने में परेशानी होती हैं. इसी एक कारण से इन से दो रोगों से हांथ की कंपन (writers cramps) अलग है.

एक्युपंक्चर से द्वारा चिकित्सा

चिकित्सा के पूर्व रोगी को लिखने की आदत सुधारने को कहा जाता

शेषांश पृष्ठ ९[illegible] पर

आयुर्वेदिक शब्द-ज्ञान

निदान — दो अर्थों में प्रयुक्त होता . एक तो रोग के 'कारण' के रूप में दूसरा लक्षणों से निश्चित रूप से ह जानना कि वह यही रोग है, यह ानना 'निदान' है.

ण्डूर — त्रिफला में गोमूत्र डाल र काढा बना कर उस काढ़े में ौहकीह (लौह खनिज) डाल कर ो चूर्ण बनता है, वह 'मण्डूर' हलाता है.

ानुपाक - त्रिफला के क्वाथ के ाथ लौहचूर्ण को तीव्र धूप में सुखा ेने को 'भानुपाक' कहते हैं.

थालीपाक - लौहचूर्ण का ानुपाक करने पर उसे फिर त्रफलाकषाय के साथ एक स्थाली (पतेली, लोहे की कढ़ाई) में प्रतितीव्र अग्नि से पकाते हुए जल ो सुखा लेने को 'स्थालीपाक' कहते ैं.

नेह - सभी प्रकार के घी को 'स्नेह' कहते हैं.

यमक स्नेह — घी, तेल, वसा या ज्जा इनमें से किन्हीं दो स्नेह को लेना यमक स्नेह' है.

त्रिवृत्त स्नेह - घी, तेल तथा वसा ा मिश्रण का नाम 'त्रिवृत्त' है.

हान स्नेह - घी, तेल वसा एवं ज्जा चारों के मिश्रण का नाम महान' है.

चकर्म - वमन, विरेचन, नुवासन, निरूह तथा नावन ये पंचकर्म' कहे जाते हैं.

मृदुकोष्ठ - जिसमें पित्त अधिक ोता है वह 'मृदुकोष्ठ' है.

मध्यम कोष्ठ - जिसमें कफ़ अधिक ोता है वह 'मध्यम कोष्ठ' कहा जाता है.

क्रूर कोष्ठ - जिसमें वायु (वात) अधिक होता है वह 'क्रूर कोष्ठ' के नाम से जाना जाता है.

'सौवीर' - कच्चे अथवा पके यवों को तुषरहित करके जो संधान किया जाता है, उसका नाम 'सौवीर' है. (जौ की शराब के रूप में भी इसे 'सौवीर' कहते हैं.)

विष्किर - बतख, बटेर, विकिर, कपिंजल. (चिड़िया या गौरैया) तीतर, चकोर तथा टिटीहरी आदि पक्षी 'विष्किर' कहे जाते हैं. जो पक्षी चोगे को बिखेर कर चुगते हैं, उन्हें भी 'विष्किर' कहा जाता है.

अनुवासन बस्ति — औषधि द्रव्यों से सिद्ध तेलादि द्रव्यों को गुदा मार्ग से प्रविष्ट कराया जाता है. यह जितनी देर अंदर रुकेगा, उतना ही असर करेगा. 'अनुवासन' यानी पक्वाशय के भीतर रुक कर जो वात शमन व वधिहरण कार्य करती है.

आस्थापन - निरूहण का दूसरा नाम 'आस्थापन' है. क्योंकि शरीर से दोषों का निर्हरण अर्थात् निकालती है, अतः निरूहरण और दोषों एवं धातुओं का अपने-अपने स्थान पर स्थापन करती है, अतः 'आस्थापन' कही जाती है.

सुनिरूढ़ - निरूहण वस्ति देने पर जिस मानव के पुरीष, पित्त, कफ तथा वायु क्रम से निकल जाते हैं और शरीर में हल्कापन आ जाता है. उसे 'सुनिरूढ़' समझना चाहिए.

दुर्निरूढ़ - जिसकी वस्ति थोड़ी-थोड़ी निकले, मल तथा वायु बहुत थोड़ा निकले और मूर्च्छा, पीड़ा, जड़ता तथा अरुचि हो जाए, तो उसे 'दुर्निरूढ़' समझना चाहिए.

उत्क्लेशन - एरंड के बीज, मुलेठी, पीपल, सैंधव लवण, बालवच एवं हाऊबेर का कल्क मिलाकर जो वस्ति दी जाती है, उसका नाम 'उत्क्लेशन' है.

दोषहर - सौंफ, मुलेठी, बिलगिरी तथा इन्द्रजौ का कल्क तथा कांजी एवं गोमूत्र मिलाकर जो वस्ति दी जाती है उसे 'दोषहर वस्ति' कहते हैं.

फलवर्ति - रोगी के अंगूठे के समान मोटी, चिकनी बत्ती पुरीष निकालने के लिए घी लगाकर गुद मार्ग में प्रविष्ट की जाती है, उसका नाम 'फलवर्ति' है.

अवपीड़ - नकछिकनी आदि तीक्ष्ण द्रव्य को पीसकर और निचोड़ कर जो रस निकलता है, उसकी नस्य को 'अवपीड़' कहा जाता है.

प्रधमन - कट्फल आदि का चूर्ण ६ अंगुल की नाली में भर जो नासा में फूंका जाता है, उस नस्य का नाम 'प्रधमन' है. सूखे चूर्ण की नस्य सूंघना भी प्रधमन है.

बिन्दुमात्रा - तेल आदि स्नेह में दो पोर तक डुबोकर निकाली गई तर्जनी अंगुली से जो बिन्दु (बूंद) गिरता है, उसका नाम 'बिन्दु मात्रा' है.

शाण - आठ बूंदों का एक 'शाण' होता है.

गण्डूषधारण - मुख में किसी द्रव को भर रखना 'गण्डूषधारण' कहलाता है.

कवल - वात, पित्त अथवा कफ को नष्ट करने वाले द्रव्यों के कल्क को मुख में डालकर और चबा चबा कर थूके, इसी का नाम 'कवल' है.

प्रतिसारण - दांतों अथवा जीभ पर अथवा मुख के अन्यान्य मसूड़े आदि भीतरी भागों पर जो औषधियों का चूर्ण, कल्क अथवा अवलेह अंगुली से रगड़ा जाता है उसका नाम 'प्रतिसारण' है.

तापस्वेद - बालू की पोटली, वस्त्र, हाथ तथा कपड़ों की गेंद को तपाकर अथवा अंगारों के पास बैठकर जो स्वेद किया जाता है उसे 'ताप स्वेद' कहते हैं.

ऊष्म स्वेद - लोह पिण्ड अथवा ईंट आदि को भलीभांति तपाकर और कांजी आदि द्रव से सींचकर और जब वाष्प निकलने लगे, तब कपड़ा लपेट कर कपड़ा से आच्छादित अवयव पर स्वेदन करने की क्रिया को 'ऊष्म स्वेद' कहते हैं.

उपनाह स्वेद - वातनाशक द्रव्यों को दूध एवं मांसरस आदि में पीसकर शरीर के वातपीड़ित भाग पर मोटा लेप करने को 'उपनाह स्वेद' कहते है.

सेंक या सेचन - भीची हुई समस्त आंख पर चार अंगुल ऊंचे से किसी द्रव औषधि की पतली धार गिराना. सेंक या 'सेचन' कहलाता है.

आश्च्योतन - किसी क्वाथ या मधु अथवा आसव आदि के बिन्दु खुली आंख में दो अंगुल ऊंचे से डालने की क्रिया को 'आश्च्योतन' कहा जाता है.

पिण्डी - उपयुक्त औषध को पीस टिकिया बना आंखों पर रखने का नाम 'पिण्डी' है.

विडालक - पलकों को छोड़कर नेत्र के बाहरी भाग पर जो लेप किया जाता है, उसका नाम 'विडालक' है.

लेखन अंजन - जो क्षार, तीक्ष्ण द्रव्य तथा अम्लरस से युक्त द्रव्यों से बनाया जाता है, वह 'लेखन' कहा जाता है.

रोपण अंजन - जो अंजन कसैले, तिक्त एवं स्नेह युक्त द्रव्यों से बनाया जाता है वह 'रोपण' है.

स्नेहन या प्रसादन अंजन - जो अंजन मधुर एवं स्निग्ध द्रव्यों से बनाया जाता है, उसे 'स्नेहन' या 'प्रसादन' कहते हैं.

पृष्ठ ७३ का शेष

व्यायाम - काल और प्रमाण

व्यायाम करने के लिए सबसे उपयुक्त समय प्रातःकाल या सायंकाल का ही होता है. व्यायाम हमेशा शुद्ध वातावरण में तथा स्वच्छ स्थान में ही करना चाहिए. आयुर्वेद में व्यायाम को अपनी आधी शक्ति से करने के लिए कहा गया है - अर्थात् जब हमारे माथे और बगल में पसीना आने लगे तथा जब श्वास वेगपूर्वक चलने लगे उस समय व्यायाम करना बंद कर देना चाहिए. विशेषकर हेमंत, शिशिर और वसंत ऋतु में व्यायाम अत्यंत ही लाभकारी होता है. परंतु शेष तीन ऋतुओं में अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा, शरद ऋतु में व्यायाम अपनी आधी शक्ति से भी कम करने के लिए बतलाया गया है.

व्यायामादि के लिए अन्य ऋतुओं की अपेक्षा शीत ऋतु एक बेहतर काल है. शीत ऋतु में हमारे शरीर की पुष्टि भी होती है, यदि हम पौष्टिक आहार व व्यायाम करें.

व्यायाम करते समय नियमों का पालन भी अत्यंत आवश्यक है क्योंकि शक्ति से अधिक व्यायाम करने से लाभ की बजाय हानि की अधिक संभावना होती है. ज़रूरत से ज़्यादा व्यायाम करने से प्यास, खांसी, क्षय, अरुचि, वमन, रक्तपित्त, ज्वर इत्यादि विकार होने की संभावना होती है.

व्यायाम ऐसे लोग न करें

वातपित्त रोगी, अजीर्ण से पीड़ित रोगी, अत्यधिक थके हुए व्यक्ति, क्रोध, शोक और भय से आक्रांत, भूख और प्यास से पीड़ित व्यक्तियों को व्यायाम नहीं करना चाहिए.

व्यायाम के पश्चात् कुछ देर विश्राम करके उसके उपरांत थोड़ी देर तक शरीर को धीरे-धीरे मलना चाहिए. ऐसा करने से व्यायाम की थकावट दूर हो जाती है और शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है.

जिन लोगों को अपनी आजीविका के लिए शारीरिक परिश्रम अधिक नहीं करना पड़ता अर्थात् बुद्धिजीवी लोगों के लिए तो व्यायाम की आवश्यकता और भी अधिक है. इस प्रकार प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर व्यायाम करने से शरीर और मन के स्वास्थ्य की रक्षा संभव हो सकती है. ●

पृष्ठ ७९ का शेष

नवंबर में पैत्रिक धन प्राप्ति, बौद्धिक कार्यों में सफलता मिलेगी. हृदय विकार व शारीरिक दर्द भी संभव है.

दिसंबर मास पर्याप्त प्रत्याशा को पूर्ण करने वाला तथा सांसारिक सुखों में वृद्धि करने वाला होगा. स्वास्थ्य की दृष्टि से चर्मरोग व जोड़ दर्द संभव है.

अक्तूबर माह की १ से ६, ९ से १५, १९ से २४, २७ से ३१; नवंबर की ५ से ११, १५ से २१, २४ से २९ व दिसंबर की २ से ९, १२से १८, २१ से २६ तथा २९ से ३१ तारीखें शुभ हैं.

मीन (दी दू थ झ ञ दे दो चा ची)

पूर्वाभाद्रपद का अंतिम चरण, उत्तराभाद्रपद व रेवती नक्षत्र मीन राशि है. पूर्वाभाद्रपद के चौथे चरण के बालक भोगविलासी, उत्तराभाद्रपद के बालक उच्चाधिकारी, समाजविरोधी, सुख संपन्न तथा रेवती में जन्म लेने वाले ज्ञानी, युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले व क्लेशयुक्त होते हैं. मीन राशि का स्वामी गुरु ग्रह है.

स्वर्णपाद में छठे बृहस्पति रोग-पीड़ा, कार्य-बाधा एवं दुश्चिंता प्रदान करने वाले हैं. ताम्रपाद के ११ वें शनि शुभफल देने वाले हैं. नौकरी-व्यापार में वृद्धि, धन, यश लाभ, संतान कष्ट संभव है. लौहपाद में दशम राहु व चतुर्थ केतु कष्टप्रद है.

अक्तूबर माह में आर्थिक व्यवहार में सावधानी आवश्यक है. प्रतिष्ठा को चार चांद लग सकते हैं. कफ विकार से शारीरिक कष्ट संभव है.

नवंबर मास में आरोग्य पराक्रम और सुख में वृद्धि होगी. धीरे-धीरे हर कार्य में आंशिक सफलता मिलने लगेगी.

दिसंबर मास आजीविका और नौकरी के लिए अच्छा है. पदोन्नति अथवा मनोवांछित स्थान पर स्थानांतरण होगा. लिवर विकार, अपचन व गले में जलन संभव है.

अक्तूबर की शुभ तारीखें २ से ८, ११, १७, २१ से २६, २९, नवंबर की ४, ७ से १४, १७, २३, २६ से ३० तथा दिसंबर की १, ५, ११, १५ से २०, २३ व २८ तारीखें उत्तम हैं. जो तारीखें दर्शाई नहीं गई हैं वे किसी कार्य के लिए शुभ नहीं हैं. ●

पृष्ठ ५१ का शेष

(आहार को) पचाने में सहायक होता है.

अति और अल्प आहार से हानि

आहार अधिक मात्रा में नहीं करना चाहिए. जितना सरलतापूर्वक पच सके उतनी ही मात्रा में लेनी चाहिए और न तो नाम मात्र या अल्प भोजन ही करना चाहिए. प्रायः देखा गया है कि स्वादिष्ट आहार की मात्रा पर ध्यान दिये बिना ही लोग अधिक आहार कर लेते हैं जो स्वास्थ्यकर होने के बजाय हानिप्रद हो जाता है. कभी-कभार आहार करना एक कर्त्तव्य समझकर बिना भूख लगे ही आहार कर लिया जाता है, जो रोग का मूल कारण हो जाता है. अतएव, संतुलित, सुपाच्य, उचित मात्रा में ग्रहण किया गया आहार उपयोगी प्रमाणित होता है. इतनी सावधानियां बरतने के बाद आहार ग्रहण करना एक प्रकार की चिकित्सा है. इसीलिए आहार-चिकित्सा मानव शरीर के लिए अत्यंत लाभदायक तथा स्वास्थ्यप्रद है. अतः लाभदायक आहार और मात्रानुसार भोजन हमेशा ही आरोग्य प्रदान करने वाला है.

आहार-चिकित्सा जीवन के लिए अत्यावश्यक तथ्य है जिनकी उपयोगिता उपरलिखित पंक्तियों में संक्षिप्त रूप में दे दी गई है. ●

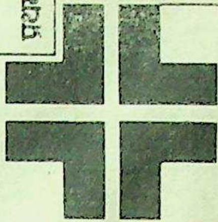
हमें खेद है

'आरोग्य संजीवनी' के अंक पांच में पृष्ठ ११ के लेखक हैं, डॉ. बी.के. सिंह. पृष्ठ ५१ के लेखक का नाम ग़लत प्रकाशित हुआ है. पाठक कृपया सही नाम पढ़ें - डॉ. रामयतन सिंह 'भ्रमर'. 'योगासनों से क़द बढ़ाइए' के लेखक हैं डॉ. श्यामसुंदर पोदार.

प्रस्तुत अंक की क्रिया-प्रतिक्रिया

जी हां, 'आरोग्य संजीवनी' पाठकों की रुचि आदि को ध्यान में रख कर प्रकाशित की जाती है. फिर भी लेखों के संबंध में कुछ कमी या कुछ सुझाव आदि भेजना चाहें, तो स्वागत है आपकी क्रिया व प्रतिक्रिया का.

प्राथमोपचार



चोट लगने के कारण जबड़े की हड्डी टूट जाए तो

सबसे पहले तो दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को श्वास लेने में मदद करनी चाहिए. यदि व्यक्ति बेहोश नहीं है तो उसे बैठाएं या सीधा लिटा कर जबड़े को सहारा देना चाहिए. बेहोश व्यक्ति को करवट के बल लिटाना चाहिए तथा शीघ्र डॉक्टर को बुलाएं.

खटमल, मच्छर आदि के काटने पर

मच्छर इत्यादि के काटने पर खुजली तथा सूजन हो जाती है. उस स्थान को खुजलाने से संक्रमण (इंफेक्शन) होने का ख़तरा होता है. काटे हुए स्थान को साबुन से अच्छी तरह धो कर साफ़ कर लें व कोई एंटीसेप्टिक क्रीम लगा दें.

आग या गर्म पदार्थ से जल जाने पर

यदि शरीर गंभीर रूप से जल गया है तो तुरंत अस्पताल ले जाना चाहिए, परंतु यदि हल्के रूप से जला हो तो सबसे पहले जले हुए भाग पर ठंडा पानी डालना चाहिए ताकि जलन न हो. कपड़े ढीले करें या उतार दें. किसी मुलायम और साफ़ कपड़े से घाव को ढंक दें. रोगी को थोड़ा-सा ठंडा पदार्थ पिलाएं तथा डॉक्टर से संपर्क करें.

दबने या आघात से छाती पर चोट लग जाए तो

यदि आघात गहरा है तो छाती की पसलियों के फ्रैक्चर का ख़तरा होता है. ऐसी हालत में रोगी को तुरंत अस्पताल ले जाना चाहिए. यदि १ या २ पसलियां टूटने का संदेह हो तो आहिस्ता से हाथ को छाती पर रखकर अच्छी तरह पट्टी से बांध दें ताकि घाव स्थिर रहे. यदि रोगी को सांस लेने में असुविधा हो तो उसका सिर पीछे की ओर झुका कर लिटाएं, कपड़े ढीले कर दें तथा ताज़ी हवा में रखें. रोगी को सदमे से बचाने के लिए धीरज दें एवं डॉक्टर से तुरंत संपर्क करें.

चोट या जख्म के कारण कान से खून बहे तो

अगर सिर पर लगे आघात के कारण कान से खून बह रहा है, तो तुरंत डॉक्टर से संपर्क करें. कटे हुए स्थान पर मुलायम साफ़ कपड़ा रख कर 'खून रोकने का प्रयास करें. रोगी का सर ऊपर को उठा कर रखें. पट्टी को सर के साथ बांध कर स्थिर कर दें.

खेलते हुए गिरने से बच्चे का दांत टूट जाए तो

अगर खून काफ़ी बह रहा हो तथा रोकना संभव न हो तो तुरंत डॉक्टर को बुलाएं. टूटे हुए दांत को मुंह से निकाल कर दुबारा लगाने के लिए संभाल कर रख लें. बच्चे को कुर्सी पर आगे की तरफ़ झुका कर बैठाएं तथा किसी कटोरे में थूकने दें. एक मोटा और साफ़ कपड़ा टूटे हुए दांत की जगह रख कर दबाएं. बच्चे को कपड़ा अपने दांतों से दबाए रखने को कहें. बच्चे को पानी से कुल्ला न करवाएं, अन्यथा खून बहना रोकने में असुविधा होगी.

बच्चा ग़लती से ज़हरीला पदार्थ निगल जाए तो

अगर बच्चा बेहोश न हुआ हो तो उसे खूब पानी या दूध पिलाएं. कपड़े ढीले करके ताज़ी हवा लेने दें. जिस पदार्थ को बच्चा निगल गया है, उसे तथा उल्टी होने पर उस पदार्थ को भी डॉक्टर को परीक्षण करने लिए संभाल कर रखें.

— डॉ. जगदीप कौर

अमृत वचन

सच्ची टकसाल

जतु पाहारा धीरजु सुनियास । अहराण मति वेदु हथीआस ।।
भउ खला अगनि तपताऊ । भांडा भाउ अमितु तितु ढालि ।।
घड़ीऐ सबहु सची टकसाल । जिन कउ नदरि करमु तिन कार ।।
नाम नदरी नदरी निहाल ।।

नानकदेवजी कहते हैं - "संयम को तू अपनी भट्ठी बना और धीरज को अपना सुनार, विवेक को बना अहरन और आत्मज्ञान को हथौड़ा, परमात्मा के भय को बना धोंकनी और तप की जला अग्नि; प्रेम का बना सांचा और नाम का अमृत उसमें डाल. ऐसी सच्ची टकसाल से शब्द गढ़ा जा सकेगा. ऐसा काम वे ही कर सकते हैं जिन पर भगवान की कृपा है. परमेश्वर की कृपा से ही भक्त निहाल हो जाते हैं."

शारीरिक एवं उद्वेगात्मक थकान

हम जब थक जाते हैं, तो उस थकान के दो कारण हो सकते हैं एक तो शारीरिक थकान, जैसे कड़ीधूप में मेहनत करने वाला मज़दूर जो दिन-भर भाग-दौड़ कर काम करता है और जैसे-जैसे शाम होती है, उसका शरीर बोझिल होकर काम करना रोक देता है. शारीरिक थकान को दूर करने के लिए आराम और नींद की ज़रूरत होती है. और दूसरी थकान होती है, उद्वेगात्मक थकान. यह थकान उद्वेगों के कारण पैदा होती है और सीधे मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित होती है. बिना श्रम के भी इस थकान से व्यक्ति चिड़चिड़ा बिगड़े मूड का या व्यसनी हो जाता है. वस्तुतः उद्वेगात्मक थकान. एकरस व लगातार काम करने से होती है. काम के बीच में आराम करने से यह स्थिति नहीं आती. साथ ही अपने तनाव, चिड़चिड़ेपन आदि को सुधारने की कोशिश करें.

पृष्ठ ६३ का शेष

मल आदि) चिकनाहट की कमी, दुर्बलता, ग्लानि, तृष्णा, शब्दों को न सहन कर सकना आदि. इन लक्षणों के अतिरिक्त रस धातु का क्षय होने पर उसके उपधातु आर्तव और स्तन्य (दूध) की भी पुष्टि नहीं होती. आधुनिक मत से हृदय के रस-रक्तवह स्रोतों के स्तम्भ (आकुंचन) के कारण व हृदय की पेशी को रस न मिल पाने के कारण हृदय में पीड़ा होती है.

रस क्षय के कारण जो तृष्णा होती है, उसे सुश्रुत ने क्षयज तृष्णा कहा है - शरीर रसज है अर्थात् रस धातु से उत्पन्न और पुष्ट होता है और यह रस धातु जल से उत्पन्न होता है, अतः इस जल का क्षय होने पर जल की इच्छा के रूप में तृष्णा होती है.

रसक्षय के कारण जो शब्दों के सुनने की असहनशीलता होती है. उसका एक प्रकार यह भी होता है कि रोगी अन्य पुरुषों के साथ बैठकर खाना-पीना पसंद नहीं करता, क्योंकि खान-पान की क्रिया में अन्य पुरुषों के मुख आदि से होने वाले शब्द उसे सह्य नहीं होते.

रससार : सार का अर्थ है रस आदि धातुओं की अतिविशुद्धि. अंग्रेजी में इसे स्टेमीना कहते हैं. तात्पर्य, जिस धातु का जो स्वरूप होना चाहिए, वह उनमें हो तो उसे सारवान समझना चाहिए.

अगर रस विशुद्ध (सारवान) होगा तो पुरुषों में निम्न लक्षण दिखाई पड़ते हैं - रोम स्निग्ध, मृदु, प्रसन्न (निर्मल, निर्दोष) सूक्ष्म, अल्प, गम्भीर (गहरे मूलवाले) तथा सुकुमार होते हैं. त्वचा भी आकर्षक, सुंदर, निर्मल और कोमल होती है. पुरुष रससार हो तो सुख, ऐश्वर्य, सौभाग्य, उपभोग, बुद्धि, विद्या, आरोग्य, आनन्दमय स्वभाव और दीर्घ आयु की संभावना होती है.

रसप्रदोषज रोग:

रसधातु में दोष का स्थानसंश्रय होने के परिणामस्वरूप जो रोग होते हैं उन्हें रसज या रस-प्रदोषज रोग कहते हैं. कुछ प्रमुख रस-प्रदोषज यहां दिए जा रहे हैं.

अरोचक: अरुचि,इसमें क्षुधा तो होती है, पर अन्न सेवन की इच्छा नहीं होती. यहां तक कि रोगी उसकी बात करना भी पसन्द नहीं करता. क्योंकि मुख में रखने पर न तो वह रुचिकर होती है, न ही कोई स्वाद मिलता है. अतः वह खा नहीं सकता, अगर खा भी ले तो उल्टी की संभावना होती है.

मुखवैरस्य: मुख का जो रस या स्वाद रहता है, उसके विपरीत होना कफ के कारण रस दूषित हुआ तो, मुख में मधुर रस का आभास होता है. पित्त के कारण हो तो तिक्त या अम्ल तथा वात के कारण दूषित होने पर फीकापन मालूम होता है. कफ़ और पित्त दोनों से लवण रस होता है.

अरसज्ञता: रस की प्रतीति न होना. आमाशय में स्वयं कफ़ का प्रकोप हो, कफ़ दूषित हो तब उसके संसर्ग से रस भी दूषित हो जाता है, जिससे अरसज्ञता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं. अन्य दोषों का आमाशय में स्थानसंश्रय होने पर भी स्थान के प्रभाव से कफ का प्रकोप होता है, जिससे रस भी दूषित हो जाता है.

हल्लास: थूक अधिक आना. विरेचन या अतिसार के पूर्व जैसे, अधोवात की प्रवृत्ति के समय लक्षण होते हैं वैसे ही हल्लास और उत्क्लेद वमन के क्रमशः पूर्वरूप होते हैं.

अविपाक या अजीर्ण: यह रसदूषितजन्य अग्निमांद्य का परिणाम होता है. इसमें भोजन पचकर जिस रूप में परिणत होना चाहिए, उस रस रूप में प्राप्त नहीं होता.

तृप्ति: अन्नपान का सेवन न करे, तो भी ऐसा मालूम होता है जैसे पेट भरा हो.

हृदयरोग: रस दो प्रकार का होता है - अन्नरस तथा रसधातु. अन्नरस के दूषित होने पर उसके स्थान - आम-पच्यमान-पक्वाशय दूषित होते हैं, परिणामस्वरूप सन्निकटवर्ती हृदय पर उनका प्रभाव पीड़ा, शूल आदि के रूप में होता है. कभी रसधातु भी दोषों से दूषित हो सकती है. उसका स्थान स्वयं हृदय होता है, इसलिए स्थानीय रस के दूषित होने पर इस दोष का प्रभाव हृदय पर भी होता है. इस प्रकार रस दो प्रकार का होने से हृदय रोगों की उत्पत्ति भी एक या दोनों रसों के दूषित होने से होती है.

पाण्डुरोग: रस दूषित होने से व धातुरक्त की पुष्टि ठीक से न होने के कारण पाण्डुरोग होता है.

कृशता: अन्नदोष, अरुचि, अग्निमांद्य आदि कारणों से रस का क्षय होता है. रस के क्षय से, रक्तादि अन्य धातुओं का भी क्षय होने से शरीर दुबला होने लगता है.

इन रोगों के अतिरिक्त अपचन या अग्निनाश, शरीर टूटना, तन्द्रा, गौरव, अनुत्साह, क्लैव्य, त्वचा पर झुर्रियां, असमय में बाल सफ़ेद होना, ज्वर,आंखों के आगे अंधेरा छाना आदि विकार रस धातु के दूषित होने पर उत्पन्न होते हैं. अतः दैनिक जीवन में हमारा यही प्रयत्न होना चाहिए कि रस धातु की पुष्टि हो और हम स्वस्थ रहें.

पृष्ठ ८४ का शेष

है. दाएं हाथ की बजाय बाएं हाथ से लिखाना चाहिए. रोगी को हाथ के स्नायु की बजाय, कलाई, कंधे व कुहनी को-स्नायु का इस्तेमाल करना चाहिए.

(ऐसे रोगियों की चिकित्सा के लिए एक्युपंक्चर से नई आशा जगी है. एक्युपंक्चर चिकित्सा शुरू करने से पहले रोगी से लिखवाया जाता है, इस पेपर को केस पेपर के साथ जोड़ कर कर चिकित्सा की शुरूआत की जाती है, इससे बाद में पता चलता है कि चिकित्सा के बाद कितना लाभ हुआ.

एक्युपंक्चर का मानना है कि हमारे पूरे शरीर में जीवन शक्ति का संचार होता है. जीवनशक्ति हमारे जीवित कोष में, स्नायु में, मांसपेशियों में प्रवाहित होती रहती है. नई उत्पन्न होती है व शरीर में जमा भी रहती है. उसके प्रवाहित होने की दिशा, मार्ग, एक जैसे ही हैं. इसे ही हमारी भाषा में 'मेरिडियन' कहते हैं. ये मार्ग हमारे शरीर में यकृत से होकर त्वचा तक पहुंचते हैं. इसलिए जब हम रोग ग्रस्त होते हैं, तो अवयवों में व्याप्त जीवनी शक्ति पर भी इसका असर होता है और इसकी जानकारी त्वचा पर आए मेरिडियन के मार्ग में दर्द होने से होता है. इन्हीं मेरिडियन पर एक्युपंक्चर के दबाव बिंदु आए हैं.

वैसे तो हमारे शरीर में १४ मेरिडियन प्वाइंट हैं, जो शरीर के भीतरी अवयवों से जुड़े हुए, त्वचा पर आए है.

चित्र में दर्शाए अनुसार Large intestine एवं Tripple Warmar मेरिडियन बिंदु पर सुई चुभोई जाती है. इससे स्नायुओं में जीवनीशक्ति का फिर से संचार होता है. और रोगी धीरे-धीरे कुछ सप्ताह चिकित्सा के बाद ठीक होने लगता है. जीवनीशक्ति को उत्तेजित करने के लिए सुई के साथ इलेक्ट्रोस्टिम्युलेटर को जोड़ा जाता है.

१५ दिन में २०-८० मिनट तक चिकित्सा देने से ही लाभ होने लगता है अथवा कभी-कभी कुछ दिन और चिकित्सा करवाने पर हाथ कांपने की इस बीमारी से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है.

साठ साल के बूढ़े या साठ साल के जवान?

देखा आपने? ६० साल की उम्र में भी कितनी शक्ति, कितनी स्फूर्ति! जबकि आप अभी ३० ही के हैं फिर भी थकान महसूस करते हैं. क्यों?

इसका जवाब है - केसरी जीवन.

हर दिन, दिन में दो बार दो चम्मच.

ज़ाफ़रान (केसर) - अनमोल तत्व!

केसरी जीवन की बोतल खोलिए... दुनिया की सबसे महँगी जड़ी-बूटी असली ज़ाफ़रान की खुश्बू आपका स्वागत करेगी... कश्मीर की वादियों से चुना गया ज़ाफ़रान.

केसरी जीवन में ज़ाफ़रान के आरोग्यकर और सौन्दर्यवर्धक गुणों के साथ ताज़ा आंवला व अन्य अनेक जड़ी-बूटियां भी तो हैं जो शरीरगठन मज़बूत बनाएं, शरीर के टिशूज़ को वृद्धावस्था में भी चुस्त रखें, तेज़ रफ़्तार ज़िंदगी के तनावों से मुक्त रखने में सहायक हों और बीमारियों से मुकाबला करने की शक्ति दें.

ज़िंदगीभर सेहत का अनमोल रत्न आप भी पाइए. जीभर कर जीने की तरो-ताज़गी महसूस कीजिए.

झंडु केसरी जीवन



रग रग में जान - ज़िन्दगी की शान

ION/B/ZP/22/244 HN

"बच्चों की पढ़ाई या सेहत का मामला हो तो मैं समझौता कभी नहीं करती..."

"इसीलिए मैं उन्हें नियमित रूप से झंडु स्पेशल च्यवनप्राश देती हूँ. सचमुच यह स्पेशल है. शुद्ध हरा आँवला, पीपली, वंशसालोचन, कुंडकोल, लौंग, जावंत्री, इलायची और अकलकरा जैसी जड़ी-बूटियाँ. सब को शुद्ध देसी घी में बनाया गया है. मेरा बाज़ार का आना-जाना तो रोज़ ही लगा रहता है, मैं जानती हूँ कि अच्छी और उम्दा दर्जे की चीज़ें हमेशा कुछ महँगी ही मिलती हैं. फिर, जब क्वालिटी की बात हो तो हर कोई झंडु को जानता है और उस पर भरोसा करता है.

मैं, अपने बच्चों को झंडु स्पेशल च्यवनप्राश बारहों महीने देती हूँ. इसीलिए उनमें छोटी-मोटी बीमारियों का मुक़ाबला करने की शक्ति आ गई है. ख़ास तौर से खाँसी और ज़ुकाम.

हाँ, थोड़ी सी परेशानी मुझे ज़रूर है. इसमें मिले तत्त्व इतने ताज़ा और शुद्ध हैं कि इसका स्वाद भी कमाल है. बच्चों का बस चले तो वे इसे दिनभर खाते रहें. हर दो-चार दिन बाद मुझे बोतल कहीं दूसरी जगह छिपाकर रखनी पड़ती है. क़ीमती है न!"

अब १ किलो के आकर्षक पॉलीजार में भी उपलब्ध.



क़ीमती ही सही **झंडु स्पेशल च्यवनप्राश.**

असली च्यवनप्राश

CLARION/B/ZP/17/254 HIN-R